श्रीमदाचार्यश्रीनिवासशास्त्रिवर्यविनायकान्तविरचित.

चन्द्रमहीपतिः

पार्वतीविवृतिसहित:

कमला

प्राक्कथनलेखक:

श्रीनरहरि विष्णु गाडगील

समालोचकौ

क० श्रीहनुमत्प्रसादशास्त्री (संस्कृतभाषायाम्)

डा० श्रीशतकोटिमुखर्जी (आङ्ग्लभाषायाम्)

वाणी ममैव सुरसा यदि रञ्जयित्री न प्रार्थये रसविदामवधानदानम् ।
सायन्तनीषु मकरन्दवनीषु भृङ्गाः किं मल्लिकासु परमन्त्रणमारभन्ते ॥

*　　　　*　　　　*

दानार्थिनो मधुकरा यदि कर्णतालैर्दूरीकृताः करिवरेण मदान्धबुद्ध्या ।
तस्यैव गण्डयुगमण्डनहानिरेषा भृङ्गाः पुनर्विकचपद्मवने वसन्ति ॥

निर्माणकाल: १९९१ वैक्रमः

प्रथममुद्रणकाल: २०१६ वैक्रमः

वैयाकरणकेशरिणां

पूज्यजनक-
श्रीनवरङ्गरायशास्त्रिणां

करारविन्दयोः समर्पणम्

आराध्यदेव !

श्रीचरणसान्निध्ये समधिगतं शास्त्रप्रकाशमर्थ-जगतो विभीषिकान्धतमस विलुम्पति । तस्य क्षीयमाणज्ञानप्रकाशस्य कतिपयानवशिष्ट-शब्दाशूनवचित्य न्यास एष सम्भालयितुम-शक्यः सम्भाव्यमानः श्रीमद्भ्य एव सादरं सश्रद्धं सलज्जञ्च प्रत्यावर्त्तयता समर्प्यते-

—श्रीनिवासेन

श्रावणी पूर्णिमा १९९१ वैक्रमः
भारद्वाजभवनम्,
राजगढ़, बीकानेर
(राजस्थान)

जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणैर्ऋणवाञ्जायते। तत्र—

ऋणं देवस्य यागेन ऋषीणां पाठकर्मणा।
सन्तत्या पितृलोकानां शोधयित्वा परिव्रजेत्॥

इति हि धर्मशास्त्रकाराः समामनन्ति। तत्र ऋषीणां पाठकर्मणेतिवचनस्य तात्पर्यमिदमेव यदृषिभिः प्रज्ञानेत्रेण विलोक्य यद् ग्रन्थेषूपनिबद्धं तत्साभिनिवेशमनुशीलनीयं तदनुरूपा नव्यादर्चापि ग्रन्था विरचनीया इति। एवमेवर्षिप्रतिपादितं रिक्थं परिरक्षितं परिवर्द्धितञ्च स्यात्, ऋषि ऋणञ्च निर्यातितं स्यात्। अधन्यतया पुनरस्माकमद्यत्वे खलु निरल्पतमा एव ऋषिऋणविनयाय प्रयासमातिष्ठन्ति, सुविरलतमाश्च तत्र साफल्यमधिगच्छन्ति। एष्वेव च सुविरलतमेष्वन्यतमः श्रीश्रीजीवन्यासशास्त्रिमहाभागः। साहित्यव्याकरणादिविविधशास्त्रेषु कृतश्रमेण विपश्चिदपश्चिमेन शास्त्रिमहाभागेन रसभरनिर्भरेण गद्येन चन्द्रभूपतिकथा समुपनिबद्धा। "ओजः समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्" इत्युपदेशमनुपालयतापि शास्त्रिमहोदयेन लेशतोऽपि प्रसादो न परित्यक्तो न वा माधुर्यमुत्सारितमित्यहो सुवर्णेऽपि परमामोदः। प्रमादा अत्र वर्तन्ते केचन, परं चारुतरतरुण्याः कपोलकज्जलवन्न प्रभवन्ति ते कथागतमुत्कर्षमपहर्तुम्। अवश्यमेव समास्वादनीयः कथाया अस्या रसः सहृदयैः। प्रतिविद्यालयं प्रतिमहाविद्यालयं प्रतिपुस्तकशालञ्च रक्षणीयमिदम्। पुस्तकस्यास्य कृते शास्त्रिमहोदयो राष्ट्रकर्णधारैः पारितोषिकेण संवर्द्धनीय इति नः प्रतिभाति।

अत्र पद्यान्यपि भूयांसि विलसन्ति। तेषु च कानिचन ग्रन्थकृत एव, अपराणि च तेषां तेषां कवीनाम्। सर्वाण्येव सरसानि मनोहराणि च। इतरकविषु च प्रतिवादिद्विरदपञ्चानने पण्डितराजजगन्नाथे शास्त्रिमहोदयस्य बहुमानो दृश्यते। शास्त्रिमहाभागस्य गद्ये पद्ये च सममेव नैपुण्यं परिलक्ष्यते।

चिरञ्जीवतु शास्त्रिमहोदयश्चिरञ्च समलङ्करोतु सुरसरस्वतीमीदृशीभिः सुमनोमालाभिरिति शिवम्।

८, भूपेन्द्र बोस एवेन्यू
कलकत्ता
२१।४।५६.

श्रीक्षितीशचन्द्रचट्टोपाध्याय
मञ्जूषासम्पादकः



राजभवन
चण्डीगढ़।

पञ्जाबराज्यपाल महामहिम श्रीनरहरि विष्णु गाडगील महोदय का प्राक्कथन।

मनुष्य प्रातःकाल उठ कर अपने शरीर के कार्य करता है, फिर अपने बान्धवों के, फिर मित्रों के, फिर दूसरों के। यह सब पहलुओं में लागू होता है। कुछ स्वयं बन कर राष्ट्र को बनाने का उद्देश्य उत्तमपुरुषों का सभी राष्ट्रों में रहा है। उन्हीं सब कार्यकर्ताओं के एक प्रणालीबद्ध निरूपण को उस पुरुषोत्तम के द्वारा या बाद में एक वाद का स्वरूप मिलता है। इसी उद्देश्य से विश्व में विश्वहित के लिये विभिन्न वाद देखे जाते हैं। वाद के प्रणेता एवं उसके अनुगामी उस अपने वाद को ही सर्वाधिक विश्वजनहिताय मानते हैं। परन्तु इन सब वादों से ऊपर उठ कर इनकी वास्तविकता देखने से सभी अपूर्ण से दिखाई पड़ते हैं। यही कारण है कि अनेकों वाद विश्वमंच पर आये और विलीन हो गये। परन्तु सर्वोदय एक ऐसा समन्वयात्मक वाद है जिसमें स्थायित्व की क्षमता है। लेखक ने सर्वाभ्युदय का प्रयोग विशेष उद्देश्य से किया है, और व्याख्या की है...'सर्वेण' 'सब मनुष्यों द्वारा' 'सर्वस्मिन्' 'सब काल और स्थितियों में' 'सर्वस्मै' 'सब के लिये' 'सर्वस्मात्' 'सब उपायों से' 'सर्वस्य' 'प्राणिमात्र का' अभि='समन्तात् उदयः सर्वाभ्युदयः'।

इससे उसकी व्यापकता में और चार चांद लग जाते हैं; इसका उत्कर्ष और बढ़ जा
सर्वतोभावेन। लेखक की दृष्टि में यह कोई वाद नहीं अपितु स्वभाव है और यह स्वभाव मानव में सृष्टि के आदि से है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥

यहां सब के लिये कल्याण और सुख की कामना है, बहुजनों के लिये नहीं। यह पुरातन ऋषि का सर्वप्रथम आशीर्वाद है, संकल्प है। यह कोई इधर के दिमाग की उपज नहीं अपितु विरोगों की स्वयहरणीय अकथ्य महौषध है। इसकी आधारशिला है आध्यात्मिक अद्वैत। समन्वय, सामञ्जस्य, सामरस्य इसकी प्रणाली है। यह वस्तुतः जीवनमात्र के लिये जीवनामृत है। यह मानवनिर्मित वैषम्य को दूर करता है और प्राकृतिकवैषम्य को घटाता है। यहां प्राणिमात्र के लिये समादर प्राप्त है। इसमें स्वामी और नौकर का, मिल्मालिक और मजदूर का अन्तर नाममात्र का रहता है। यदि घर में कोई नौकर कार्य करता है तो वह कृपा करता है कि अपना कार्य छोड़ कर हमारा कार्य करता है। अतः उसके लिये हमें हेय भाव नहीं रखना चाहिये, अपितु समादरभाव रखना चाहिये। "भोजनं जीवनस्त्वाधिपतिसमः स्यात्।" इसी प्रकार व्यापारिक प्रतिष्ठानों में काम करने वालों का अधिपति के समान स्वत्व होना सर्वाभ्युदय का उद्देश्य है। दस बीस आदमी मिल कर काम करें तो यह साझेदारी का काम है अगर उसमें कोई अधिक हड़पना चाहे तो वह बेईमानी है तथा चोरी है।

सर्वाभ्युदय का उद्देश्य है, दूसरों के लिये जीवो, ऐसा समाज निर्माण जिसमें व्यक्ति को सर्वविध विकास का अवसर प्राप्त हो। इसमें न अमीर न गरीब, फिर भिक्षुक का तो प्रश्न ही नहीं।

आज श्रमी को श्रम का मूल्य नहीं मिलता। किन्तु यथाकथञ्चित् जीवनधारण के लिये कुछ मिलता है। शेष वह साझेदार हड़प जाता है जिसे आज व पूंजीवादी भाषा में "स्वामी" कहा जाता है। इस हराम की कमाई व निराकरण सर्वाभ्युदय के लिये परमावश्यक है। यन्त्रों का उपयोग मानवविकास

के लिये हो, धनसंचय के लिये नहीं। आज मानवता संकट में है और उससे त्राण पाने का एक मात्र रास्ता है "सर्वाभ्युदय"।

हमारा इन शताब्दियों का इतिहास पूंजीवाद से प्रभावित होकर स्वार्थ-नीति से नितान्त दूषित रहा है। हममें से ही कुछ ने विदेशोंसे आततायियों को भारतविदलन के लिये बुलाया। हमारे भीतर विद्यमान स्वार्थों के बल पर ही उनका शासन चला। मनमाने अत्याचार हुये और अन्त में भारतमाता के खंड हुये। आज भी यत्र, तत्र, सर्वत्र राजनीति, व्यापार और सम्प्रदाय में यह स्वार्थ ही सर्वोपरि है। सरकारी नौकरियों व व्यापारिक प्रतिष्ठानों में ऊँचे पदों में स्वार्थ व पक्षपात ही दृष्टिगोचर होता है। तिकड़मी स्वार्थी सत्तालशील अधिकारियों से सांठगांठ कर भ्रष्टाचार फैलाते हैं। ऐसे अक्षम मनुष्यों से न तो समाज की रक्षा होती है न उत्थान। धनार्जनके अतिरिक्त इनका कोई उद्देश्य नहीं होता। इस प्रकार की धनलोलुपता से पतन अवश्यंभावी है। इन तथा समाज में व्याप्त अन्य समस्त दोषों के लिये सर्वाभ्युदयवाद अमोघ औषध है। आइये, हम स्वार्थपूर्ण इतिहास को उज्ज्वल बनाने के लिये कटिबद्ध हों।

हिमालय के समान उज्ज्वलधवल, आकाशके समान विशाल, वायु के समान व्यापक एवं सूर्य के समान सप्रभ संस्कृत वाङ्मय में गद्यग्रन्थों की अल्पताका कारण उस समय के रसिकों की रुचि का अभाव ही प्रतीत होता है। उस समय छन्दोबद्ध विषयों का ही जनता रसास्वादन करती थी। और विशेषतः पद्यात्मक रचना ही कविता मानी जाती थी। यही कारण रहा होगा कि इस वाङ्मय में गद्यग्रन्थ अंगुलीगणनीय ही रहे। अब इस ओर विद्वानों का ध्यान जायेगा तो अवश्य ही इसकी पूर्ति हो जायेगी। आधुनिक काल में साहित्य की श्रीवृद्धि में अधिक हाथ गद्यग्रंथों का ही रहता है। अन्य भाषाओं का साहित्य गद्यग्रंथों के ही आधार पर समृद्ध हुआ है।

क्रान्ति लाने में सबसे प्रथम काम साहित्य का है। उद्‌बुद्ध मनुष्यों के मस्तिष्क पर प्रभाव डालने वाला साहित्य ही भविष्य में क्रान्ति लाने की क्षमता रखता है। आज भी हम रावण का पुतला जलाते हैं और राम को पूजते हैं तथा कृष्ण को प्रणाम करते हैं और कंसको गाली देते हैं, विभिन्न

तीर्थस्थानों की यात्रा करते हैं। यह सब साहित्य के कारण हुआ और हो रहा है। अतः उत्तम साहित्य ही राष्ट्रके स्थायी स्तंभ हैं।

कवि समय का प्रतिनिधि होता है, उसकी रचना यद्यपि इतिहास नहीं होती पर उस समय का ज्ञान अवश्य कराती है। यह बात प्रस्तुत लेखक की कृति के अन्दर सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। लेखक ने जिस विषय को चुन कर जो सर्वथा मौलिक अभिनवकृति साहित्य को दी है वह सामयिक तो है ही पर भाषासौष्ठव से अभिराम व मोहक भी है। सम्भवतः संस्कृतसाहित्य में यह सर्वप्रथम पुस्तक है जिसमें लेखक ने सर्वाभ्युदय की स्थापना की है।

पुस्तक का बाह्य कलेवर भाषा है। सर्वप्रथम उसी की ओर पाठक का ध्यान जाता है और वह आकर्षित होता है। भाव या उद्देश्य तक तो धीर गम्भीर बुद्धि वाले ही जा पाते हैं। प्रस्तुत पुस्तक की भाषा की छटा बहुत आकर्षक है जो लेखक को प्राचीन कवियों की श्रेणी में उपस्थित करती है। वर्णन में छोटे छोटे पदों के कारण सुगमता होते हुए भी कहीं कहीं बाण और दण्डी के जैसे दण्डक भी हैं। यद्यपि लेखक ने अन्तमें लिखा है कि—न्यासि कचन कचन प्रीत्यै विदुषां मया नु काठिन्यम्।

नीरजमृदुला तन्वी कुचयोः कठिनैव सम्भाति॥

प्रकृतिवर्णन

लेखक प्रकृतिवर्णन में अद्भुत योग्यता रखता है। पाठकों को इन मनोमोहक स्थलों का आनन्द अवश्य लेना चाहिये। लेखक इसी तरह आधुनिक शैली के प्रयोगमें भी सफल हुआ है।

उद्देश्यनिरूपण

यद्यपि पुस्तक के अन्तमें लेखक ने प्रतिपाद्य वस्तु का सर्वाङ्गनिरूपण किया है कि पुस्तक के प्रस्तार में ही उसकी झलक प्रतीत होती है। सूर्यप्रभा के साथ प्र अत्याचार, स्वतन्त्रता संग्राम के मुकदमे का वर्णन, दुर्भिक्ष, बाढ़ और दुर्घटना आदि विवरण में इसका स्पष्ट अनुष्ठान दिखाया गया है।

समस्त पुस्तक में लेखक के विविध विषयों के ज्ञान की स्पष्ट छाप स्थल स्थल पर दिखाई देती है, जिसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं। जीवन में प्रतिदिन व्यवहरणीय भोजनों तथा यन्त्रशस्त्रों व वैज्ञानिकतथ्यों का समन्वय साहित्यमयी भाषा में करके पाठकों के लिये एक अद्भुत उपयोगी कोष दिया है। यथा—

"प्रौढमनोरमेव कुचमर्दनेन सङ्कुचितशरीराभवद् यामिनी, विहाय शब्दरत्नैर्भैरवीत्वं जहु विभावर्याः"। "निर्णयादिति सूत्रमिव ज्ञातार्थगुप्तिः", "व्याप्तिलक्षणमिव प्रभूतनिवेशमासमानः, खण्डनखण्डखाद्यमिव खण्डितानेकशासनः, शब्देन्दुशेखर इव सिद्धान्तव्याख्याता"। 'पृथुरास्यो मधुरिरिव धात्रंशोऽलाकृतिः।'

'रसगुणवलिभरितशरदेवेन क्षीणक्षयः साक्षाच्चन्द्र इवालक्षि'। 'स्वर्णादिगिरिगुहाया-मामञ्जकीयं रसायनमासवोत्र', 'प्रदरं नाशयितुं पुष्यानुगमिव सेवमानायामनुवेशाभिर्दुग्ध-धाराभिरिव सिच्यमानाशां वसुन्धरां", "विविधकम्पा सचिमाना सासवा समरसचूर्णा चरकसंहितेव बभौ होलिका। सुधृता वसमर्तेन केनाप्यनुत्तरेण नाचतस्थे।" "अस्या वाणी भगवद्भक्तिका कवितेव सरसा गाङ्गप्रवाहवत् स्वच्छा, शिशुहासवत् सरला, पतञ्जलि-भणितिरिव भावपूर्णा सुबोधा च विद्यते।"

"चन्द्रस्तु न नाऽऽजगमनौकक्षि हासइकारमञ्जरीपीयूषमयोनमधु सुरवः", "आयुर्वेद-शास्त्रमिव लक्ष्मीविलासभागी", 'शिशुबालमनोरमश्छात्रवर्ग इव', 'कामेश्वमोदकमुदिता', 'रम्याणि चित्राणि पुष्परसोकाना सर्वाङ्गोनानुरत्नानि चलङ्कितानि सन्ति', 'रचितवृहन्न्यासे वरहविः, वाग्धरिः दैत्यारिः धीरो विष्णुरथो हीतुकारः', 'वभूव इव सुरपदमज्ञायमानभक्षितमा' 'सोऽयं वारणार्थिनामोप्सितः कालो वर्तते,' यत् कुङ्कुमे नाम क्षितोऽवितोऽकुण्ठितः शास्त्रेषु गुम्फितो गुणरत्नैः "अनुरागस्य मयि पातकर्णः" इव सोदाहरणो राजा राजते।

कुछ ऐसे वाक्य हैं जो जीवन को उपदेश देते हैं, चमत्कृत करते हैं। यथा—

"स्मर! स्मर्तव्यः कोऽपि पुरमिदऽशेषे जागर्ति जगति"। "हर्षेऽपि विरं भवति सौन्दर्येऽपि गात्रम्", "अघटनोपघटनापटीयसः पटत्वं स्नातपातस्य को जानीते", "अनुरत्यमि कान्तारसन्तयति", "दैवहतकेन दृष्टः सलिलयेऽपि शिवभवनेऽपि सुखो न तिष्ठति", "वस्तुतः रत्नं रत्न एव राजते", "पुनःसुखे सर्वं विरमति", "महानदो लक्ष्मीरिव," "आर्तवत्सलो भगवान् स्वतः सर्वं साधयति", "लेखकडकनेव वित्रामेलिता सन्ध्या चरमा भेजे".

"भोजनप्रिये विप्र मनस्वितेव नेक्ष्यते स्माह्लादः", "सुभिक्षे वणिगिव दुर्दैवस्त्रासमासीज्जगरम्
"वैयाकरणकाव्ये रसानुभूतिरिव क्वचन क्वचन प्रेक्ष्यते स्म जनावस्थितिः", "परतन्त्रताय
घृताशनात् स्वतन्त्रतायां घासाशनं गरीयः", "मरुमणिः प्रतापो घासमेव बभास", "स्वार्थिने
देश्या वा सुविदेश्या वा स्वार्थे लुण्ठतां रक्तं शोषयतां धनिनां वा नान्तरम्", "कुशाग्रबुद्धि
रुद्योगशीलः सद्यः साफल्यमश्नुते", "मृत्युमुखं विशतां कोऽवसर उत्सवस्य", "समुद्र
शुष्कोऽपि मानसं सरस्तिरस्कर्तुं प्रभवत्येव", "दृढप्रतिज्ञं साहसिनं नरं प्राकृतिक्यो बाधा
निश्चितपयास्त निवारयितुं शक्ताः", "साधनाविरहितः कथं प्राप्नुयान्मानवोऽभीप्सितम्",
"मम प्रासादः साधनास्थलं न भोगभूमिः","दोषा देव! भावनाश्रयाः","मात्सर्यं भोगभूमावेव
भवति न साधनास्थले", "अप्रियमेलनं प्रेयसीनां दुःखम्", "प्रज्ञावतां प्रज्ञायास्तदेव सुकर्म
येनानाडम्बरमप्रदर्शनं जगतो विराजो भगवतोऽफलाभिलाषमर्चनं भवेदिति", "अहिंसा प्रेम
च मानवस्वभावः", "वित्तच्छायायां नरो विवेकविच्युतो भवति।"

अन्तमें सर्वाभ्युदयस्थापना में महाकवियों के पद्यरत्नोंके गुम्फन ने इस स्वर्णपुस्तक को हीरकमण्डित सा कर दिया है। मैं चाहता हूँ कि इस प्रकार के संदर्भों का समाज में अधिकाधिक आदर हो। और सद्प्रचार की दृष्टि से इसका परीक्षाओं में सर्वत्र सन्निवेश हो, ताकि संस्कृतसाहित्य की श्रीवृद्धि को प्रोत्साहन मिले।

अन्तमें आधुनिक भाषा की इस उत्कृष्टतम कृति के विद्वान् लेखक कविराज श्रीनिवास शास्त्री को भूरि भूरि धन्यवाद के साथ आशीर्वाद देता हुआ परामर्श देता हूँ कि वे संस्कृतसाहित्य के विशाल भवन में इसी प्रकार के अन्य ग्रन्थ भी दें।

चण्डीगढ़
दिनांक ११-१-५९

अत्यन्त आनन्द और स्नेह के साथ
नरहरि विष्णु गाडगीळ

अभ्यस्तानेकदेशभाषोऽनल्पलिपिज्ञः कलिकाताविश्वविद्यालयस्य तुलनात्मक-भाषाशास्त्रे सम्मानिताध्यापको भारतशासनसङ्घटितसंस्कृतायोगस्य भूतपूर्वाध्यक्षः पद्म-भूषणो डा० सुनीतिकुमारचट्टोपाध्यायः M.A. (CALCUTTA), D.LIT. (LONDON)



সভাপতি	Chairman	सभापति
বিধান-পরিষদ্	Legislative Council	विधान-परिषद्
পশ্চিমবঙ্গ	West Bengal, Calcutta	पश्चिमबङ्ग
কলিকাতা ।	December 2, 1958.	कलकत्ता ।।

I have gone through the Sanskrit work in both prose and verse "CHANDRA MAHIPATI" which has been composed by Kaviraj Shri Shriniwas Shastri of the Shri Visuddhanand Saraswati Marwari Hospital in Calcutta. This is a work of a new type in which he has sought to give in simple sanskrit prose, with verse stanzas in different metres occasionally interpersed, an exposition of the Sarvodaya Ideal, in the form of a story. The Author has a very remarkable facility in the use of Sanskrit and he is a true poet to whom Sanskrit Versification in different Styles comes most easily. I am sure, a book like this will be very much appreciated by those who can read Sanskrit, and it should be useful for students of Sanskrit who want some good reading matter outside of the classical texts which they have to study.

I wish a wide publicity for this Book and I TRUST ON ITS OWN MERITS it will be accepted by our sanskrit Scholars all over the country.

Suniti Kumar Chatterji



GOVERNMENT SANSKRIT COLLEGE

Calcutta, the 14th January, 1959.

No. 2339/A1

I have gone through the book entitled "CHANDRA MAHIPATI" by Pt. Shriniwas Shastri, It has given me very great pleasure to notice that even in present time a Scholar can write sanskrit Prose with much ease and flexibility of style. I would only wish the book a wide publicity.

Dr. GAURINATH SHASTRI,
Principal
Sanskrit College, Calcutta.

Judge High Court

36, Ballygunge Park,
Calcutta-19.



Calcutta

I have read with great pleasure and interest CHANDRA MAHIPATI a sanskrit work of Kaviraj Shriniwas Shastri of S.V.S M. Hospital, 118, Amherst St, Calcutta-9. The book is well written. The Story rings true to the universal ideals of the Hindu Sanatan Dharma. The author has done a distinct service, First, to the ideals of such Dharma and Secondly, to the cause of Sanskrit. It is a Commendable endeavour.

Dated Monday the 9th day of February, 1959

(Sd) P. B. MUKHARJI
(Honourable Justice High Court Calcutta)
President, Bangiya Sanskrit Shiksha Parishad.



MINISTER
Law Deptt. and Local Self-Government
and Panchayats Department
Government of West Bengal.
६-२-५९

मैंने पं० श्रीनिवासजी शास्त्री का "चन्द्रमहीपति" नाम का उपन्यास संस्कृत भाषा में पढ़ा। शास्त्री जी ने इस उपन्यास को अत्यन्त सुन्दर रूप से लिखा है। इसके भाव और भाषा दोनों ही सराहनीय हैं। यह पुस्तक संस्कृतज्ञों के लिए पठनीय है। इस सफलता के लिए मैं पंडितजी का अभिनन्दन करता हूँ।

ईश्वरदास जालान

विश्वविख्यातश्रीसरआशुतोषमुखर्जीमहोदयज्येष्ठपुत्रस्य, लोकनायकस्य मुक्तामनोऽमरकीर्त्तेः श्रीश्यामाप्रसादमुखर्जीमहाशयस्याग्रजस्य न्यायसिन्धुरमाप्रसादमुख्योपाध्यायस्य-

Phone ४८-१८९१ ७७, आशुतोषमुखर्जी रोड, कलकत्ता-२५

कविराजश्रीनिवासशास्त्रिविरचितं कथाकाव्यमालोक्य परां प्रीतिमाप्तवानस्मि। प्रशंसनीया पदविन्यासपरिपाटी, आधुनिकविभिन्नविषयाणामनुशीलनशैली, भारतीयसंस्कृतावनुपमानुरक्तिश्चास्य काव्येऽस्मिन् मया समवलोकिताः। व्याकरणसाहित्यायुर्वेदादिषु वैदुष्यमुपेयुषः शास्त्रिणः काव्यकलानैपुण्यं मनीषिमनःप्रीणनहेतुतामर्हति।

परमेशप्रसादात् श्रीनिवासस्य कवेः काव्यमिदं यशसेऽर्थकृते शिवेतरक्षतये चास्तु इति मे शुभाशंसा।

श्रीरमाप्रसाद मुख्योपाध्याय न्यायसिन्धुः

कविचक्रचक्रवर्तिनश्चक्रवर्त्तिनो महामहोपाध्यायस्य श्रीकालीपदतर्काचार्यस्य कविकाव्यप्रशस्तिः —

श्रीश्रीनिवासशास्त्रिग्रथितं नानागुणैः समाश्लिष्टम्।
चन्द्रमहीपतिकाव्यं गद्यनिबद्धं मया दृष्टम्॥१॥
गद्यं सहृदयहृद्यं कविगुणनिकषं चिरं वदन्त्यार्याः।
बाणसुबन्धुप्रमुखाः कवयो यत्र श्रिताः कीर्त्तिम्॥२॥

संस्कृतकाव्यविभूतिः क्रमशः क्षीणा वसुन्धरापृष्ठे ।
दृष्टं जनयति तापं सुचिरात्तप्रातुरक्तानाम् ॥३॥

पद्यं कथमपि हृद्यं बहवः कवयः सदा निबध्नन्तः ।
सम्प्रत्यपि सन्तोषं विदधति यत्नैरनायासैः ॥४॥

किन्तु न गद्यनिबन्धे भाति बहूनां विपश्चितां यशः ।
अथवा सत्यपि तस्मिन् स्वल्पजनानामिहोत्कर्षः ॥५॥

श्रीश्रीनिवासशास्त्री व्यरचयदेतद् यदुत्तमं काव्यम् ।
सुघटितगद्यमयं तत् सुखयति चित्तं सचित्तानाम् ॥६॥

वृत्तं बहुरसचित्तं निर्वृतचित्तं स्वया धियोपात्तम् ।
कवितोत्कर्षात् सत्यं प्राकृतमप्राकृतं भाति ॥७॥

नूनं कल्पनरसं कविना यत्नाद् वृतं परं चित्रम् ।
बाणप्रभृतिकवीनां स्मरणं येन प्रविद्वानाम् ॥८॥

शक्तिः कापि समृद्धा स्वभावसिद्धा मतिश्चयाविद्धा ।
सुकवेरत्र समिद्धालङ्कृतिशास्त्रे तथा श्रद्धा ॥९॥

ललितालङ्कृतिरम्यध्वनिपदसुभगा कृतिर्यथा मेधा ।
विलसत्सुरसविशेषा रसयति चेतो रसज्ञानाम् ॥१०॥

सन्दर्भोनिधिसारं न विस्मयमतः कविश्वरो बाढम् ।
येन विवर्जितभावा विज्ञाः सर्वे स्फुटाकारम् ॥११॥

कापि सुरम्यं गीतं कापि सुवर्णं प्रभूतो नवम् ।
सागमतगतिमिदं कथयति निखिले कवेर्दासम् ॥१२॥

प्रोत्फुल्लसरस्थलगता स्थिति गङ्गा यथा निरातङ्का ।
प्रसरति ललितोल्लसिता सहृत् सुकवेरितो गद्या ॥१३॥

एष हि काव्यनिबन्धः सुमधुरबन्धः प्रवर्धितानन्दः ।
सुकवेरस्य चिरं स्याद् विजयस्याकः जगत्यस्मिन् ॥१४॥

दिशतु देववाणीमूर्तिरविरतं भवैः कृतोल्लासम् ।
मध्यादिमध्यमर्थं वहतु लिपिमयी रसप्रसादनम् ॥१५॥

श्रीश्रीनिवासशास्त्री सुकवियशोभिः सुशोभयशाशाः ।
रसिकविदोषानेवं रमयतु नियतं सरस्वत्या ॥१६॥

आमयविरहितमायुश्चिरमयमीयाद्दयावशाद्धातुः ।
एवं ललितनिबन्धैरान्ध्यं जगतस्तया छिन्द्यात् ॥१७॥

ईदृशकाव्यविचाराद् विबुधा मुग्धा दृढं विबुध्यन्ताम् ।
संस्कृतभाषामसमां राष्ट्रियभाषापदे योग्याम् ॥१८॥

जयति कविकुलश्रीः श्रीनिवासो नवीनः
सुमधुरसुरवाणीगद्यविद्याप्रवीणः ।
जयति विबुधवाणी तेन दत्ताभिमाना
जयति भरतभूमिस्तद्गुणैरेधमाना ॥

१३६५ बङ्गाब्दीय सौरमार्गशीर्षस्य त्रयोदशदिवसीया लिपिरेषा ।	महामहोपाध्यायश्रीकालीपदतर्काचार्यस्य ।

म० म० डा० श्रीयोगेन्द्रनाथतर्कसाङ्ख्यवेदान्ततीर्थानामाशीर्वादः—

कविराजश्रीनिवासशास्त्रिप्रणीतश्चन्द्रमहीपतिनामकः सन्दर्भो मया साद्यन्तमवालोकि । सन्दर्भोऽयमधुनातनीं सरणीं स्पृशन्, इदानीन्तनीं प्रणाली व्यवहरन्, प्राचीनकवीनां मनोज्ञमधुरां रीतिमप्यतिशयानो बाणस्य प्रबन्धसौन्दर्यम्, कालिदासस्य स्वाभाविकताम्, दण्डिनः पदलालित्यम्, भारवेरर्थगौरवम्, माघस्य पाण्डित्यम्, हर्षस्य वर्णननैपुण्यम्, त्रिविक्रमभट्टस्य श्लेषम्, शङ्करस्याद्वैतसिद्धान्तञ्च पुनः पुनः स्मारयति । मन्ये संस्कृतसाहित्येऽयमपूर्वो विषयो लेखकेन साधिकारं निबद्धः । श्रमेणास्य प्रसीदन्नहं सस्नेहमाशिषा संयोजयामि ।

म० म० डा० योगेन्द्रनाथतर्कसाङ्ख्यवेदान्ततीर्थः डि० लिट्,

दिनाङ्कः २७-३-५९

सत्यं परं धीमहि

महामहोपाध्यायमहाकविभारताचार्यश्रीहरिदाससिद्धान्तवागीशमहोदयानामाशीर्व
बङ्गाक्षरं देवनागरीलिप्याम्—

श्रीश्रीनिवासशास्त्रिप्रणीतं चन्द्रमहीपतिकाव्यमवलोक्य नितरामानन्दितोऽस्मि।
हि पदे पदे अनुप्रासालङ्कारझङ्कारेण काव्यमिदं स्मृतिपथमानयति महाकविश्रीहर्ष
महाकाव्यं नैषधीयचरितम्। स्थाने स्थाने भावगाम्भीर्यं माधुर्यमातनोति
प्रायेण नानाविधा अर्थालङ्कारा नितरां प्रीणयन्ति हृदयम्। तन्मन्ये काव्यमि
काव्यरसरसिकेषु पण्डितमण्डलेषु सर्वथा समादरं लप्स्यते इति।

श्रीहरिदाससिद्धान्तवागीशशर्म

तारिख २२-७-१३६५

महनीयमहिम्नोः श्रीजीवन्यायतीर्थश्रीनारायणचन्द्रस्मृतितीर्थयोः—

गद्यपद्यरचनानिपुणश्रीश्रीनिवासकृतकाव्यविशेषम्।
चन्द्रभूपतिविचित्रचरित्रं शीलयन्नतुलमोदमुपैमि॥
शक्तिप्रकाशकुतुकी कविरेष नव्यं काव्यं परैरपरिशीलितमार्गगामी।
निर्माय निर्मलमतिः सुमनोमनस्सु सानन्दसान्द्ररससौरभमातनोति॥
भट्टपल्लीवास्तव्यश्रीश्रीजीवन्यायतीर्थशर्मणः

अत्र ममापि सम्मतिरस्ति श्रीतिमाशीर्वचोऽपि वितरतो भट्टपल्लीवास्तव्य-
श्रीनारायणचन्द्रस्मृतितीर्थशर्मणः।

कलिकाताविश्वविद्यालयाध्यापकशास्त्ररत्नाकरविद्यासागरमीमांसा-
न्यायसाहित्याचार्यश्रीपी०एन०पट्टाभिरामशास्त्रिणाम्—

पण्डितवरैः श्रीश्रीनिवासशास्त्रिभिर्विरचितं 'चन्द्रमहीपति'-नामकं मधुरं गद्यकाव्य-
महमवालोकयम्। संस्कृतवाङ्मये गद्यकाव्यानां सत्यपि वैशिष्ट्ये तद्विरचने लोकानां
प्रवृत्तिर्न्यूनैव। तत्रापि सरसानां सरलानाञ्च गद्यानां वैरल्यमेवेति कथनं नासङ्गतमिव।
तदिदं वैरल्यं श्रीशास्त्रिणोऽसहमाना इव ग्रन्थमिमं रचयाम्बभूवुरिति ते नितरामभिनन्दनीया

एव। अस्मिन् काव्ये न केवलं कथावस्तु सहृदयानां मनांसि रञ्जयति; वर्णनाचातुर्यम्, सरलानामेव पदानां गुम्फनम्, प्रायो दीर्घसमासराहित्यम्, शैल्या मधुरिमा आमूलचूलं प्रसादगुणप्रवाहश्चेति नूनं हृदयान्यावर्जयन्ति। स्वतन्त्रेऽस्मिन् भारते शिक्षाधिकारिण इमं ग्रन्थं शिक्षाक्रमे संयोज्य सार्कं निलिम्पवाण्याः प्रचारेण श्रीशास्त्रिणः पुरस्कुर्युरिति विश्वसिमि।

६।१।५९ पट्टाभिरामशास्त्री

अधिगतमस्माभिरान्तमधीतञ्च जयपुराभिजनेन श्रीमता श्रीनिवासशास्त्रिणा विरचितं चन्द्रमहीपतिरित्याख्यमुपन्यासरत्नम्। एतादृशे मनोऽभिरामे वस्तुनि रत्नमिति नैकान्तत उच्चैर्वादः। पठितुं प्रवृत्तस्यासमाप्य त्यक्तुं खिद्यते पुरोवर्तिवृत्त-विज्ञानोत्सुकं चेतो जनस्य। सलीलापि सरलापि ललितबन्धशालिनी भाषेति यत् सत्यं सुवर्णे गन्धसम्बन्धोऽयम्। क्रमोत्कर्षमारोहन्ती विचित्रा घटनापरम्परा उत्कण्ठा-कण्टकितानि करोति पठतां चेतांसि। एतस्य परिच्छेदाः प्रत्येकमेकनिःश्वाससमाप्यतया निश्वाससञ्ज्ञामलभन्त। तत्र तत्र वर्णिता वनशैलकालादिरूपा प्रकृतिरपि वृत्तावर्त्त-पतितस्य संस्थापनामिव विदधाति मानसस्य। न केवलं गद्यनिपद्यायां पद्यपदव्यामपि दृश्यतेऽस्य कवेर्सहृदयं पण्यजातम्। एतानि च पद्यानि न केवलं सहृदयकवित्वसर-सान्यपित्वाहार्यकविप्रतिभाभासुरैः श्लेषयमकानुप्रासादिभिर्भूषितानि चिन्ताशक्त्युन्मेषेऽपि किमपि साहाय्यकं विदधति पाठकानाम्। खलता खल्वधिगुणेष्वल्पभापणमपीति विदन्नपि प्रसङ्गादिपर्यालोचनमात्रेण विरमन् नवीनस्यास्य कविप्रकाण्डस्योत्तरोत्तरोन्नति-मीशसकाशे मुहुरमाशासे इति शुभम्। साङ्ख्यतीर्थस्य श्री उपेन्द्रमोहनदेवशर्मणः।

१८८० शकीयसौरमाघस्य पञ्चमदिवसीयम्। } मुनीन्द्रविद्यायतनम्
४, आनन्द लेन, कलकत्ता।

सम्मतिरत्र श्रीनगेन्द्रनाथशास्त्रिणः, ईश्वरचन्द्रशास्त्रिणश्च।

श्रीबालाजीमन्दिरचान्दोदवडोदास्थश्रीधर्मचन्द्रोदयपीठाधीश्वर-
वेदान्तशिरोमणिश्रीमदनिरुद्धाचार्यवेङ्कटाचार्य्याणाम्—

सरलया सरसया संस्कृतभाषया सुन्दरतमं सरसमेकमुपन्यासं चन्द्रमहीपतिनाम्ना श्रीनिवासशास्त्रिणो निबबन्धुः। यस्मिन् वर्त्तमानकालिको जनसमुदाचारः समुपन्यस्तः। कथाप्रसङ्गाः कथासरित्सागरे ममलोकैरन्विष्यावेक्ष्यामः। स्वतन्त्रया रीत्या कविर्मार्मिकप्रसङ्गानाविष्करोति। अधिकरोति चोपनिबद्धा तेषु। ग्रन्थस्य कर्त्रे वेदोक्ता आशिष आशासाना वयं ग्रन्थस्य प्रथनमभिलषामः, इति शम्।

कलकत्ता - दिनाङ्कः २८-१-५९ अनिरुद्धाचार्यवेङ्कटाचार्यः

ता० २५-२६-२७ दिसम्बर १९४० में प्रथम बीकानेरराज्यसाहित्य-सम्मेलन, डा० श्रीदशरथ शर्मा एम० ए० के सभापतित्वमें हुआ था। उसमें चन्द्रमहीपति को प्रथमश्रेणी का प्रमाणपत्र निर्णायकों ने दिया था, एवं नीचे लिखी सम्मति दी।

मैंने पण्डितवर श्रीनिवासजी शास्त्री द्वारा रचित चन्द्रमहीपति का कुछ अंश देखा गया है, प्रथम स्तबक में सुगम है। लेखक महोदय ने कवित्व एवं संस्कृतज्ञान दोनों का ही अच्छा परिचय दिया है। आपके चित्रणद्वार शब्दोंमें अपने ढंगके बहुत अच्छे नमूने हैं। आशा है कि आप नवीन ढंगसे कुछ नवीन उपन्यास एवं आख्यायिकाओं को लिखकर संस्कृतसाहित्यभंडार को अवश्य उन्नत करेंगे। आपने कथानक को पर्याप्त रोचक बनाया है; प्रकृतिवर्णन की भी कमी नहीं। हमें आशा है कि संस्कृतसाहित्य के विद्वान् इनकी कृति को अपना कर लेखक महोदय की उत्साहवृद्धि एवं संस्कृतसाहित्य की श्रीवृद्धि करेंगे।

१०।१२।४० (डा०) दशरथ शर्मा

बीकानेरराज्यसंस्कृतसाहित्यसम्मेलनस्य सभापतिः।

डूंगर कालेज, बीकानेर के हिन्दीविभागाध्यक्ष ख्यातनामा श्रीस्वामी नरोत्तम दासजी—

श्रीमान् पंडित श्रीनिवासजी शास्त्री की अभिनव अनुपम कृति चन्द्रमहीपति के कई एक अंश मैंने देखे और सुने। यह ग्रन्थ पंडितजीकी काव्यशक्ति का सुन्दर परिचायक है। वर्णनों की निराली छटा के साथ साथ अलंकारादि का तथा व्याकरणविषयक विविध बातों का मनोहारी सौन्दर्य ग्रन्थ में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। पंडितजी की यह रचना सर्वप्रकारेण अभिनन्दनीय है। आशा है इस प्रकार की अनेकानेक सुन्दर-रचना से पंडितजी अमरवाणी के भंडार को भरते रहेंगे।

पौषवदि १४ सं० १९९७ नरोत्तमदास स्वामी एम० ए०

सप्रमोदमिदमावेद्यते यद्राजस्थानीयविद्वन्मणिमालायामभिनवमणीयमानस्य श्रीमतः श्रीनिवासशास्त्रिण आयुर्वेदाचार्यस्याभिनवा कृतिः "चन्द्रमहीपति"—नामकः संस्कृतोपन्यासग्रन्थोऽशतः समालोकि। इतः प्रागपि कियांश्चिदंशोऽस्य दृग्गोचरतामनायि। महानयं हर्षावसरो यदधुनापि संस्कृतविदुषामुर्वराशक्तिसम्पन्नं मस्तिष्कमीदृशि सर्वविधगुणसम्पन्नानि काव्यानि निर्मातुं प्रभवति। काव्यस्यास्य भाषा, भावः, रीतिः, गुणालङ्कारादियोजनं चेति सर्वमेव मनोहारि। ग्रन्थरत्नमिदमासाद्य सूक्तिभिर्नुभगवती भारती प्रसीदतामिति निर्मायेन मनसाऽऽशासे—

हनुमत्प्रसादशर्मा (साहित्याचार्यः)

	विद्यावारिधिः	प्रधानाध्यापकः
करदारशहर	विद्याधरशास्त्री एम० ए०	एच० आर० संस्कृत कालेज
पौ० कृ० १३	संस्कृतविभागाध्यक्षः—	रामगढ (सीकर)
वै० सं० १९९७	डूंगर कालेज, बीकानेर	राजस्थान

शब्दरत्नभाण्डागार इव ललितहास्यरुचिसमन्वितः संस्कृतभाषाविकासहेतुत्वादध्येतव्य सामयिकश्चायं श्रीनिवासशास्त्रिणश्चन्द्रमहीपतिः कमलानामको ग्रन्थः।

वृद्धिकामस्त्रिकालदर्शी तीर्थराजमिश्रज्योतिषी।

श्रीनिवासशास्त्री का चन्द्रमहीपति देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वर्णनशैली, भ
प्रवाह विशेषरूप से उल्लेखनीय है। मानसिक भावों का संघर्ष उपन्यास के तत्त्व
प्रधान गुण माना जाता है जिसे सुन्दर रूपसे सन्निविष्ट किया है।

रामकृष्ण भारती, शास्त्री, बी० ए० साहित्य
सरदारशहर २६।१२।४० सरस्वती कालेज, लाहौर

Sri Bhandarakere Mutt. Udipi, (South Kinara)
Dated 2-2-1959 Camp कलकत्ता।

स्वस्तिश्रीमत्परमहंसपरिव्राजकवर्यानेकविरुद्धाद्वैतमतप्रतिष्ठापकजगद्गुरु
मन्मध्वाचार्यशुभसम्प्रदायप्रवर्तकश्रीमदुडुपिभण्डारकेरिमठाधिपतिश्रीविद्यामान्यतीर्थ
स्वामिपादाश्चन्द्रमहीपतिनामकग्रन्थकर्तृभ्यः श्रीनिवासशास्त्रिभ्यो नारायणस्मरण
पूर्वकं निवेदयन्ति—युष्मत्कं चन्द्रमहीपतिनामको ग्रन्थः सर्वाभ्युदयावाप्त्युपयु
प्रतिभासते, मनोहरकथाप्रसङ्गेन जनानां चित्ताकर्षक इति मन्यामहे। अस्मिन् ग्र
सर्वे जना आदरं करिष्यन्तीति वयमाशास्महे, इत्यनेकनारायणस्मरणानि।

[वेदविद्याप्रयतमानमानसः
कलिकातास्थो व्यापृतवैरिष्टरः
श्रीकालीप्रसादखेतानः]

"Naurang"
6. South End Park.
P. O. Rash Behari Avenue
Calcutta-29.
22nd March, 1959.

The publication of CHANDRA MAHIPATI by Kaviraj Shriniwas Shastri is a very interesting event in the field of modern Indian literature. It is a novel written in modern Sanskrit. The style is Composite, partly of the old and partly of the new. Ingenious forms of grammar and of descriptions of nature alternate with coined scientific expressions and modern political and social topics. I must state frankly that all the translations of the scientific words are not likely to be accepted by the public. But that does not affect the merit of the book. It is a bold attempt to employ Sanskrit once again as a medium for popular literature. What is more, is that the book is bound to prove to be a source of inspiration to writers in Sanskrit even including himself ....

(Sd.) Kali Prasad Khaitan

लेखकस्य द्वित्राः शब्दाः

युगद्वये व्यतीते पञ्चविंशतिं सम्प्राप्तो युवेव चन्द्रमहीपतिमञ्जूषातो निःसृत्य मृत्पूर-निरुद्धो बीजाङ्कुर इव श्रीमतां समक्षं समायात एव ।

सर्वत्र राष्ट्रे स्वातन्त्र्यपूरे प्रवहति, प्रत्येकस्य मानसे सुखेन समृद्ध्या च युक्तं राष्ट्रं द्रष्टुं व्याकुले, विदुषां संसारे विभिन्नभाषासु सत्स्वप्यनेकेषु ग्रन्थरत्नेषु "सर्वोऽप्यर्थो बुधैः स्पृष्टो यद्यपीह तथापि मे । सत्सन्दर्भार्शयिता ममता केन वार्यते" । इति हृद्युक्तदिशा दुःसाहसेन मयैष निबद्धः । परं संस्कृतलेखकानामार्थिकी स्थितिर्भीषणा, प्रकाशनमतिदुष्करम् । अधुनैतत्प्रकाश्यते —इति विचार्यैवाहं प्रसीदामितमाम् ।

शिशौ वयसि यौवनोचितया निरङ्कुशतया स्वेच्छाचारितया, अबहुज्ञतया, अबहुदर्शितया च सह लेखनरचनाभ्यासः शैशवसुलभा पण्डितम्मन्यता चासीत् । अतः सन्दर्भेऽस्मिन् तत्सुलभमौद्धत्यं क्वचन क्वचन विद्यते । परिमितफल्गुत्वमपि शिशोः प्रमोदास्पदम् । तद्दिदृक्षयाहं तथाविधमेव मुद्रापयितुं निरदिशाम्, यतो बालकवेर्मानसस्य परिचयः पाठकैर्यथावल्लभ्येत । प्रौढकवीनां मकरन्दस्यन्दिन्यः पीयूषमाश्च्योतयन्त्यो हार्दिकमय्यो रचना भवद्भिरनेकशः आस्वादिताः, सम्प्रतीमां बालकाकलीमप्यास्वादयन्त्विति ।

पदार्थस्याभिव्यक्त्यै सन्धिनियमे क्वचन क्वचन शैथिल्यमवलम्बितम् । तदर्थं पूज्यान् धृष्टतायै क्षमापये ।

उपमानोपमेये समानलिङ्गवचनतायाः शास्त्रीया परिपाटी विद्यते, परम्, "नोपमा दूषणायालं यत्रोद्वेगो न धीमताम्" इति दण्डिनः काव्यादर्शस्याश्रयेण तां विद्वत्सह्यं परिवर्त्तितवानस्मि ।

महनीयमहिममण्डिताः कुन्दकुमुदविलसत्सत्कीर्त्तयस्तपोमूर्त्तयो मान्याः ! पुरा भारते भारवाहा अपि संस्कृतां वाचं भाषन्ते स्म । परमद्य तु कतिपय एव तत्र शक्ताः । सर्वत्रमेवाभविष्यत्तदा संस्कृतग्रन्थाः पुरातत्त्वविभागसंगृहीतसारस्य सम्पत्तरूपा एवाभविष्यन् । समस्तनवरसमयगुम्फिता अस्मदादिभिर्जीवद्भिरपि पुनरुपेक्षिता जननी शोचनीया दयनीया चेदिदं महद् दुःखावहम् । किं भवद्भ्य एतदेव रोचते ?

अवधार्यताम्, कथमत्र हिन्दी एधते ? नवोदितैषा कथं राष्ट्रभाषासिंहासन-मध्यास्ते ? कथमस्याः साहित्यश्रीरेधिता ! तत्र कारणमासीद् यद्वदीनामल्प-ज्ञानमपि रचना कुर्वन्तः । विशेषतो च गणनीया अपि रचनाः परिगणय्य स्वनं

प्रापिताः। एकैकश आसप्तविंशानि संस्करणानि तेषां भूतानि। स्वल्पज्ञाना लेखकाः कण्ठमधुरिम्णा मधुमापूरयन्तस्तुकान्तपदैर्यशो धनञ्चापुः। फलतो नवीना अपि अल्पज्ञलोकबाहुल्येन लोकप्रियतामुपेताया हिन्द्या राष्ट्रभाषात्वं भूतमेव।

परं संस्कृतम्? प्रथमतो लेखका एवाङ्गुलिगण्याः, तेऽपि दीना जीवनयात्राव्यापृता वीतरचनानैपुण्या विरचय्यापि प्रकाशयितुमकुशलाः प्रकाशितेऽपि च क्रेतॄन् लभन्ते। संस्कृताजीविनोऽपि संस्कृतग्रन्थान् क्रीत्वा न पठन्ति। संस्कृतशरीरसञ्चालकाः, विश्वविद्यालयेषु पाठ्यनिर्धारयित्रीसमितयः संस्कृतसदस्याश्च नवीनां रचनां परीक्षासु न संनिवेशयितुं गृहीतशपथा इव प्रेक्ष्यन्ते। केवलं प्राचीनानि पिष्टपिष्टपुस्तकानि निवेश्यन्ते। अस्यां स्थितौ कथं सम्भाव्येत संस्कृतोन्नतिः?

यतम्, सत्स्वपि विघ्नकष्टेष्वस्माभिः प्रतिज्ञातव्यम्, समस्तभाषाजनन्या अस्या भाषाया उन्नत्यै चेष्टितव्यम्। नवीनलेखकानां संवर्द्धने, स्वप्रभावेण नवीनरचनाः परीक्षासु संनिवेशने लेखप्रकाशनविक्रयणे च सोत्साहैरस्माभिर्भवितव्यम्। ग्रन्थविक्रेतॄन् यतः नवीनाः कृतीः क्रेतुं प्रशासितव्यम्, येन ताः कक्ष्यास्तिष्ठेयुः। विद्यालयेष्वन्यत्र वा एताः कृतीराहर्तुं प्रेरयितव्यम्। भवादृशानां विद्याधनानां संस्कृतप्रणयिनां विदुषामाशीर्वचनैरेव दुःखदेऽस्मिन् पथि सानन्दं प्रयातुं पार्यते।

देवभाषा अनन्योपायगत्या धनिनः प्रतिपालकत्वमर्थयते सोत्साहमिदं विचारयन्तीश्वरा- शासको विरमामि। अथवा मामकीनः श्रमस्तु श्रीमतां करारविन्दयोराधानानन्तर- मुन्नमति, सम्प्रति समर्पणकर्तव्ये श्रीमन्तः प्रमाणम्।

एतावासरमितकुड्मलस्य कृत्यं
भित्वाऽम्भः सरसि विनिर्गमो यदीयम्।
आमोदो विकसनमिन्दिरानिवास-
स्तत्सर्वं दिनकरकृत्यमामनन्ति ॥

दुर्लङ्घ्यमिदं श्रीमतां समयेन, करबद्धमाय दर्शेन किम्! ग्रन्थसमीक्षकाः श्रीमतां चिरजीवनं कामयमानः।

[illegible]वासी,
२-१६ [illegible]
११६, [illegible] स्ट्रीट,
कलकत्ता-१
१९[illegible]

श्रीः

"चन्द्रश्चन्द्र इवातन्द्रः"

(समालोचना)

लेखकः—कविराजः श्रीहनुमत्प्रसादशास्त्री, साहित्याचार्यः, आयुर्वेदाचार्यः, विद्याभूषणः, विद्यावागीशः, संस्कृतार्णवः, जामनगरस्थे आयुर्वेदीयस्नातकोत्तरशिक्षणकेन्द्रे मौलिकसिद्धान्तविभागस्याध्यक्षः।

'वाग्जन्मवैफल्यमसह्यशल्यं गुणाद्भुते वस्तुनि मौनिता चेत्।'
नैवाद्रियन्ते बहुभाषिणं तु दुर्गे पथि प्रक्रमणं मदीयम्॥

अयमुदयतेऽभिनवोऽपि परिपूर्णः, सकलकलोऽपि निष्कलंकः, सनिःश्वासोऽप्यमन्दानन्दप्रकाशः, कथाकाव्यबन्धं बन्धुरयन्, उपन्यासाकाशं भासयन्, रसिकजनमनांसि चन्द्रयँश्चन्द्रमहीपतिः। इतो विंशतेर्वर्षेभ्यः प्रागयं काश्चित्कला एवादीदृशत्, अधुना त्वखिलाभिस्ताभिर्नभोगगनं मोदमानो नभो द्विचन्द्रं चरीकर्ति।

यद्यपि भाषान्तराणां वाङ्मयानि गद्यैरेव तुन्दिलयन्ति वपूंषि, स्वल्पान्येव तेषु पद्यानि प्रचकासति। परन्तु संस्कृतवाङ्मयस्य कथैवान्यथा। इह तु वेदाः पद्यमयाः, पुराणानि पद्यात्मकानि, स्मृतयः पद्यगतयः, आयुर्वेदोऽपि पद्यैः सुवेदः, आस्तामन्यत्, कोषोऽपि न पद्येषु निर्जीवः। छन्दोऽनुरोधादस्वच्छन्दा अपि तस्मिन्नेव पथि स्वैरं प्रासरन् कवय इति तु मन्ये देशस्यास्य आनन्दैकतानताया गानैकाभिव्यञ्जयता पश्यतः संस्कृतेरेव माहात्म्यम्। यद्यपि "नैकमोजः प्रसादो वा रसभावविदः कवेः" इतिवत् 'नैकं पद्यं न गद्यं वा रसभावविदः कवेः' इत्यपि वक्तुं शक्यम्, अन्वसरंश्च तमेतमाभाणकं बाणदण्डिसुबन्धुसदृशा महाकवयो निबबन्धुश्च ते निरवद्यैर्गद्यैरपि श्राव्याणि काव्यानि, तथापि ते सन्त्यङ्गुलिगणनीयाः।

अभून्नातिचिरातीतायां शताब्द्यामपि राजस्थानगौरवगोप्तिः, नानाविधगद्यपद्यनिबन्धबन्धनैकविधिः, गेयीयमानावधानविधानावदानः, घटिकशतकोशाधिः, श्रीमानम्बिकादत्तव्यासो नाम महाकविः, यदीयं 'शिवराजविजयं' नाम गद्यकाव्यं सौष्ठवेन, सारल्येन, भावप्रचुरतया, विषयनिरूपणपरिपाट्या चातीव प्रशस्यते मनीषिभिः। पुनरयमतति रङ्गभूमौ राजस्थानीय एव महाकविः श्रीनिवासो नाम वस्तुतः

सरस्वतीनिवासो विद्वन्मूर्धन्यश्चन्द्रमहीपतिं प्रकाशयन्नद्वितीयानपि महत्त्व सद्वितीयान् विदधच्च।

यद्यपीदं युगमस्ति तुलनात्मकसमालोचनायाः, तथापि कस्यचिल्लघनेन कस्यचि महत्त्वेन बुद्धिभेदापादनं पूर्वेषां कृतिकीर्तिविलोपनञ्च न रुचिरं मन्यन्ते नीरक्षीर मनीषिणः। नैव नासंस्तादृशा अपि चाटुकाराः केवलकवयः कवयो ये दिनैकस्य त्वाहारलाभपरितुष्टाः पंचग्रामाधीशमपि 'त्वमर्कस्त्वं सोमः' इति स्तुवन्तो व विलापयामासुः, परन्तु न सर्वेऽपि तादृशाः, न वा सर्वे कुचकचनयनवदनेष्वेव रमन्ते यैर्हि राष्ट्रम्, समाजम्, धर्मम्, संस्कृतिञ्च समुज्जीवयितुं कृतो वाचो देव्या वरदस्य श्लाघ्यः सदुपयोगः, वस्तुतस्ते त्रिकालवन्दनीयाः सर्वस्य जगतः। श्लाघ्यतया अस्य परीक्षानिकषो यज्जनसेवा सर्वाभ्युदयकामना च।

प्रस्तुतमभिनवं चन्द्रमहीपतिनामधेयं काव्यं परीक्षमाणाः सर्वथा निर्दोषमेतत् कलयामः। इह कांश्चिद् दृष्टिकोणान् पुरस्कृत्यैव समालोचनं विदध्मः, ते चेमे क्रमशः—

(१) लक्षणानुसरणेन यद्यपि कथाकाव्यमिदं व्यपदेष्टुं शक्यम्, कादम्बर्यादिरिव वासवदत्तादिवच्च, कल्पितनायकादिमत्त्वात्, तथैवारम्भे बहुभिः श्लोकैर्मङ्गलादिविधानकरणाच्च, तथापि तत्रैवात्र कथासम्बद्धानां नायकनायिकादीनां देशनगरादिपरिचयः पूर्वमेव न दीयते, अपि तु घटनाक्रमेणौत्सुक्यमुत्पाद्य तदनु तदुपशान्तिरुपजन्यते। संस्कृतवाङ्मये सर्वथैवाभिनवोऽयं पन्था आङ्ग्ल्यादिषु नवलकथावत् हिन्द्यादिषूपन्यासवत्च काञ्चिदपूर्वां छटां विच्छुरयतीति उपन्यासकाव्यमिदमिति कथनमधिकमुचितं भाति। कल्पितत्वेऽपीतिवृत्तं तथात्र सुश्लिष्टं सुसङ्गतं च यथा तस्य क्रमिके हृदयोपारोहे न मनागपि श्रमानुभवः स्यात्। पाठकः सकृत्पुस्तकं हस्ते कृत्वा लालसमानसोऽप्येष वृत्तरसमास्वादयंस्तत्परिचयाय त्वरमाणश्च समाप्तिं यावत्तन्न जिहासति।

(२) युवकानां युवतीनां चापि शृङ्गाराद्यभिव्यञ्जनावसरेऽपि न क्वचिदुच्छृङ्खलता नग्नता वाऽवलम्बिता, प्रत्युत "अनौचित्यादृते नान्यद्रसभङ्गस्य कारणम्" इति नियमानुरोधेनौचित्यरक्षणाद् रसनीयता सर्वत्रैवाव्याहता लब्धुं शक्या। ततश्च कुमाराणां यूनां वृद्धानाञ्च सर्वेषां हस्ते निर्विचिकित्सं निर्विशङ्कञ्च दातुमर्हमिदम्।

(३) काव्यैकप्रणयिनो रसिका यदेह समुचितेन, अलङ्कृतेन, सगुणेन, ललित-

सन्तु नाम सन्त्वा [illegible] [illegible]

यद्वैदग्ध्य विलक्षणानीति, वैयाकरणोऽप्यद्वितीयः शास्त्रमनुभवन्तो न

बोधयन्तीति, [illegible] [illegible] स्फुटम्, नैषध [illegible] [illegible]

[illegible] गुणाधानाद्यौचित्यः, [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] तत्त्वतः स्यु, किं बहुना, [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] अत एवोक्तं केनचित्—

> विद्यो व्याकरणेषु [illegible] [illegible]-
>
> [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
>
> [illegible] [illegible] [illegible] मती
>
> [illegible] [illegible] [illegible] पुस्तकम्॥ इति।

[illegible] [illegible] पुस्तकं [illegible] [illegible] नेव [illegible] [illegible]

[illegible], अपि नु किं [illegible] पुस्तकं [illegible] [illegible] स एव [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] स्यात्, [illegible]

सर्वं समञ्जसम्।

(४) [illegible] [illegible] [illegible] अपि केवलं [illegible] न

केवल [illegible] कविना [illegible] गुणायैव [illegible], प्रत्युत [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] देशदेशान्तराणां पारस्परिके [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] प्रेक्षन्ते सर्वे इति [illegible] [illegible]

[illegible] पूरयेयुरेव, [illegible] मार्गमपि दर्शयेयुरेव च।

(५) इह कविना [illegible] पद्यान्यपि तत्र तत्र [illegible] प्रायुज्यन्त च, "[illegible]

[illegible] निदर्शं [illegible]" इति [illegible] तु [illegible] निरवद्यानि [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] चेतस्सु। [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] निर्णीय [illegible]। किं च शिशुपाल

[illegible]
गुणैकपक्षपातिनो निर्मत्सरा मार्मिकाः।

(६) इह हि नानाशास्त्राणां मनोरमसमन्वयवत्, नवप्रभाभास्वराणां
पयोगिनां समस्तानां यानादिसाधनानाम्, शस्त्रास्त्राणाम्, यन्त्राणाम्, वादनाम्,
हाराणामपि तथा नाम देशोद्धारो संनिवेशोऽङ्कितः, यथा नाम कवेरस्य सर्वत्र बहु
बहुदर्शिता च प्रस्फुटं प्रतिभासते। विरला एवैतादृशाः कवयो व्युत्पन्ना विद्वांसश्च।

(७) इह सूर्याचन्द्रमसोरुदयास्तमयाः, नक्तंदिनस्यावस्थापर्यायाः, शरद
हेमन्तादीनामृतूनां प्रवृत्तयः, वनोपवनरम्यहर्म्यनदनदीसरित्समुद्रपर्वतदरदादिसंनिवेश
वर्णनानि च चेतश्चुलयन्ति तथा सजीवानि सन्ति, यथा द्रष्टुः पुरस्ताच्चित्रमिव
द्धयन्ति। सहृदयस्यात्मानं मुग्धो विदग्धो जनोऽलौकिके कविमंथनानन्दा
पारावारे चिरं निमज्जत्येव, यावदुन्मज्जति तावत् परः कथनानन्दौघः पुरः प्रसर्पन्नात्म
विलीनयति सहृदयम्। नेमानि कथञ्चिदपि हीयन्ते कादम्बर्यादीनां वर्णनेभ्य
मुत्कर्षं वक्तुं शक्यते।

(८) प्रकृतिवर्णनमिव समस्तपात्राणां परिस्रचित्रणमपि सुरुचिरं सभा
विक्रमनुत्तमं च। "काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये, तथा कान्ता
संमिततयोपदेशयुजे" इत्युपदेशात्मकताप्यपेक्ष्यते, तदेतत्प्रयोजनं साधु निर्व्यूढं काव्ये
कानेन। परमभिनन्दनीयं देहमनितरसाधारणेन गुणोत्कर्षेण। यद्यपि दुष्यन्तायकस्य
चन्दसैन्याभिचारितरिमहः केनाश्चित्परिगहनीयः स्यात्, तथाप्यवस्थाविशेषेऽपरिहार्य
कर्तव्यत्वादुपरतोऽसौ न मनागपि तच्चरित्रमपकर्षं प्रगमयति। पदे पदे चन्द्रवर्ति
दर्शनं परमोत्कर्षं च तं चतुश्चन्द्रवर्तिरं करोति। इत्थं प्रतिपदं परिचये
दुष्यन्तौऽपि पक्षपातः पूर्वेणाऽपि यथा भासते, न तथा चन्द्राय। परत्वमपि
देवदेवैर्विनिरतस्य तस्य चरितमनतिमात्रमुज्ज्वलं स्पृहणीयं चेतोहारि च।

(९) सर्वविक्रमाणां हर्षकार्यैर्दैवदर्शनोपयोगात्कारणाय श्रीचन्द्रप्रभ

दितदत्र पर्याप्तं निर्व्यूढं रस्यते रसिकैः सुसूक्ष्माध्ययनेनामन्दानन्दसन्दोहपरम्पराः परिप्राप्य।

(१०) सर्वतोऽप्यधिकं यदेतत्काव्यसम्बन्धे वक्तव्यं तदिदम्—"भारतीयस्यादर्शभूतस्य समाजस्य स्वरूपं तथात्र विशदम्, सजीवम्, मूर्तम्, उज्ज्वलञ्च निबद्धमस्ति यदितोऽन्यस्मिन् साहित्ये प्रायो दुर्लभमेव। प्राचीनार्वाचीनादर्शयोरयं समन्वयप्रकारोऽभूतपूर्वः सातिशयमुदारश्च। श्रीश्रीनिवासव्यतिरिक्तोऽन्यः कश्चिद् विद्वानिदं कर्तुं प्रभवेन्न वेति सन्देहं तु भविष्यन्नेव कालो निराकरिष्यति। कृतिरियं कविना श्रीशास्त्रिणा तरुणे वयस्येवाकारि, येयमिदानीं यशोगौरवतां प्राप्य सुरसरस्वतीसेवैकरसिकानां सहृदयानां मनांसि सदैव मोदयिष्यति। कवित्वशक्तिरस्मिञ्जन्मजातेति सूच्यते। तावति तारुण्ये मन्ये स्वल्पा एव सुश्लिष्टसुसम्बद्धकाव्यनिर्माणे विशिष्टप्रतिभावन्तः स्युरिति।

यस्य समाजवादस्यादर्शरूपं चित्रितं कविना, सोऽयं रामलीनेन महात्मना गान्धिना 'सर्वोदय'—नाम्ना व्यपदिश्यते स्म। अस्मिन् काव्ये तु तस्य नाम 'सर्वाभ्युदयः' इति निर्दिश्यते कविना। सर्वाभ्युदयशब्दस्तु "सर्वेण—समाजस्थमनुष्येण, सर्वस्मिन्=काले, सर्वस्मै—मानवाय, सर्वस्मादुपायात्, सर्वस्य प्राणिजातस्य अभि—समन्तादुदयः सर्वाभ्युदयः" इति व्युत्पत्तिं पुरस्कृत्य कविना कृत इति संस्कृतभाषाया व्युत्पत्तिनिर्वचनादिविषयाऽर्थप्रतिपादनेऽद्भुतां कामदुघां शक्तिं सूचयति। कवेश्चापि तत्र मर्मज्ञतामाविष्करोति। सर्वाभ्युदयशास्त्रस्यात्रातीव सजीवं दार्शनिकं पाण्डित्यपूर्णञ्च विवेचनमिह लप्स्यन्ते भावुकाः, अनुभविष्यन्ति च दार्शनिकीमनुभूतिं स्वैरम्।

(११) प्राचीनादर्शानां सर्वेषां हीनतानुभावके, तत एव च विषमविषमयज्वालावलीविलीढदुःखौघनिपातदुःसहे निर्मदेऽस्मिन्नेतदपि कान्दिशीकानामितस्ततश्च विद्रवतां जागतिकानां जीवानां भारतीया संस्कृतिरेव समुद्धारायालं भविष्णुः। तस्याः संस्कृतेः प्रकाशश्च केवलं संस्कृतविदुषामेव कृतिसाध्यः। परन्तु—

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम्॥

इति द्विसहस्रवर्षपूर्वमुदीरितेन भर्तृहरिवचसा, न जाने, कति कति वसुन्धरारत्नभूतास्तादृशा विद्वांसः स्वकीयां रचनां दरिद्रतावशात्प्रकाशमनासाद्य साश्रु खेदं सीदन्ति, न केवलं

ता एव, अपि तु तद्रचनाकर्तारोऽपि स्वान्तेषु कीर्णां श्रद्दधीयन्ति च। परन्तु अतीतं तद् वैदेशिकपरतन्त्रतापाशपारवश्यं दुरितोदर्कं दुर्गमम्। सम्प्रत्यभ्युदितो युगान्तरकारी स्वातन्त्र्यसूर्यः। केन्द्रीयशासने प्रान्तीयेषु शासनेषु चानेके महामहिमशालिनो मन्त्रिणो राज्यपालाश्च, राष्ट्रधर्वस्तं राष्ट्रपतिश्च निखिलभुवनैकधात्रीं तामेताममरभारतीं हृदयेनाभ्युदितां कामयन्ते। सा चेदियमात्मगौरवोचिते सिंहासने भूयोऽपि प्रतिष्ठाप्येत, तर्हि न दवीयस्तद् दिनं यत्र शान्तिसुधाधाराः सर्वाभ्युदयाय सर्वत्र निःष्यन्देरन्। मातृभूमिगौरवसंरक्षणजागरूकैः समाजनेतृभिर्विषयेऽस्मिन्नौदासीन्यं विहाय जागरितव्यम्। पुरस्करणीया राष्ट्राभ्युदयायैव न, अपितु, विश्वाभ्युदयाय जाग्रतः संस्कृतविद्वांसः, विशालेन सङ्घटनेन प्रकाशनीयाः प्राचीनाः सारभूता ग्रन्थाः। सर्वासां वैज्ञानिकीनां प्रवृत्तीनां चिरजीवनायाभिनवा विरचनीयाः शास्त्रसन्दर्भाः। भूयोऽप्यत्र चिरविलुप्तं सारस्वतं स्रोतः प्रतिदिशं प्रवहन् पावयेन्निखिलां बन्धुरां वसुन्धराम्। अभ्युदेतु च सर्वोऽपि लोकः। ये सन्त्यधुनापि कतिपये प्राचीना विद्वांसस्तत्साहाय्यमवश्यमिहोपयोज्यम्।

कविरपि चायं द्वित्रैः शब्दैर्वाच्यो यद् युगेनानेन परिवर्तितान् प्राचीनादर्शान् प्रतिष्ठापयितुं स्वनिर्माणकौशलेनान्यानपि समुत्साहयेत्, परस्परसहयोगेन च न केवलं भारते वर्ष एव, अपि तु, विश्वस्मिन् भुवने भारतीयसंस्कृतेरादर्शान् प्रचारयितुं नेतृत्वमालम्बतामिति। सर्वः समाजोऽप्यत्र सर्वात्मना सहयोगं विदध्यादिति च।

काव्यमिद हृदयेन प्रशस्य भूयोऽपीदमाशंसे—

> 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'रेखोज्ज्वला तत्र च याऽद्भुताऽभूत्।
> सा श्रीनिवासस्य कवेः सदा स्यात् सर्वत्र सर्वाभ्युदयैकधात्री ॥ इति ॥

A Review

By **Dr. Satkari Mookerjee,**
Director, Nava Nalanda Mahavihara
Nalanda (Patna).

Chandra Mahīpati—a modern novel in Sanskrit by Kavirāj ri Śrīnivāsa Śāstri, price Rs. 6/- only.

Nobody could imagine that in modern times a scholar ndowed with an extra-ordinary poetic skill and a wonderful nastery of the Sanskrit idiom could write a novel in faultless Sanskrit in the manner of the Classics written by the novelists of Europe and India. It proves that Sanskrit is still a living anguage and can evolve unwonted modes of expression embodying the charming features of Bāṇabhatta's *Kādambarī* together with the modern realistic approach. It is a *tour-de-force* of talent and scholarship. A Sanskrit scholar will be really surprised by the novel nuances of expression which while reminiscent of Classical beauty of the romances composed by Subandhu, Bāṇabhatta and Daṇḍin are examples of modern realistic pictures of the current state of things. Apart from the plot, the author's melodious language is sure to grip the attention of the lovers of poetry. The author has coined new expressions which faithfully and effectively represent modern ideas. Those who are steeped in the terms of the old Sanskrit Classics, whose number, however, is extremely fewer than the modern output, will be thrilled with pleasant surprise to find that the work under review makes a happy departure from the ancient style and manner without forfeiting the attractiveness of Classics. Though on several occasions, the difficulties caused by unfamiliar expressions, may be felt by modern students accustomed to easier expressions, he will be amply recompensed by the labour undergone in mastering a rich vocabulary. In the general course of this story, the style of

the author is simple direct expressive and effective and the reader will not feel the jerks and jolts which are frequent in the celebrated classics. The work is thus remarkable for its combination of the old and the new styles.

As is the case with modern novels, it contains dialogues and conversations in a style which will not allow the interest of the reader to flag or flop. Of course it is pre-supposed that the reader is possessed of a modicum of knowledge of Sanskrit in order to be able to appreciate the beauty of this achievement. I am optimistic enough to believe that in India and outside where Sanskrit is cultivated, the present adventure will not fail to win the approbation of a large number of connoisseurs. This is in brief my evaluation of the author's language and style which ought to be regarded as setting up a new genre.

The author hails from Rajasthan which is noted for its multitudinous episodes of chivalry and romance. The love and admiration of the chivalry of the mediaeval knight-errants has been imbibed by him from the milieu and the tradition of the Brahmanical family devoted to the cultivation of the poetry and scientific discipline of the old in which he has been nurtured. In the present day, when men are accustomed to the drab commonplaces of struggle for existence, the story of love adventure, thrills and narrow escapes may strike a modern reader as unrealistic and romantic. But with a little imagination and sympathy, the reader will get to the core of the human interest unfolded in it. It must be acknowledged that the author believes with Bernard Shaw in recent times and Mammata Bhatta of the 12th Century, that the poet has a mission and a philosophy of life, which he teaches for the edification of his readers. He is not purposely didactic and has skilfully shunned the boring effects which a pedagogue produces on his auditors. The author is not

slavishly chained to the ideas of the old order of kings and knights and has faith in the inherent rights of the average run of men and women to the good things and opportunities of the world. The story he has spun, underlines the transition from aristocracy and plutocracy to real democracy.

The communistic philosophy is now extending its sway over the undeveloped countries of the world. This philosophy is based on the hatred of classes and seeks to root out the inequalities in the distribution of wealth by violence. It ends in Dictatorship which ironically enough thrives on the enslavement of the mass. It seeks to conciliate the mob by providing food and drink and shelter in exchange of hard labour in factories. The author is keenly alive to the misery and degradation of poverty. He pleads for the liquidation of this debasing state of things in which a few men and women fatten on the drudgery of the mass. But his method is entirely different. In this novel, the author demonstrates the way in which this position of affairs can be radically reformed by a philosophy of love. He believes that, if persons who hold position and power are trained in the philosophy of love to develop a cultured and sensitive mentality, they will ungrudgingly share their wealth with their fellow beings. He calls it 'Sarvābhyudaya' which he prefers to 'Sarvodaya' This philosophy of life has been preached by Mahatma Gandhi and is going to receive a concrete shape under the leadership of Binoba Bhave with his able lieutenants as Sri Jayprakash Narayan and the like.

The author has made his hero Chandra Mahipati, a king who gives up all his wealth to his subjects. The king feels supreme joy and satisfaction in denuding himself of his superfluity of the material possessions. This was the ideal of Rāmachandra and also of Mahatma Gandhi who craved for

the establishment of 'Rama Rajya' in India after the departur of the British rulers. Our present author shows that this is no an unattainable utopia. He develops his plot with consummate skill and makes the transition from monarchy and aristocracy to democracy a natural process and eventuality.

Now the monarchial state of things has come to an end in India. India has adopted the parliamentary system of Government which is in vogue in Great Britain and America. But the high officials, from Governors and Ministers down to the humble officers of the state, are threatening to form an order of aristocracy which tends to widen the cleavage between the rulers and the ruled. This condition can be remedied and reformed if the love of superfluous wealth is shown to end in self-stultification. The horrors of poverty accentuated by foreign rule of nearly one thousand years have produced an unhealthy reaction. Our people are becoming egocentric and individualistic. It is necessary that they should learn the lesson of History that the poverty of the majority and the wealth of the minority can not go uncombatted. A new philosophy of life is to be evolved in which nobody should exploit the poverty and greed of the people. If abundance cannot be secured, we must all elect of our own free accord to share the privations with our fellow men and women. I trust, that the work of Śrinivās Śāstri will prepare the ground for this consummation.

The present novel proves the truth of the maxim of Bhāmaha, the ancient author of Sanskrit poetics, that there is no art or science which does not contribute to the making of a poet's work. Our author is a versatile scholar. He has showed his capacity to utilize his knowledge of Panini, classics and systems of Indian philosophy in the constitution of a work of art. With suitable instructions, even a beginner will b

ble to appreciate the propriety and beauty of these gems onstituting a mosaic of uncommon excellence.

It is encouraging to find that the persons who are placed ı high positions are now realizing the necessity of preserving ıd fostering the cultivation of the Sanskrit language and the ıe old treasures of wisdom and science for the emergence of a ılted Indian nation. Sanskrit was the cultural language entire India. Centuries of foreign rule have not succeeded putting Sanskrit out of vogue. Sanskrit can still claim to the universal language of India. It is not more difficult an English. With wise modification in pedagogy and curri- lum, it can be made the official and cultural language of dia as before. It is almost impossible to hope that a provin- .l language will become the all India language. Sanskrit ı be made easy. It is only imperfection of knowledge which is ponsible for imperfection of sympathy. We have had enough lip-homage rendered to Sanskrit. It is now time to get down brass tacks. The Sanskrit Commission has recommended universal culture of Sanskrit in our schools and colleges. r author has showed that Sanskrit possesses an unlimited ·er for evolving new words and expressions for representing modern concepts of science, politics and law etc. No er language in India can approximate to this perfection of skrit. Only if the modern universities can take courage make Sanskrit the universal language of culture in India give rightful encouragement and patronage to modern ers like the author of the book under review, the aspiration attain fruition and fulfilment.

·1-59

Satkari Mookerjee

Institute of Asian African Relations
108 Raja Basanta Roy Road, Calcutta-29

Director:

Dr. KALIDAS NAG, M.A. (Cal.), D. Litt. (Paris)
Visiting Professor of Asian Civilisation, Hill found
St. Paul, Minnesota, U.S.A.

President : Indo-Middle East Association, Calcutta
Chairman : Tagore Centenary Committee, Calcutta
Member : Indian Council for Cultural Relations, Minis
Education, New Delhi. Phone 46-431

Dated 25 January,

Kaviraj Shriniwas Shastri is not only a Vaidya for human body but aspires to cure the mortal diseases of Body Politic as depicted by our master Dharmashast like Manu and Yajnavalkya. With full faith in the effica Hindu Juristic ideas, Kaviraj Kavi Shriniwasji has comp an original upanyas in Sanskrit where he shows mastery forceful Prose and charming Poetry. The plot is worked as in our age of transition from individual monarchial s to socialistic welfare state "Sarvodaya" as outlined by Maha Gandhi, the father of Indian freedom.

I offer my deep appreciation to the learned author for literary and moral ideas which should inspire men and wor of free India.

So I recommend the excellent book "C H A N D E M A H I P A T I" to the Schools and Colleges where aim Sanskrit language as the spiritual language of Bharat being taught and cultivated. I wish the author every success

Dr Kalidas Nag
Ex-Member Raj Sabha,
Life member Viswa Bharati.

सुप्रसिद्धमेव सुरभारत्याः कल्पान्तरस्थायि नवयौवनवैशिष्ट्यम्। आक्रष्टैर्जगत्यां कियन्तो भाषाः समुत्पन्नाः कालेनाकाले कवलिताश्च। प्राकृतमागधीपालीसाहित्यावलोकनान्निश्चप्रचं तासां साम्राज्यमनुमातुं शक्यते परम्, "सर्वं यस्य वशादगात् स्मृतिपथं कालाय तस्मै नमः" इति स्मृत्वैव दीर्घं निःश्वसन्ति तद्भक्ताः। परमिमां चतुर्दशविद्यानां चतुःषष्टिकलानाञ्च प्रसवित्रीं प्रतिनिमेषं नवनवायमानामविकृतामविकलाङ्गीमनुक्षणं लोकोपकारि साहित्यं सृजन्तीमार्यां देवभाषामालोक्य कमपि नवं मोदमुद्वहामः। सर्वदैवानया यथाशक्यं जगत्सेवाव्रतं निरलसया निरूढम्। आस्तिकनास्तिकसिद्धान्ताः, दर्शनानि, विविधा वादाश्चास्यां सम्यङ्निबद्धा इति को नाम विपश्चिन्नाङ्गीकुर्यात्। नात्र रतीयान् संशयलेशोऽपि यदधुना सातिशयं लोकप्रियतामुपेते सर्वोदये साम्यवादे च नवीनेन कविना शिवव्रर्यण श्रीनिवासशास्त्रिणा प्राञ्जलसंस्कृतेनोपनिबद्धोऽतीवमनोहरश्चन्द्रमहीपतिसंन्यासः कादम्बरी-दशकुमारचरितशैलीमनुकुर्वन्नतिशयं प्रमोदोत्सवमावहति। कविरत्र विषयवस्तुप्रतिपादनेऽतीव सफलः। आधुनिकैः प्रचारितः साम्यवादो निरीश्वरः केवलं भौतिकोऽतो न भारतीय-विदुषां प्रमोदावहः। परं कविनाधुना सेश्वरो वैदिको भारतीयो मनुष्यमात्रादिसम्मतः साम्यवादः प्रतिष्ठापितः। (यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्। अधिकं योऽभि-मन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥ योऽसद्भ्यो धनमादाय साधुभ्यः सम्प्रयच्छति। स कृत्वा प्लवमात्मानं तारयेत्तावुभावपि) किमस्मादप्यधिकमुत्कामकं वचो विद्यते मार्क्सवादेऽपि?

भारतीयः साम्यवाद ईश्वरं धर्मं परलोकञ्च सम्यङ् मन्वानः साम्यमभिलषति प्राणिनाम्। तच्चन्द्रमहीपतेर्भाषणे नवमनिःश्वासे सम्यगालोचयन्तु विचक्षणाः। भारतीयविद्यालये-ष्वस्याध्यापनं छात्राणां संस्कृतिवैमुख्यं निरुन्धत् वैदेशिकसाम्यवादादुत्तमं साम्यवादं शिक्षयिष्यतीति मे मतिः। आशासे कवेः कृतिरसमं सम्मानमाप्स्यतीति—

दिनाङ्कः ६-४-५९ काव्यसांख्यस्मृतितीर्थः कविराजहरिवक्षजोशी

प्रकाशक का नम्रनिवेदन

यह ग्रन्थ आप के हाथों में देख कर प्रसन्नता है। कलकत्ते में मुद्रण-व्यय अधिक है और लेटरप्रेस कम्पोजिटरों प्रूफरीडरों की अल्पता अथ च संयुक्ताक्षरों की न्यूनता भी। मुद्रणालय का यह प्रथम प्रयास था और प्रूफ शोधन एक कला है, जिससे अनभिज्ञ थे, अतः पुस्तक में यत्र-तत्र बहुत अशुद्धियाँ रह गईं, कुछ अंश छूट गये तथा कुछ उलट-पुलट छप गये, ये सब अब द्वितीय मुद्रण में ठीक होंगे। फिर भी जिन सहृदय मान्य मित्रों ने अपने व्यापृत जीवन के अमूल्य क्षणशः देकर इस कार्य को कुछ सरल बना दिया, उनके नाम हम बड़ी श्रद्धा के साथ स्मरण करते हैं—

(१) कामेश्वर औषधालय, मोदर (राजस्थान) के प्रधानचिकित्सक—
श्रीसत्यनारायण शास्त्री साहित्याचार्य, आयुर्वेदाचार्य।

(२) श्रीकृष्णाचार्यजी मिश्र, व्याकरणाचार्य, साहित्याचार्य।

(३) श्रीतिलकधारीजी पाण्डेय, साहित्याचार्य, एम० ए०।

इनके अतिरिक्त श्रीहनुमत्प्रसादजी शास्त्री साहित्यायुर्वेदाचार्य, [illegible] एवं संस्कृत के प्राण, संस्कृत मासिक पत्रिका "मञ्जूषा" के यशस्वी सम्पादक श्रीक्षितीशचन्द्र चट्टोपाध्याय ने इसमें सर्वतोमुख सहयोग दिया। गुप्तप्रेस के सुयोग्य परिचालक श्रीसमीरकुमार वसु एवं वहाँ के विभागीय कर्मचारियों ने भी बड़ी धीरता एवं ध्यान के साथ इस कार्य का सम्पादन किया।

पञ्जाब के महामान्य राज्यपाल महोदय ने अपने व्यस्तजीवन में समय निकाल कर प्रस्तावना लिखी, डा० श्रीरानकोटि मुखर्जी, डायरेक्टर, [illegible] सिंह, जलन्धर, ने अपनी समालोचना तथा पोस्ट ग्रेजुएट ट्रेनिङ सेन्टर इन आयुर्वेद जामनगर के डाइरेक्टर प्रोफेसर, साहित्याचार्य क० श्रीहनुमत्प्रसादजी शास्त्री ने संस्कृत में सारगर्भित भूमिका लिखने की कृपा की। इन सभी महानुभावों ने अपने संस्कृत [illegible] के प्रति अपना कर्तव्य पालन किया है, धन्यवाद का आदानप्रदान तो इनके [illegible] नहीं। प्रार्थना है कि सभी सहृदय इसी प्रकार [illegible] रहें।

विनयावनत—प्रकाशक

श्रीमदाचार्यश्रीनिवासशास्त्रिकविताकान्तविरचितः

चन्द्रमहीपतिः

स्वोपज्ञपार्वतीसमाख्यया विवृत्या विवृतः

—*—

कमला

प्रथमो निःश्वासः

समरमुदितदैत्याऽऽदित्यहर्षप्रकर्षा
ललितवदनभालाद्विस्रवत्स्वेदवृन्दा ।
विगलदमृतबिन्दोर्बिभ्रती कान्तिमिन्दो-
र्जयति विहतविघ्ना कापि सा भक्तिनिघ्ना ॥१॥

महार्हरत्नाचितरक्तशाटीसुवीतमध्याद्भुतकम्रकान्तेः ।
जयन्ति फुल्लन्नलिनायितानि प्रशान्तनेत्रान्तनिरीक्षितानि ॥२॥

कार्तस्वराभास्वरवस्त्रभासो बुधेन्द्रसम्मानपरम्परस्य ।
श्रियो निवासस्य विदो वरस्य प्रियप्रियायाः कमलालयायाः ॥३॥

प्रत्यूहधूराहतिदिक्करेणवः शिवे ! शिवास्त्वत्पदपद्मरेणवः ।
जयन्ति साष्टाङ्गपतत्पुरन्दराः किरीटभाभानुजुषो विकस्वराः ॥४॥

वनावनि यद्भिरभिज्ञसिद्धैः प्रासोदरत्वं विपुलार्चनेन ।
द्विरयाद्विपकुम्भमनङ्गभङ्गी भर्गो विनायोमनुकूलभूतः ॥५॥

शिवे शिवां पश्यितुं प्रवृत्ते विधाय नारीमयमात्मरूपम् ।
यस्यान्तनिर्यत्तटिनीप्रनष्टेऽभीष्टेऽट्टहासाः प्रजयन्ति भासा ॥६॥

त एव सद्योऽस्य विनाशयन्तु विस्फूर्जितं यद् हृदये तमोऽन्वम् ।
यैर्वै हिमानीधवलं पुरारेर्वपुः सुधास्नातमिवावभाति ॥७॥

श्रीकालिदासामरवाणरूपान् जगद्वरं वाग्विलसद्विमूर्तिम् ।
प्रणम्य विश्वेशमगम्यमार्गं विशाम्यशङ्कं सुमनःप्रपूर्णे ॥८॥

येषां निवासाय विदामधीश्वरी वागीश्वरी स्वान्तनिशान्तमीप्सति ।
शास्त्रामृताऽऽपूर्णपयोधिमन्दरा धन्याः कथं नाम न ते कवीश्वराः ॥९॥

क्व साध्यमेतत् पृथुशेमुषीजुषा क्व चास्म्यहं स्वल्पमतिश्चलेन्द्रियः ।
तथापि मूर्ध्ना विदुषां सतीं शिवां वहन्ननुज्ञामलमातनोम्यदः ॥१०॥

रम्यं सुधास्पर्धि कविप्रियं न चेन्न चैव सम्पन्नधियां मनोरमम् ।
तथापि रस्यं रसयन्ति कोविदा विपन्नपं लोकहितात्मकं वचः ॥११॥

त्रुट्यो यदि स्युः क्वचनाप्यमुष्मिँल्लेखात् प्रमादान्मतिविभ्रमाद्वा ।
शोध्यास्तदा सद्भिरमर्षमोषं जोषं कदा मुह्यति लेखको न ॥१२॥

ईर्ष्याहितान्तःकरणा द्विजिह्वा वागाशिषा शेषजनान् दशन्ति ।
वृत्त्यानयाऽऽनन्दितचेतसोऽमी दुःखात्परं दुःखमलं भजन्ति ॥१३॥

ततोऽपि कष्टं प्रचुरं विपह्य मनो न तस्या विनिवर्त्तयन्ति ।
सत्यं न शिष्टैः कथितं किमेतद्दग्धापि रज्जुर्वलनां न मुञ्चेत् ॥१४॥

नाम्ना भरद्वाज उदक्प्रतिष्ठो जगद्ददध्वान्तभगो महिष्ठः ।
अचाक्षुषज्ञाननिधिर्गरिष्ठोऽभवन्मुनिर्योगविदां वरिष्ठः ॥१५॥

जातो धनुर्धृतिपराहतशत्रुसङ्घः शास्ता समस्तकुरुपाण्डवबालकानाम् ।
तस्मादमेयगुणगौरवपूर्णकोणो द्रोणो विशास्तरिपुरक्तकृतान्यशोणः ॥१६॥

तदन्वये धन्वनि धान्यधन्ये सत्खेतडीरक्षितलाम्बिपल्ल्याम् ।
निश्शेषवेदान्तविशुद्धबोधो हनूतरामो व्रतिनां विरामः ॥१७॥

भूपालमौलिमणिशाणितपादपद्मः
सत्पात्रदत्तधनराशिविधूतपापः ।
तापप्रतप्तजगतो नवनीरदाभो
लेभे प्रभां विपुलबुद्धिवरो वरेण्याम् ॥१८॥

वाग्देवता मण्डलमण्डनस्य प्रकाण्डवागब्धिवगाहिनोऽस्य ।
स्वयं भवन्ती समुपस्थिताऽरं मातेव कार्यं सकलञ्चकार[1] ॥१९॥

विवेकविद्याजलपूरपूर्णाः सत्तन्त्रमीनाञ्चितचेतसोऽमी ।
सत्पूरुषाम्भोदचयैर्निपीता जयन्ति सज्ज्ञानपयोनिधानाः ॥२०॥

इन्द्रो यथा कश्यपतेजसोऽजनि स नारदोऽप्यात्मभुवो यथाऽजनि ।
तथाऽजनि श्रीमदमन्दमोदकः श्रीभानुरामो महसां निधिस्ततः ॥२१॥

---

१ जयपुरराज्याधीनखेतडीराज्यान्तर्गतलाम्बीवासिनो हनूतरामस्य शिष्यो निकटस्थ-ग्रामाधिपः क्षत्रियो नरहत्यापराधे आजन्मकारावासं प्राप । तद्बन्धुभिरानम्य हनू-रो निवेदितः । एतैरुक्तं मोक्ष्यते भगवतीप्रसादात् । ततस्तैश्चण्ड्याः पाठ आरब्धः । माहं नीरस्तुनं अशुनं चोचुः, किम्बहुना आसनपरिवर्त्तनमपि न चक्रुः । यस्मिञ्जीर्ण-टजे देवीमस्तौत्तदकस्माद्धारित्वं भेजे । तदैव पचेरीतो रथ आगत्य उपराजमातृ-क्षिनाय । तत्र किलकारसिंहमुखाज्ज्ञातं यदद्य केनापि महसा जयपुरकारातो ग्रये स्वग्रामसीम्नि निगडमोचं पातितः, इति । ताभिरवनताभिरुक्तं याच्यतां ष्टम् । परन्तैर्नयाचि, केवलं पचेरीवासिविप्राणां विवाहकरमोचनाय न्यवेदि । भेथ प्रतिज्ञातम् । श्रूयते तद्दुर्गेऽन्तःपुरे धूम्रमभ्यासेषां निष्ठ्यूतचिह्नं भित्तिलग्नं वान्तःपुरस्था आसन् । सुधालिप्तेऽपि सौधे तत्स्थानमलिप्तमेवास्त । अष्टादशशताब्द्या तितमे वर्षे वृत्तमदः । एवंविधाः शतशश्चमत्कृतयस्तेषां गीयन्ते । पञ्चोत्तरैकोन-शतितमेऽब्दे ते देहं तत्यजुः ।

पार्श्वस्थपौरव्रजपूजितो यो रेजे दधच्चन्दनपुष्पमालाः।
माहेश्वरध्यानपरायणस्य यस्यास्त हस्तामलकं त्रिलोकी ॥२२॥

भवन्ति सत्यामृतवर्षिणो भवे रहोजुषस्तथ्यपुषो विपश्चितः।
क तादृशाः संसरणस्वभावके भवन्ति चेत्ते विरला वनौकसः ॥२३॥

ततोऽभवत् पण्डितमण्डनाग्रयः कुशाग्रबुद्धिः श्रुतपारदृश्वा।
सन्तुष्टिदारः श्रितशास्त्रसारो विद्याधनो नान्यकरामसञ्ज्ञः ॥२४॥

धैर्ये धरां तेजसि चित्रभानुं क्रोधे यमं वाचि गुरुं सुराणाम्।
जित्वाऽमृतासिप्रतिभाप्रसन्नश्छन्नं ऽर्चयामास सुरान् सुखं यः ॥२५॥

तस्मात् सुपुत्रौ निपुणावमूतां मन्दारकल्पावधनौ द्विजानाम्।
ज्येष्ठो बुधेन्द्रो नयरङ्गरायः पदन्तरोऽन्यो गणरायनामा ॥२६॥

ज्येष्ठो वरिष्ठैरथ जुष्टनिष्ठैः षट्शास्त्रवार्धेरवगाढवित्तैः।
संसेव्यमानः कृतिभिः समास्तेऽसौ पण्डितेन्द्रो नयरङ्गरायः ॥२७॥

यत्पाठितादृछात्रमपर्चिका अलं प्रकाण्डसत्त्वाः प्रथिता मनीषिषु।
अधीतविद्याः प्रतिवादिभीषणाश्चरन्ति पर्याचकितोष्ट्राचलाः ॥२८॥

तपःसुपुष्पा शुचिकीर्त्तिवल्लरी षट्शास्त्रसौगन्ध्यवनी क्षमाफला।
आशासु येषां विततानिशोभना छात्रालिसङ्गीतगुणा क्षरद्रसा ॥२९॥

अयातयामागमदीप्तकान्तेः शान्त्यात्मनम्रोपधनस्य यस्य।
कात्यायनीकान्तकृपाकटाक्षैर्हेमन्त्वतेः पश्च गुणाः स्तुताः स्मः ॥३०॥

ज्येष्ठश्च वादीन्द्रविदीर्णमुद्रान् प्रशान्तशास्त्रौघपटूदलमुद्रान्।
अभूद् सुवः केदारनामिकायां विद्वद्विनेयः कमलातिमिकायाम् ॥३१॥

पाठोऽस्यदर्शी भुवनश्रियुतेभ्यः शब्दागमे प्राप्य मनाक् प्रवेशम्।
अज्ञानगर्द्वेन्द्रियपापदोऽयं स मौनिवासी विदुषां विधेयः ॥३२॥

येनायमद्धा सुकुमारसंविदा सच्चिद्घनानन्दमभीप्सता भुवि ।
अनप्रमोहाविलया विमुग्धया धिया विनोदाय कथा निबध्यते ॥३३॥

— : o : —

कथारम्भः

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः । सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामेनिकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ शु॰ य॰ वे॰ अ॰ २२।२२ ।

अयमाद्यो राष्ट्रियः सर्वाभ्युदयभावः । हे ब्रह्मन् ! राष्ट्रे ब्राह्मणः—विप्रः (ब्रह्म अधीते वेद वा) ब्रह्मवर्चसी—ज्ञानप्रकाशित आजायताम्—सम्यक् प्रकारेण भवतु । राजन्यः—क्षत्रियः, शूरः—पराक्रमी, इषव्यः—इषुप्रयोगकुशलः, अतिव्याधी—अतिक्रान्तं धर्मशत्रुं वा विध्यति सः, महारथः—योद्धा, आजायताम् । ब्राह्मणो ज्ञानप्रधानः क्षत्रियश्च कर्मप्रधानः । तयोः सम्यग्योगादेव राष्ट्रस्योन्नतिः, परिवारस्य दम्पत्योरिव । वैश्यशूद्रयोः सेवकयोः पूर्वद्वयप्रेरितत्वेन न पृथङ्निर्देशः । धेनुर्दोग्ध्री, अनः—शकटं वहति सोऽनड्वान् वोढा—वहनक्षमः, सप्तिः—अश्वः, आशुः—शीघ्रगामी आयतामिति सर्वत्रान्वयः । सर्वे पशवोऽपि स्वस्वकर्मणि नैपुण्यभाजः स्युः । अत एवैष सर्वाभ्युदयः । योषा—स्त्री, पुरन्धिः—परिवारपालनकुशला स्यात् । अस्य यजमानस्य—देवानां गुर्वादीनां सत्कर्तुः सज्जिपमिथोदानशीलस्य च युवा वीरो जिष्णुः—विजयी, रथेष्ठाः—योद्धा, सभेयः—सद्व्यवहारशीलो जायताम् । नः—अस्माकं राष्ट्रे पर्जन्यः—मेघः, निकामेनिकामे—आ परितोषाद्वर्षतु । ओषधयः—औषध्यः फलपाकान्ताः, अनेन सर्वासामपि ग्रहणम् । फलवत्यः—प्रशस्तफलयुक्ताः (प्राशस्त्ये मतुप्) पच्यन्ताम्—पक्वाः स्युः, देहे क्षेत्रे च । नः—अस्माकं योगः—अलब्धलाभो योगः, लब्धरक्षणं क्षेमश्च, कल्पताम् ।

विकलयति कलाकुशलं हसति शुचिं पण्डितं विडम्बयति ।
अधरयति धीरपुरुषं क्षणेन मकरध्वजो देवः ॥ त्रिविक्रमभट्टः ।

स्वस्वव्यापृतिमग्नमानसतया मत्तो निवृत्ते जने
चञ्चूकोटिविपाटितारपुटो यास्याम्यहं पञ्जरात् ।
एवं कीरवरे मनोरथमयं पीयूषमास्वादय-
त्यन्तः सम्प्रविवेश वारणकराकारः फणिनामणीः ॥ पण्डितराजजगन्नाथः ।

"प्रवर्षणधौता इव साभाः ककुभो व्यपगतरजसः कलाशुचः प्रासादाः प्रसादयन्नम-
पादपाः कृष्णोज्ज्वला वल्मीकं प्रविविक्षवः सर्पा इव सरला विदूरगामिनो लोकमार्ग-
स्थावस्थं मनः प्रसादयन्ति देव ।। प्रियदिदृक्षादर्पविधुतविवेका बहोः कालाद्वियुक्तेन सङ्गन्तुमुत्वरा
कगत्या मार्गलाघवं रचयन्ती, अट्टकेलिं कुर्वती सायन्तन्या सौरीप्रभया रक्ताम्बरावृतेव
नवयौवनोल्लसिता वप्रमिव विधित्सन्ती तुङ्गोर्मिभिः, स्वयमुल्लासवाद्यं वादयन्ती सुधा-
मधुरैः कलकलैरानन्दमेधयमाना, उच्छलत्तरङ्गैरवगुण्ठनमपनीय प्रियप्राप्तिमिव प्रेक्षमाणो-
न्नतग्रीवा मन्दिरेक्षणा परिणतयौवना नदी मानिनीव रूपगर्विता दूरेऽक्षिपथाल्लुप्ताऽन्वहिता ।
त्र जनसान्निध्ये तस्या महद्धैर्यं वीक्ष्येव मूढा उन्मत्ता इवासक्ता द्विधा दूरं क्षेपन्ते
दशा ध्यानमग्नेव शान्ता धरित्री च । चलत्तरङ्गभङ्गायाः पीतभङ्गाया इव घूर्णमानाया
ास्तटे उत्फुल्लकमलामोदेऽमलवारिणि हारिणि कृत्रिमेऽवकोकिले सरसि मृदुमृणालिनी-
हल्लशय्याशायिभिः प्रजोपवननिकुञ्जशोभिनो मत्ता मुक्ताः इदानीं व्यथाः शनैःशनैः पूर्यन्ते ।
महार्हवाससामाकर्षिका विकसितस्मिता आकृतयः कमलासनस्य कौशलं प्रकाशयन्ति ।
न वार्त्तामिमां भमन्नेमाण उद्भ्रवः परस्परावद्धैकैक्याहूनि यौवनमधुमधुराणि सेर्ष्यं वीक्ष्य
लानि विशता विलोचयन्ते, परे चाभिनवप्रेयसीप्रेमपतिता अन्वेषयन्त्या प्रकृष्टमकृत्याः
यडवासनावातोद्धतमुदयो बधिरान्धा महामोहान्धाः । केचन पलाशपत्रपुटकेषु
म्लवेशवारोपस्कृतान् वटकान् पीतशार्करखान् रसगुल्मांश्च प्रसादविकसिते प्रेयसीमुखे
ि भक्षयन्ति, परे च पुटपतं प्रतीक्षमाणा मनोमणिवकाः पतनसमकालमेव तान्लिहन्ति ।

।श्च नरा अप्यश्वायिता वहन्ति नारीर्नरांश्च स्वसमान्। कीदृशो व्यामोहः। कीदृग्वै-यम्। यद् दृष्ट्वा मनः खिद्यते।

केचन विद्याभ्यासमये विमुच्य काव्यरसमनास्वाद्य वारुणीभक्ता दोलालोलां लक्ष्मीं वन्दं द्यूतव्यासक्ता अन्वयागतपरम्परापाटनपटवो रूपयौवनसमृद्धा अविवेकाश्वलचित्र-ानविरता वित्तभूवित्तभूमता मोदोन्मादिनो जपन्तो मन्त्रनटीनाममालां पुष्पमालां वक्षसि यन्त आनासिकं पापपङ्के निमज्जन्तः प्रेक्षन्ते पितृपितामहार्जितधना निकुञ्जवासवित्तरतसाधुताः साधितसाधिता जीवनचिन्तामणिं काचमूल्येन विक्रीणाना निद्राणास्तथ्यपथ्य-याद्विद्ता वासनायामिनो वितृष्णा युवानः, इतश्च कान्तप्रियाः प्रियविद्या भविष्यज्जीवन-तच्चान्तविद्विध्वंसिरया नवनीलनीरदरुचिरेऽञ्च कुञ्चितद्रवे कुसुच्छये शास्त्राण्यभ्यस्यमानाश्च। तश्च कन्चुकक्रोशाकलनपटवः पक्षकोटरापहृतधनास्तस्करशिशवो गुरवेऽर्पयन्ति यामार्जितं मेशामिव चिन्वच्चोरविकीर्षितव्यानि शिक्ष्यमाणाश्च। इतश्च पश्चिमाशाभरणभ्रंशं तीक्षमाणाः प्रवयसो वदनवलीका अपि मसृणारक्तखचिताव चूर्णेन तिरोहितवलीकाश्चन्दन-न्दितवदनश्रिया यस्मन्नजर्जरेन्दुं जिगीषव इव पलितकलितकेश्योऽपि कृष्णाय (खिजाब) कृष्णकेशश्च्युतदन्त्योऽपि कलितदन्त्यो व्यपेतविनया लोलाक्ष्यः कान्ताकारकेशकीर्ण-न्दकुसुमा वलयितव्याले धम्मिल्ले फुल्लखचितसुमस्रजः परिमलगन्धवहान्धीकृतकामुका नेधूतशोणिम्नोरधरयोः कपायभयोः करोल्यो रागम्, चारुचकोरचञ्चलचरयोः प्रजागर-कुन्दिलशोणयोरुन्मदाक्ष्णोः कज्जलस्य सूक्ष्मां रेखामायोज्याधःकृतनवयुवतयः सर्वदोत्फुल्ला लता इव प्रसृपप्रभा यौवनजलविरहिता नीरसा अपि स्मररससरसिम्मन्याः 'कमलमुकुल-मलकोमलौ कुचौ लोकयूनां परिरिप्सयेव समुत्थाप्य मनोभवभूपतेः पटकुट्येव कञ्चुकिकया कलितकर्कशौ प्रत्याययन्त्योऽविच्छिन्नामतविन्दन्निव वर्धन्त्यः प्रियेष. नारीलोकस्य स्वातन्त्र्यं

प्रियप्रेमोद्रेकरसलितैर्ललितलीलाविलसितैर्मदभरशिथिलन्यस्तैरखर्वविचारखर्वैरपि च श्री प्रायं स्खलत्स्खलन्त्यो विषयाम्बरमिदाह रमयमाना इवानुद्देश्या अत्यनूनवेगं मनन्त कामिन्यः, चपदञ्चितनासोभिरानरञ्जिताः रत्नजटितैरलङ्कारैश्चालङ्कृतालम्बनरू द्योतमाना विद्युत इव सम्भ्रमकं वर्यमरुत्तरादवतीर्यानधिगतचातुर्यास्तुर्यामिव नस्थां मनन घनानन्देन साशङ्कमितस्ततो वीक्ष्य 'एकं घनं द्वितीयं नास्ती'तीव निश्चित्य दधिमन्थन् कच क्रीत्वा युगपदेव निजिगलिषया व्यात्तमुख्यो निःसरत्स्वमेत्रा एकाकिन्यो घनिन्यश्च वीक्ष्य मनस्त्रस्यति। इतश्च श्यामदूर्वे कुचमादिनः शिशवः, यान् वीक्ष्य मानसं हृष्यति। इतश्चोद्यानकोणे प्रारब्धं राजनीतिविफलानां वरकार्यविघटनपटूनां कटूनां गर्जितवर्धितदर्शी परोन्नतिकथामात्रेण शिरश्शूलिनामभ्यस्ताक्षरद्वयानामप्यल्पज्ञानोद्धतप्रतिभाभिमानिनां परदोषदिव्यदर्शिनां पूर्वग्रासिद्धानां लोकप्रियपत्र वाणानां वाचालानां वाग्जालम्, वृत्तवित्तानां वृत्तपत्रप्रतिनिधीनां गुप्तचराणां सङ्केतलेखनञ्च। अपरस्मिंश्च भवभयविघाताय छिन्नाशानां सुप्तां लुप्तां लुण्ठितां मानवतां पुनः प्रचिचारयिषूणां विगतायासक्लेशानां शास्त्राभ्यासे गमितवयसां लोककल्याणैकमनसां पापापनोदनपटीयसां तमश्छन्नं जीवनपथं प्रकाशयतां दुष्कृतबहिष्कृतानां गुणागाराणां काव्योदमेरूणां पुराणप्रवीणानां नन्दनीयवन्दनीयकर्मणां प्रसादमधुराणां वीतसारमपि संसारं ससारं सम्पादयतामिद्धबोधानां सतां विदुषां प्रवचनम्। यत्र द्विना एजद्ग्रीवा विलोक्यन्ते वाचंयमाः। एते भ्रान्ताः समाजेन सावमर्दं सगलग्रहणमवकरगर्त्ते निक्षिप्ता अपि समाजस्य भूत्यै विशिथिलं परिकरं बन्द्धुमुद्युञ्जाना प्रतीयन्त एव विक्षिप्तचेतसो मुग्धाः। यान् वीक्ष्य चक्षुः क्लिश्यते।

इतश्चाल्पवयसोऽनङ्कुरितकूर्चका उत्फुल्लामलकोमलोत्पलमुखा मुग्धस्मिताः शिशव उपानत्परिष्करणे दाक्ष्यम्, केचन मुद्गफलीनामङ्कुरितानां मुद्गमकुष्ठानां प्रशंसां समुद्घोषयन्तो लवणाम्लमिश्रानां भृष्टस्विन्नचणकानां बल्यतां गुणतां चोपदिशन्तः शार्करजम्बीरचूषिका विक्रीणाना उदरम्भरिता विद्योद्योगं जीवनस्य श्रेष्ठामिष्टामिष्टि मिष्टिं विदधु बाधिता भ्रमन्ति, यान् वीक्ष्य मनः क्लाम्यति।

इतश्च विश्वम्भरस्य विश्वभरणप्रतिज्ञामिवाह्वयमाना बुभुक्षाभक्षिता बलिना कलिना कवलितधर्मणः पुण्यभूमेर्भारतस्यासाधारणमहिमानस्तपोधामानो मुनय इव शुद्धाः प्रवृद्धप्रवृद्धविकारा नीरसोऽपि रथ्यारजोधूसरिताः प्रकृतिप्रत्ययोपेता अप्यपदाः पुमांसः, अनन्यक्षुण्णवीथ्या

अपि क्षुत्क्षीणधीकाः पतिपरायणाः पाषाणाक्रान्ता दूर्वा इव पीता महिलाः, शुष्यच्छोणीश्रविणः क्षुत्क्षामाः शवा इव शिशवश्च, आयासशतोत्पादितविपुलक्षेत्रसम्पदः समस्तसस्यसम्पुञ्चिता अपि शताब्दीभ्यः समाजानुमतिप्राप्तैर्घोरैरक्तप्रणतकर्षणैरनाशैः परपरितापनकृतुद्धिभिरुत्कटकालकूटकुटिलैराजीवनाभ्यस्तपापपटलप्रतिष्ठितैः कर्कशोमतीमाभद्रभावैः सर्वस्वविलोभलुप्तितमतिभिः परिपूर्णभोगाभोगगरिमभिर्भोगिभिः सर्वप्रासिभिर्बुधैः पिष्टेनिष्प्रयोजनं लुण्ठितसर्वस्वाः कृपाकणिकाशून्येन मौनमग्नेन समाजेनानिराकृततापविपदः, जिजीविषया, अमर्दम्लानमृत्योर्लुसान्निध्यिधासया सर्वतापशमनैकभेषजं प्रसन्नभयभञ्जनं मृत्युग्रहमिव नगरं मत्वाऽऽश्रिता लोकपथपार्श्वानाकुलयन्तो पर्यन्तश्च प्रयत्नसहस्रेणापि मृतिमनाप्नुवन्तः स्वेदस्यन्दितः खिन्नास्तुन्ना दीना दूनाः प्रतिनिमेषं विस्तृदर्दमानदुःखा जठरज्वलनज्वालोत्तप्ताः प्रसारितकम्पितहस्ता एकतानकातरदृष्ट्या वीक्षमाणाः सकरुणमभिव्यक्तिम्, अराद्धार्यां विह्वलतां निष्कपटां भक्तिं च प्रत्यादधाना अनभ्यस्तयाचनवचनैः सदैव निःसरत्प्राणा अल्पप्राणाः प्रेक्ष्यन्ते ग्रामीणाः, यान् वीक्ष्य मनो भ्राम्यति।

इतश्चार्थेषणया दारगवं विहाय राजधानीमुपेता वैफल्यविक्लवाः परिभ्रमणश्रान्ताः कर्मक्लान्ताः कर्तव्ये भ्रान्ता मलक्लुलिता मावशून्याः श्रमक्लमापनोदनाय सरितः श्लक्ष्णशीतशिलासूपविशन्तो युवानः, यान् वीक्ष्य मानसं खिद्यति। देव! बृहच्छोको लोकः।"

"नियतिः केन नियन्तुं शक्यते देवि! कर्मणां विधिविपाको हीदृशः। बलवान् विधिरयं स्वेच्छयाऽऽचूलमूलश्रीकौस्तुच्छयन् भ्रमस्तपरान् प्रपूरयन्, विदुषो विडम्बयन्, समुद्रान् विरिधन्, उन्नयन् पातयन् आकुलयन् सुखयन् क्रीडति, नात्र कश्चन परिवर्त्तने प्रभुः। धावनेन चेद्भाग्योदयस्तदाश्वः श्वा वा सर्वाधिकमुदियात्। परं किं क्रियच्चाचक्ष्महे साम्प्रतिकजीवजगतः। नैतादृशेषु विषयेषु तवोचितो विचारः। अस्तु, अपि स्वास्थ्यमनुभवति भवती व्यपगता चोदरवेदना?"

"आम्, आर्यपुत्र! सम्यक् स्वास्थ्यमनुभवामि।"

"कस्ते विचारो नरेन्दुना सम्बन्धाय?"

"मन्ये बाल्ये शयनासनाहारविहारान् क्रीडाकौतुकं बन्धुत्वव्यवस्थया भाविविधानश्च भवान् व्यधित, तदा कल्पनैव नासीद् यत् सोऽकल्प्यमहत्त्वं राज्यं समधिगमिष्यति। किन्तु सम्प्रति समधिगतमातुलराज्यस्य तस्य यौवनोद्गमलसद्भिनवप्रभं नवं वयः, प्रचुरबलेन

यशसा सहैवासादिता न्यक्कृतामरश्रीः श्रीः, जनसङ्कुलं कुलम्, अवरुद्धपरपदक्रमो विक्रमः, अपुण्यजनदुर्लभा लब्धख्याते राज्ञः पुत्री पत्नी, प्रचुरवसुर्वसुन्धरा, लोकोत्तरचमत्कृतिर्मतिः, जितपुण्डरीकाखर्वगर्वं जगद्वितानीभवद्भव्यं यशः—इति महामहिमा महाकर्मा नरेन्दुर्मां स्वभावपरवशो वृत्तमिदमुपहासास्पदं विमृशेच्चेत् ?"

"अये ! बालविहसितवत् सरलः, शुकविभणितवत् सरसः कान्ताकटाक्ष इव मनोहरो हास्याभिमुखो गर्ववैरेणादूषितः शैशवत एवाभिनवविलासोक्तिचमत्कृतः श्रीमतः स्वभावः।"

"श्रीमते यथा रोचते तद्विधेयम्। धात्रीनिर्विशेषाणां गृहविहारिणीनां स्वमनोनामत्र कः परामर्शः। सन्ततिसंस्काराणां प्रायशः पितैव प्रभुः।"

"अस्तु। प्रसवानन्तरं वयमुज्जयिनीं यास्यामः। यत्र भगवत्या हरसिद्धया अर्चना भविष्यति जातस्य चौलसंस्कारश्च।"

"देव ! केयमुज्जयिनी ? अपि देवो गतवांस्तत्र ?"

"उज्जयिनी मालवदेशस्य राजधानी। रम्योऽसौ प्रदेशः स्वास्थ्यप्रदश्च। भवती तत्र प्रचुरं मनोविनोदं सुतश्च स्वास्थ्यमधिगमिष्यतीति मामकीनो विश्वासः। के नाम न परिकिरन्ति [illegible] जगद्वन्द्यमहिम्नो भगवतो महाकालस्याधिवासभूमिम्, संस्कृति- [illegible] भगवत्या हरसिद्धया विहारवाटिकाम्, धाराधरेश्वरप्रेमपूजितपदारविन्द- [illegible] विविधरसवैदुष्यस्य कविवरकालिदासस्याराध्य- [illegible] क्रीडास्थलीम्, विश्वविश्रुतविक्रमविभवां धन्यनामधेयामुज्जयिनीम्। के वा- [illegible] विक्रमस्य प्रतापदेवेन [illegible]। [illegible] धन्यात्मानः। [illegible] राजन्ते महीं [illegible] शिप्रां [illegible] राजपुरुषैः [illegible] निरदेशि स्म, [illegible] मन्यते स्म। [illegible] दिशा [illegible] विधीयते स्म। [illegible] मनोहरं [illegible]। [illegible] विश्वास्यन्ते स्म। [illegible] निर्दिश्यते स्म।

मुष्टिमात्रमकुट्टाय क्षुद्व्याकुलेन कुलीनेन भ्रात्रा निरस्तनिःशेषदोषा तरुणी भगिनी व्यभिचारिषु न विक्रीयते स्म। बुभुक्षया रुदतां शिशूनां करुणक्रन्दनेन मातॄणां वक्षः शिशुभिः सममेव न विदीर्यते स्म। योजनदीर्घेषु राजमार्गेषु क्षुधाशोषितानां शवानां गगनचुम्बिनः कङ्कालकूटा नेक्ष्यन्ते स्म। अधिकारगर्वितानां यानानि क्षुत्पीडितांश्चिस्तुर्वतो वक्रगन्तुञ्चाप्यसमर्थान् मुखेषु तृणमाधाय सङ्केतैरेव प्राणभिक्षां भिक्षमाणान् म्रियमाणान् सम्मर्द्य तेषामस्थिकङ्काले सञ्चूर्ण्य शिष्टान् द्विष्टान् शोणितप्लुतांश्च पथि प्रसार्य शुष्कान्त्राणि श्वभ्यो विकीर्य पवित्रभारतरक्तेनानिच्छन्तीमपि भगवतीं मेदिनीं मेदस्विनीं विधाय च न भ्रमन्ति स्म। देशभक्तानां गलपाशप्रोषितपतयो युवतयो निरवलम्बा नासन्। येन च विश्वजिता राजधेन सनाथासीत् सरस्वती मही भारतं वर्षञ्च ....।"

"आर्यपुत्र! विरम्यताम्, नाहमधिकं श्रोतुं समर्था। वैदेशिकशासने परतन्त्राः पक्षिणोऽपि दुःखिताः, का कथा ज्ञानविज्ञानसम्पन्नानां मानवानाम्।"

"अहमप्येकदा परममित्रेण नवेन्दुना सार्द्धं तत्र समग्रामैतिहासिकसामग्री मग्राक्षम्। सोऽयमेव नवेन्दुर्यस्य धर्मपत्नी ऐषमो भाद्रे शुक्लदशम्यां पुत्रञ्

विमलपुरस्थितिसमेतो रामपालः पूर्वोक्तलक्षकेशरमृगमदपरिमलं भागमलीकं हलन्
तर्येव प्रासादमध्ये सुगन्धस्थले राज्ञा गर्भमहोत्सवमन्वयते चन्द्रानन्देन।

*　　*　　*

पौषो मासः। शैत्यमण्डितपुरंध्रकाणामल्पविग्रहः पक्षोऽयं शुक्लः। तिथिः
तृतीया। सर्वतः शीतस्य साम्राज्यम्। प्राणिनो जडेन जडेन सार्कं पापायमानाः।
शीतभयाद्विभावसुरपि सङ्कोचितज्वालमाल अन्तर्मोयाज्ञानीवाङ्गाराणि भस्मचयनीकरणेन
सद्य एवाच्छादयति। पवमानोऽपि सत्वरसत्वरं भ्रमन् विन्ध्यगिरिगुहासु निरिङ्कितं
"माऽस्मान् सततप्रणयिनो विहाय प्रयासीः" इति सकोलाहलं व्याजिहीर्षुः शकुन्तिकं
भर्त्सयन्निव निवारयन्निव लोलस्ताम्रं वाति। शीतभयभीता विद्युता दिशोऽपि दूरीभूताः।
आकाशमपि शीतसितशरीरमिव शून्यतां बिभर्ति। किमपि कर्म कर्तुं नोत्सहते मानवः।
ईषदपि प्रावरणशून्यमभूतमङ्गं विनश्यदिव प्रतिभाति।

अथ लोकघटीप्रतिनिधौ चलचक्षौ चपलचूडे ताम्रचूडे तारमधुरं शब्दायमाने
सरोजिनीशरीरसंहरणस्फुटागसि हेमन्ते तज्जहस्तैर्व्यञ्जितक्रोध इव प्रतीयमाने कन्दरे
साधनासमये हेमन्तेन भक्षितपत्रपुष्पफलेष्विव काण्डशेषेषु पयःपूरप्रकम्पनप्रेरितेषु परस्परं
शाखासङ्घर्षणेन खटखटशब्दैर्दन्तानिव घट्टयत्सु वृक्षेषूपविष्टास्तपश्चरन्तो योगिन ईश्वर-
साक्षात्कारमिव दिनेश्वरसाक्षात्कारं प्रतीक्षन्ते पक्षिणः।

गोशाविकं म्लानम्, चुल्लीगुहाभस्मचयमुपः श्वा ताडितोऽपि नोज्झति। वराकाः
स्वाङ्गानि स्वस्मिन्निह्नोतुमिच्छन्तः कच्छपवत् सङ्कुचन्ति। अथ कमलकोडकारे-
न्मुक्तैः सुमनःसौरभभ्रान्तैर्भृङ्गैर्गीयमानगुणो मृणालिनीविलासोल्लासवादी विरहविधुर-
कोकवधूबन्धुरबन्धुर्दिङ्मण्डलीमणिमुकुटमण्डनहीर उत्फुल्लपद्मिनीप्रतिबिम्बेनेव लोहि-
तितः शीतार्त्तानां निर्धूमो मारवरामीकाष्ठाङ्गार इवाभितप्ताभिरायसीभिः कराभिरिव-
तरणाभिः सत्वामित्वरीभिर्मरीचिभिर्विदीर्णदिग्ध्वान्तौघः, उदयधराधरमूर्धमणिरभि-
नन्दनाकाङ्क्षः फलानपेक्षः सेवाव्रती शीतकेशितौ भीतचिरं सुप्त इतीवायामिनं
शीतार्त्तां विपन्नपतिकां पतिव्रतां मुच्यमुञ्चायमानामश्रुभिरिव तुहिनकणैः क्लि
भ्रातृजायामिव हैमनीं यामिनीं नियम्य विश्वं प्रेरयितुं प्राविशत्सेवाङ्गनम्। सूर्यस्य र
किरणावली स्फुता, सुखावहेन सौरातपेन स्नाता श्यामा सर्वं सहाऽऽप्रकाशिता च,

शीतस्य स्वकीयेऽस्मिन् समये गगनाटवीपर्यटनेन न किमपि कर्तुं शेके। दिनमशेषं शीतेन परिकृत्यमानशरीरं सत्वरमेवान्तमाप। सलज्जो दिनपतिरप्यस्तगिरिशिखरं विविशुरम्बरतलादवालम्बत।

विमलपुरराजभवनेऽद्यानन्दलहरी प्रसृता। व्यग्रः पुरन्ध्रीवर्गः सत्वरसत्वरं व्रजन् कार्यस्य महत्त्वं ज्ञापयति। राजचिकित्सालयस्य विदुषो वैद्या परिचारिकां बोधयति। विमलस्तूलराशिरत्नशयनयन्त्राणि च पूयन्ते। उष्णायतेऽन्तर्हसन्तीभिर्भवनम्। गीतं गायन्तीभिर्गायिकाभिर्वैद्यवादिभिर्विशेषैश्च भूपतिभवनं भूष्यते। राजा रामपाल उत्क उपविशन् प्रतिक्षणं भित्तिघटीं मणिबन्धघटीञ्च पश्यंस्तयोः समयसाम्यं वीक्ष्यापि मन्दगतित्वं मुहुर्मुहुराशङ्कते। अन्तःपुरादागच्छन्त्या दास्या मुखात् किमपि शुश्रूषुः समुत्तिष्ठति।

"देव! देवस्य गृहं भगवती स्वयं सनाथयाञ्चकार" आगत्य प्रणम्य कञ्चुकिनोचे।

जन्मत एव सरला मुग्धा कमला कैरपि रुदती न दृष्टा। कदापि विषादलेखया नास्या मुखकमले स्थानमकारि। बालसुलभमनिमित्तदर्शनं स्वच्छन्दो हासः स्वाभाविकी प्रतिभा उत्तालामृतमधुरा सुखावहा बालकाकली च सर्वेषां मनांस्याकर्षति स्म। सर्व एव तां स्वाङ्कधामचीकमन्त। सत्यपि धात्रीसहस्रे महिषी तां स्वयं लालयति स्म। नरपतिस्तामुत्सङ्गे कृत्वा नितरां प्रासीदत्। द्विहायनी कमला भित्तिदर्पणेषु सङ्क्रान्तमूर्त्तिरपरबालालापेच्छया भृशं रमयमाना तर्जनीसाहाय्येन तां विहायापि च शङ्कितन्यस्तपादं प्रचलन्तीतस्ततः प्रेक्षणेन सममेव पतिता सत्वरमेवोदतिष्ठत्।

* * *

"देव! एषु दिनेषु बहवोऽनुरक्ता भक्ता हरसिद्धिप्रसादायोज्जयिनीं समायाताः। श्रीमतो मित्रं राजनगरश्रेष्ठिमण्डनमपि।"

"अपि सत्यम्, मम मित्रं नवेन्दुः! मामकीनं सन्देशमादाय सपदि गच्छ।"

"यथाज्ञाप्यते देवेन।"

* * *

"एह्येहि, अनुकम्पय, भूतोऽस्मि भूतानां मानभाजनम्, यस्यावासं भवादृशाश्चरणरेणुभिः पावयन्ति, कच्चित् पूजिता देवी?" शिशुस्वर्णमनीं गृहीत्वा शनैश्चलन्तीं सुवर्णवर्णां बालिकां प्रेम्णोत्सङ्गं नयता नवेन्दुनोचे।

"सर्वं कुशलम्। कथं न स्यात् कुशलं यस्य भवादृशाः पवित्रकीर्तयो राजसं नाम्नैवामङ्गलघ्ना मङ्गलं कामयन्ते। प्रातरेव पूजिता प्रसादसुमुखी परमेश्वरी कालि देवदेवो महाकालश्च। श्वः प्रातरेव गन्तव्यमिति देवदर्शनसुखमनुभवितुं प्रेरितोऽस्मि। श्रीमन्तं यतो ज्ञातवानस्मि, तत एव विलम्बमसहमानोऽधीरतामनुभवामि।"

"प्रत्यावर्तितवृत्तं मनः शैशवचरितं पुरोभवदिवानुभावयति राजपाल। नोत्सहे च श्रोतुं प्रयाणवार्तामपि। किन्तु चित्रपटचपला राज्यश्रियः कामिन्य इव नाधिकं कालक्षेपं सोढुं समर्थाः। भगवान्छिव ईदृक् सुदिनमन्यदाऽप्युपहरताद् यत्र पुनर्मेलनं सम्भवेत्।"

"अहर्निशं प्रेक्षणीयं राज्यम्। स्वभावदुर्जनो जनपदः, दुर्दमनीयदानवनिकर इव लुण्टाकनिकरः, आपद्गता विविधकरैः पीडिताः प्रजाः, सर्वेषामेव समये सम्भालनम्।"

"देव, सज्जमुपनेयम्" प्रणम्य न्यवेदि सेवकेन।

"एहि मित्र, तत्रैव वार्तासुखमनुभविष्यावः।"

अथ सूर्यास्तेन विचलिते लोके तमोमग्ने च गगने दिगङ्गनावदनचन्दनबिन्दुरिव मयूखैरुद्द्योतितरसमारेखः स्मरप्रदीपाङ्कुरः कुमुदमुकुलविकासी यामिनीसीमन्तसिन्दूरं तमः कवलयन्, दुग्धतरङ्गधौतविश्वः शनैःशनैरभूत्सायंचर्यंचन्द्रालोकः। प्रियकरैरनुबद्धं तमःकञ्चुकीं शनैःशनैरपहाय प्रतिरोमनिर्यदानन्दाट्टहासा विरहिचरीव निशा प्रियेशमार्गे पयोदतदर्शमिषेण जगदखिलं हंसप्रतिमितीकरिष्यन्ती नयनमात्रसामान्यदर्शिनी विमलमृणालतन्तुबन्धनिकामपि धवलितरसाधिनी दन्तप्रभामिव ज्योत्स्नां सर्वतो दिशि प्रासारयत्। कर्पूरधवलधूलिधूसरितमीलितं विश्वं जहास।

इन्दीवरबन्धमणिरिव बभौ विभावरी चन्द्रोदयेन। पीयूषवर्षस्य चन्द्रालोक इव [illegible] प्रसारीन्चन्द्रालोकः। प्रकाशमयीव बभौ विश्वं समस्ता।

[illegible] पर्वते स्फटिकोत्तरे कण्ठपीठे केशरमृगमदगन्धियुक्ते पवने [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—

"देवि! [illegible] [illegible] समानसमागमवधुरी च दुरम्। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] भवतीः [illegible]।"

नवेन्दुः—क आशयः श्रीमतः ?

मतिवरः—(क्रीडानिरतौ बालौ निर्दिशन्) देवौ, युगलमेतदाजीवनमविच्युत-[म्] भवेत् ।

नवेन्दुः—यद्यपि चन्द्रः शिशुः, अप्यत्रयुक्तस्तथ्यामेवार्य पञ्चमे वर्षे पदन्यस्तवान्। परन्तु [म]मिदं सम्बन्धितं विधाय प्रमोदमितमाम्। तथैव, आनयाम्यिमन्यत्र हर्षावसरे [प]यौ साम्बु उपवेश्य पयः पाययामि ।

* * *

गच्छत्यस्थिरः कालः। नवसंवत्सरस्य नवधिरनवधधुरीरप्रचलत्तरे प्रगतः। प्राकृतिकं रूपं परिवर्तितम्। नवा रीतयस्तर्जिताः। द्वौ रामचन्द्रेनदीतीर्थधराभिलषितः पुरोऽपि प्रगतः। पुनरेकदोपहारलहरी समर्पिता। पुनः शतान्यस्यानल्पानासुरकाणाम्। पुनर्वसन्तमितो पुरस्य मनुष्यान् पुरमार्गवृक्षैः समर्चितम्। नगरकल्पना पुनरमर-पुरमन्वगात्। पुनर्वाणपर्वनिर्विघ्नमवधिनत्। पुनर्मौरवमभिज्ञात्यमोदयत्। परन्तु हन्त ! सर्वैकान्ताः सुखं समिभिन्नम्। प्रमाप्रवर्तकः प्रभातशिरसि प्रत्यग्र प्रणीभिः। अभ्युदयः सङ्कटोऽप्यनन्तरमवाप्ता हीनो। संगरकालः कालोऽपि समभवत्। भूमिभागको सान्द्रभग्नकरोऽपि, पीयूषस्निग्ध च धीयते। कल्पान्तेऽरोग्यभूत्। प्रासरीतर्यादिता मन्दपायवीक्षिप्य क्षणं राजभवनं तदपि राजानमनिर्मितयता क्षणं हस्पद्युता विहिरन्ती कमलम्, क्षणं मरकतं शिशुं पतन्ती कन्यावस्थान्य मुखं दन्दिशन्ती सफलभुजलतस्तौरं विहाय चलोऽन्यालोकयाच्छरू कमलकला। श्रीराज्यश्री विनेदसादिव हन्वतां बन्धे। श्वासाप्रेक्षन्न कल्पना वहते।

हन्त ! दुर्दैवः कालो क्रूरः। विलक्षणतरं पर्व निर्गतः। अतर्कितमस्य पदाद्वयः।

* * *

मधुरतमं सविशेषमालिकमुदिताम्बरमितकरीकमलकान्दीं सुमनसुखेरि इतः पर्यन्तेन यत्र विन्दन्ति। मधुरावलस्मानाकलरेषु कल्पनावदम्भं निर्वासितो सार्वभौमो विराजते भवते। दैवेनैव मध्येऽसाहस्तुलितम् निर्मलपुण्डर कलायन् वसन्तः प्रारब्धवृंहितः। तेषु दर्शनतारक अनन्दितदर्शनः

यत्र सत्कृतयो रामणीयकसन्दोहपेशलामरस्य हरितः कन्या इव भासन्ते। सन्ध्या बरचर पुष्पाः प्रतानिन्यः प्रचण्डांशोस्तापं प्राहुः प्रतापञ्च धर्षयन्ति। क्वचनाकन्दमुर्द्धन्मौयाः केङ्कारं कुर्वन्ति, क्वचन च कोकिल उत्तमोत्तरोत्तरां केकाम्। क्वचन कुमुदाञ्जि क्वचन कोकिलकाकली, क्वचन सारससंरुतम्, क्वचन हंसविहरितम्, क्वचन दक्षकारणमेघकानां वल्गितम्, क्वचन पुष्पवत्सोपमानवनवासनिलयेषु परागवर्षुकाः क्व गुञ्जन्मधुलुब्धमुदितमधुकरनिकरझङ्कार', क्वचन खेलच्चकचञ्चुकाः। चन्द्रकान्तैरेव जलमातजलमनभा विमलतला नत्यगाधजला सुदीर्घा दीर्घिका पवनोत्क्षिप्तैः पार्श्वपादपपूरं हरितयन्त्याकर्षयति मनांसि। निशासु तारागणप्रतिमूर्त्या चन्द्रिकाभ्रान्ति यस्या नीरं कामिनीशिरःपरिमलसम्मिलितं सौरभसौन्दर्यसरस्वान् इव पुष्पाकर इव रजतद्रव इव प्रतीयते। नागवल्लीदलधनुरक्तासु वेदिकासु पुष्पघनैः काव्यभुवीव शोभमानायामुपवनभुवि क्रमानुसारिसुप्रविष्टसन्यासैर्विलसति कोटिपुष्करकं पादकन्दुकपाणिकन्दुकक्रीडनाय रम्यदूर्वैः प्रदेशश्च।

फलास्वादलोलुपा विदेशीया अपि कलविहारिणः पक्षपुटपूतपादपप्रान्ताः पक्षिणो यत्र प्रचुरं प्रेक्षन्ते, हारिणो हरिणाः, विविधदेशासादिता बिलेशयाः, कौशलेन सन्दर्शितानि चित्राणि च। मध्ये च नवनीतमसृणधवलशिलं गवाक्षजालैर्जगति सकलमलमिव हसन्तं मानं राजोचितसम्भारसम्भृतं विशालं बहुशालं हर्म्यम्, यत्र धवलोपलपाषाणस्तम्भेषूत्कीर्णा वल्लर्य्यः शिल्पिनो निष्णाततां निश्चाययन्ति। कौशेयनीलास्तरणास्तृतमिव यत्रकुत्रैव समानदूर्वं सखीजनैः प्रणयप्रक्षिप्तशुभ्रकुसुमं तारकितं वियदिव क्षेत्रम्।

समस्तशास्त्रकलाकुशलया गानविद्याविदया साहित्यार्थशास्त्रनिष्णातया चापक्रिया शिक्ष्यमाणा धनुषा भुशुण्डिकया लक्ष्यवेधने, करवालफलकमर्यादासु, चलत्तरंगपत्रावृतैः धावने मरुत्तरवाष्पयानादिपरिचालने कुशला कमलाऽनैव निवसति। सिन्दूरोदरलिखितकस्तूरिकाकुङ्कुमाञ्चितमौक्तिकाभरललाटा कदाचन कनकवल्लकीमादाय धराधुरन्धरकौशलवशतिमिवोपसमधरोष्ठेन प्रत्याययन्ती सुधोर्मिनिर्यासमधुरमुत्तममौघोल्लासमुद्रि सर्वतो प्रासारयदानन्दजलदा आच्छादयन्ति स्म सुधासमीरणंस्तृणाङ्करोऽपि व्यष्टभन्।

वरारोहाया नितान्तं नवीनं वयः, विघनेन्दुसमद्युति मुखे यौवनाभा, सुरमावते कपोलेऽपूर्वमिव प्रकटयति लोचनलोभनीयां छटाम्, तिरस्कृतविकसितोत्पलविलासे विश-

याते चतुरो अवलक्ष्यं हृदयवेश्मानन्दं प्रति सस्पृहे, कुचावपि कस्यापि सुकृतिनः समालिलिङ्क्षिषयेव प्रत्यहमेधमानमहोत्साहौ, वलीभासि मध्यं कस्यापि सुभगस्य सोपानं बुभूषदिव, काव्यकलाकलापलापज्ञातरतिसर्वस्वं, निरन्तरध्याननिरतं मनोऽपि कस्यापि मनस आधारीबुभूषदिव भुजलते कस्यापि गलान्दपस्याश्लेषकामे इव चपले, तथापि नाधुना मारप्रवृत्तिरज्ञातप्रणयतत्त्वाया एतस्याः। सात्त्विकीमेवावस्थां भजते यतः सा।

*　　　　*　　　　*

अथ प्रौढमनोरमेव कुचमर्दनेन संकुचितशरीराऽभवद् यामिनी। विप्राश्च शब्दरत्नैर्मैरवोल्लं बहु विभावर्याः। भ्रमणवीक्षिताश्चर्यचर्चामिव कलरवं कुर्वति पक्षिसमूहे दिनेशागमनतः प्रागेव, अन्धकारसङ्कममभिद्रोर्पति शोणितकिरणेऽरुणे, उत्थानवेलामिव विज्ञपयति धाराप्रवाहमासाद्येव शीतशीते प्राभरणरिपूत इव विमलविमले, कुसुमामोदमादायेव धीरे सरति समीरे, उन्मुखमुग्धकामिनीचूडामणिप्रभापरिभूतेष्विव विलीयमानेषु नक्षत्रेषु, नास्मानन्धकारेण सहैव संहरेत्सूर्य इति भयेनेव कमलकोत्तिमुखरमुखेषु भ्रमरेषु स्थितोऽभिषेकोत्सवसूचकस्तुमुलस्तूर्यतोभनादः।

अवकरनिकरविशोधनपरिपूतं, परिमलपाथःपरिषिक्तं सुरभिसुगृहीतमलसैरनलसैर्मन्दिराङ्कितैर्भ्रमरैः कुरुध्वमग्र संवरणं स्थिरयेति पश्यताश्चेतः। सुधासारसंलिप्तभित्तीनि पताकापवनपूयमानप्रान्तानि भ्राजन्ते निशान्तानि।

राजनगरमद्यवस्तुतो राजनगरम्। कुमारश्चन्द्रोऽद्य युवराजपदेऽभिषेक्ष्यते। यस्यावदातगुणगणान् लोकप्रियताञ्च गायन्त्यो मङ्गलं कामयन्ते कामिन्यः, वरवीर्यकार्याणि विवर्णयन्तो वरान् ब्रुवन्ति विप्रवरेण्याः।

राजभवनञ्चाद्य महेन्द्रभवनमपि परिभावयति। सम्मुखे चास्य द्वात्रिंशत्स्तम्भेषु विविधरागपटशकलरचितं वितानञ्च मुहुर्मुहुरुत्कम्पयतितेजसम्। अभिवितानं दोदुल्यमाना मालाः सुषमावती प्रतानिनी च सौरं तापं तर्जयन्तीवास्ते। परितोराजभवनञ्च शस्त्रपञ्चकाञ्चितशरीरा बलिनः समर्थ्यादस्थिताः।

वितानस्यमध्यचत्वरे रत्नजटितस्वर्णस्तम्भचतुष्टयविभासि, स्वर्णसूत्रस्यूतशिल्पिनैपुण्यं वितानं, महार्हछत्ररिक्तरक्तकौशेयतूलिकातुलं, गजदन्तचतुष्चरणं हरणमापदां, पदं राज्यलक्ष्म्या, राजते राजसिंहासनम्।

सिंहासनस्यैकतः चित्रितशकुनिकुलेषु और्णास्तरणेषु, परिमलदैलद्रुशरि चर्चितानां, मौलिमुकुटेष्वपि चकितरतां गुणगमाधिगतगौरवाणां राजकुमाराणामेकदं पणीपत्रलङ्कृतशिरसां शोभन्ते शितवाससां देशरत्नानामासन्याः।

अथकुमारश्चन्द्रो युवराजपदेऽभिषेक्ष्यते, चिरंजीवतात् प्रजाप्रणयी युवराज इत्येव श्रूयते सर्वतश्चर्चा। द्वारमुभयतो मध्यमुक्तमार्गा सशस्त्रसैनिकपंक्तिर्विरुक्ष्य समयार्दं स्थितास्ते।

भास्वता राजवेषेनानाहूतेन मदत्तरेण प्रणतप्रणामाञ्जलीन् प्रतिगृह्णन् मन्त्रि चन्द्रेण च युक्तः समामवनं प्रविश्य गृहीतसैनिकप्रणामोऽलञ्चकार सिंहासनं नवेन्दुपल्लवनां।

स च विष्वक्सेनधर्मपापि विदितसत्याग्रहो माधवंभगद्भवो विहसन्, शङ्कर इव विभूतिव्याप्तवपुः, वामन इव कृतबलिग्रहणः, हिरण्याक्ष इव धृतवसुन्धरो, मेरुरिव सुवर्णमिव धातार्यशुचिः, व्याप्तिलक्षणमिव प्रभूतनिवेशभासमानः, खण्डनखण्डखाद्य इव खण्डितानेकशासनः, शब्देन्दुशेखर इव सिद्धान्तव्याख्याता, रत्नमकुटालंकृतः अलक्तिकरक्तैवमुखेन, हाटकतन्तुस्यूतस्तबकेन कौशेयप्रावरीनेनाच्छन्नतनुः, गजदन्तमुखा हेमकोशेन कौक्षेयकेण विलसितमध्यो गम्भीराकृतिः कृती राजा राजनगरभूमिभर्मिनोत्र भद्रभागी नवेन्दुपालः।

यामतश्च[1] प्रभवः प्रकृष्टगुणानां पराभवभवनं पापानां, अपस्पृष्टो दुष्टैः, दन्तुरः हितैरनुवर्त्ता पूर्वजान्, अवधिर्विद्याम्भोधेः, निस्सारको लोकदुराचाराणां, निवर्तको निन्द्यनिग्रहे, दुःखजने वा खेदमन्विता, दुरधिगमगाम्भीर्यो, विलीयमान इव लोकहृदये, भारतीन्दिरयोः, निवासो निःशेषनयस्य, अधिप आस्तिकानां, सन्निधानं सज्जनानां, कीर्तिमुक्तैघः कलावतां, सुहृदभिमानस्य, उत्थानं मनस्विनां, अभिमानको धनधर्मशास्त्रस्य, परिभूतभूर्वितो, हारश्रियः श्रियः प्रभवाः, गुरुगुणानां मर्यादिधाममर्यादाकृतिः, यवनक इव बन्धी मुकीटदलबद्धनिगमनामः, सुन्दरमधुरः स्मितपूर्णकुन्दलोपैः, कार्दिवे संभाषणसंभ्रमः, स्निग्धेव सर्वार्थिनुखः, विस्मयी पुरुषोत्तम, सर्वकर्मदे, विद्वानिव गिरीशं सर्वेशोऽनुष्ठितेव कुमारवद्भगुराजे, समयज्ञः समञ्जसः, प्रधानैश्च प्रवर्धिते, समर्थितेव देवदैत्यदर्प अपदानन्दन, परमोत्तमस्वर्ग

1 यमतः इदं टम्यर्णः।

सर्वाङ्गलक्ष्मीः, हीरकखचितेन स्वर्णत्सरुणा हेमकोशेन चन्द्रहासेन पूज्यमानवामपार्श्वः, मातरूपतन्तुरचितमहार्हमहोष्णीषः, पटवासवासितवासोबद्धविग्रहो, हिमशुभ्रधौतवसनः रेभतेपन्निःसृतदशन, आरक्तदशनवसनः, करवालकेलिचकितीकृतवीरवरो राजकुमारः स्वर्णासन्द्यां समलभत स्थानं धन्यजननीकचन्द्रः।

यश्च रसगुणबलिजारितपारदसेवनक्षीणक्षयः साक्षाच्चन्द्र इवालक्षि।

किमितोऽप्यधिकं रम्यं मारवपुरमेवस्मर इतिविचार्य कृष्णीकृतमिवकचकलापं भ्रमरैः, सुगन्धितमिववपुर्वसन्तेन सुकुमारीकृतमिव सुमनोभिः प्रकटितमिवसत्वधर्मे मिलितमिव मारमिश्रैः।

दक्षिणतश्च काशनीकाशकेशाक्षिपक्ष्मा, अन्वीक्षित आन्वीक्षिक्यां, अद्वितीयस्त्रय्यां, शौण्डोदण्डनीतौ, वित्तोवार्त्तासु, विपश्चितामपश्चिमः, विहसन्निव एकाक्षं कमनीयाक्षः, रेजे रजतमय्यां शुभासन्द्यां मन्त्रिवरोऽशेषविद्याधरोविद्याधरः।

अथ सभायां रामज्यायां समेतेषु माननीयेषु नागरिकेषु, लोकप्रियेषु लोकहित-रतेषु, यथास्थानं स्थितेषु च, प्रदत्तसिद्धधूपधूपितायाञ्च संसद्भूमौ सकलं माण्डलिक-मण्डलमभ्युत्थाय क्रमशो दौवारिकदत्तपरिचयः प्रणनाम।

अथ स्मयमानोनरपतिः पीयूषपरीतयेव मधुरया, अगाधहृदयान्तर्वसत्येव गभीरया वाचा वक्तुमारभत।

श्रद्धेया महर्षयः, प्रियाः प्रजाश्च,

महामहिम्नो विश्वसाक्षिणः परमानुकम्पया राज्यधुर्धरो मे चत्वारिंशद् वर्षाणि व्यतीतानि। यत्प्रभृत्यहं प्राप्तयौवनोऽस्मि प्रजानां सर्वविधानि कष्टान्यपनेतुं सततोऽस्मि। दुष्कालमहामारीतिसङ्कटकविनाशकं जगदनुग्राहकं परमेशानं प्रति सदैवनतोऽस्मि प्रसह्य प्रार्थयमानो भवतां योगक्षेमाय।

मयि राज्ये च या प्रगाढा भक्तिर्धैर्यत्यागो दयातुलं प्रेम भवद्भिः प्रदर्शितं तेन सर्वेषां रसां हृदि अतुलो हर्षरसः सम्भवति। यत्र बहोः कालात् राज-प्रजयोः प्रचलित आसीत् पितृपुत्रवत्सम्बन्धः, गर्वोन्नतशिरा अद्यापि वक्तुं शक्नोमि यत्सोऽद्याप्यक्षतो मानससरोजे राजते सम्प्रति सुदृढमूलः सम्बन्धः।

भवतां सुखे दुःखे च सदैव सहचरोऽभवम्। यदा यदा भगवदनुकम्पया

ममानन्दसागराः प्राप्ता दुःखावसरास्य मम अगतः स्वाभाविकोधर्मं सर्वं मर्त्येषु मे साहाय्यं कृतमास्ते।

भगवतेऽनन्तकोटिब्रह्माण्डस्वामिने प्रणामोपायनमुपहरामि येन सन्निविष्टचन्द्र सदसद्विवेकधनाचेतना धराधुराधरणमहं चतुरपूर्वापूर्वकार्यचिकीर्षाप्रवण उत्साहो जगल्लोकयितुं सत् सारथ्यञ्च मे प्रदत्तम्।

सकलस्य राज्यस्य सेवायै सर्वविधनवीनगमनसम्पन्ना जलस्थलवायुयेना यन्त्रानुधावतनेऽप्राम्यमासादयति।

अहं सर्वदैव प्रजाधिकारसुरक्षायै तासामावश्यकतापूर्त्यैचोद्युक्तोऽस्मि। राज्य विधिसभासदस्या जनतया निर्वाचिता राज्यसञ्चालनोचितं राष्ट्रोन्नतिकरञ्च विविध विश्वानुकरणीयां व्यवस्थां व्यवस्थापयन्ति। प्रतिग्रामं ग्रामीणैर्मिलिता ग्रामस्य पारस्परिकं विवादाभियोगं शमयन्तो वैमनस्येर्ष्यां भस्मयन्तो ग्रामोन्नतिं कुर्वन्ति।

लघुष्वपि ग्रामेष्वेका स्वल्पीयसी रम्या पाठशाला, आरोग्यशाला, ... प्रौढशिक्षणशाला, पत्रालयो, वाचनालयः, स्वयंसेवकक्रीडास्थलं, वाटिका, सर्वं ग्रामे ... श्चातुर्येण रचिता राजमार्गाः, कुल्याः, प्रभूतधान्यानि क्षेत्राणि, च वीक्ष्य कस्य न ... परमानन्दस्यावधिं समेति। आभ्यन्तरव्यवस्थायै न राज्ये रक्षकसेवकानामावश्यकता। चौरजारानौचित्याचारचर्चैव न श्रूयते, न कश्चनाग्रहणापोऽपि परस्य किमपि जिघृक्षति। तस्य हृदि स्वयमुपार्जितवस्तुन एव उपभोगेच्छावर्त्तते। न राष्ट्रेऽस्मिन्... न वाराङ्गना, न मद्यालयो, न द्यूतालयः, नधूर्तो, नवञ्चको, नानधुशासनो, न निर्धनो, न कुचेलः।

नास्त्यत्र सन्देहलवोऽपि यद्राज्यमिदं यौष्माकैरास्माकैश्च पूर्वजैर्महता श्रमेण ... परां कोटिं नीतम्। अनया पैतृकसम्पत्त्याऽस्माकं सत्यो गर्वः। परन्त्विदं न विस्मरणीयं यदेषा स्थितिरस्माभिर्महता श्रमेणानीता। अत्रैव प्रतिशतमेकोऽपि शिक्षितो नहि साक्षर आसीत्। अत्रैव शिशूनां मृत्युः प्रतिशतमशीतिरासीत्। दुराचारव्यभिचारव्याधिना नरा ग्रस्ता आसन्। क्षयः सामान्यप्रतिश्याय सर्वत्र प्रसृत आसीत्। दुर्भिक्षेण प्रजाः प्रतिवर्षमेकस्थानादपरस्थानं ... आसन्। सर्वदैव चौरजाराणां भयं सर्वान् बाधते स्म। परन्त्वधुना सर्वं ...

च्यावशेषाः संवृत्ताः। सर्वमेतद् राज्यस्य भवताञ्च श्रमस्य प्रत्यक्षफलम्। भवन्तो राज्यस्य धन्यवादास्पदम्। परन्त्वधुनाऽस्माकं केवलमिदमेव कृत्यं नास्ति यदिदं वर्त्तमानमेवरूपं बिभृयात्, किन्तु लोकोत्तरसमुन्नतेः शिखरमारुह्य निरातङ्कं सानन्दं निवसन्त्यः प्रजा वास्तविकमानन्दमुपभुञ्जीरन्निति।

सोऽहमधुना वृद्धीभूतः। वार्द्धक्यभावान्नवनवेषु कार्येषु नोत्सहते चेतः। प्रभविष्णवपि वपुरवश्यकर्त्तव्येषु शैथिल्यं भजते। न मतिर्मननीयमपि मनुते मतम्। करणजातं कार्यकरणश्रान्तमिव मन्ये। कुमारश्चन्द्रः सुशिक्षितः सुविनीतोऽयुवा क्षमोऽधुना धुरमिमां वोढुमतो योग्योऽयमस्मिन् कर्मणि—इति विज्ञापयितुमेव भवन्तः सादरमामन्त्रिताः।

पदप्रदानात् पूर्वं कुमारायापि विज्ञाप्यमस्ति—वत्स! मा नाम राज्यश्रीमदमत्तः प्रजाया योगक्षेमं विस्मार्षीः। महाप्रभावो लक्ष्मीमदो मधुमथनमपि मोहयति। लसन्मणिहीरकं मुकुटं कण्टकाकीर्णं जानीहि। कौशेयतूलिकं स्वर्णसिंहासनं शिला-शकलाकलितं कलय। छत्रं सशरीरं वितानमिवापदां विद्धि। चामरयुग्मं शोषकं सद्भावानामादर्शकं दुर्व्यसनानां मन्यस्व। नहि विलासलालसा राजानो राज्यस्य प्राज्यमुपकारं कर्त्तुं क्षमाः। प्रजानां स्वातन्त्र्यजीवनं स्थिरयितुं सदैव सतृष्णो भवेः। दस्युदमने सततं करवालकरो भूयाः। विदुषां सत्कृतावप्यालस्यं मा गाः।

प्रियाः प्रजाः!

यथा स्वामिभक्तयाऽभवद्भिर्धारितं पूर्वेषां राज्ञां शासनं, विश्वसिमि तथाऽस्माकं नवीनमहाराजं प्रति अधिकाधिकं समेधिष्यते। दिवसकं स्वमिव राज्यमदः समुन्नतेरत्युच्चं शिखरमधिरोहत्वित्यस्तु मे शुभाशीर्वादः।

अथ महाराजसिंहासने समुपविष्टे युवराजसंस्कारे, महाराजेन स्वहस्तेन धृते राजमुकुटे, प्रस्ते स्वर्णिमे कौशेये, विन्यस्तेष्विन्दु समागमवर्ने भासयत्सु चामरग्राहकेष्वेव नवीने राज्ञि पदमादधानायां राजधिरि, विजयतां वेदवाणी, विजयतां भारतीया संस्कृतिः, विजयतां राजनगरं, विजयतां चन्द्रो युवराज—इति आनन्दोत्फुल्लैर्मध्यकुलैर्घोषिते, होमधूमावलैः कलिते, सद्भैर्गालितनीलिमनीलाम्बरे, राजकरतोरणहारैर्मुक्ताप्रवालपद्मराग-हीरकनीलमणिमरकतप्रभाभिरत्नाकरमिव भासमानायां राजभवनभुवि, नव-

युवराजनिभाभूषिताशुरश्चन्द्रो अन्यागृहस्य कालमुपादनेन सह समुत्थाय लिखेन हि यन्नन्तरमभाषत :—

पूज्यपादस्माः महर्षयो, मान्या राजन्यः सहयोगिनः सभ्याश्च ।

योऽयं कार्यभारः श्रीमद्भिरस्मत्स्कन्धआरोपितः श्रीमतां सहयोगादस्मिन्नहं समर्थो भविष्यामीत्याशासे । अयतनं राजपदं न विलासमूलकं, अपितु प्रधानसेवकस्य प्रधानप्रहरित्वमेव घोषयति । उपहारप्रदानादिना यं सम्मानं श्रीमन्तो मयि प्रदर्शितवन्तः स नमम, अपितु राष्ट्रसेवकस्य—राष्ट्रस्य जागरूकप्रहरिणः सम्मानः । सहैनेन सखी योग्य उपभोक्ता । अत एतां सामग्री बालविक्रमपरिषद उपहरामि, बलं हि भाविनो भारवाहा राष्ट्रस्य ।

मान्याः,

बहुविद्यतेऽस्माकं करणीयम् । अद्ययन्त्रयुगे विज्ञानस्य महत्वावश्यकतावर्तते । वयमधुनापर्यन्तमत्यन्तावश्यकपदार्थोत्पादनाय संलग्ना आस्म, परमद्य तेन भयेन वयं मुक्ताः स्मः । परन्तु कदापि परेषां दयापात्राणि यथा न भवेमतथाऽस्माभिर्वर्तितव्यमस्ति । अद्यसायंकालिकसभायामस्मिन् विषये विचारयिष्यामः ।

* * *

“देव व्यत्येति भोजनवेला । आगन्तुका मान्या अतिथयोऽपि श्रीचरणौ प्रतीक्षन्ते । आखेटार्थं गतो युवराजश्चिरयति”—मन्त्रिणोपेत्यावोचि ।

“न जाने कथं विक्लवतां भजते चेतः । किमप्यज्ञातभयमिव भावयति भावना । आखेटार्थं गतश्चन्द्रो नाधुनापि प्रतिनिवर्तते । अद्यतनोत्सवं राजभोजश्च विदधपि कथं चिरयतीति महदुत्कण्ठितं चेतः । अभितोऽशुभच्छायामिवपश्यामि, क्रन्दनमिव विदीर्यति मामकीनं मनः । न जाने किं भावि ।”

“देव ! सर्वं शर्वः शं विधास्यति, देवस्य वात्सल्यमेव एवं चिन्तयति । (सम्मुखं पश्यन्) ‘कथय देवव्रत कथं चिरयति युवराजः ।’

देवव्रतः—(प्रणम्य उच्छ्वसन्) देव, कुमारमित्रेण विश्वशेखरेणाद्य श्रीमत एको विलक्षणप्रेक्षणीयोऽश्व उपहृत आसीत् । कौतुकक्रीतमिव भवति युवकहृदयम् । परिणाममपरिचिन्वती च मतिः, विगतसाध्वसश्च साहसम् । अपेतसारल्यश्च तारल्यम् ।

राजश्चन्द्रस्तमादृश्यास्माभिः शनैश्शनैरनुगतोऽकस्मादेकस्माद् विटपच्छूहान्निःसरन्त-
दंष्ट्रं पञ्चाननं वीक्ष्य हन्तुमनास्तदनु प्रस्थितः, अस्माभिरप्यनुपदमनैरनुगतः
ननैशान्धकारे पथविच्युतैर्वीक्षितश्चक्षुरगोचर एव संवृत्तः ।

विद्वद्वरेण्यनवरङ्गतनूजनुर्यः
सालोचनं विपुललालितकाव्यमालः ।
सश्रीनिवास दूरीकृतनव्यरीतिः
शं न्यधसद्वरसुधोवरणीयमाद्यम ॥

श्रीमन्नवरङ्गरायसाख्यितनुजनुषा श्रीनिवासशास्त्रिणाकृते

चन्द्रमहीपतौ

प्रथमो निश्वासः

द्वितीयो निश्वासः

भिन्ना महागिरिशिलाः करजाग्रजाग्र—
दुद्दामशौर्यनिकरैः करटिभ्रमेण ।
दैवे पराचि करिणामरिणा तथापि
कुत्रापि नापि खलु हा ! पिशितस्य लेशः ।

—पण्डितराज जगन्नाथस्य

उत्कूजन्तु वटे वटे बत बकाः काकाः वराका अपि
क्राङ्कुर्वन्तु सदा निनादपटवस्ते पिप्पले पिप्पले
सोऽन्यः कोऽपि रसालपल्लवलवप्रासोल्लसत्पाटव—
क्रीडत्कोकिलकण्ठकूजनकलालीलाविलासक्रमः ।

सुभाषितरत्नभाण्डागारम्

अथ जातोदये पीयूषमरीचिमालिनि सकलशस्यपितृके जैवातृके, स्वर्णद्रिशुहासामलकीयं रसायनमास्वादेव सत्वरसत्वरमम्बरमवतरति रतिवितारके तारकेश्वरे ज्योत्स्नया शिलायामिलायां प्रकाशमाने वस्तुविसरे, राजतपत्राच्छादिते कर्पूरसारमिव वर्षति नभसि, प्रदरं[1] नाशयितुं पुष्यानुगमिवसेवमानाया[2], मनुपेयाभिर्दुग्धधाराभिरिव ज्योत्स्नाभिः सिच्यमानायां वसुमत्यां, प्रफुल्लकैरवेषु, सरस्सु, सत्रपकमलिनीषु दीर्घिकासु, स्मयमानाननासु च कुमुदिनीषु समाधिमिवालिप्य निद्रादेवीमाराधयत्सु जनेषु द्विनाः पुरुषाः पर्वतान्तः प्रदेशे स्थिताः सन्ति ।

महानयं प्रदेशः । अभितो लघुलघवः पर्वताः पादपप्राचुर्यवन्तो ये समागन्तॄनेव निपातात्तान् रक्षयन्ति[1] ।

---

[1] प्रदरोरोगः पुष्यानुग[2] चूर्णेन नाश्यते । पक्षे प्रकृष्टो दरोभयः, पुष्यइति नक्षत्रोपलक्षणं तान्यनुगानि यस्यतेन चन्द्रेण नाश्यते । नक्षत्रोदये भयं नश्यतीतिभावः । इति भावः[1] ।

श्रीनिवासशास्त्री का चन्द्रमहीपति देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वर्णनशै
प्रवाह विशेषरूप से उल्लेखनीय है। मानसिक भावों का संघर्ष उपन्यास के
प्रधान गुण माना जाता है जिसे सुन्दर रूपसे सन्निविष्ट किया है।

रामकृष्ण भारती, शास्त्री, बी० ए० साहि
सरदारशहर, २६।१२।४०
सरस्वती कालेज, लाहौर

Sri Bhandarakere Mutt. Udipi. (South Kinara)
Dated 2-2-1959
Camp कलकत्ता।

स्वस्तिश्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्यपदवाक्यप्रमाणपारावारपारीणयमनियमासननप्राणायाम... दिग्दन्तिदिगन्तविश्रान्तकीर्तिश्रीमध्वाचार्यशुभसम्प्रदायप्रवर्त्तकश्रीमदुडुपिभण्डारकेरिमठाधिपतिश्रीविद्यामान्यतीर्थ-
स्वामिपादाश्चन्द्रमहीपतिनामकग्रन्थकर्तृभ्यः श्रीनिवासशास्त्रिभ्यो नारायणस्मरण-
पूर्वकं निवेदयन्ति—युष्मत्कं चन्द्रमहीपतिनामको ग्रन्थः सर्वाङ्गसुन्दर
प्रतिभासते, मनोहरकथाप्रसङ्गेन जनानां चित्ताकर्षक इति मन्यामहे। अस्मिन् ग्रन्थे
सर्वे जना आदरं करिष्यन्तीति वयमाशास्महे, इत्यनेकनारायणस्मरणानि।

[वेदविद्याप्रयतमानमानसः
कलिकातास्थो व्यापृतवैरिष्टरः
श्रीकालीप्रसादखेतानः]

"Naurang"
6. South End Park
P. O. Rash Behari Avenue
Calcutta-29.
22nd March, 1959.

The publication of CHANDRA MAHIPATI by Kaviraj Shriniwas Shastri is a very interesting event in the field of modern Indian literature. It is a novel written in modern Sanskrit. The style is Composite, partly of the old and partly of the new. Ingenious forms of grammar and of description of nature alternate with coined scientific expressions on modern political and social topics. I must state frankly that all the translations of the scientific words are not likely to be accepted by the public. But that does not affect the merit of the book. It is a bold attempt to employ Sanskrit once more as a medium for popular literature. ... book is bound to prove to be a ... in Sanskrit even including

भुरी अवाक्षुर्यं हृदयवेद्यमानन्दं प्रति सस्पृहे, कुचावपि कस्यापि सुकृतिनः क्रियेव प्रत्यहमेधमानमहोत्साहौ, वलीभाति मध्यं कस्यापि सुभगस्य सोपानं काव्यकलाकलापालापज्ञातरतिसर्वस्वं, निरन्तरगाननिरतं मनोऽपि कस्यापि धारोन्नभूत्वदिव भुजलते कस्यापि गलाग्रदपस्याश्लेषकामे इव चपले, तथापि प्रवृत्तिरज्ञातप्रणयतत्त्वाया एतस्याः। सात्त्विकीमेवावस्थां भजते यतः सा।

*　　　*　　　*

प्रौढमनोरमेव कुचमर्दनेन संकुचितशरीराऽभवद् यामिनी। विश्राश्च जोत्स्ना सह विभावर्याः। भ्रमणवीक्षिताश्चर्यचर्चामिव कलरवं कुर्वन्ति पक्षि-दिनेशागमनतः प्रागेव, अन्धकारसङ्क्रमराजिहीर्षति शोणितकिरणेऽरुणे, मेव विज्ञपयति धाराप्रवाहमासारैर शीतशीते प्रावरणैरिपूत इव विमल-मामोदमादायेव धीरे सरति समीरे, उन्मुखमुग्धकामिनीचूडामणिप्रभ परि-मानेषु नक्षत्रेषु, नारमानन्धकारेण सहैव संहरेत्सूर्य इति भयेनेव स्यामुखेषु भ्रमरेषूत्थितोऽभिषेकोत्सवसूचकस्तुमुलस्तूर्यतोभनादः।

कादिशोधनपरिपूतं, परिमलबाधःपरिषिक्तं सुरभिसुगृहीतमानसैर्नलसै भ्रमरैः कृतभ्रमण संसरणं स्थिरयति पश्यताश्चेतः। सुधासारसंलिप्तभित्तीनि भ्रमानप्रान्तानि भ्राजन्ते निशान्तानि।

मद्यवस्तुतो राजनगरम्। कुमारश्चन्द्रोऽद्य युवराजपदेऽभिषेक्ष्यते। यस्या-न् लोकप्रियताञ्च गायन्त्यो मङ्गलं कामयन्ते कामिन्यः, वरवीर्य-यिन्तो वरान् वृण्वन्ति विप्रवरेण्याः।

ज्चाय महेन्द्रभवनमपि परिभावयति। सम्मुखे चास्य द्वात्रिंशत्स्तम्भेषु कलरचितं वितानञ्च मुहुर्मुहुरुत्कयतिनेत्रम्। अभिवितानं दोदुल्यमाना तो प्रतानिनी च सौरं तापं तर्जयन्तीवास्ते। परितोराजभवनञ्च चतशरीरा बलिनः समन्ताद्व्यवस्थिताः।

ध्यवत्वरे रत्नजटितस्वर्णस्तम्भचतुष्टयविभासि, स्वर्णसूत्रस्यूतशिल्पिनैपुण्यं लङ्करिष्कृतरक्तकौशेयतूलिकातुले, गजदन्तचतुश्चरणं हरणसापदां, पदं मते राजसिंहासनम्।

सिंहासनस्वीकृतः चिरविरहातुरेषु कौमारवाक्यसरणेषु, परिमल्लैसमुद्धारि चर्वितानां, मौलिमुकुटैर्धवलि चर्वितदर्शा गुणगणाधिगतगौरवाणां राजकुमाराणामेकदेवे पणीवत्कृतशिरसां शोभन्ते सिंहासनां देशरत्नानामासन्दः ।

धरकुमारचन्द्रो युवराजपदेऽभिषेक्ष्यते, चिरंजीवितान् प्रजाप्रणयी युवराज इत्येव श्रूयते सर्वतश्चर्चा । द्रागमुमयतो मध्यमुखमार्गां सदाश्रयैर्निर्वर्णितविद्युल्लं समयादं स्थितास्ते ।

भास्वता राजतेनानाहूतेन मरुत्तरेण प्रणतप्रणामाञ्जलीन् प्रतिगृह्णन् मन्त्रि चन्द्रेण च युक्तः समामसनं प्रविश्य गृहीतसैनिकप्रणामोऽलञ्चकार सिंहासनं नवेन्दुपालसमां।

स च विष्वक्षुण्णेनश्वमपाणि विहितस्वरमान्द्रो माधवं जगद्वतो विहसन्, शङ्कर इव विभूतिव्याप्तवपुः, वामन इव कृतबलिमर्दनः, हिरण्याक्ष इव धृतवसुन्धरो, गेरुण्डि सूत्रमिव धातार्धगुप्तिः, व्याप्तिलक्षणमिव प्रभूतनिवेशभासमानः, खण्डनखण्डखाद्यमिव खण्डितानेकशासनः, शब्देन्दुशेखर इव सिद्धान्तव्याख्याता, रत्नमुकुटालंकृतः, अवलम्बित श्वेतमुक्तेन, हाटकतन्तुस्यूतस्तबकेन कौशेयाम्रपदीनेनाच्छन्नतनुः, गजदन्तमुष्टि हेमकोशेन कौक्षेयकेण विलसितमध्यो गम्भीराकृतिः कृती रराज राजनगरभूमि भामिनीभ्रूभङ्गभागी नवेन्दुपालः ।

वामतश्च[1] प्रभवः प्रकृष्टगुणानां परामवभवनं पापानां, अपस्पृष्टो दुष्टैः, सञ्जुष्टः शिष्टै रनुकर्त्ता पूर्वजान्, अवधिविद्याम्भोधेः, निरसारको लोकदुराचाराणां, निरवधिनिष्कन्दी निस्त्रिंशे, दुःसहप्रतेजा स्तेजस्विनां, दुरधिगमगाम्भीर्यो, विलीयमान इव लोकहृदये, आधारो वीररसस्य, निकायो निश्शेषनयस्य, अधिप आपद्गतानां, अपिधानं वाचालानां, अति मुक्तकोशः कलावतां, सुहृत्प्राणिमात्रस्य, उत्थानं मनस्विनां, अभिभावको जगतः प्रतिष्ठितप्रज्ञः, परिभूतभूरिवैरी, हासप्रियः प्रियः प्रजानां, सुदृगुपास्यो मन्त्रिभि धार्न्तरोऽलाकृतिः, षडानन इव वाग्मी मूकीकृतवचस्विसमाजः, सुन्दरमधुरः स्निग्धकु कुन्तलोगौरः, कपर्दिनं संसारसर्वस्वः, पिनाकिनं सर्वास्त्रनिपुणः, विरूपाक्षं पुण्डरीकाक्षः, कामदं कामदो, विहसन्निव गिरीशं सर्वेशोऽनुकुर्वन्निव चतुराननं चतुराननं, कमलासनः कमलासनं, प्रजापतिः प्रजापतिं, समाक्षिपन्निव देवकीनन्दनं जगदानन्दनः, पादसंवाहनलग्नश्रियं

[1] क्रमशः सर्वं उपसर्गाः ।

सर्वाङ्गलग्नश्रीः, हीरकखचितेन स्वर्णत्सरुणा हेमकोशेन चन्द्रहासेन पूज्यमानवामपार्श्वः, जातरूपतन्तुरचितमहार्हमहोष्णीषः, पटवासवासितवासोबद्धविग्रहो, हिमशुभ्रधौतवसनः स्मितेपन्निःसृतदशन, आरक्तदशनवसनः, करवालकेलिचकितीकृतवीरवरो राजकुमारः स्वर्णासन्द्यां समलभत स्थानं धन्यजननीकश्चन्द्रः।

यश्च रसगुणबलिजारितपारदसेवनक्षीणक्षयः साक्षाच्चन्द्र इवालक्षि।

किमितोऽप्यधिकं रम्यं मारवपुरयमेवस्मर इतिविचार्य कृष्णीकृतमिवकचकलापं भ्रमरैः, सुगन्धितमिववपुर्वसन्तेन सुकुमारीकृतमिव सुमनोभिः प्रकटितमित्रत्वधर्मं मिलितमिव मारमित्रैः।

दक्षिणतश्च काशनीकाशकेशाक्षिपक्ष्मा, अन्वीक्षित आन्वीक्षिक्यां, अद्वितीयस्त्रय्यां, शौण्डो दण्डनीतौ, वित्तो वार्त्तासु, विपश्चितामपश्चिमः, विद्वत्स्विव एकाक्षं कमनीयाक्षः, रेजे रजतमय्यां शुभासन्द्यां मन्त्रिवरोऽशेषविद्याधरो विद्याधरः।

अथ सज्जायां समज्यायां समेतेषु माननीयेषु नागरिकेषु, लोकप्रियेषु लोकहित-मतिषु, यथास्थानं स्थितेषु च, प्रयत्नसिद्धधूपधूपितायाश्च संसद्भूमौ सकलं माण्डलिक-मण्डलमभ्युत्थाय क्रमशो दौवारिकदत्तपरिचयः प्रणनाम।

अथ स्मयमानो नरपतिः पीयूषपरीतयेव मधुरया, अगाधहृदयान्तर्वसत्येव गभीरया वाचा वक्तुमारभत।

श्रद्धेया महर्षयः, प्रियाः प्रजाश्च,

महामहिम्नो विश्वशासितुः परमानुकम्पया राज्यञ्चकुर्वतो मे चत्वारिंशद् वर्षाणि व्यतीतानि। यत्प्रभृत्यहं प्राप्तयौवनोऽस्मि प्रजानां सर्वविधानि कष्टान्यपनेतुं तत्परोऽस्मि। दुष्कालमहामार्यादिसङ्कटकण्टकविनाशकं जगदनुग्राहकं परमेशानं प्रति सर्वदैवानतोऽस्मि प्रत्यहं प्रार्थयमानो भवतां योगक्षेमाय।

मयि राज्ये च या प्रगाढा भक्तिर्यश्चत्यागो यच्चातुलं प्रेम भवद्भिः प्रदर्शितं तेन समेषां राज्ञां हृदि अतुलो हर्षवर्षः सम्भवति। यश्च बहोः कालात् राज-प्रजयोः प्रचलित आसीत् पितृपुत्रवत्सम्बन्धः, गर्वोन्नतशिरा अहमद्यापि वक्तुं शक्नोमि यत्सोऽद्याप्यावयोर्मानससरोजे राजते समानं सुदृढमूलः सम्बन्धः।

भवतां सुखे दुःखे च सदैव सहचरीभवन्नासम्।

ममानन्दावसराः प्राप्ता दुःखावसराश्च यश्च जगतः स्वाभाविकोधर्मः स्तर्हि भवद्भि[illegible]
मे साहाय्यं कृतमास्ते।

भगवतेऽनन्तकोटिब्रह्माण्डस्वामिने प्रणामोपायनमुपहरामि येन राज्यनिरीक्षणक्षम- सदसद्विवेकधनाचेतना धराधुराधरणसहं वपुरपूर्वापूर्वकार्यचिकीर्षाप्रवण उत्साहो जगदा- लोकयितुं सत् स्वास्थ्यञ्च मे प्रदत्तम्।

सकलस्य राज्यस्य सेवायै सर्वविधनवीनसाधनसम्पन्ना जलस्थलवायुसेना शत्रुघातनेऽसाम्यमासादयति।

अहं सर्वदैव प्रजाधिकारसुरक्षायै तासामावश्यकतापूर्त्यै चोद्युक्तोऽस्मि। राज्यस्य विधिसभासदस्या जनतया निर्वाचिता राज्यसञ्चालनोचितं राष्ट्रोन्नतिकरञ्च विविधविषय- विधानकरणीयां व्यवस्थां व्यवस्थापयन्ति। प्रतिग्रामं ग्रामीणैर्निर्वाचिता ग्रामप[illegible] पारस्परिकं विवादाभियोगं शमयन्तो वैमनस्येर्ष्यां भस्मयन्तो ग्रामोन्नतिं कुर्वन्ति।

लघुतमेऽपि ग्रामेऽप्येका स्वल्पीयसी रम्या पाठशाला, आरोग्यशाला, [illegible] प्रौढशिक्षणशाला, पञ्चायतो, वाचनालयः, स्वयंसेवकक्रीडास्थलं, वाटिका, सर्वे ग्रामे चतुर्दिक्षु रचिता राजमार्गाः, कुल्याः, प्रभूतधान्यानि क्षेत्राणि, च [illegible] परमानन्दस्यावधिं समेति। आभ्यन्तरव्यवस्थायै न राज्ये रक्षकसैनिकानामावश्यकता। चौरदस्यवादिविप्लवकारचर्चैव न श्रूयते, न कश्चनाप्यप्रमाणोऽपि जनः किमपि विघूर्णति। तस्य हृदि [illegible] एव [illegible]। न राज्येऽस्मिन् न [illegible], न मद्यपो, न द्यूतालयः, न धूर्तो, न वञ्चको, नाननुशासनो, न [illegible], न कुवेलः।

[illegible] सन्देहकरोऽपि यद्राज्यमिदं [illegible] पूर्वैर्मैर्महता श्रमेण [illegible] [illegible] कृतम्। अनया [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible]। [illegible]

कथावशेषाः संवृत्ताः। सर्वमेतद् राज्यस्य भवताञ्च श्रमस्य प्रत्यक्षं फलम्। भवन्तो राज्यञ्च धन्यवादास्पदम्। परन्त्वधुनास्माकं केवलमिदमेव कृत्यं नास्ति यदिदं वर्त्तमानमेवरूपं बिभृयात्, किन्तु लोकोत्तरसमुन्नतेः शिखरमारुह्य निरातङ्कं सानन्दं निवसन्त्यः प्रजा वास्तविकमानन्दमुपभुञ्जीरन्निति।

सोऽहमधुनावृद्धोभूतः। वार्द्धक्यभावान्नवनवेषु कार्येषु नोत्सहते चेतः। प्रभविष्णुष्वपि बहुलवश्यकर्त्तव्येषु शैथिल्यं भजते। न मतिर्मननीयमपि मनुते मतम्। करणजातं कार्यकरणश्रान्तमिव मन्ये। कुमारश्चन्द्रः सुशिक्षितः सुविनीतोयुवा क्षमोऽधुना धुरमिमां वोढुमतो योग्योऽयमस्मिन् कर्मणि—इति विज्ञापयितुमेव भवन्तः सादरमामन्त्रिताः।

पदप्रदानात् पूर्वं कुमारायापि विज्ञाप्यमस्ति—वत्स मा नाम राज्यश्रीमदमत्तः प्रजाया योगक्षेमं विस्मार्षीः। महाप्रभावो लक्ष्मीमदो मधुमथनमपि मोहयति। रत्नमणिहीरकं मुकुटं कण्टकाकीर्णं जानीहि। कौशेयतूलिकं स्वर्णसिंहासनं शिला—शकलकल्पितं कलय। छत्रं सशरीरं वितानमिवापदां विद्धि। चामरयुग्मं शोधकं सद्भावनासाङ्कपंकं दुर्व्यसनानां मन्यस्व। नहि विलासालसा राजानो राज्यस्य प्राज्यमुपकारं कर्तुं क्षमाः। प्रजानां स्वातन्त्र्यजीवनं स्थिरयितुं सदैव सतर्को भवेः। दण्ड्यदमने सततं करवालकरो भूयाः। विदुषां सत्कृतावप्यालस्यं मा गाः।

प्रियाः प्रजाः!

यथा स्वामिभक्त्याभवद्भिर्धारितं पूर्वेषां राज्ञां शासनं, विश्वसिमि साऽस्माकं नवीनमहाराजं प्रति अधिकाधिकं समेधिष्यते। द्विचकं स्वमिव राज्यमदः समुन्नतेरत्युच्चं शिखरमधिरोहत्वित्यस्तु मे शुभाशीर्वादः।

युवराजविभाभूषितमुखश्चन्द्रो जनसमूहस्य करतलवादनेन सह समुत्थाय स्मितेन वि-यन्नन्तःसभमभाषत :—

पूज्यपादप्रष्ठाः महर्षयो, मान्या राजपयः सहयोगिनः सभ्याश्च ।

योऽयं कार्यभारः श्रीमद्भिरस्मत्स्कन्धआरोपितः श्रीमतां सहयोगादस्मनोऽस्वं समर्थो भविष्यामीत्याशासे । अद्यतनं राजपदं न विलाससूचकं, अपितु प्रधानसेवकत्व सूचकं प्रधानप्रहरित्वमेव घोषयति । उपहारप्रदानादिना यं सम्मानं श्रीमन्तो मयि प्रदर्शितवन्तः स न मम, अपितु राष्ट्रसेवकस्य—राष्ट्रस्य जागरूकप्रहरिणः सम्मानः । नाहमेतस्य सत्यो योग्य उपभोक्ता । अत एतां सामग्रीं बालविकासपरिषद उपहरामि, बाला हि भाविनो भारवाहा राष्ट्रस्य ।

मान्याः,

बहुविद्यतेऽस्माकंकरणीयम् । अद्ययन्त्रयुगे विज्ञानस्य महत्त्वावश्यकत्वावर्त्तते । वयमधुनापर्यन्तमत्यन्तावश्यकपदार्थोत्पादनाय संलग्ना आस्म, परमद्य तेन भयेन वयं मुक्ताः स्मः । परन्तु कदापि परेषां दयापात्राणि यथा न भवेमतथाऽस्माभिर्यतितव्य-मस्ति । अद्यसायंकालिकसभायामस्मिन् विषये विचारयिष्यामः ।

* * *

"देव व्यत्येति भोजनवेला । आगन्तुका मान्या अतिथयोऽपि श्रीचरणौ प्रतीक्षन्ते । आखेटार्थं गतो युवराजश्चिरयति"—मन्त्रिणोपेत्यावोचि ।

"न जाने कथं विह्वलतां भजते चेतः । किमप्यज्ञातभयमिव भावयति भावना । आखेटार्थं गतश्चन्द्रो नाद्युनापि प्रतिनिवर्त्तते । अद्यतनोत्सवं राजभोजश्च विदधानेऽपि कथं चिरयतीति महदुत्कण्ठितं चेतः । अभितोऽशुभच्छायामिवपश्यामि, क्रन्दनमिव चिकीर्षति मामकीनं मनः । न जाने किं भावि ।"

"देव ! सर्वं शर्वः शं विधास्यति, देवस्य वात्सल्यमेव एवं चिन्तयति । (सम्मुखं पश्यन्) 'कथय देवव्रत कथं चिरयति युवराजः ।'

देवव्रतः—(प्रणम्य उच्छ्वसन्) देव, कुमारमित्रेण विश्वशेखरेणाद्य श्रीमत एको विलक्षणप्रेक्षणीयोऽश्व उपहृत आसीत् । कौतुकक्रीतमिव भवति युवकहृदयम् । परिणाममपरिचिन्वती च मतिः, विगतसाध्वसश्च साहसम् । अपेतधारस्यश्च तारल्यम् ।

राजश्चन्द्रस्तमारुह्यास्माभिः शनैश्शनैरनुगतोऽकस्मादकस्माद् विटपव्यूहान्निःसरन्त-दंष्ट्रं पञ्चाननं वीक्ष्य हन्तुमनास्तदनु प्रस्थितः, अस्माभिरप्यश्वपृष्ठलग्नैरनुगतः ननैशान्धकारे पथविच्युतैरवीक्षितश्चक्षुषोरगोचर एव संवृत्तः ।

विद्वद्वरेण्यनवरङ्गतनूजनुर्यः
सालोचनं विपुललालितकाव्यमालः ।
सश्रीनिवास उररीकृतनव्यरीतिः
शं न्यश्वमद्वरसुधीचरणीयमाद्यम् ॥

श्रीमन्नवरङ्गरायशास्त्रितनुजनुषा श्रीनिवासशास्त्रिणाकृते
चन्द्रमहीपतौ
प्रथमो निश्वासः



द्वितीयो निश्वासः

मिन्ना महागिरिशिलाः करजाग्रजाग्र—
दुद्दामशौर्यनिकरैः करटिभ्रमेण।
दैवे पराचि करिणामरिणा तथापि
कुत्रापि नापि खलु हा ! पिशितस्य लेशः।

—पण्डितराज जगन्नाथस्य

उत्कूजन्तु वटे वटे बत बकाः काकाः वराका अपि
क्राङ्कुर्वन्तु सदा निनादपटवस्ते पिप्पले पिप्पले
सोऽन्यः कोऽपि रसालपल्लवलवग्रासोल्लसत्पाटव—
क्रीडत्कोकिलकण्ठकूजनकलालीलाविलासक्रमः।

सुभाषितरत्नभाण्डागारम्

अथ जातोदये पीयूषमरीचिमालिनि सकलशस्यपितृके जैवातृके, स्वर्णाद्रिगुहावामलकीयं रसायनमास्वाद्येव सत्वरसत्वरमम्बरमवतरति रतिवितारके तारकेश्वरे ज्योत्स्नया विलासमिलितायां प्रकाशमाने वस्तुविसरे, राजतपत्राच्छादिते कर्पूरस्तवकमिव वर्षति नभसि, प्रदरं ' नाशयितुं पुष्पानुगमिवसेवमानाया", मनुपेयामिदुं यथारात्रिव ज्योत्स्नाभिः सिच्यमानायां वसुमत्यां, प्रफुल्लकैरवेषु, सरस्सु, सन्नपङ्कमलिनीषु दीर्घिकासु, स्मयमानाननासु च कुमुदिनीषु समाधिमिवाश्लिष्य निद्रादेवीमाराधयत्सु जनेषु द्विजाः पुरुषाः पर्वतान्तः प्रदेशे स्थिताः सन्ति।

महाननयं प्रदेशः। अभितो लघुलघवः पर्वताः पादपप्राचुर्यवन्तो ये समागन्तुनेत्र निपातांस्तान् बध्नन्ति [१]।

---

[१] प्रदरो रोगः पुष्पानुग" चूर्णेन शाम्यते। पक्षे प्रदरो दरोभयः, पुष्पइति नक्षत्रोपलक्षणं तान्यनुगानि यस्य तेन चन्द्रेण नाश्यते। नक्षत्रोदये भयं नश्यतीति भावः।

... इति भाषा [१]।

मध्ये विविधघासविभासी, हरिणरोममृदुलोरम्यस्तापहारी, शीतलः प्रदेशः। गण्डशैलान् कर्तयन्ती स्वल्पजला सरिदेका वहत्येकतः। या पावतमध्यमासाद्यादृश्या भवति। पूर्वतः पुरुषैरमुक्तैरुपुरगम्या दुर्गमा दरत्[1]। मध्ये नितरां सान्द्रा पादपावली। यत्र तत्र कुटन्नटे[2] ऽक्षोटे[3] मधुमक्षिकाः भनभनायन्ते। इतस्ततोभ्रमन्तो दुष्टात्मानोऽत्रैवात्मानं सुखिनं मन्यते। पुरुदुष्टं स्थानमेतं लुण्टाकानां लीलानिलयं, चौराणामाचारचत्वरं, पिशाचानां पत्तनं, रक्षसामासनं, यक्षाणां भक्षणभवनं, उत्पातानामुत्पत्तिं, वराकाधिकानां विलीनप्रकृष्टपञ्जगमाचक्षते। विस्मृतसरणिरपिकश्चन सज्जन इतो नाटीक्ते[4]।

अद्यापि त्रयः पुरुषा अत्रावलोक्यन्ते। निश्चप्रचन्ते दुष्टात्मान—इतितु स्थानमेवाख्याति, परन्तु तदालापशुश्रूषा चेत् "पाठकाः पाठिका"श्च निभृतमागच्छन्तु मा नाम नूपुरशिञ्जितं तान् सुचेतयेत्—श्रृण्मः किं तैर्विचार्यते।

यद्यप्येतेषु शिलापीठमधितिष्ठन् नायक इव प्रतीयते वयसा पञ्चविंशतिवर्षो विपुलांसः प्रोच्चकुम्भजात इव सम्यवेशो नातिसुन्दरो बलवान् पटखण्डेन स्वे दधिन्दून् प्रोञ्छन्नास्ते।

अन्यौ द्वौच सुघटितशरीरौ सैनिकवसनौ बद्धकटितटौ, स्कन्धावलम्बमानकन्थौ, कृष्णादिकोशकौक्षेयककरौ भिन्दिपालपूजितपार्श्वौ युवानौ सम्मुखीनशिलातले समुपविष्टौ स्तः।

अधुनैवैको निकटनिकुञ्जान्निश्चक्राम द्विनालीसुभगकटितटोऽसितश्मश्रुः वीरभटः।

"एहि रे प्रबल! चिरात्प्रतीक्ष्यसे"—"देव, समय एव समागतोऽस्म्याज्ञाप्यताम्"।

"प्रियाः! यूयं सदैव मत्कार्यसाधनाय सक्षमाः स्थ। प्राणान् संशयशिखरमारोप्य मत्कार्यसाधने तत्पराणां मान्नूनमारादयितुमलमस्मि। प्रबलेन यथोपकृतोऽस्मि, मन्ये पितान्येवं न पालयेत्, माताप्येवं नमानयेत्, भ्राताप्येवं नविदधीत।

प्रबल—देव! भवत्पादयोः सम्यगपचितिः कदापि न भूता। मुधैव देवो राजिका पर्वतयति। हस्तिभुजो वयं यदि देवमाराधयामोऽपि तत्र किं निःस्वार्थम्। वेतनं भुक्त्वा अपि देवं यदि न सेवामहे, तदनु पात्रेसमितानां न जाने कस्मिन्निपातः स्यान्निरये। यतः प्रभृति महाराष्ट्रो मन्दनपुरेश्वरो भवलोकेऽत्रनाथितवांस्तत एव प्रतिमार्गं सोत्साहमनुतिष्ठामि, प्रार्थयामि च परमेश्वरं यत् प्रभो कदाहमेतस्मां लोचनाभ्यां श्रीमन्दनिशुम्भराजधौलश्रीशान्तिसिंहान् मन्दनपुरराज्यसिंहासनेऽभिषिक्ततो द्रक्ष्यामि।

1 दरत्- दरी। 2 सोनापाठ। 3 अक्षरोट। 4 नदी पटकने।

कान्ति०—प्रबल ! विरमास्माद् भाषणात् । नाहं राज्यं कामये । भद्रं भवतु साम्राज्यम् । नास्माकं प्रयोजनं राज्यवार्त्तयापि । यासां योगक्षेमं रक्षन्नहं [illegible] भासं, ताः प्रजा एवास्माकं विरोधिवचो मू [illegible] तेन किम् ! [illegible] कि मम कश्चन नैजः स्वार्थ आसीत् ?

प्रबल०—सर्वं जाने देव ! परन्त्वन्येन कर्णे फूत्कृतो जनः स्वार्थमपि [illegible]। अस्तु, धार्दिस्यतां कथनादेशः । निष्कर्मणान्तु दिनान्येव नातियन्ति ।

कान्ति०—कमलया सह परिणयप्रतिज्ञां कृतवानस्मि—इति तु भवन्तो विदितमेव। मम प्रतिज्ञायां, तव प्रावल्ये, वीरवरस्य चातुर्ये, सूर्यसिंहस्य साहसे च द्वयोर्योर्भावुर्भवत्येव विश्वासः । अपि सत्यं रोचते वीरवर ?

वीर०—अथ किं ! एकदापि सकमलं भवन्तमत्र शैलशिलातले समुपविष्टं पश्यामः।

कान्ति०—परन्तु भवद्भ्यो विशतमेवास्ते यद् [illegible] न किमपि कर्त्तुं पार्यते। [illegible] विरोधश्च विवादे पुनश्च राजकुमार्या सह । [illegible] [illegible] [illegible] । अपि ! वीरवर ! कथमेतदर्थं [illegible] उपायः ।

वीर०—अयि देव ! [किंचित्स्मृत्वेव] [illegible] राजनगरनाम्नि नगरे मम [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नाम [illegible] [illegible] । [illegible] च [illegible] [illegible] मां [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।

कान्ति०—[illegible] ।

वीर०—देव ! [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] ।

कान्ति०—अयि [illegible] ! [illegible] [illegible] [illegible] ।

वीर०—([illegible]) [illegible] ! [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] ! [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।

तत्र कियत्कालमानन्दसन्दोहं सन्दीप्यावयोः प्राप्यकार्यमपि साधयिष्यामः। नीलापिचौर्यं विदुरस्थानएवकार्यं येनकापि हानिरपि न सम्भाव्येत। सूर्यप्रबलाभ्यां तद्भवनं कोशगृहं अभ्यन्तरालयो भित्तिमितिगवं प्रागेव दर्शयिष्यामि। किन्तु देव! चौर्यकाले एतयोः साहाय्यं प्रत्यक्षं नाचरिष्यामि। "धां" काननोपकण्ठेऽन्यत्रवा यत्रोपयुक्तता भविष्यति—एतौ मिलिष्यामि। मौनीभूतः किमिव विचारयसि सूर्यसिंह!

सूर्य०—किमिव विचारयामि, कर्णे दैवदत्तकन्दुकक्रीडितान्। अतुलां मन्त्रिपुत्रपदवीं परित्यज्य भाविनीं नन्दनपुरनरेशताञ्च विनाश्याधुना चौरवरेण्या अपि चौर्यकर्मणिरता, किंता धीरताया—इतोऽधिकं किमिव शोचनीयं प्रबल! तद्दुष्कर्मसम्पादितेन दुर्दैव-दुराग्रहेण भगवान् भास्करोऽपि दीनदीनस्य शिरश्छेदनमभिजिहीर्षेत्, समुद्रोऽप्युद्गूर्णं मुत्पुत्पुत्सृत्य, . मनोऽपिदैन्यं प्रकाशयेत् ।

प्रबल०—सूर्य, धृतिभोगस्यापि पैतः पुन्येनात्मनः स्वनिन्दामिव विस्तारयसि। मदुतः पदे पदे शिक्षितोऽपि, परं न जाने त्वमपि कथं दैवदुराग्रहेण गृहीतः। पुनः पुनराकाङ्क्षितममनोहरं किमप्यसाध्यमसन्तुलमेव वक्षि। प्रभोरितः विस्तप्रवणं चेतो विदन्यपुरुषसमाचारि

सूर्य०—उत्कलम्। भद्र सर्वदाप्यारास अपि परेषमुत्कण्ठादोष विस्ला- पर्यन्ति। ये पामरेभ्या समाहितं वस्तु स्वयमनुपभुज्य पुत्रेभ्यो ददति, ये च तं स्वकालाय पुत्रास—शिक्षा—दीक्षायै कुर्वति, तान्पुरस्करणान् गिर्वति तत्सदर्भितमा [illegible] विरचति, तेऽप्यत्र हन्त! तदपकर्तिनो शिक्षर्षित—परेषामुत्कण्ठारोपयुक्तोपसर्पन्ति। आश्चर्यम्!

वीर०—सूर्यसिंह! बहूक्तं मित्र। भवतोरिदं वैतः [illegible] मुच। मम इव किमिव वक्षि वर्तमानं स्वयमपि। किम् [illegible] [illegible]। किन्न स्मरसि प्रभोः प्रभविष्णुताम्।

सूर्य०—(मुष्टिभूते बद्धेव पुनः विस्मिन् [illegible] विस्तरेण [illegible] [illegible] इव विमृश्य इव पुत्रेभ्य [illegible])

प्रतीहा०—वीर! अत्र [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible]

प्रबल॰—(मध्ये एव) देव। बालोऽयमबहुदर्शी चास्य हृदयम्। विचारधाराभिरा- धीरितिधैर्यं सद्यएवोत्पद्यते। कालेन श्रीमद्भिः शिक्षितो भविष्यति देवः। क्षम्योऽधुना।

सूर्य॰—(शनैश्शनैः) कोमर्षयिष्यतीतितु समयेन ज्ञास्यते।

*   *   *

"उत्तिष्ठ ज्ञानमाधेहि। अचेतनावस्थां गतस्य तव दिनत्रयमत्यतीतम्। अद्य तवाङ्गानि सचेतनान्युष्णानि च प्रतीयन्ते। भगवाञ्छिवो मदीयां सेवां सफलयितु मिच्छति। निद्रां जहिहि, पश्य सूर्योदयो जातः। पक्षिणस्तवेदृशीं दशां विलोक्य सशोकाइव दृश्यन्ते। तएव मम परिजनास्तव कुशलमिव पृच्छन्त आतुरास्तिष्ठन्ति। तव सर्वाङ्गं स्पर्शेन सुखयन् मातेव मातरिश्वा व्यग्रो मूकः परिभ्रमन् न स्थैर्यं लभते। उत्तिष्ठ ममाप्येषाद्यवनवेला। गौरपि वत्संपाययितुं हुङ्कृणोति। सापि दिनत्रयात्तवेदृशीं स्थितिं विलोक्य त्यक्ततृणाऽवर्तत, अद्य शष्पोन्मुखा प्रतीयते। शुभमिदं लक्षणम्। मन्ये तव चेतना शीघ्रं प्रत्यैष्यति। विषादं जहिहि। सर्वाण्येतानि तव मङ्गलं सूचयन्ति। उत्तिष्ठ आर्यदि। कथय ? कदात्वं मोचयिष्यसि मातरं पवित्रां भारतीं भुवम्। मारयन् सर्वा दुराचारान् कदा। मा भ्रातरं दुष्टाशनावमानितां विधाः, मा स्वातन्त्र्यगर्भममस्तके प्रहर्तारं [illegible] अधिकं खेदीः। मामास्त्वनाहृतसर्वस्वान् पुनः कुमार— मन्ये एषोऽपि वीरजनाङ्करत्नं केनापि दुर्दान्तशासकेन नवां शिमदमां दशामाप"—

"क्वाहमस्मि भगिनि, श्यामे, देवमन, कोऽयं अटिलः प्रतीहार," इति मन्येऽस्मा विमर्शनैवेनमनुनोदे।

"शान्तिं भज ते सर्वे एवाविलम्बं समागमिष्यन्ति, वद्युष्मत, स्वार्थमवमेहय विरमध्वं। मत्पर्श्वानान् कष्टकल्पाश्रिनो मदोन्मत्तः प्रजास्तानार्थं गतेन मया भिक्षवं वीरवीरस्वभिमन्युता विहाय कुटीरं समानीतः। दिनत्रयं व्यतीतम् अतीव चेतना मयते"—इत्यादिदं मामकं मनः। इत्थमुक्त्वा पयो ददाना, शिथिलामिव [illegible] मन्दं [illegible]," अपसृत्यैव पयो मुने दत्त्वा मद्गमनेऽपि।

कुर च मुर्म [illegible] शनैः पयो अपद्। स मद्गमस्तमनस्तः शनैः शनैरपि। तस्य अनुरोधे मनसेव दत्तमपीतू। मद्गमना तैलं मर्मी [illegible]। स एवं

शनैर्मर्दयितुमारेभे। यूनः शून्याङ्गेषु चेतना प्रासार्षीत्। मनोरमोऽयं प्रदेशः। सर्वतोऽन्तराले स्थितानां निम्बानां भित्तिरिव भाति। मध्ये च चतुरस्रो घासविभासी प्रदेशः। एकत एका स्वच्छा रम्या कुटी। धवलपाषाणखण्डबद्धञ्च कुट्टिमम्। सम्मुखे च कुटीद्वयम्। एकस्यां हिमधवला मांसला वात्सल्यपूर्णधेनुः सम्मुखमीक्षमाणा स्थितास्ति। पार्श्वे एव पयः पात्रं वामे पाणौ, आम्रपल्लवञ्च दक्षिणे दधत् उपपष्टिवयाः विमलश्रीप्रदीप्तप्रभः कौपीनवासाः स्थितोऽस्ति। युवचेतसि शनैः शनैश्चेतना प्रसृता—स्मृतिरागन्तुमारेभे, तं स पुनरुष्णं पयः पाययित्वा शाययित्वा च कार्यलग्नः।

"अधुनाहं स्वस्थोऽस्मि, कथं कैश्शब्दैराभारं प्रदर्शयामि—नजाने। बुभुक्षा बाधते, शौचान्निवृत्य बुभुक्षामि"।

"नागरिकजनवदाभारप्रदर्शनं नावश्यकं, पार्श्वएव शौचान्निवृत्य कवोष्णजलेन स्नात्वाऽऽगच्छ, सिद्धं पायसं तवोल्लाघायालम्।

* * *

"सत्सु समेषु लेह्यचोष्यपेयादिषु महार्हपात्रेषु नेदृगानन्दोऽधिगतो योऽद्य कदलीदले प्रदर्शितोऽविरलस्य पायसस्य भोजने"—क्षीरं प्रवृत्त्या लिहता यूनोचे।

"एकान्ते भगवन्तं भजता मयाप्येष आनन्दोऽद्यैव मनसि मूर्धनीकृतः" अस्तु, अधुना त्वं स्वस्थोऽसि, जिज्ञासा च मामाभीक्ष्ण्येनमुखरयति, कस्त्वम्! कथमित आगमनं कथं चेदृशी दशा तव!

"देव! भारं धन्य प्रदातुर्भवतः सम्मुखं नाहं मिथ्या वदिष्यामि यद्येतादृशी जिज्ञासा वर्तते चेच्छृणुताम्—

"अहं राजनगरपतेः श्रीनवेन्दुवर्मणः पुत्रश्चन्द्रोऽस्मि यदि श्रीमतः कदापि कर्ण-मस्पृशम्। मम युवराजमहोत्सवदिने मम मित्रं मह्यमेकमश्वं प्रादात्। तमश्वमारुह्या-खेटार्थं मित्रैः सार्द्धं गतवानासम्। सौभाग्येनानायासमेव सिंह एकोऽभ्युपेतः। अद्य शुभशकुनमिदं युवराजमहोत्सवे—इति विचार्य तमन्वधावम्। परन्तु स वन्यपशुः समस्तां रात्रिं धावयित्वा क्वापि विलीनः। समस्तरात्रिप्रधावनेनाश्वोऽद्य नितरां श्रान्तोऽभूवम्। अश्वस्य स्वेदस्राते वपुः प्रकम्पते स्म। मामकीनं सन्धि-पुगपाश्वसुतःभेदभावं भजदिव प्रतीयते स्म। परन्तु कथमद्यप्यश्वादवतीर्य-

शनैः शनैः पदातिधल्लमभ्यस्य किमपि स्थानं प्राप्तुमैच्छम्। पार्श्वे एवैकं शिवाल-मपश्यम्। शिवालयो वृक्षव्यूहे निलीन आसीत्। प्रवर्षणेन तस्याग्रः कृष्णाङ्ग आसीत्। शिखरस्योपरि ऊर्ध्वमग्नो लोहदण्डो यस्मिन् कदापि ध्वजः समुच्छ्रितो भ-च्छून्यतां बिभर्त्ति स्म। कपाटमेकमेवासीत्तदपि भग्नं द्वयम्। अन्तः कृष्ण-दृषत्पीठे शिवमूर्त्तिरासीत्। शिवमूर्त्तिर्दिव्या धीविभवविभाव्या भव्याऽऽसीद्। केनापि शिवभक्तेन महात्मनाऽत्र रहसि बिल्वव्यूहेऽर्कनिकरे निम्बकदम्बे धत्तूरपूरेऽमराणां गङ्गे शस्य शस्यप्रशस्ये स्थले स्थापना कृता भवेत्, परन्त्वस्य मन्दिरं भग्न-स्याभावंभावयति स्म। केवलं चत्वरसिकमङ्गणं, शरावे धूमस्य, दीपशलाका मलिनं तूलं भग्नो दीपः, अक्षताः दूर्वापुष्पाणि च कमपि पूजकं सूचयन्ति स्म। कोऽपि इतः कुतोऽप्यागत्य कदाप्यर्चति—इति प्रतीयते स्म। चन्दनाय निम्ब-काष्ठखण्डमेकस्यां भग्नकुण्डिकायां पतितमासीत् पूजनाय भग्ना तुम्बी च। अमार्जनात्सर्वमवकरकूटं शैत्यान्महतीं दुर्गन्धितां प्रसारयति स्म। भित्तिषु सन्द-पिसुद्दवासु पल्ल्योनिश्शङ्कमयन्त्य आसन्। मन्दिरस्य पार्श्वेऽप्यपरापेका निद्रालयोऽ परन्तु कुट्टिमहीना पान्थानां चुल्लीधूमेन कृष्णीकृता दीनावस्था वन्यपशुभूमिरिव नितरां भ्रष्टाऽऽसीत्।

नितरां श्रान्तो विश्रममनिच्छन्नपि वन्यपशुभयङ्करे वने गमनाशक्यशरीरः कथङ्कथमपि स्थानं विपूय सुप्तवान्।

परन्तु निद्रा द्रुताऽऽसीत्, चिरान्वेषणेनापि सा नापि किन्त्वन्ततोऽङ्गानि शैथिल्यमभजन्। शरीरश्च निद्राङ्के सर्वस्वं समर्प्य सुष्वाप। अकस्मादेवाकस्य प्रबल्या ह्रेपया मम निद्रा भग्ना। सहस्ररश्मिः प्रकाशते स्म। मया दृष्टं यदेकः पञ्चाननो ममाश्वस्य पृष्ठं विदारयति। यावदहं सद्य एव कृपाणं निष्कोशं विधाय सज्जोऽभवं स वृक्षान्तर्निलिल्ये। घोरं वनं, शिथिलं शरीरं, चेतनाहीनानीवाङ्गानि अश्वश्च मृतः किमधुना करणीयमिति विचारयति मयि पुनः स दृष्टिपथमागतः। अहमधुना रक्षणार्थं मार्गमन्वेष्टुकामः शनैश्शनैः निष्कोपकृपाणकरोऽचलम्। अहं क्षणेनैव पार्श्वे एव सवेगं प्रवहन्त्या नद्यास्तीर आगतः। पूर्णपीयूषपानीयां नदीं, परितो हरिताः पादपाः सुरभिर्धनिकोपवनपवनः सेवमान इवेतस्ततः सञ्चचार। अहञ्च कणेहत्य पीता

शर्मधुरमधरीकृतमाक्षिकेक्षुक्षीरं नीरं, प्रहृष्टप्रसुप्तश्च पादपतले शीतलसुरभिसमीरणेन समस्नेनु समुपविष्टः।

कुशलवृत्तमिव पृच्छति शकुनिकुले, स्वेदबिन्दुरो विद्रवति मातरीव मातरिश्वनि, सौगन्ध इव पादयोः पतति दूर्वाविसरे, भ्रातृष्विव सगलबन्धं मिलत्सु द्रुमशाखासु तातरीव छायां कृत्वा शाखाग्रैः शिरः स्पृशति पादपे, प्रियायामिव परिजनशङ्कोत्पाद-यन्त्यां साश्रुभङ्गं स्थायोत्थाय लीयमानायामिव नद्यां मया दृष्टं यत् स एव सिंहः प्रलम्बया जिह्वया करालदंष्ट्राग्रगर्जनेन च भीषयमाणो ममाभिमुखं सत्वर त्वरमागच्छति। तस्य मुखमुद्रया स दृढनिश्चयः प्रतीयते स्म। परिस्थितिर्जटिला ऽऽसीत् दूराद्दूरान्तर एव सिंह आसीत्। अहं निमिषेणैव बद्धपरिकरो युयुत्सुः सञ्जातः। सिंहः सत्वरमागत्य मुखं व्यादाय अग्रपादाभ्यामाहन्तुमना यथा प्रचलति, तथाहं युद्धिमः क्षीडनेऽप्रहृष्टो निष्कोशं करवालं तन्मुखे प्रावेशयम्। आहतोऽपि स यत्र तत्र नखाघातेन रक्तमस्रावयत्। परन्त्वन्ततः श्वपदको निपपात। अहञ्च शोणित पुष्पैः प्रक्षालनाय नदीतीरं गत्वा यावज्जलमाहरामि तावदेवावयो युद्धेन जर्जरीभूतं अन्तर्हृतमृदं नदीतीरं मयासहैव नद्यां पपात। अहञ्च नितरां श्रान्त आसम्। परन्तु मृत्युभीत्या म्रियमाणेष्वप्यङ्गेषु चेतना व्याप्ता, सम्मुखे च काष्ठफलकमेकं नद्यां समाल-म्ब्य तेनावस्थायामधिगतवान्। पश्चात् किं जातमित्यहं न जाने। अधुना देवः स्पष्टयतु, यत्कोऽयं प्रदेशः। कियद्दूरं इतो राजनगरम्।"।

"पुत्र चन्द्र बहूनि कष्टानि विषह्य जीवितेशस्य द्वारमिवाप्य प्रतिनिवृत्तोऽसि। दृष्ट्वायं नदीप्रवाहे काष्ठपट्टे व्यतीत्य अद्यत्वां जीवन्तं दृष्ट्वा परमानन्दमनुभवामि। पार्श्वे एव विमलपुरं विद्यते यत्र भूमहेन्द्रो जगत्पालो रामपालो निवसति। एतान्युपद्दस्त दर्शनीयान्युपवनान्यपि राजकीयान्येव। स्वस्थतामापद्य श्रान्तमिमं निरीक्ष्य शीघ्रं प्रतिनिवर्तस्व। त्वदीयौ पितरौ न जाने कां दशामनुभवतः।"

"विमलपुरं रामपालमहाराजस्य विमलपुरमिति साश्चर्यं सांगुलीन्यासं सोत्कण्ठं भणति चन्द्रे "आ" "आ" इति गदन् संन्यासी स्वकार्ये लग्नः।

* * *

"देवि! कात्वं सौन्दर्यसारावयवा यवाङ्कनासा, नववयश्शोभिता तन्वी नवमालिकेव

सजीवा, सविभ्रममभिनन्दन्तः पश्यन्ती धृतिमिव कुर्वन्ती अभिरामताविधुरा द्वारदेशेभ्यः कस्य चेन्मुखानम्। किमत्र स्थानं प्राप्तुं शक्यते।"

"श्रीमन्, मनोहरमुपवनमिदं जितारेस्तारेश्वरकान्तिकीर्त्तेः राज्ञो रत्नाकर प्रियपुत्र्याः कमलायाः। यत्र प्रान्ते भ्रमन्तः पुंस्पक्षिणोऽप्युपरुध्यन्ते, तत्र भवादृशा विशिष्टकामिन्यः सशरीरा इव कथा वामाभिरामाः कथं समेताः। यदि वा युष्मादृशानां भ्रमणं भूपेतोपेत्यानं तदा नियता वसतिः कारायाम्। अतोऽस्मदन्तेऽद्य झटिति तथा यातव्यं यथा कोऽपि दृष्टिमपि न क्षिपेत्, मत्त्विकाऽनिर्देशा क्षन्तव्या चेयमनपराधिनी परवती कीतदासी,........

"देवि, त्वदीयां भाषणभङ्गीमाकर्ण्य पुनःपुनर्भवति चेतस्त्वद्वचः श्रवणाधीनम्। वस्तु न वयं कस्यापि निर्दूषणस्यापकाराय।"

"देव, क्षम्यतामपराधः, देव आकृत्योच्चकुलो दैवदुर्विपाकेन दुरवस्थः प्रतीयते आज्ञाप्यतां का चन सेवा।"

"अहमत्र नवीनोऽस्मि न कमपि जाने। कञ्चित् कालमत्र व्यत्यापयितुमिच्छामि त्वं यदि मत्कृते स्थानमेकं व्यवस्थापयेः, आजीवनं स्मरिष्यामि।"

"भगवन्, निकट एवैकस्य धनिनः प्रोच्चं गगनचुम्बि रम्यं भवनं विद्यते। कमलोपवनसान्निध्यादधुनैतन्नव्यवहर्त्तुं शक्यते। केवलनैतद्भूतावासमपि मन्यते। परं भवनं सुभगभोग्यं योग्यमस्ति। अभितो रम्या वाटिका। दक्षिणत आदर्शविनिर्मिता वापी पीयूषपूर्णा। वामतश्च निपुणनिर्मितो लीलाशैलः। मध्येच रत्नरचनाचितो राजोचितः प्रासादः। श्रीमद्भ्यो यदि रोचते विश्रम्यतामत्र कञ्चित्कालम्।"

शब्दशास्त्राब्धिमग्नानां जडविप्लुतचेतसाम्।
कृते द्वितीयो निश्वासः सोऽयं चन्द्रमहीपतेः॥

श्रीनिवासशास्त्रिणा कृते चन्द्रमहीपतौ द्वितीयो निश्वासः।

तृतीयो निःश्वासः

एताः स्खलद्वलयसंहतिमेखलोत्थ-
झङ्कारनूपुरपराजितराजहंस्यः ।
कुर्वन्ति कस्य न मनो विवशं तरुण्यो
वित्रस्तमुग्धहरिणीसदृशैः कटाक्षैः ॥

भर्तृहरिः

मध्ये त्रिवलीत्रिपथे, पीवरकुचचत्वरे च चपलदृशाम् ।
छलयति मदनपिशाचः पुरुषं हि मनागपि स्खलितम् ॥

त्रिविक्रम भट्टः

उद्वेगमहावर्त्ते, पातयति पयोधरोन्नमनकाले ।
सरिदिव तटमनुवर्षं विवर्द्धमाना सुता पितरम् ॥

बाणः

अपहस्तितान्तरायानर्थानुररीकृतान् प्रसाधयतः ।
विधिरपि बिभेति तस्मान्निरतिशयं साहसं यस्य ॥

त्रिविक्रम भट्टः

मत्तेभकुम्भविदलनकृतश्रमं सुप्तमन्तकप्रतिमम् ।
यमलोकदर्शनेच्छुः सिंहं बोधयति को नाम ॥

"मया श्रुतं यद् राजनगरं प्रति मुदा प्रेषिता, अपि सत्यं, मनोरमे !"

मनो०—ललिते ! श्रुतं तु मयापि चन्द्रकलामुखात् ।

चन्द्रकला०—मामपि तिलोत्तमाऽऽह ।

ललिता—का तिलोत्तमा ?

चन्द्रकला—सैव मन्त्रिणः प्रमुखा दासी ।

"किमाह ?" ललितया सोत्कण्ठं पृष्टम् ।

चन्द्रकला—एवमाह यद् राजनगराधीशपुत्रेण सह प्रतिज्ञातचरः कमलाविवाहः। विवाहयोग्यायश्च मां वीक्ष्य कमलापाणिपल्लवं योजयितुं तिलकः प्रेषितः।

ललिता—श्रूयते यत् सौन्दर्ये स साक्षात्कामः। केचन नाशिताशेषोपद्रवं प्रथमभमपक्षं व्यसनेषु विक्रमिणं धृतावतारमर्जुनं मन्यन्ते। परे च मुखमुद्रया जगदानन्ददं भगवन्तं चन्द्रमसमाचक्षते। इतरे चाप्रतिहतशक्तितया जगदमङ्गलविनाशनिरतं मर्दं व्याचक्षते। यस्य पिता प्रबलप्रभापरिभूतभूतगणः कथं न स्यात् तस्य पुत्रोऽपि प्रतापपरिप्लुष्टरिपुपूरः, यस्य पिता द्विधारधारासमाकृष्टशत्रुसीमन्तिनीसौभाग्यः कथं न स्यात् तस्य पुत्रोऽपि विजयवामभ्रूदक्षिणभुजलताभूषितकन्धरः।

मनोरमा—तदस्माकं कमला किं रवेन्यूना? अलब्धामरशरीरं मारं मर्त्येऽन्वेष्टुमिव गता, वासन्तपुष्पविकासनीहाराहारा, धिर्य, माधुर्यं, वात्सल्यं प्रेम वयोविभ्रमपुरस्सरी, प्रसिद्धा हंसगत्या, परागभूता प्रमदानां, अपचितिश्वेतोभवस्य, संसर्गं हावानां अनुजे मोहिन्याः, अवतंसभूता सौन्दर्यसरसीनाम्, निर्दोषकलालया, निरतिशयसौकुमार्या, दुष्प्राप्या दुरहृदैः, दुर्दम्योत्साहा, विहसितहसितनिभुबिम्बा, आपूर्णा प्रेममकरन्देन, निर्भेदि मन्मथमहेन्द्रस्य, अधीश्वरी सुरभिनिश्वसानां विलाससदनस्य च, अपिधानं वैराग्यभावानां, अतिक्रान्तशिरीषकुसुममार्दवे, सुवर्णवर्णा, उज्ज्वला स्खलनिक्वया, अभिरूपा गुणगणैः, प्रतिपक्षसार्वतरवा, परिवेषानन्दाम्भोधेः, अनुपाधिसुन्दरी कमला कथमिव प्रेक्ष्यते।

पश्य ! मरकतमणिमरकतचरणतया, समानरसवालभास्करार्चितीकृतपादा, अचिरस्फुरितस्वर्णप्रभानुरक्तचरणा [illegible] दुर्गेव, चनकप्रिया रामाभिरामा दृष्टैव, [illegible]मर्दिमता, तत्त्वबोधिनी [illegible] सदनुगमा [illegible] कौमुदीव जगदभिरामा, [illegible] [illegible] बिन्दुभूषितभ्रूमध्या, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

एतामुत्पाद्य सञ्जातो विधातुः सौन्दर्यरचनासम्भारनिधेः कलाकलापस्य च क्षयः। किं श्यामे ?

श्यामा—रतेः किं साम्यं कमलया। साऽनङ्गस्य वनिता कोकिलाली मनोमन्दिरा।
एषा च विश्वविदितवीरवरस्य वरा वनिता मनोरमासखी।

कदाऽसौ सुभगः समयः समेष्यति, येन आनन्दस्य चरमसीमानमाप्स्यति, यदा प्रियामुखी रत्नकङ्कणनिबद्धमणिबन्धाऽलक्तकालंकृतहस्ततला परिमिताभरणा सविभ्रमं भ्रमन्ती।

कमला—तिष्ठत, न युष्माभिः सहाक्रीडमेष्यामि। प्रगल्भभाषिण्यो विरता ए भवथ। यात।

मनोरमा—चन्द्रकले! यतः प्रभृति तं युवानमेषाऽपश्यद् विमनस्का न क्वापि श लभते। विलक्षणधारीश्वरप्रेरितः स युवा। मामकीनं मनोऽपि तस्मै स्पृह कया एकदा सोऽस्माकं अनियमकालमेव समागत्य करालदंष्ट्रं गर्जन्तमुच्चैः भाय पञ्चाननं पञ्चत्वमगमयत्, साधारणशशशिशुमिव समक्रीडयद् वस्तुतः प्रशंसनीयो वि

चन्द्रकला—युवा तु स स्पृहणीयधर्माऽऽसीत्। सरलया निर्भयया गत्या सिद्धं कर शिरसि "अस्तु मामी" इत्युक्त्वाऽनाशंसितप्रसंगो यथागतं प्रतिनिवृत्तः। यदि स उभय तु कमलारूढा मातुलसुता वक्तुं पारयते, इतरैः गुणैस्तु स योग्यतमः प्रतीयते।

मनोरमा—परन्तु कमलाया वाग्दानं धौरेय एव सञ्जातम्, मार्यकन्या अ प्रदीयन्ते।

अथास्तंमदसंभ्रान्त्यपसरणयतिनि, अदभ्रपुरस्सरे समाजिगमिषति भगवति नभस्तिम उपेता गमनवेला गन्तव्यमुपरदरीदर्शनादेति विचार्यैव किञ्चिदुदयचन्द्रपु प अस्तकरुणापारेऽिव मुखमन्तर्धत्स्व, प्रचण्डचण्डकिरणभयेन प्रातः संध्यां विप पश्चिमतटं विभासति मन्दर्दिवि चन्द्रमसि, सरोवराब्जविकसनोद्दामप्रबोधक-भ्रमर पदनिर्देने, पूर्वककुप्कान्तिकामपितविभीषिकसूत्रसुखपुष्पसन्मन्दरामुर्धोन्नमनार्न्तने, प्रामा वायुलोऽवरुच्छालङ्कृते चोपवनेऽरुणकिरणनातिनीभिर्व्यर्थंदस्तत्तरणिद्युमाद् अव हरविहारिणः।

सञ्जाय रुक्कौदेदीवर्तनिर्ममन्दुरिदम्। राजर्षिव महाराजकन्येव इ देवरे विचाय भ्रमद्भ्रमरं कमलकुलम्। इत्येतेन सारसा इव कुसु

मुकुलिताः। श्यामले दूर्वास्थले प्रसृतांस्तुहिनमणीं श्चेतुमिव बालभास्कररत्नाभिनव किरणावली स्वर्णरेखेव विशदनीलाम्बरतो हसन्ती विकसन्ती नीचैरवततरति स्म।

निकुञ्जेषु वनेषु वसतां पक्षिणां दिनेशागमनजयशब्देनेव विरावेण मुखरितं बभौ विश्वम्। चेलुश्च ते प्रणमन्त इव विहायसम्। विकासमाज उपवनकुसुमवर्ग विटपाश्चानन्तानन्दसुधापानाय प्रतीक्षमाणा इवासन्। विविधकुसुमानां मादकेनामोदेन कोणं कोणं मुदितम्।

मनोरमा कदम्बकुसुमस्तवकं ललितायाः सीमन्ते न्यस्यन्ती तस्याः कर्णे फूत्कार। सा च तां पुष्पस्रजा तताड। श्यामा च न्यायाधीशतां सम्प्राप्य पक्षविपक्षौ शुश्राव। चन्द्रकला च प्राड्विवाकीभूय वचो विचित्रयुक्तिभिरयुक्तमपि युक्तयितुमचेष्टत। शिरीष कुसुमकरा कमला मल्लिकावल्लरीवितानेष्वलिकेलिलीलां पश्यन्ती, मञ्जुमञ्जरीमण्डित महीरुहमण्डपेषु पुंस्कोकिलान् प्रेक्षमाणा करकनिष्ठिकानिष्ठयोर्मिकया दीप्तां कुसुमलतां तर्जन्या लोलयन्त्येकाकिनी भ्रमतिस्म। शीतलसुरभिसमीरविलुलिता तस्याः श्यामश्यामा कुञ्चितकुञ्चिता मसृणमसृणा स्नेहवर्द्धिताऽलकावली सर्पिणीव नितम्बेऽवरोहन्त्याभाति प्रसृताऽऽसीत्। सुवर्णप्रसूनाऽलक्ष्यतन्तुसंयोगा नवनीतनिर्मितेव मृदुला तस्याः शाटी वायुलोला काठिन्येन संत्रियते स्म। क्षणमव्यक्तं कष्टेन कूजन्ती सा स्फुटं जगौ :—

कुड्मला दधति च्छविं मातरिश्वविचालिताः। (स्थायी)

(१)

ध्वनिनामुना सर्वाः सख्यः सङ्गीभूताः क्रमशो जगुः :—

मनोरमा०। योगिहृदयं कामिनीनां लिम्पते योगात्त्वरम्।
पुष्परंके यौगतो मरुतो हि भूता गन्धिताः।

(२)

चन्द्रकला०। चम्पको बकुलो रसालो मालतीगणिकागणः
चन्दनोवरनीरतृणश्चे तसां हारोमतः।

(३)

[illegible]। वायुलीना पुष्पपंक्ति भिन्नवर्णमनोहरा
पत्रमध्ये राजते कान्तेव कान्तविमर्दिता।

(४)

श्यामा० । पूर्वसंयोगे यथा ललनामुखं परिवर्त्तते
मधुकरेषुपतत्सु तद्वद् विचलिता उपवनलताः ।

(५)

कमला० । अर्द्धफुल्ले पद्मवृन्दे नीरजं शतपत्रभृत्
श्रीनिवासो देववृन्दे शोभते वापीस्थितः ।

* * *

एकाकिनी, धनीकनीव कामस्य कमला, एकदा निम्बाम्रोदुम्बरकदम्बजम्बू-जम्बीरशोभितायां, चलदलबकुलबकुलसंकुलायां, कर्कन्धूबन्धूकबन्धुरायां लोलतालललितायां, मधुरनवेतदिलायां कमलकुड्मलेषु सानन्दमुपविष्टा कमलेव राजते ।

अकस्मादेको मधुरोऽश्वधावनध्वनिः कमलाकर्णं स्पृष्ट्वा नेत्रे चञ्चलीचकार । सा क्षणेनैव स्थिरीभूय ध्वनिः कस्याः दिशः समेतीति निखिलापश्यद् यदेका रक्तवेशा सत्पूर्णजा ऽश्वमारूढा ऽनुहरिणमश्वं धावयति ।

कमलाऽऽखेटनिपुणाऽऽसीत् । सा तस्मिन् सान्ध्ये सुभगसमये मनोविनोदाय प्रकटितेच्छा सरयूसेतुदेशमायोज्य स्त्रीयमश्वमारुह्य तामन्वेव प्रस्थिता । सा ऽपरपथेन हरिणमनुसृत्य पूर्वमेव हन्तुमना द्रुतगत्याऽश्वञ्चालयामास । मनोरमापि तालिकाकिनी गच्छन्ती स्वाऽश्वमारुह्यानुससार । कमलैच्छद् यत् परपथेन पूर्वं गत्वा हरिणं निदर्शेना लक्ष्यिष्यामि, परन्तु मार्गान्तरगमनेन समयोऽव्यतीतः । हरिणं प्राप्य साऽपश्यद् यत् स जीवन्नेवापुंशयने । कमला शरं शरासन अयोज्य सत्वरैव लिप्तुं स्थिरीकृत्य विससर्ज । परन्तु लक्ष्यं चल्यापीत् । बाणो हरिणपदात् द्वस्तमाहत्य पतितः । कमलाऽपश्यद् यद् यं सा निरमलत स पुरुषोऽस्ति एवेपस्थितो वस्तुं करमोऽस्यनेनाऽप्य कमला त्वरया स्वत्वा प्रतिलोमपमनिसद्धति तस्य पीतभिमर्नं समरसत्वरे सर्वसानं बाणं प्रहिरत् । अद्यमामुनऽऽपातेन सर्वोऽस्तिरीयमा कमला स्वस्वं भूमिमस्थितवान्त । तत्र सत्वरं कमला मुख्यमैवस्मिन् शिखपत्राके विधनेषुमनीव विरक्ति तत्रैव कल्पयेतनो यथ :—

"आः ! त्वमसि वीर ! अस्माकं सिंहात्त्राताऽनादांसितपुरस्कारः.........अस्य वञ्चयितुं स्त्रीवेशमिवाधायाऽत्र भ्रमसि"

"नात्रवञ्चना, आज्ञापय तव कामर्चनाम्चरामः। पिपासिताचेज्जलमानयामः बुभुक्षिता चेत् फलान्याहरामः। क्लेशिता चेत् क्लेशमपनयामः। मन्ये कापि देवी त्वं भुवि भ्रमणायावतीर्णा।"

"कस्त्वं पौनःपुन्येनैषु दिनेष्वितोऽवलोक्यसे ?"

"देवि ! नाहमस्म्येतद्देशीयः। द्वित्रैः सप्ताहैः घुणाक्षरन्यायेनेतः समागतोऽस्मि निवसामि च पार्श्वे श्रीसिद्धेश्वरदेवस्याश्रमे। मनोविनोदाय कदाचन विमलपुरं यामि। वात्सल्यपूर्णेन देवेन सहयोगी हरिणशिशुरयं मह्यं प्रदत्तः। मार्ग एव श्रीमत्या मन्दं वियतेऽतः श्रीमत्या दर्शनं द्वित्रिर्जातम्। यदि कापि त्रुटिश्चेत् क्षन्तव्योऽहं नवीनः। अधुना देवस्य सन्ध्यावेला विद्यते, चपलोऽयं हरिणशिशुरितस्ततो भ्रमति अतएनमप्यश्व उपवेश्य शीघ्रं यास्यामीतिबुद्ध्याऽहमेनं ग्रहीतुकाम आसं परं श्रीमत्या बाणेन व्याघातः कृतः। अधुनाहं श्रीमतीं प्रसाद्यानुचिताचरणाय यामि"

स च हरिणशिशुना सहैवाश्वमारुह्योत्तरमप्रतीक्षमाणो यथा प्रचलितस्तथैव मनोरमोपेता। कमला चान्वश्ववारं पश्यन्ती स्तब्धेव तस्थौ।

"कमले, स्पष्टं कथय युवयोर्व्यवहारेण किमपि ज्ञातुमनुमातुं च शक्यते" मनोरमे चे। कोयं मनुष्यमात्रनिषिद्धमङ्गनोपवनप्रान्तं निश्शङ्कमध्यास्ते। अहह ! विचित्रोऽसि, अत्रैव वैलक्षण्यमापादयसि, त्वं यदि देही स्यास्त्वत्कर्म कोऽनुमातुं शक्नुयात्। प्रातर्विवाहवार्त्तयैवार्त्ता सखीः समवारुधत् सैव कमला धैर्यधरमरेण स्मरेण लक्ष्यीकृता ? स्मर ? स्मर्तव्यः कृतोऽपि पुरभिदाऽशेषे जागर्षि जगति।

हर्षेऽपि विषं भवति सौन्दर्येऽपि गरलम्। तव दर्शनसमकालमेव यूनोऽस्य प्रवचनचातुरी भग्ना, कठोरं मनः सुन्दरीदर्शनेन द्रुतम्। तोमरतोमसहमपि वपुर्वशंवदे स्म करिकरकठोरोऽपि करोऽकम्पत कदलीदलमिव। य उत्कूर्दमानं केसरिकिशोरं भूमिशायिनं व्यधित स त्वां प्रेक्ष्य स्खलद्गात्रः सञ्जातः। येन कदापि गजेन्द्रकुम्भविदारिणो हरेः प्रथमप्रणाशस्य न मुक्तं स एवाद्य स्वेच्छातस्तवापराधमङ्गीकृत्य त्वामेव समाममिसत।

जाने विलक्षणोऽयं स्मरस्य लीला च। अत्यंव कृपया मोहिता दत्वाः सुधां विहाय मर्य पपुः, भगवान् विष्णुरपि तुलसीप्रेमविपाकुरुद्ध रचयामास, कृष्णोऽपि राधा-पादाराधनाद्विरं विदधे, मोहिनीमत्तशिवोऽपि विष्णुमिदरिदेव, परन्त्वज्ञातकुलस्वभावे नवीनेऽस्मिन् यूनि त्वदीयो भावोऽनुचितचारतां प्रकटयति। कमले! क्व लीला सि!!" सा चानुत्तरमेवधमारुरोह।

*　　　　*　　　　*

"अमात्य! कमलाऽनानन्दितचित्ता, शून्यमानसेव सालसगमना, शङ्कितहृदयेव प्रक्षिप्तनेत्रा, कोणे पश्यन्तीवालक्ष्यनिदे वान्यमनस्केव वर्त्तते। केयं दशा पुत्र्याः। परिणयस्यावस्योपस्थिता। यस्यैतस्यै स्थिरीकृतो वरः सोऽपि न लब्धः। मत्समीपं नाधिकं तिष्ठति, प्रातःकालिकं वन्दनं विधाय भीतेवापसर्पति। हास्तु कमलाऽऽयातैव नहि, श्रुतं तस्याः शिरोर्त्तिर्विद्यते। किं करणीयम्। खिन्नोऽस्मि" उच्छ्वसता राज्ञोचे।

अमात्य०—"नहि देव, शान्तं पापम्। जाने विनयशालिनीं तपस्विनीं मुग्धां कमलाम्। वयःस्वभावोऽयम्। यदि कश्चन व्याधिः, सम्बन्धेऽस्मिन् सर्वं विमृश्य सूचयिष्यामि"।

*　　　　*　　　　*

अथ विमलपुरसंसरणं पुनः पताकाभिरवीज्यत। पुनः सैनिकावलिर्जनाँश्चकितयामास। पुनर्नारीनेत्राणि वातायनेभ्यो बहिर्निपेतुः। पुनरुत्सवकोलाहलो दिगन्तान्मुखरयामास। पुनर्वकुलगन्धो भ्रमरानभ्रामयत्। पुनर्वाद्यानां तडतडता जगतो नीरवतां बभञ्ज।

अपराह्णकालः। राज्ञोरामपालस्य सभाय जनसमुदयेन व्याप्ता वर्त्तते। राजकुमारेण द्वन्द्वयुद्धे सिंहो हतः, बालोत्साहवर्द्धन उत्सवः। अस्मिन्नेवोत्सवे धानुष्काणां परीक्षायै त्रिवर्त्तिक एकोदीपः प्रज्वलयिष्यते। यः कोऽपि धानुष्को मध्यमां वर्त्तिकामपहरिष्यति, अनिर्वापयन्नुभे स सविशेषं पुरस्करिष्यते।

अथोच्चैः स्वर्णसिंहासनासीने राज्ञि, दक्षिणतश्च पीठस्थिते राजकुमारे, राजकुमार्यां कमलायां, परितश्च यथा स्थानं स्थितेषु मान्येषु समुपस्थितेषु च बहुषु धानुष्केषु, द्वास्थः प्रविश्य निर्भयं व्याहृत्य "कश्चित्त्स्वस्य धानुष्कतां ख्यापयन् द्वारदेशे तिष्ठति, अग्रे देवः प्रमाण" मित्याह।

"प्रवेशय"—दत्ताज्ञे महीपतौ प्राविशदेको युवा।

युवासौ महाजनकीर्त्तिपुञ्जोद्भूताखिलाङ्ग इव तेजस्वी, सुरभिचिक्कणैः कुञ्चितकुन्तलैर्विलम्बिभिः कचैर्निचितशिरस्कः कटिलम्बमानद्विधारः सिंह इव निर्भीकः सन् रमणीयोऽस्ति। यस्य प्रलम्बस्वर्णपट्टाष्टमीचन्द्रशकलानुकारी, ललाटपट्टः, पर्वतान्तर्मेघच्छन्नसुदृढबन्धवन्धुरं मुखं, ईषदुन्मिषच्छ्मश्रुरुत्तरोष्ठः, विस्तृते कर्णे, मांसलोन्नता ग्रीवा नासाच, विद्रुमारक्तोऽधरो मांसलौ स्कन्धौ, परिणाहि पीनमुरः, करिकरापातसहं सक्थियुगलं महत्तां सूचयन्ति। सभासद्भिः शृङ्गारवीररसविनिर्मितावयव सप्रेम प्रैक्षि। राज्ञोऽपि परमरम्येऽस्मिन् यूनि स्पृहावती निपपात दृष्टिः। अथ तयोरालापः—

महाराजः—वीरवर! कुतः समागमनम्?

युवा—देव, सुदूरमरमन्नगरं राजपुरम्। पुष्पाक्षरन्यायेनेतः समागतोऽस्मि। अत्र धानुष्काणां परीक्षायोजनस्य प्रत्यक्षानन्दानुभूत्यै समागतोऽस्मि।

महा०—किन्ते नाम?

युवा—देव! शशधरः।

महा०—समागमादिनं पदार्थं कस्मिन्नपि कार्ये?

युवा—आं महाराज।

महा०—केन केन?

युवा०—प्रायशः सर्वेण

महा०—[illegible] सर्वेण!

युवा०—(किञ्चिल्लज्जित इव) देव शक्तियोऽस्मि।

महा०—(अभयं दिशन्) उपविश।

ततो धनुष्काणां परीक्षा प्रारब्धा। पञ्चाशद्धन्वान्तरं [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] युवा[illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

महाराज इङ्गितेन शशधरमसूचयत्। धानुष्कै सेर्ष्यं साकूतं वीक्षित एष लघीयसा हस्तेन शरासनमाकृष्य शरं व्यसृजन्निरवापयच्च मध्यमां वर्त्तिकाम्।

महा०—धन्यो धन्यः। नितरां प्रसीदामि। युवासौ विलक्षणो विचक्षणः। शशधर! नियुक्तस्त्वमद्य भृत्यः। सभाभवने तवोपस्थितिः प्रतिदिनमवश्यम्भवेत्। कोशाध्यक्ष प्रतिदिनमस्मै शतं मुद्राः प्रदेयाः, अद्य पुरस्कारभूताः स्वर्णस्य सहस्रमुद्राश्च।

"देवस्याऽऽज्ञयाऽहमपि किञ्चिद् विवक्षामि क्षुभ्यतु देवः"—उत्थाय राजकुमार्यौचे।

महाराजः—आम् आम्।

कमला०—श्रीमते पूर्वमेव निवेदितवत्यस्मि यदहमेकदा प्रातरेवोपवनं गता पञ्चानन-प्रेक्षिता त्राणाय साहाय्यमयाचिषि, तदाऽयमेव युवा कुतोऽप्यागत्य मामरक्षयत्, अदत्त-परिचयः पुरस्कारानभिलाषः साधुवादमप्यगृहीत्वाऽपसृतः। स एवायमद्य धानुष्क-परीक्षायां प्रथममायातः सविशेषमस्माभिर्मन्तव्यः। श्रीमताभाज्ञयाऽहमस्मै ग्राम-पञ्चकं पुरस्करोमि, प्रार्थये च यदयमेव धीरो मद्वनस्य प्रधानव्यवस्थापको भवेत्।

महा०—अहमनुमोदयामि। भवनस्य द्वारशाला शशधरस्यावासःस्यात्।

* * *

"कमले, केयं दशा, क्वापि शान्तिं न लभसे। सर्वं दिनं सर्वां विभावरीश्च विचार एव व्यतियापयसि। सावधानं न शृणोषि, उत्कण्ठितेव दरीदृश्यसे। आकारैः कम-प्यालपसि हससि, उपालभसइव। प्रातः सखीभिः कथं कथमप्युत्साहिता ताभ्यः संवृत-गूसेव "कोलाहलं श्रोतुं नोत्सहेते श्रोत्रे एकाकिन्येव यास्यम्युपवनमिति" ध्यालेनैको ष्वनमुपैषि। प्रतिक्षणं विचारपयोनिधौ निमग्नेव प्रेक्ष्यसे। कौशिकीव सूर्यातपाद् बिभेषि चन्द्रिकाचयात्। सुखमये मृशं दयसे। सानुनयं निषिद्धापि दिवा स्वपिषि, स्वप्ने हससि, अस्पष्टाक्षरं किमपि वक्षि भित्तिचित्रैः किमप्यालपसि। रात्रौ भ्रमन्ती तारागणयन्ती किमपि प्रलपसि। सलज्जेव दृश्यते कपोलपाली, शुष्को बिम्बाधरो मदनानलस्येव वर्तुलताऽङ्गेषु गौरवम्। स्पष्टं निरूपय केयं स्थितिः"।

कमला—नहि नहि। भ्रमाभिभूतासि मनोरमे, ऋतुपरिवर्त्तनजन्येयमस्वस्थता, नान्यः को विशेषः।

मनो०—आने, अहं श्रीमत्याः सहचर्यस्मि। शैशवत एव भवत्याः मनोदशां

मनोव्यथाञ्च सम्यग् बुध्ये। नेदृग्दुःखपरिवर्त्तनं कदाप्यनुभूतम्, विश्रब्धं सूचय यथायत्नं यतिष्ये। अहमप्यभिन्नप्राणा एव। सूचय किमस्मिन् यूनि तव विशिष्टा स्पृहा!

कम॰—जाने नहि का स्पृहा नाम! किन्त्वेका मधुराऽनभिव्यक्ता श्रद्धेव तस्मिन् मम वर्त्तते। गतदिनेऽहमुपवनं गता दीर्घिकायास्तटे शिलातलमुपविश्य किमपि विचारयन्त्यासम्। पार्श्वे एव मदीयः प्रियः सहचरो हरिणशिशुरप्यासीत्। अहं शिशुकमनो विनोदयन्ती जगज्जालेन विक्षुब्धं मानसं सान्त्वयन्ती कदाचन तं हस्तेन परामृशन्ती, रोमराजिं निपुणमीक्षमाणा, दाडिमीबीजाभां तस्य दन्तपंक्तिं गणयन्त्यासम्। मन्दं मन्दं मारुतोऽप्यवतेस्म। सान्ध्यगगनस्य लौहित्यं दीर्घिकायां सिन्दूरद्रवस्य भ्रममुत्पादयति स्म, पवनप्रेरितेषु तरङ्गेषु शिशोः प्रतिमूर्त्तिरनुपमेयां कान्तिं प्रकटयतिस्म। नितरां चञ्चल आसीद्धरिणशिशुः विचित्रा च ममावस्था। अहं दीर्घिकाजलेन प्रसृतिमापूर्य हरिणशिशवे पाययितुं प्रवृत्ता। अकस्मादेव मम दृष्टिः सम्मुखीनसान्ध्यशकुनिकलरवं प्रति प्रवृत्ता, एवञ्चास्मात् प्रसृतिर्मे विदूरीभूता। शिशुश्चायं केवलं प्रसृतिदर्शियावदग्रे प्रासरत्, तावदेव स्खलितचरणो गृहीतोदीर्घिकया। शिशोस्तरणशक्तिर्दुर्बलाऽऽसीद् वापीभित्तिश्च बहिरयने बाधिका च क्षणेन खिन्नोऽभवत्। अहं म्रियमाणं तं नावलोकयितुमशक्नुम्। सन्तरण-शिक्षाधिगतसाहसा, प्राणित्राणनेच्छया वाप्यां निपत्य शिशासम्पादितगदता विकीर्णैः प्रहारैर्जलमवागाहि। एषुदिनेषु मम स्वास्थ्यमुत्साहो मनःस्थितिश्च न पोषक, वस्त्राणि च विशृङ्खलान्यासन्। परं तथाप्यहं शिशुमग्रहीषं किन्तु चञ्चलोर्मिभि सन्त्रस्तः स सपदेव ममहस्तान्निसृतः। एतेषु दिवसेष्वहं जले विहरन्ती नारम्। स्वल्पेनैव समयेन श्रान्ता। आर्द्राशाटी मां पाशवदभान्त्सीत्। एका ईदृगाशा कथमस्यां सुशोभायां दीर्घिकायां पारमाप्स्यामीति विचार्य मम मनो धैर्यमवहत्। मम जीवनाशा महता बलेन "मृत, मृत !! निमज्जामि, निमज्जामि" इत्यघोषयत्।

अघटनीयघटनापटीयसः पटवे [1]खटपटस्य को जानीते। विरंचरो अनन्ती तस्य कृपालुं दर्शियं स्यते तस्य नास्ति कापि सीमिलेशोऽपि। तस्यैव कृपा

---

1 के अटन्तीति भटाः पक्षिणस्तान् पतति खटतो गच्छन्तेनास्ति यः सः।

भगवत्प्रेरित इव कटिरियागत्य मां हरिणव कूलमानीय, तार्णपार्णस्यामैः प्रबन्धं विधाय मामुद्बोधितवान्। राङ्कवास्तृते इव मृदुले दूर्वातले मूलच्छिन्ना कदलीवाहं प्रसुप्ताऽऽसम्। मृगशिशुरपि लब्धबोधोऽन्तेवासीव पार्श्वे आसीत्।

बहिना व्यञ्जनेन द्विजकलरवैश्चोन्मीलितनयनाहं श्रमस्वेदबिन्दुस्नातविवर्णमुख, मलकाकुलमूर्धानं प्रेयांसं युवानमुत्थानुमना: "भगवति, अस्तव्यानि वेऽङ्गानि कियत्कालमाश्वास्येत्यास्याः"—इत्युक्त्वा कियत्कालं विश्रम्यावासं प्रतिनिवृत्ता। सोऽयं सखि, महानुभावो मधुरमधुरमालपन्, इयन्तरातैः समये इयमान आभारिणीं कृतवानस्ति। भारतीया संस्कृतिर्जीवनदात्रे जीवनदानेनाप्यानृण्यमासादयितुं मां प्रेरयति। अहं त्वां नियोजयामि मदस्य पूर्णः परिचयः प्राप्तव्यः।

* * *

"तपस्विनी तरुणी कामकेलिष्वलब्धवैदग्ध्या मुग्धा, मृणालविशदप्रभा सजीवेव मणिपुत्रिका अभूतपूर्वानुल्का, वामकरतलविन्यस्तकपोलपालीका अनभिव्यक्तनिद्रातन्द्रा रहस्यमाधित्य किमपि विचारयन्ती मध्ये मध्ये उत्थाय गवाक्षतो द्रागतो नभसः कमपि गवेषयन्ती वर्तते कमला। अहह केयं दशा राजकुमार्याः"—उद्यानपालिकया चिन्तितम्।

"हन्त, अहमेवास्या दशायाः कारणे मुख्यास्मि। कमलाया विगीती वचनीयतामाश्रहमेव प्रधानं निदानमस्मि। हन्त! मृतास्मि। पार्श्वपठरस्य एषिष्टमवसानम्।"

"हाय पश्यामि धाराधरस्य दशामपि। स च सर्वाण्यहानि यामिनीश्च नेत्रयोमंध्यगत एव प्रतिभसति; तस्य स्वरूपवर्णनमिव चेतः क्वापि स्थातुं नार्हति। सर्वं दिनमभ्युत्थमेव यापयति। निशुङ्क्ते तु वासः, अनिमिषदर्शनं, अनारतं विचारः अधरे सवेनी, मनःकायाभवन्ति, दराउत्कलार्नमदयेऽन्या इव तस्यापि दिनचर्या रात्रिचर्या चास्ति।"

* * *

गतश्चतुर्थंगतोऽब्दम्। एवमेव क्षणदा क्रोधपरतः क्षमेव समागमत्। क्षपाम्बुर्भवन्तीमिव विधुः चलनालघुन्दतः चतुन्दाः। शिशिरः एणं साध्ये विधिविधातुं धैर्यमिव दधौ। प्रदेशः पूर्वतो मध्यतो विदीर्णः प्रदीप इव क्वं सर्वानमदन्नमगुरेत्। विरहेण्या शब्दमयेधकः। मन्दिरनृपस्यक्षमिमायन्तीपथलक्षणां,

भ्रमद्भ्रमरगुञ्जनमपि विभाव्य विक्षिप्तनयना वृत्तिभुजः प्रहरिणोऽपि तन्द्राभिभूताश्च मध्येमन्दिरं श्लिष्टभित्तयः पतन्तो जागरणं लभन्ते।

परितो रम्यपुष्पवाटिकं विशालमदो भवनम्। द्विपदशननिर्मितविचित्रचित्रकपाटानि शोभन्ते आवासभवनानि। अभिभित्ति स्वर्णपरिवरणानि, भित्तिप्रतिष्ठितद्विपदन्तपीठप्रतिष्ठितानि महान्ति उत्तेजसो भूयांसो मुकुराः, उपर्यर्पितश्वेतशोणितहरितानि काचभाण्डानि वलयी विटपाः शोभां संवर्द्धयन्तोऽवलम्बन्ते। येष्वगुरुघनसारात्यो दीपाः सौरभेन सह प्रकाशन्ते। अभितो भवनं देवानां, अनुकरणीयचरितानां प्रतापप्रभृतीनां राज्ञां सजीवानीव चेतोहराणि चित्राणि। मणिमयमुष्टिकाम्बलम्बेषु विस्तृताच्छादनानि सुगन्धिद्रव्याणि घ्राणं तर्पयन्ति। नागदन्तेषु शुकपिकसारसानां सौवर्णानि गृहाणि निस्तरसुधामयूखमयूखे राजतानीव प्रेक्ष्यन्ते।

अथ पवनपयरावप्रसुप्तां, उन्मुखमयूखजितचन्द्रेणेव द्विरददशनेन निर्मितचतुष्पदे गगनाङ्गणपयःफेनपटलायितप्रशस्ततूले, चित्रितकौशेयोत्तरच्छदे सोपबर्हे, पद्मामिव पुण्डरीकपटले, शरदामिव हंसरक्षती पल्यङ्काङ्के शयानां ददर्श कमलाम्। कमलामुखचन्द्रतन्तुगमुखमां निरीय गलन्ती चन्द्रिकाऽपूर्वां छविं विभ्रयते स्म। मुकुरेषु कमलाप्रतिकृतिप्रकृतिं विहरते स्म। रक्ता कौशेयी शाटी तस्या अङ्गमाश्लिष्य सुप्ताऽऽसीत्। एतेन पादध्वनिनोत्थिता स्वङ्गलामरकामिनी कमलोत्थाय क्षण-सगायमानभूषणं स्पृष्ट्वा करेण प्रियतमौ प्रियोदन्तप्राप्तिमहर्षरुद्धकण्ठा वक्तुमसमर्था मुधविनिन्द्केन स्मितेन पूजयन्ती, मृणालकोमलाभ्यां कराभ्यामाकृष्याऽऽनन्दी तत्रोपवेशयन्ती भित्तिमङ्कुशतः सौवर्णी पेटिकन्देहां निःसार्य तत्र [illegible] पूगानां चंद्रुख्या [illegible] विधाय एलागुडादिमधुरं [illegible] केशरघनसारदि विरचय्य [illegible] वीटिकां मद्दत्तेन दत्ती "नाथ मनोरमे! क दरन्त:" घोरनां विदावचोचत्।

"धैर्यमावश्य गरं गृवतामि"—

इतः [illegible] तस्य [illegible] भूत्वाऽऽगमनपटलम्। मया [illegible]

[illegible] गिरीश्वराधने [illegible] भूताखाः [illegible]। [illegible]

[illegible] विदग्धा प्रशमस्ति। [illegible]

[illegible] दुर्विमुक्ती [illegible]। [illegible]

लोहमय्यां द्विवर्षीय पुस्तकानि दैनन्दिनी, समाचारपत्रं मसीपात्रं लेखनी चर्मासितु-स्मिन् कोणे च शयनस्य व्यवस्था। अहं दृष्टेनैव सर्वं वीक्ष्य दैनन्दिनीमादातुमैच्छम्। सैषा दैनन्दिनी मासचतुष्टयेनारब्धाऽऽसीत्। एवं प्रतीयते स्म यन्मेऽनेन मासद्वयस्य-वृत्तमेकस्मिन् दिन एव लिखितम्। ततोमासद्वयस्य च वृत्तं प्रतिदिनं विभिन्नवर्णैर्लिखिता-मास्तीत्तस्य सारोऽस्ति यदसौ रामनगरस्य राज्ञोनवेन्दोः पुत्रश्चन्द्रोऽस्ति, सोऽपि यौवराज्याभिषेकदिने आखेटार्थं सिंहमनुधावितः सहायभ्रष्टस्तस्य नदी पतोऽभवत्। दिनत्रयानन्तरं चायं नद्योह्यमानः सिद्धेश्वरेण निष्कासित उपचरितश्च। अत्र लेखकेन सर्वातिशायिनी श्रद्धा सिद्धेश्वरे प्रदर्शिता। तत्स्थापेन विमलपुरेशस्य समागतेनामुना सिंहात्तस्य रक्षा कृता। अत्र लेखकेन त्वयि सान्द्रसौहार्दं प्रदर्शितम्। पाठ्यक्रमपरीक्षायां समुत्तीर्णतानन्तरं प्रतिदिनमनेन दैनन्दिनी लिखितेति "अद्य" "अद्य" शब्दैः प्रतीयते। एकं प्रतिज्ञापत्रमपि महाराजहस्ताक्षरैरङ्कितं तत्रैवासीद् यस्मिंश्चन्द्रेण सह तव विवाहस्य पण आसीत्। एवं पत्रेषु लेखकेन स्वस्या विशेषविचारं सर्वत्र विराजमानेति येन मम लोचनयोर्बाष्पस्तु राविरभूत्। अनुकूलमपि तव हृदयं विचार्य मम मन आनन्देन पूर्णम्। उत्कण्ठायमानं धैर्येण धृतम्। आशया स्वर्गसुखान्यनुभूतानि कम्पता करेण मया तत्रैव पुस्तकं न्यधायि। सोऽयं, यस्य त्वं दर्शनात् प्रागेव भूरिभूरि प्रशंसामाकर्णितवती, यस्य च वीरतां लाघवञ्च बहुशः प्रेक्षितवती, दैवेन तव पाणिर्यस्य कमलकमनीये करिकरकठोरे करे दातुं स्थिरीकृतोऽस्ति, यस्य च चरणयोरात्मयौवन-सर्वस्वं निधाय तत्स्वेदस्वेदबिन्दुवृन्दविदलत्स्पृहा तच्चरणरेणुजिघृक्षा च त्वां चकल्यति स्म, यमुद्दिश्याज्ञातप्रवेशोऽयं स्मरोऽसूर्यम्पश्यां त्वां विकरोति, स शुद्धमानससारचितस्ते भावी भर्त्ता चन्द्र एव शशधरोऽस्ति" इति।

प्रेमाश्रूणि स्रावयन्ती बाष्पावरुद्धकण्ठा कमला च तां सप्रेम आलिलिङ्ग।

* * *

ऋतुरयं वसन्तः होलिकोत्सवश्च। स्वच्छनीलमम्बरम्। नातिशीतोष्णो वातस्तनुं सुखयति। उडवो महता प्रयासेन चगत्तमोऽपहन्तुं प्रयतन्ते। राजेवाकृतकार्यान् विज्ञाय सैनिकान् घृतकर्दमोरवर्णवेशोऽशेषन्तमोऽपहन्तुमुपस्थितश्चन्द्रः। राजतैर्बाणैरिव किरणैर्हेलया नाशितन्तमः। विचक्षणः देव मनोमोदयता विजयेन धन्यवादमिव वितरद्भिरिव

सर्वंजगत्। विजयपटहध्वानमिव चक्रुर्नवोढा वल्यनूपुरमणिमञ्जीरशिञ्जितम्। निशान्तेषु प्रसुप्तकान्तावसनध्वजच्छलेन भुवने विस्तारयामासेव विजयं वायुः।

अद्यतनेषु दिनेषु सर्वत्र भङ्गाभवान्याः सप्रेम पूजनम्। सा हि पद्मककेसरबदामाखरोट-द्राक्षाखाखसत्रीजपञ्चकबकुलदलमिश्रा मिश्रेयदुग्धसिताङ्गसङ्गिनी, अङ्गिनां साङ्गमानोद-विनोदं मोदयति। सम्प्रत्यहिफेन आद्रियते आसव आसूयते, निकुञ्जेषु गङ्गाया अनिमुक्ता सेवा। गुलालस्य कथैचका, यया वोधिखलोक्यते गुलालरचितेवाभाति। आरक्तवाससस्त्री-स्त्रीनिर्विशेषं पुरुषा विदूरतो वीक्ष्यन्ते। बहुविधरागपूर्णैर्निर्झरै[1] र्जना जगदेव रञ्जयन्ति। वराकाणां गर्दभानामद्यत्वे गरीयसो दुःखस्य समय उपस्थितः। एते यत्र क्वापि अट-कूपनिपाने निपतितगृहकोणे, श्मशानगृहे वाऽऽत्मानं तिरोभावयन्ति तत्रैवैते नागरिका दुर्बाला एतेषां वराकाणां पृष्ठं न शून्यं कुर्वते। ताड्यमाना धाव्यमाना रेङ्कारशब्देनान्यान् सहयोगिनः सूचयन्त इव व्यथां प्रकटयन्त इताभितः प्रेक्ष्यन्ते। अश्लीलशब्दैरनुपम-मानन्दसाम्राज्यमनुभूयते।

एकतो मनुष्या महता चर्मनद्धेन ढक्केन सहोहोकारं कायन्ति, इतरतश्च कामिन्यः सवलयसणत्कारं तारं गायन्ति। एकतो युवानो मध्यधृतमुरजा वर्तुलन्यासेन स्थिता दण्डखण्डेन दण्डखण्डं वादयन्तो गां दडदडायन्ते। अन्यतश्च वधूट्यो यौवनच्छन्ना ववस्त्र-वाससा, निरीक्षणैः, भ्रूपर्णैश्चलनेन, गमनेन, हावैः हासेनोद्भ्रमन्त्यः खेलयन्ति। क्वचन काश्मीरागुरुपूर्णा सुष्टिराम्रस्यते क्वचन भस्मगोमयगोमूत्राणि निषिच्यन्ते। प्रतीयते संवत्सरसञ्चिता पाशवप्रवृत्ति पुमानशेषेण प्रमाष्टुं सज्यते।

विविधकल्पा सविमाना सासवा सभस्मचूर्णा चरकसंहितेव बभौ होलिका। मुग्धा माम्भटेन केनाप्यनुत्तरेण नावतस्थे।

नन्दनविनन्दकेन, पादपातितचैत्ररथपरिमलेन सकलसंसारसुगन्धसारसृतेनेव कान्य-कुब्जोद्भवेन जितेन्द्रियाणामपि घ्राणमाकर्षयता, सुरभिलोलुपमिलिन्दवृन्दविहितपिधानेव निर्हारिणा द्रवेण पूरिता होलिकोत्सवाय परिकमलाभवनं स्थापिताः शुभ्रमणिखचिता नील-स्पर्शनिर्मिता .तारकितमिवनभोऽनुकुर्वत्यः स्नानजलकुण्डिका विशेषतो भवनं भासयन्ति। समयेऽस्मिन्नविगणय्य कमलिनीसङ्कोचशोकं रोलम्बकदम्बेनारब्धा मंकृतिरनुयन्ति-

1 पिचकारी।

द्रयम्। आमोदिना तेन दिशः प्रसेदुः। जन्मभूमिव सौरभस्य प्रभवमिव पद्मिन्याः कमला-भवनमासीत्।

अथ शिवनमोदतायां सलतकूर्दतायां हसितहसतायां क्रमशः शान्तायां सर्वेदिन-व्यापेषु शान्तात्तेषु गुणेषु निशिखेऽप्येका नीरवता परितः प्रासारीत्।

मनोरमा हर्म्यस्य कोणं कोणं साशङ्कं पश्यन्ती गतोपक्रमलम्। सा च सत्वर-मुत्थाय कुचभारसन्धराऽऽक्रम्यमाणेव विपुलेन जघनस्थलेन मन्दोदरी परपर्श पाणिं सस्मितं कुङ्कुमारुणेन कराग्रेण।

एकस्यां भित्तिमञ्जूषायां कावगुह्यो निर्कट थावर। मनोरमयाऽऽहूय जलेनापूरि। [illegible]। उभयतो कलशा निरगच्छन्। द्वयोरपि कलरवसणत्कारं श्रुत्वे-तयोः निशाम्य तस्मिन् महोत्सवे शतगुणितोत्साहेन संयुक्ताः। चिरं केलि बभूव। तेनामुना हरिभावशोकेन वर्णदेव परिमर्दितं प्रतीयते स्म।

ततस्तः कार्यं समाप्य कमलाभवनतो विरम्यतमेव विचारमग्नोऽधोनेत्रः सत्वरं [illegible]। प्रासादस्य मधुकरशैष्यचतुर्द्वमस्य मधुपतो दिग्गुणयन् सुगन्धिजलं प्रसारमासीत्, तस्मिन् स्मरन् कृष्णेन स्थितिं निवारितवान्, किन्तु सखीनामट्टहासेन तस्य [illegible]। एका सखी सस्मितमाह—"लीलैव सिंहहन्तारोऽद्य [illegible] विकल्पना शान्ति" अपरा च "दूरस्थोऽयं वराकोऽद्यप्रभृति दोलोत्सवे पर्वणि उन्मनायते [illegible] अभिमेयोऽय"मिति कथयन्ती जलनिर्गमं अर्गलयत्। [illegible]। क्षणेनैव कलेशो दिग्गुणितः। इतस्तिर्यक्समट्ट इव [illegible] निरतं [illegible]। [illegible] झटिति विसर्तुं [illegible] [illegible] प्रवर्तिताः।

किन्तु मनोरमा तं [illegible]। तदनन्तरं [illegible] विदूरिव [illegible] सुगन्धेन [illegible] तस्य [illegible]।

"[illegible] ।"

"[illegible]"

"[illegible], [illegible] मान्यपूर्वदेवा [illegible], मद-[illegible]"—[illegible]।

शष्प्खाकृतयो रामणीयकमहोदधेरारामस्य हरिताः कम्बव इव भ्राजन्ते। सान्द्रा
पुष्पाः प्रतानिन्यः प्रचण्डांशोस्तापं प्राप्त्यः प्रतानव धर्षयन्ति। क्वचन
क्रौञ्चाः केङ्कारं कुर्वन्ति, क्वचन च केकिन उत्पतोत्पातरेकां केकाम्। क्वचन
क्वचन कोकिलकाकली, क्वचन सारसरसितम्, क्वचन हंसविहरितम्, क्वचन
काणामेणकानां वल्गितम्, क्वचन पुष्पवल्लीसमाच्छन्नपादपनिलयेषु पारावतघुघुर
गुञ्जन्मधुलुब्धमुदितमधुकरनिकरझङ्कारः, क्वचन खेलच्चटकचुङ्कारः। चन्द्रिकावर्णै
जलजातजलजव्रजा विमलतला नात्यगाधजला सुदीर्घा दीर्घिका
पार्श्वपादपपूरं हरितयन्त्याकर्षयति मनांसि। निशासु तारागणप्रतिमूर्त्या
भ्रान्ति यस्या नीरं कामिनीशिरःपरिमलपरिमलितं सौरभसौन्दर्यसंसार इव
इव रजतद्रव इव प्रतीयते। नागवल्लीदलधनुराकारासु वेदिकासु
काव्यभुवीव शोभमानायामुपवनभुवि क्रमानुसारिक्षुपविटपन्यासैर्विलसति
पादकन्दुकपाणिकन्दुकक्रीडनाय रम्यदूर्वैः प्रदेशश्च।

फलास्वादलोलुपा विदेशीया अपि कलविहारिणः पक्षपुटपूतपादप्रान्ताः
प्रचुरं प्रेक्ष्यन्ते, हारिणो हरिणाः, विविधदेशासादिता बिलेशयाः, कौशलेन
चित्राणि च। मध्ये च नवनीतमसृणधवलशिलं गवाक्षाक्षैर्जगति स्वसमत्वमिव
माणं राजोचितसम्भारसम्भृतं विशालं बहुशालं हर्म्यम्, यत्र धवलोन्नतपाषाणस्तम्भेषु
वल्लर्यः शिखिनो निष्णाततां निश्चाययन्ति। कौशेयनीलास्तरणास्तृतमिव
समानदूर्वं सखीजनैः प्रणयप्रक्षिप्तशुभ्रकुसुमं तारकितं वियदिव क्षेत्रम्।

समस्तशास्त्रकलाकुशलया गानविद्याविज्ञया साहित्यार्थशास्त्रनिष्णातया
शिक्ष्यमाणा धनुषा भुशुण्डिकया लक्ष्यवेधने, करवालफलकमर्यादासु,
धावने मरुत्तरवाष्पयानादिपरिचालने कुशला कमलाऽत्रैव निवसति।
कस्तूरिकाकुङ्कुमाञ्चितरसोद्भासुरलक्ष्मटा कदाचन कनकवल्लकीमादाय

आच्छादयन्ति स्म सुधासमीरणस्तुषारऽरवोऽपि स्मरभव।
वरारोहाया नितान्तं नवीनं वयः, विधुनेन्दुसमद्युति मुखे यौवनाम्,
लोचनलोभनीयां छटाम्, तिरस्कृतविकसितोत्पलविलासे।

माने चतुरी अचाक्षुषं हृदयवेश्मानन्दं प्रति सस्पृहे, कुचावपि कस्यापि सुकृतिनः समालिलिङ्क्षिपयेव प्रत्यहमेधमानमहोत्साही, वलीभासि मध्यं कस्यापि सुभगस्य सोपानं बुभूषदिव, काव्यकलाकलापालापज्ञातरतिसर्वस्वं, निरन्तरगाननिरतं मनोऽपि कस्यापि मनस आधारीबुभूषदिव भुजलते कस्यापि गलान्दोलनाश्लेषकामे इव चपले, तथापि नाधुना मारप्रवृत्तिरज्ञातप्रणयतत्त्वाया एतस्याः। सात्त्विकीमेवावस्थां भजते यतः सा।

* * *

अथ प्रौढमनोरमेव कुचमर्दनेन संकुचितशरीराऽभवद् यामिनी। विप्राश्च शब्दश्लेषैरखोत्थ अह्नु विभावर्याः। भ्रमणवीक्षिताश्चर्यचर्यामिव कलरवं कुर्वति पक्षिसमूहे दिनेशागमनतः प्रागेव, अन्धकारधन्नरमणजिहीर्षति शोणितकिरणेऽरुणे, उत्थानवेलामिव विज्ञपयति धाराधरदमासयोः शीतशीते प्रावरणवरिपूत इव विमल-विमले, कुसुमामोदमादायैव धीरे सरति समीरे, उन्मुखमुग्धकामिनीचूडामणिप्रभापरि-भूतेष्विवलीयमानेषु नक्षत्रेषु, नास्मानन्धकारेण सदैव संहरेत्सूर्य इति भयेनेव कमलकोशिपुलकमुखेषु भ्रमरेषूदियतोऽभिषेकोत्सवसूचकच्छ्युत्लक्ष्यतेऽभिनादः।

अगरुनिकरविशोधनपरिपूतं, परिमलराधःपरिषिक्तं सुरभिसुगृहीतमल्लीस्तलसी-दारकेऽवंभ्रमरैः कृतभ्रमणं संस्मरणं स्थिरयति पश्यतां चेतः। सुधासारसंक्लिष्टभित्तीनि पताकास्तवनपूयमानप्रान्तानि भ्राजन्ते निशान्तानि।

राजनगरमेव वस्तुतो राजनगरम्। कुमारश्चन्द्रोऽद्य युवराजपदेऽभिषेक्ष्यते। यस्मा-दरात्प्रभृत्यग्रान् स्त्रीषु प्रतिष्ठिताश्च गायन्त्यो मङ्गलं कामयन्ते कामिन्यः, वत्सीर्य-कार्याणि विरचयन्तो वरान् ब्रुवन्ति विप्रवरेण्याः।

राजभवनञ्चाद्य महेन्द्रभवनमपि परिभावयति। सम्मुखे चास्य द्वात्रिंशत्स्तम्भेषु विविधरागमरकतरचितं वितानञ्च मुहुर्मुहुरुत्कर्षतिनेत्रम्। अभिवितानं दोदुल्यमाना मल्लाः सुमनसो मल्लिकी च शौरं तर्पं तर्षमन्दीपास्ते। परितो राजभवनञ्च शरत्तरञ्चकरञ्चितचारिता भक्तिः समर्प्या

त्रिभुवनदमयचलारे

विद्युर्ते, म

हरणमापदां, परं

भ्रमद्भ्रमरगुञ्जनमपि विभाव्य विक्षिप्तनयना वृत्तिभुजः प्रहरिणोऽपि तन्द्राभिभूतचेता मध्येमन्दनिद्रं श्लिष्टभित्तयः पतन्तो जागरणं लभन्ते ।

परितो रम्यपुष्पवाटिकं विशालमदो भवनम् । द्विपदशननिर्मितविचित्रचित्रकवाटानि शोभन्त आवासभवनानि । अभिभित्ति स्वर्णपरिवरणानि, भित्तिप्रतिष्ठितद्विरदन्तपीठ-प्रतिष्ठितानिः महान्त उत्तेजसो भूयांसो मुकुराः, उपर्यर्पितश्वेतशोणितहरितानि काचभाण्डानि वल्गर्यो विटपाः शोभां संवर्द्धयन्तोऽवलम्बन्ते । येष्वगुरुघनसारगर्भो दीपाः सौरभेन सह प्रकाशन्ते । अभितो भवनं देवानां, अनुकरणीयचरितानां प्रतापप्रभृतीनां राज्ञां सजीवानीव चेतोहराणि चित्राणि । मणिमयमुष्टिकास्वलमारीषु विस्तृताच्छादनानि सुगन्धिद्रव्याणि घ्राणं तर्पयन्ति । नागदन्तेषु शुकपिकसारसानां सौवर्णानि गृहाणि निपतत्सुधामयूखमयूखैः राजतानीव प्रेक्ष्यन्ते ।

अथ पवनपथपार्श्वप्रसुप्तां, तन्मुखमयूखजितचन्द्रेणेव द्विरददशनेन निर्मितचतुष्पादे गगनापगापयःफेनपटलायितप्रशस्ततूले, चित्रितकौशेयोत्तरच्छदे सोपबर्हे, पद्मामिव पुण्डरीक-पटले, वरटामिव हंसपक्षती पल्यङ्काङ्के शयानां ददर्श कमलम् । कमलामुखचन्द्र-तन्मुखसुषमां निपीय नृत्यन्ती चन्द्रिकाऽपूर्वां छविं चित्रयते स्म । मुकुरेषु कमलाप्रतिकृतिः प्रकृतिं विकुरुते स्म । रक्ता कौशेयी शाटी तस्या अङ्गमाश्लिष्य सुप्ताऽऽसीत् । सहसैव पादध्वनिनोन्निद्रिता न्यक्कृतामरकामिनी कमलोत्थाय झण-झणायमानभूषणं स्पृष्ट्वा करेण प्रियसखीं प्रियोदन्तप्राप्तिप्रहर्षरुद्धकण्ठा वक्तुमसमर्था सुधाविनिन्दकेन स्मितेन पूजयन्ती, मृणालकोमलाभ्यां कराभ्यामाकृष्याऽऽसन्दीं तत्रोपवेशयन्ती भित्तिमञ्जूषातः सौवर्णीं पेटिकामेकां निःसार्य तत्र धृतानां पूगानां शंकुल्या शकलानि विधाय एलागुरुवरकर्पूर-जातीपुष्पकेसरमृगमदसहितं विरचय्य नागवल्लीदलं वीटिकां स्वहस्तेन ददती "कथय मनोरमे ! क उदन्तः" धीरतां विहायावोचत् ।

"धैर्यमावलम्ब्य सर्वं सूचयामि"—

इतः समायाते शरदवसरेऽहमेकदा तस्य वागस्थानं भूतावासमगच्छम् । मया द्वित्रैर्दिन-निर्णीतं यत्पञ्चजनाः कदाचन सिद्धेश्वराश्रमे बहुशश्च भूतावासे वसन्ति । स्थान-न्त्विदं रमणीयं परं भयानकत्वाद् विरलतां प्रपन्नमासीत् । पुष्पिताच्युतात् पतद्भिः शलभ-लोक्यतेस्म । अहं सोपानेन द्वितीयभूमौ गत्वा एकमावासगवाक्षमाश्रयम् । एतस्मिन्

ोहमथ द्वित्राणि पुस्तकानि दैनन्दिनी, समाचारपत्रं मसीपात्रं लेखनी चासीदेक-
स्मिन् कोणे च शयनस्य व्यवस्था। अहं क्षणेनैव सर्वं वीक्ष्य दैनन्दिनीमादायापठम्।
ेषा दैनन्दिनी मासचतुष्टयेनारब्धाऽऽसीत्। स्पष्टं प्रतीयतेऽस्म यल्लेखकेन मासद्वयस्य-
वृत्तमेकस्मिन् दिनएव लिखितम्। इतरमासद्वयस्य च वृत्तं प्रतिदिनं विस्तरशोलिखित-
मासीत्तस्य सारोऽस्ति यदसौ राजनगरस्य राज्ञोनवेन्दोः पुत्रश्चन्द्रोऽस्ति, सोऽस्मि
यौवराज्याभिषेकदिन आखेटार्थं सिंहपृष्ठानुगामिनः सदाश्वस्यास्य नद्यां पातोजातः।
दिनत्रयानन्तरं चायं नदीप्रवाहात् सिद्धेश्वरेण निष्कासित उपचरितश्च। अत्र लेखकेन
सर्वातिशायिनी श्रद्धा सिद्धेश्वरे प्रकटिता। उल्लाघेन विमलपुरेक्षणाय समागतेनामुन
सिंहात्तव रक्षा कृता। अत्र लेखकेन त्वयि शब्दसौष्ठवं प्रयुक्तम्। धानुष्कपरीक्षाय
समुत्तीर्णतानन्तरं प्रतिदिनमनेन दैनन्दिनी लिखितेति "अद्य" "अद्य" शब्दैः प्रतीयते
एकं प्रतिज्ञापत्रमपि महाराजहस्ताक्षरैरङ्कितं तत्रैवासीद् यस्मिंश्चन्द्रेण सह त
विवाहस्य पण आसीत्। एषु पत्रेषु लेखकेन स्वस्या विपत्तेर्विशदं सजीवं विवरण
मलेखि येन मम लोचनयोर्वर्षर्तुराविरभूत्। अनुकूलमाहि तव हृदयं विचार्य मम मन
आनन्देन पूर्णम्। उत्कण्ठास्थानं धैर्येण धृतम्। आशया स्वर्गसुखान्यनुभूतानि
कम्पता करेण मया तत्रैव पुस्तकं न्यधायि। सोऽयं, यस्य त्वं दर्शनात् प्रागेव भूरिभूरि
प्रशंसामाकर्णितवती, यस्य च वीरतां लाघवञ्च बहुशः प्रेक्षितवती, दैवेन तव पाणिर्यस्य
कमलकमनीये करिकरकठोरे करे दातुं स्थिरीकृतोऽस्ति, यस्य च चरणयोराराज्जीवन-
सर्वस्वं निधाय तत्स्वेदस्वेदबिन्दुवृन्दविदलनस्पृहा तच्चरणरेणुजिघृक्षा च त्वां चपलयति स्म,
यमुद्दिश्याज्ञातप्रवेशोऽयं स्मरोऽसूर्यम्पश्यां त्वां विकरोति, स शुद्धमानसपरिचितस्ते
भावी भर्त्ता चन्द्र एव शशधरोऽस्ति" इति।

प्रेमाश्रूणि स्रावयन्ती बाष्पावरुद्धकण्ठा कमला च तां सप्रेम आलिलिङ्ग।

* * *

ऋतुरयं वसन्तः होलिकोत्सवश्च। स्वच्छंनीलमम्बरम्। नातिशीतोष्णो वातस्तनुं
सुखयति। बहवो महता प्रयासेन जगत्तमोऽपहन्तुं प्रयतन्ते। राजेवाकृतकार्यान् विज्ञाय
सैनिकान् धृतकाश्मीरवर्णवेशोऽशेषन्तमोऽपहन्तुमुपस्थितश्चन्द्रः। राजतैर्वाणैरिव किरणैर्हेलया
नाशितन्तमः। विचकास तेन मनोमोदयता विजयेन धन्यवादमिव वितरद्धसदिव

"देवस्य यथा देव्या अप्ययं मानकृत्। देवेनोक्तं यदहं कमलां सूचयिष्यामि, भवत्स्वे कार्ये विलम्बं मा कृथाः।"

"हुँ, अहमपि शुश्रूषे इदमावश्यकं कार्यम्, नो चेदानिः।"

"किन्तु"—इतस्ततो वीक्ष्य चन्द्रेणोचे।

कमला—(परितःप्रेक्ष्य) एकान्तम्।

शशधरः—(सर्वासु गतासु) अद्य चरेण समदेशि यद् राजेन्द्रपालो विमलपुरविरुद्धमेकं महत् षड्यन्त्रं महतीं सेनाञ्च सज्जयति। प्रबलः पराक्रमशालिसैन्यसंघश्च। स यद्याक्रंस्यति, निश्चितं सुन्दरतमस्य कलालयस्य विमलपुरस्य विनाशः सम्भाव्यते पराजयश्च। तत्र देवस्येच्छा वर्त्तते यत्कोऽपि वीरवरस्तत्र गत्वा रहस्यमुद्भेद्य तत्कार्यं विघटयेत्। सम्भाव्येत चेत्तत्रैव युद्ध्येत च। कार्यायामुष्मै अद्यैका सभाऽभूत्। प्रस्तावे प्रस्तुते न कोऽप्यग्रेसरो बभूव। महाराजो मयि चक्षुः प्राक्षिपत्। अहं सगौरवं समादियमाणः सत्वरं प्रतिज्ञातवान् यत् श्रीमतामाशिषा कार्यं साधयित्वा प्रतिनिवर्त्स्ये।"

कमला—(साश्रुनयनेव) नहि नहि, राजेन्द्रो मायावी दुष्टश्च। तत्र गमने मामकीनं मनो विक्लवतां भजते तत्र गन्तुं नाहमनुमोदयिष्यामि। इतः सम्प्रत्येव पितरौ सर्वथा विस्मृतौ, अधुनाऽवस्यन्तौ क्लिश्यन्तौ स्तः। मुधैव समयं व्यतियापयसि। यदि हृदये स्वलीयस्यपि पितृभक्तिलवस्तं पूर्वमिदमेव कर्त्तव्यम्।

शशधरः—दुष्टदलनाशकृतसङ्कल्पः क्षत्रियः क्वापि कातरतां न भजते।

कमला—किं कथयामि, अनभ्रवज्रपातेन विमूढास्मि, चेतः शिष्टाचारमपि ध्वंसयितुमिव यतते।

शशधरः—कथमद्य वैलक्षण्यं वाचि।

कमला—श्रीमन्! अहं ज्ञातवत्यस्मि यत् श्रीमान् राजनगरस्य युवराजः। किं महाराजोऽपि रहस्यमेतद्वेत्ति?

शशधरः—कथं भवती वेत्ति।.....

कमला—श्रीमतां दैनन्दिन्या.....

शशधरः—आः कष्टम्। नहि, नास्ति साम्प्रतमावश्यकता।

कमला—कतिदिवसानां कार्यम् . .

—वर्षेण, मासेन, पक्षेण, सप्ताहेन, युगेनापीति तु को जानीते।
आगमने त्वरानुष्ठेया नो चेन्माधवीलतेव तिग्ममहसा, वियोगेन दग्धा
कर्मवल्लरी कथावशेषा
यतिष्ये।
माधीरता मां मुष्णाति। जगदीश्वर एव रक्षकोऽधुना। देवो देवाय

*　　　　*　　　　*

रा एव सुवासितानि पुष्पवस्त्राणि समादाय राजकीयरजकः सत्वरसत्वरं
ः, पुरोदेवः प्रमाणम्" प्रणिपत्य चरेण स्वाध्यक्षः समदेशि।
त्वा तं कथय यदद्य सर्वे रजका राजभोजनमाप्स्यन्ति त्वमस्माकं
ः, सत्कर्तुं राजप्रासादे निमन्त्रितः। समये द्वितीयकक्षायां समागच्छ"
देशि।
ः समये परिमलसमाकृष्टलोकः प्रकल्पितसुभगनेपथ्यः करकर्पटेन पटुतां
रयन् रथ्या भित्तीश्च सुगन्धयन् राजभवनबहिरजिरं प्राप्तो द्वितीय-
। "एहि एहि चिराद् दृष्टोसि, आगच्छ उपविश" इति वदति विभागाध्यक्षे
विशत्।
सुगन्धिद्रव्यं कुतः समानीतवानसि, कुतश्चेमानि महार्हाणि वासांसि"
तमपृच्छत्। रजकस्य स्वकीयानि वासांसि नासन्, स पृच्छामात्रेणैव
विशो म्लानाङ्गः संवृत्तः।
साहसिकानां भीरूणि चेतांसि। अयन्तु सहस्रप्रश्नखिन्नः खिन्नो मुमूर्षुरिव
न्द इव वियोगिनिवहे सूर्य इव तमःस्तोमे सिंह इव गजव्रजे, विस्फूर्जद्दुरित-
र इवापीरपारे आवर्त इवाम्भोधौ, ज्वर इव प्राणिनां काल इव देहिनां
समेध्यति निस्तार्कमविन्दन् भाययन् विशेषां मनांसि। परमयं ज्ञापको-
रिति चिन्तयताऽध्यक्षेणोक्तम् :—
कथं शिथिलायसे।
सन्, नाहं वेद्मि यदेतानि धीमतां वासांसि, प्रातरेव कमलोपवनदारी

मामाहूयाह "यदमूनि वासांस्यधुना प्रक्षाल्य देयानि।" राज्ञो भवने न सर्वदा भुज्यते मह-सौभाग्येनैतत् सर्वदिनं दृष्टमिति विचार्य अहं तमेतद्वासो विदित्वा रजकसमाजः परिव-गतोऽस्मि। सोऽहं देव! अज्ञानेऽपराद्धा सकृत् क्षम्यः।

स च विकम्पमानो वस्त्राण्युत्तार्य "नहि नहि मा भैषी" रित्युक्त्वा स्वसन्दुल्ले सत्कृत्य भोजयितुं नीतः।

*　　　　*　　　　*

"प्रभो, न माने...कोऽपि विदस्यामुग्धाकृतिरसत्परिचयो मा स्थासीः श्रीजनेन्द्रो-द्यानस्य समीप" मिति बहुशो वर्यमाणो विभो मां भाययन् भूतावासं प्रविशति। स कुत्र मज्जति शेतेऽस्ति, भ्रमतीति किमप्यहं न जाने। अज्ञातमनवद्यस्य साह्यं मानवधर्म इति कृत्वा तस्य वस्त्रप्रक्षालने साहाय्यं कृतवत्यस्मि। क्षन्तव्या नागरकीर्तिनी भवच्चरणसेविनी" इति।

अथ लोलकनीनिकामुद्यानमालिनीं कोट्टपालहस्ते समर्प्य सशस्त्रसैनिकानाज्ञापयत् सुप्तं भ्रमन्तं भक्षयन्तं वा तमानेतुमिति।

"देव, आज्ञया वयं भूतावासं गत्वा गिरिगुहासुप्तं केसरिकिशोरमिव सन्दर्श्य नरव्याघ्रं प्रेक्ष्य तत्प्रभावपरिभूता मूका एवाकृतपादध्वनयः प्रत्यावर्तिताः। देव, सोऽयं राजेन्द्रपालविजये कृतप्रतिज्ञः शशधर एवासीत्। देव, कोनाम यमेन रमेत, भुवनभयङ्करं कालाहिं करेण कलयेत्, कोमूढ उल्लोलसहस्रं हिंस्रसङ्कुलं पारावारं प्रविशेत्, मत्तगजेनाजिं रचयेत्, बुभुक्षितं सुप्तं पञ्चाननमुन्निद्रयेत्, अतोऽविदितस्वभावमनघा-स्मो विगतनिद्रं कर्तुं"मिति, सैनिकैर्न्यवेदि।

"आः गेहेशूरा भीरव औदरिका अपसरत जाल्माः" इति क्रुद्धो गुप्तचरविभागा-ध्यक्षोऽग्निकोट्टपालं व्यक्षिपत्। स च मनोभावं ज्ञात्वा, गत्वा च तत्र विशदाम्बं सूर्यातपतप्तमपि सुरभिपुष्पपवनवीजितमासाद्य भूतावासं शून्यं पर्यङ्कं पत्रेषु लिखितां गीतिं, दैनन्दिनीं चर्मपेटिकाञ्चाप्त्। स च सर्वां सामग्रीमादायाध्यक्ष-न्यवेदयत्।

अध्यक्षश्च सर्वाः सामग्रीः सूक्ष्मेक्षिकया प्रेक्ष्य संक्षिप्तविवरणेन सह मन्त्रिणः समीपं प्रेषयत्। मन्त्री चापरेद्युः महाराजमुपगम्यास्य—

"क्षमस्व देव, नरेण पादोऽपि विचार्य क्रमणीयः। अविचारो ह्यसंस्कृतशरद्-भञ्जनम्, अनभिपातं दहनम्। अलक्ष्म्याश्च निधानम्। विचारो हि भूमिर्यशसः श्रिया जीवनस्य मर्यादायाश्च। युधिष्ठिरप्रभृतयः प्रमतयः पुरा किल विचारेणैवाध्यासयामासुराज्यम्, अविमृश्यकारिणो कृते सतोषं जोषं विदधुः। महाराज, यस्य पराक्रमोपक्रमं, सौन्दर्यसम्पत्तिं बुद्धिवैभवञ्च श्रावं श्रावं हृष्यन्नास, येन सह स्थिरीकृतः कमलाविवाहः यस्मै तिलकोऽपि प्रेषितः, यस्मै महीमहेन्द्रेण न्यक्कृतपरसपत्नवर्गेण, प्रगे स्मरणीयनाम्ना, हिरुहुणाचारेण तप्यते दिवानिशं महाराजनवेन्दुना, श्रूयते दोकल्लोलमावदन्ती यस्य जननी नितरां क्षीणा, सोऽङ्गुलिनिर्दोर्मिकेव न लक्षितो न-विदितः, पादाभज्वलन इव न कार्ये कृतः। स एव वीरवारवर्णनीयवीर्यस्य राज्ञो नवेन्दुवर्मणः पुत्रो विकाशिशारदशर्वरीश्वरमुखचन्द्रः शशधरत्वेन राजपुरवासित्वेन प्रकाशितमपर्यं वचनरचनया तिरोदधद् राज्यकार्यं प्रसाधयितुं राजेन्द्रपालपुरं गतः। पश्यतिदं श्रीमल्लिखितं प्रतिज्ञापत्रं गीतिश्च शशधरनिबद्धा।

हरसिद्धियात्रा
उज्जयिनी निवेशः

जगद्वितृतयशोराशेर्नवेन्दुपालस्य महनीयमहिम्नो रामपालस्य चाद्यतनः प्रस्तावः परमप्रमोदास्पदं सम्पद्यते। श्रीमतोः सन्तत्योश्चन्द्रकमलयोश्चन्द्रसूर्यौ यावत् परां प्रीतिं प्रकाशयतु गुणोत्कर्षः। समये विवाहसूत्रसूत्रितं युगलमेतत् स्वर्गेऽपि न वियुज्यताम्; युज्यताञ्चामुष्मा विद्यया, कलया, श्रिया, सम्पदा यशसा। पूरयतुचे मां प्रतिज्ञां परमपावनः परमेशानः।

विषयममुं प्रमाणीकरोति—
रामपालः।
विमलपुरम्
नियमनं स्वीकुरुते नवेन्दुपालः
राजनगरम्

रघुनन्दनः—
कुलपुरोहितः
अक्षयतृतीया
१९८०

पुष्पाप्यमन्दमधुरं मकरन्दमूरु
निष्कासयद्भिरभितो विकचैः पयोजैः।
पद्माकरेश, नलिनी चलमीपणाभ्यां
भोग्या न मानिभिरियं भ्रमरैर्जलेभ्यः॥
सम्मान्य मान्यमहिमाखिलधारिणोऽस्मान्
दद्याच शिष्टिमुपभोक्तुमनात्तकामान्।
गुञ्जन्त ईश गुणिषु प्रगुणान् महात्मन्
गायन्त आजिषु भटानिव गाथरामः॥

अवासः	चन्द्रः (शशधरः)
विमलपुरम्	राजनगरम्

"अये, किं शशधर एव चन्द्रः" सोत्कण्ठं राज्ञोचे "हन्त हर्षो हर्षो [illegible] सम्भावितमप्येतदेवासीद् यदयमयं कस्यापि राज्ञः पुत्रः, परन्तु [illegible] एव नाधिगतः। किन्तु अमात्य, कष्टसाध्यमिदं कार्यं, परमो मायावी च [illegible] सुकुमारो नवीनवयाः कुमारः किन्तु करणीयम्।

मन्त्री०—नात्र विचारणा सर्वं सुसिद्धं वीरवराणाम्। [illegible] कान्तारमध्यवर्ती सहाय्यमान्ये प्रेरयिष्यन्ते।

आनन्दोदधौ हर्षोत्कलिका उत्पेतुः। निमिषमात्रेणैव [illegible]। [illegible] [illegible]। राजापि कमलाप्रियमस्वी [illegible] [illegible]।

*   *   *

[illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

१ [illegible] ([illegible]) २ [illegible] ([illegible]) ३ [illegible] [illegible]। ४ [illegible]। ५ [illegible] ([illegible])।

तत्प्रेर्यमाणमिवास्ति यद् यात यात्रिकाः? दूरत एव यात, एतस्माद्भूवर्द्धनेन पृथिवीसमात्कूपादन्यथाऽन्धकारान्धीकृतान् वोऽयं कृपणदशोऽद्रक्ष्यति। पार्श्व एवैकः पादपो विपद्ग्रस्तेन कूपेन सहानुभूतिं प्रकटयन्निव स्थाणुभूतः स्वशरीरमपि चिन्ताचितायां चिचाय। तस्य महता प्रकाण्डेन सूच्यते यदयं कस्मिन्नपि काले शालशाखाभिर्विशालो भवेत्। तस्यैका शिफा कूपकुड्यं विदार्य निर्गता तेनात्यन्तिकं प्रेम प्रकटयति। कूपो मूलदत्तेन जलेनैनं, पादपः स्वसच्छायया चैनं—एवमेतौ क्वापि परस्परं सुहृत्सम्बन्धावास्तां परन्तु सम्प्रति द्वयोरेव दशाऽतिसारकिणः क्षयिण इव चिन्त्या। अन्तः[1]चर्मचटकाश्चरचरायन्तेस्म। [2]वरटानां तत्र बहु बलमासीत्, अन्तर्भित्तिषु तेषां छत्राणि महत्या संख्ययाऽऽख्यायन्तेस्म। ते दंशेन कालपाशेन यमदूता इव विश्वविश्रुता आसन्। केऽपि तेषां निर्गमनसमये तस्य पार्श्वतो न ढौकन्तेस्म। एतेषां सातत्यवासात् पथिकैरयं प्रदेश एवापहृत आसीत्। [3]पतङ्गिका वराक्योऽपि तेषां मध्ये दन्तेषु जिह्वेव यथाकथञ्चिन्निर्वहन्ति स्म। अथ पारावतपुङ्गवा नितरां प्रसन्ना आसन्। कूपकुड्यकृतकुलायानां तेषामनवरतगुञ्जारः सर्वां काननस्थलीं मादयति स्म।

विश्रृङ्खलानि शिलाशकलानि सम्प्रत्यपि पान्थविश्रमाय विस्तृतान्यासन्।

एकः पथिकः शङ्कितचित्त इव कमपि कोणेऽन्वेषयन्निवेतस्ततो वीक्ष्य वस्त्र-फट्कारेण शिलामेकां विशोध्य कूपवेदिकायामुपविष्टः। मुखात्पतता स्वेदस्रजेन प्रवेगं प्रचलता श्वासेन चायं नितरां श्रान्तः प्रतीयते स्म। समुपविश्य स्कन्धावलम्बिनीं कन्थामेकतः संस्थाप्य पुनरितस्ततः प्रेक्ष्य शनैश्शनैरस्फुटं[4] नदितुमारेभे—

बहुभिर्वर्षैरेतस्य कान्तिसिंहहतकस्य साहाय्यमाचरामि, परमयं दुष्टः केवलं प्रबलमेव मानयति, तस्यैव गाथां गायति। तस्मा एव गूढरहस्यमाख्याति। तेनैव मन्त्रयति। अहह!! दुष्टेनामुना कमलया विवाहः प्रतिज्ञातः। अहो! कथमिवैनं दुष्टं रङ्कं कुलीनाऽकुलीनं राजकुमारी ध्वंसकं वृणीताम्। हन्त! येनानेन निर्दयं स्वपितापि परलोकपथं प्रापितो विषेण। स्वस्वामिपुत्री सरोजिनी भगिनीनिर्विशेषाऽपि दुर्नैर्वीक्षिता। समस्मिन् राज्ये चापूर्वं[5]यशः प्रसारितम्।

---

१ चमचेड। २ टांटिया (पीतभ्रमरः) ३ तितली। ४ (बड़ बड़ाने लगा—)
५ अः पूर्वं यस्य तत्=अयश इतिभावः।

अत्रापि निष्करुणं लुण्ठिता बहुशः। सतीनां सतीत्वेऽप्यसदाचरितम्। सोऽयं दुः क्षत्रियहतकः कस्य कस्य सुखे भङ्गं विधास्यति। आनन्दोत्फुल्लमुखान् कांस्कान् दुर्दिननि आशाभव्यभवनेषूपविष्टान् कांस्कांश्चूर्णयिष्यति। प्रेमपयोधौ सन्तरतः कांस्कान्निमज्ज यिष्यति। परन्त्वहमप्येतस्य कान्तिसिंहहतकस्य पितृव्योऽस्मि। सुखं दर्प निद्रयिष्यामि। तस्य शय्यां, यां पुष्पसुकुमारां मनुते, कण्टकाकीर्णां विरचय्य तस्य मनोरथं व्यर्थयिष्यामि। अधुनाऽहमपि प्रतिजाने। कमला कान्तेरङ्कशा न भविष्यति न भविष्यति। किं कान्तिसिंह एव सौन्दर्यसम्पत्तिमभिलषति। वयमपि वाञ्छामः, नहि वयमेव वाञ्छामः। अथैवास्वादमास्वादयतु दुष्टः कान्तिसिं एतस्य लालसाद्रुमस्य। प्राणानविगणय्य, अयशः प्रसार्य, कुत्सीतिमभिसाधस्व, मर्यादां सम्मर्द्य व्यंसकतां व्यसनीकृत्य यस्य कार्यं साधयामः, स केवलं स्वसुख एव सर्वोऽन्य पश्यति, तदास्माकमपि कर्त्तव्यं यद्वयमप्युचितं विधास्यामः (सम्मुखमवलोक्य) अधु अधुना वीरवरप्रबलौ समागच्छतः सावहितं तिष्ठामि। (तयोरभिमुखं) मया विचारितं बहुसमयो भूतः, अद्य नागमनं सम्भाव्यते।

वीर०—साधु। किमस्माकमपि कार्यक्रमः परिवर्त्तते। अपि सूर्यसिंह! देव समायातः?

सूर्य०—नहि। अधुनायावत्तु तेषां सूचनैव न समागता।

प्रबल०—तेऽपि समायाता एव। उपविशन्तु क्षणं श्रममपनुदामः।

एते यथा कन्थासुतार्थोपविशन्ति, तथा कान्तिसिंहोऽपि समायातः।

इतश्च कमलवदनां पाटवं प्रेक्षितुकाम इवातन्द्रश्चन्द्रोऽप्याकाशं विभासयामास।

प्रबलपरिशोधिते कूपशिलातले स्थितिमता कान्तिसिंहेन तेषां बभूवुरालापाः—

प्रबल०—तद्दिने तु देव। अस्माकं कार्यमल्पेनैवायासेन सिद्धम्। वीरवरस्य दुष्ट सम्भवश्यस्त्वेवं लब्धो यत्तत्रत्यो राजकुमारोऽसूचयित्वैव कारीत आसीत्। सर्वे प्रहरिणश्चेतस्ततो व्यग्राः समासन्। प्रचुरो रात्रः प्राप्तः।

कान्ति०—परतश्च यदक्षरं तत्कृतवानसि किम्।

प्रबल०—अथ देव! कानिचिद् भूषणानि तु वीरवरस्य मातुल्यैव प्रचुराणि दत्त

---

१ असहित्वा—आकारगोपनम्। २ प्रेमपाम। ३ वेला।

एव। अपराणि च वस्त्रभूषणानि सज्जानि। देव! आनन्दस्य भवद्विवाहदर्शने महतीच्छाऽऽसीत्। परन्तु स वराको विश्वशेखरप्रहारमवसहन्, मृत एव।

कान्ति०—(उन्मना इव) भो नवीन एवासीत्सः। आघातश्च तस्य मार्मिक आसीत्। परन्त्वस्माकं सङ्गे तन्मृत्युना काचन हानिर्नाभूत्। वीर! त्वमपि कृत्यं कृतवानसि।

वीर०—समये ऽहं गतः परन्तु यस्मै कार्याय प्रेरितस्तथा न कृतवानस्मि। दिवासमयः, सतर्का, सास्त्रशस्त्रोभयतः सज्जा गरीयसी सेना। यद्यल्पीयस्यपि सन्दिग्धा दृष्टिर्निपतेत्तदवश्यं प्राणानामेव संशयः, अतः केवलं मदस्यैव ...

सूर्य०—देव! कमलाया शैशव एव स्थिरीभूतो विवाहश्चन्द्रेणेति तु विज्ञातमेव। तदेव! किमर्थं कस्यापि सुखं भज्यते। मुधैव परलोकमवलोकयते। एतल्लोकं कलङ्कायते, परश्शता योषितः सौन्दर्यदर्पे भवच्चरणरेणुं जिघृक्षन्ति; व्यर्थमेव कमलाकाकलीमाकर्णयितुमाकुलीभूताः स्थ।

कान्ति०—सूर्य बहु विमृशामि। सर्वतः प्रथमं मनोरमया सह मत्तवारूढा मृगयां कुर्वती कमला मया दृष्टा। कीदृक् कौशलं कीदृशी क्षिप्रकारिताऽऽसीत्। तस्याश्चिबुकं कपोलपाली, कोमलकोमलाभ्यां कराभ्यां भुशुण्डिकाकलनमद्यापि ममाक्ष्णोः पुरतः स्फुरतीव। तत एव विमुग्धकमलादर्शनेन सुधामवधीरयता मुखेनाहमन्य एव संवृत्तोऽस्मि। चिरात्राय तत्रैव मृगयाव्याजेन स्थितवानस्मि, परन्तु हन्त, पुनः सा दृष्टिपथमेव नोपेता। अहं व्यचारयं मन्मथ दशा सर्वैवेदृशी न भविष्यति, समयेन समासादितप्रसादो भविष्यामि, परमाज्येनाग्निरिवाधिकं एधते। विचारयामि चन्द्रेण सह तस्या विवाहः स्थिरीभूतो, योग्योऽयं राजकुमारो वीरश्च। मास्म कस्यापि सुखस्यान्तरायो भूरिति मानसं मां मुहुर्मन्त्रयति। परं किं कुर्यां तस्याः प्रतिमूर्तिः प्रतिक्षणविलक्षणा स्वप्नेऽपि सम्मुखं न मुञ्चति ....

प्रबल०—(अपवार्य) न मोक्ष्यति च। देव! प्रतिज्ञातं वीरा न परित्यजन्ति। अपि प्राणानर्पयन्ति।

वीर०—देवोऽस्माकमेवैतयोन्यनालम्बते। मया तु कार्यमिदं सम्यग् विचारितम्।

कान्ति०—किमिव... .....

वीर०—मयाद्य श्रुतं यच्चतुर्थ्यां रामपालस्य जन्मदिनम्। अस्मिन्नवसरेऽत्र मिलित्वा भोज्यं मद्यपानादिकञ्च

कान्ति०—सत्यं, (हर्षेण-प्रोच्छलच्छरीरः) अस्माकं प्रयोजनं सुसिद्धम्। क्वचित्कुत्र एतादृगवसरे सर्वे एव मदमत्ता भवन्ति विशेषतो दासीदासम्।

वीर०—आं, तदपि सर्वं विचारितम्। हर्म्यस्योत्तरहरिति विविक्ते कमलावास-स्वप्रपक्षद्वारलोहदण्डे[1] गोधापाशमायोज्य सुखमुपरि शक्यं गन्तुमिति न कश्चन दर्श-दासयोर्भयोद्रेकः। केवलश्चन्द्रचन्द्रिका मां शिथिलयति......

कान्ति०—किं भयम्। अनुनिशीथं गन्तव्यम्। एषोऽवसरः पुन र्न लप्स्यते। सूर्य! तथापि कथनं कस्मा अप्यवसरायोचितं नाम, परन्त्वरे! यस्या यौवनमपेक्ष्य मे हृष्यन्नासं, घटितानेकमनोरथो विस्मृतमानसस्त्यक्तापरकार्यः केवलं तत्प्रदक्षिणायमेवासं सव कमला दुग्धमक्षिकामिव मां दूरं प्रक्षिप्य चन्द्रेण रन्तुमनाः सुखमनुबुभूषति। किं तत्सुखमहं सोढुमर्हामि, नहि नहि

सूर्य०—तद्युचितं विधास्यामः। पाषाणेनैव पाषाणप्रतिशोधं विधास्यामः। यथाज्ञाप्यते तथैवाचरिष्यामः। वीर! कः कार्यक्रमस्त्वया निरधारि।

वीर०—सप्रबलोऽहं तत्र गमिष्यामि। सूर्यश्च प्रासादाद् बहिः समुत्तरो मिलतु। सूर्य![2] वायुप्लवोऽप्यानेयः।

*   *   *

प्रातः पौराः पवमानसेवनाय पुराद् बहिः प्रयान्ति। नगरसीम्नि विशदमधुरजलो विकासिकुमुदिनीविशोभी ह्रदो ह्लादयति जनानां मनः। विमलतरशशीकरशीतः समीरणः, मधुरमधुरं रुवन्तः पक्षिणः, चलद्दलाः द्रुमाश्च निरोजस्स्वपि विनोदप्रमोदस्य भावमापादयन्ति।

अथ राज्ञो रामपालस्य जन्मदिनम्। वर्णाधमीया इतरे च राज्ञः प्रासादे मेलिष्यन्ते, न कस्यापि गृहेऽग्निप्रज्वालः। राजभोज्यसज्जायै सर्वे सज्जन्ते। केवल मज्ञा तिष्ठन्ति।

---

१ चौरा लुण्टाकाश्च भवनारोहणाय गोधायुक्तां रज्जु मुत्क्षिप्य तस्यां भित्तिलग्नायां तदाबद्धरज्ज्वाभवनेष्वारोहन्ति।

२ वायुपूर्णो जले प्लवनतरणसाधनः "लाइफबोट" इत्याख्यः।

इतरे च मासानां क्रमं मलं शरीरतोऽपनयन्ति, अन्येच स्वेदमलिनानि कुवासांसि सुवासयन्ति।

मध्याह्नात् पूर्वमेव कक्षासु जात्यनुसारं सर्व एव समायातुमारब्धाः, स्वासनेषु समुपवेशिताश्च। वेदविदो विप्राः, अधिकारिणः क्षत्रियाः, सुवेशाः विशः शूद्राश्च स्वस्वकक्षासु यथारीति यथाप्रतिष्ठं यथामर्यादं स्वागतसत्काराय राज्ञा नियोजिताः।

दक्षदेशोत्पन्नाया एतद्देशागताया आङ्ग्लदेशीयाया देहिपात्रायाः क्रियाया अत्र प्राबल्यम्। कार्पेटप्रमुखवस्त्रादन्याग्रेभूमिरपि व्याप्तेव प्रतीयते।

क्वचन 'प्रस्फोटन परिपूतं, 'कण्डोलनिरस्तुतमण्डं राजार्हमोदनमद्यते। अन्यत्र राजमोदनं पायसं परिवेष्यते। क्वचन मत्स्यण्डी'मिश्रा 'कूर्चिकाऽऽस्वाद्यते। इतरत्र क्षीर-सारवत्कवूर्णैर्मिश्रा'शमिश्रच्'र्णमभिवर्ण्यते'। क्वचन सुगन्धिद्रव्यैर्भाविता मनोमोदका षष्ठशामधुरा उदारूपं पूर्यन्ते। यत्र 'घशातपुष्पामरिचाश्वगीतदघृता 'घृतापूपा जटाशत् विपन्ते। अमृतकलिका इव जलावलिकाः—मकरन्दबिन्दव इव बिन्दवः'' आनन्दपूरिता ''इक्षापूरिता, भक्तकी'' मुद्ग''माष'' मकुष्ट'' मिश्रा स्वस्वपत्र'' ''धराशिका ''प्रपलाशदध्यन्तीव स्वारस्यासी दाली'' पत्रेम परिवेष्यते। कश्चिद्विजिल'' हेमन्'' धधिदूषदीक'' प्रसत्तं निटान मास्वादयति, क्वचन शुण्ठिका''कृष्णा-'' मिसक'' वेसव'' चरण'' धान्याक'' धन्यं'' शाकवर्ग गस्नलिकया मिल्यते। क्व ''सर्दल'' मुख्येव'' कुपिता पुटेनाऽवलेहिका''मिलते। क्वचन जम्बीरनीरनिर्मिती वेसवरोपगतैराप्यवलेहः सांपुलिकैरास्वाद्यते। क्वचन सारनाला:''सन्धिका अर्धिकाश्च कल'' सर्वेषामपि वर्ण्यन्ते। क्वच मेथिकामर्दित'' रसालदलकलितं स्वादुषलेहन

१ छत्र। २ चावलोंमांसकी मिलावटनेवाला बांदका मिठाप। ३ मालमलाण्ड (सूप)। ४ फ्रौत। ५ खुश्मा वेसलका। ६ सब अरने। ७ सौंफ। ८ मलपूरे। ९ कचौरी। १० बूंदिया (बूंद)। ११ पूरियां। १२ अरहर, १३ मूंग, १४ उड़द, १५ मोठ, १६ दालचीनी, १७ अदरक, १८ छौंकदी हुई, १९ [illegible], २० मोठदर, २१ मखन (छाछ), २२ हींग, २३ राई, २४ पीसल, २५ सौंफ, २६ [illegible], २७ जीरा, २८ [illegible], २९ [illegible], ३० [illegible], ३१ [illegible], ३२ [illegible] ३३ [illegible], ३४ [illegible], ३५ [illegible] ३६ [illegible]

मन्तर्धीयते। क्वचन पुरोगेन पौरोगवेन[1] जनगीयमानं यशो भोजनप्रशंसा श्रूयते। पटोलशाकं[2], कूष्माण्डशाकं[3], वास्तुकशाकं[4], कर्कटीशाकं[5], मूलकशाकं[6] भेण्डाशाकं[7], वृन्ताकं[8], गोजिह्वाशाकं[9], महाकोशातकीशाकं[10], कालिङ्गशाकं[11], कारवेल्लशाकं[12], आलूकशाकं[13], त्रपुषशाकं[14] दीयतां देहि, आनय, अलं, गृहाणेत्येव श्रूयते सर्वतो ध्वनिः। घृतपक्वा गवाक्षफलिनी[15], करीरफलं[16], पर्पटकश्च[17] परिवेषितः—भोजनयज्ञस्य पूर्णाहुतिर्जाता। पचतभृज्जता[18], खादतपिबता, आहरभुञ्जता, हसतमोदता क्रमश उपरता। लब्धावसरा क्षणदा दिनपतिमस्तं विज्ञाय स्वाधिपत्यं तेने। निशानाथोऽप्येकाकिनीं प्रयतमानां प्रियां प्रेक्ष्य सद्य एवोदयगिरिमारुरोह। सच्छासकप्रसन्ने जगतीव कलानाथ-विभासिनि नभसि दैनिककर्मश्रान्ताः भृत्याश्चन्द्रिकयाऽऽल्हाद्यमानाः, सद्यो निद्राऽङ्कं भेजुः।

* * *

प्रहरी हर्म्यमभितः शिथिलमर्यादः सालसं गतागतं कुर्वंश्चन्द्रप्रकाशे दूरत एवायान्तौ द्वौ नरौ दृष्ट्वाऽऽह—"कौ स्थः दूर एव तिष्ठतम् किं न जानीथ इदं महाराजशयनगृहम्।"

"प्रहरिन्! विदूरप्रचलनेन नितरां श्रान्तौ स्वः। किमिदं महाराजशयनगृहम्! सत्यं न जानीवः।"

"कुत्रत्यौ युवाम्, वेशभूषादिभिरन्यत्याविव प्रतीयेथे।"

"प्रहरिन्! अस्यैव देशस्य प्रियौ पुत्रावास्व परन्तु हन्त! दारिद्र्यदुर्गतौ परदेश एव वर्द्धितौ शिक्षितौ च। भ्रातः प्रहरिन्! बहुकालेनागतौ वर्तते तमालं सम्प्रति नितरां श्रान्तौ स्वः; क्वाप्यभिलब्धुं शक्यते?

मूर्खः प्रहरी अनभिज्ञश्च चतुरसंसारस्यैतयोर्वार्त्तया सकरुणो जातः। एकेन धूमपात्रे[19] तमालं न्यधायि; प्रहरी च हसन्त्या[20] वह्निमानीतवान्। पूर्वं धूमपात्रं प्रहरिणा गृहीतम्। स द्वित्रिस्तद् बलेनाकृष्य मूर्च्छितः। एकेन विहस्योक्तं, "प्रबल! मूढः

---

1 महानसाध्यक्षः, २ परवल, ३ कोहड़ा, ४ बथुवा, ५ ककड़ी, ६ मूली, ७ भिण्डी, बैंगन, ९ गोभी, १० घीया, ११ मतीरा (तरबूज), १२ करेला, १३ आलू खीरा, १५ तुरईफली, १६ कैरिया (टीट), १७ पापड़, १८ सर्वत्र मयूरव्यं-

कथं जिह्वामचोरयदधुना चेतस्य पुत्रोऽपि नोत्थापयति। निद्रितसर्वजनं दृश्यते भवनं, त्वरस्व। अहमत्रैव त्वां प्रतिपालयामि। त्वमुपगच्छ"—इति।

*　　　*　　　*

सहसहगर्वगर्वं लुम्पतो ऽश्वतः कौतुकाद्वामपाणिना, कनिकाखणत्कारेण वल्गामाकृष्याऽ-वतीर्य, पृथुलैः स्थिरविशिष्टैरधिष्ठितं कौशेयवितानं, अगुरुचन्दनवर्तिकासुरभितं न्यञ्चितामर-राजकुलं, प्रविश्य राजकुलं, साभ्युत्थानं साञ्जलि सायासनिर्दिष्टं सत्कृत उपराजं स्वर्णासन-मलञ्चकार चन्द्रः।

"मान्याः, अनयोरुत्सुकतामालोच्याभ्यर्थितो महाराजकुमारश्चन्द्रोऽद्य स्वयानायत्तान्त-मस्मान् श्रावयिष्यति। भवन्तोऽनेन लाभान्विता भविष्यन्तीत्यहमाशासे। कुमारौ पूर्वं विदाङ्कुरुताम्—"इत्याह मन्त्रिणोत्तमः।

स्मितजितज्योत्स्नश्चन्द्रः परितः प्रेक्ष्य प्रवक्तुमारभत—

अहः सायः समीपमासीत्। गोपालगुप्ता गावो वनान्तराद् रोमन्थायमानाः पलायमाना ग्रामं प्रत्यावर्तन्ते स्म। काश्चन वृषस्यन्त्य उत्पुच्छयन्ते स्म, काश्चनोदन्यन्त्यः शरीरगौरवेण गुर्व्योऽपि मन्दां गतिं विहाय धावनं धयन्तेस्म। इतरा क्षीरस्रवां दिवसं प्रवत्सप्रेम्णा स्ववत् स्वा विरवारम्भं रेभन्ते स्म। तासां खुरोद्धूता धूलिराकाशे श्यामपटेव प्रतीयते स्म। क्षेत्रसीम्नि स्थिताः कृषकाः सार्तनेत्रैस्ताः पश्यन्ति स्म। गोपा अपि तासां पश्चिमदपाच्चर्ने धावन्तः प्रेक्ष्यन्ते स्म। तेषां सान्त्वितवाऽऽह्वानवचनेन ताः कृषकाणां कृष्णवत्सा इव गोभिः सहैव स्वीभवन्ति स्म।

गोपैः पश्चात् चालिता चालितिकमपि तिरस्कुर्वन् निखिलगुरुमपि मुखं विकिरन् गम्भीरतरगर्जनिनादेनाशीरधिर्मानयन् विशालविषाणभारेणेव नतशिराः प्रलम्ब-पुच्छगुच्छीकृतदण्डः अतिस्निग्धो वनमहिषः प्रविशन् वर्त्मनि पङ्क्तिस्थैरनैर्धेनाभिः तरङ्गितमिव पुरः सरसं मन्दं मन्दं चलन् महिषीसमजोऽपि गवां व्यूहं पश्चादन्वसरत्।

स्वकुम्भाग्रसङ्कटे हस्तमादाय नियमवर्णिता वधूः वहन्ती वेणुं रणन्तो गोपा अपि मधुरमधुरमीर्षितस्वरं गायन्ति स्म। केचनाऽऽरूढभिन्नस्वराः गोधनं वने वल्गन्तः हरितवत्सकाः प्रपन्नकौण्डकोलकैर्गमकाः पल्लवान्येर्दर्भाश्रिता वर्धयन्ति स्म। केचन शिरोधृतपर्णदलाः सत्वरं सत्वरं गृहाण्येव प्रवृत्तास्तेन।

चतुष्पथे स्थिता ज्यायांस आयतीगवं प्रतीक्षन्ते स्म। क्षणेनैव ग्रामटिका व्याप्ता धैनुकेन। गवां पृष्ठपरामर्शिना हस्तेन ध्वनिमत्यभूत् पल्ली। आसीच्च तिष्ठद्गु, सुतरां होपस्नुताः पयस्विन्यो धारासारेण संसारं सन्तर्पयामासुः।

अहमपि तेनैव सार्थेन तच्चरणरेणुरूषितपवित्रगात्रो वाजिनमारूढस्तस्यामेव ग्रामीण-ग्रामण्यो गृहं गतो भुक्त्वा सर्वां विभावरीं यापयित्वा, निकट एव तपस्यतः कस्यापि महाप्रभावस्य साधोर्वृत्तं ग्रामीणेभ्यो विदित्वा तद्दर्शनोत्सुकोऽश्वं ग्रामण्यो गृहे न्यस्य पदातिरेव गहनं काननं प्राविशम्।

खङ्गसहायो विच्युतपथो निविडतरे हिंसकविहारभूमौ वनेऽस्मिन् सर्वं दिनमतिवाह्य निद्रेर्ष्युर्महान्तं पादपमेकमारुह्य विभावरीमत्यवाहयम्। प्रातरानन्देनेव हिममह-साऽऽच्छादितासु दिक्षु उत्तुङ्गशिखरमारुह्य दूरवीक्षणेन गव्यूतिपञ्चके उपगण्डशैलं तपन्तं कञ्चन साधुं दृष्ट्वा देवान्मनस्येव नमस्यन्, कण्टकाकीर्णसर्वाङ्गो विशिथिलसन्धिः सायङ्कालेनोऽन्त्यागेव तत्रागमम्। महात्मानं परितोऽन्तेवासिन इव व्याघ्रसिंहशार्दूला मृगचर्मच्छद्मलमध्यास्य स्थिता मां वीक्ष्य सकृदुत्थापितकर्णाः पुनरवनतशिरसो मां प्रणमन्त इवासन्। अहं तेषां मण्डलमतिक्रम्य मध्ये परिष्कृतभूमवुपाविशम्। रम्यं स्थानम्। शान्तं वातावरणम्। सम्मुखमेवैका स्वल्पीयसी कुटी गण्डशैलं कर्तयित्वा कृता गुहा, स्वच्छो निर्झरः सम्मुखश्च मुनेः स्थितिभूः। पशव आदेशं शुश्रूषव इव मौना अभिमुनि स्थिता आसन्।

महात्मनः शरीरमस्थिमात्रमपि तेजोवितानमिवासीत्। लम्बमाने हिमधवले श्मश्रुणी प्रांशु शरीरं प्राचीनकालस्य स्मृतिचिह्नमुत्थत्वरे चित्रयते स्म। विशाले भाले, उन्नतां घोणां प्रलम्बौ कर्णौ शशिश्वेतां जटां साभं मुखमण्डलं पश्यं तेन जातिदेशकुशलनामानन्तरं कार्यार्थं पृष्टः सर्वं सत्यं सत्यं न्यवेदयम्।

महात्मा—वत्स, दुःसाध्यमिदं कार्यम्। त्वमतिसुकुमारः।

—सत्यं देव, तदपि राष्ट्रस्य रक्षा स्वस्य जीवनदानेनाप्यवश्यं करणीयैव।

विषयेऽस्मिन्नहं किञ्चिद् वेद्मि। श्रूयते राज्ञो राजेन्द्रपालस्य परमा सुन्दरी कन्या, सा कर्णपथमपि [illegible]

नगराद्बहिः ग्रीष्मे सैकते सुप्त्वा प्रातरुत्थाय
दरिद्रकाष्ठहारिणः बहिश्च पश्यन् विशालं राजभवनम्
सुरक्षिताः पञ्जराः कलितविविधरत्ना भूषाः, शूराः वीररक्षश्च
पुरो भर्तारः सभाजिरे समासीनाः सेनापतयो मन्त्रिणश्च, मध्ये च
वेदिकायां सिंहासने स्मयमानं नृपम् वीक्ष्य हर्म्यं प्रविश्य सद्मनः मध्यवर्ति
वेशमन्तः प्रकाशितया केशान् प्रसाधयन्तीं समुत्तमसुन्दरमतीवरूपवतीं वा दर्प-
णे प्रेक्षमाणां, मुखचन्द्रमसं स्वप्रतिबिम्बमीक्षमाणां मन्मथस्येव निर्मितां सि-
सुन्दरीं राजकुमारीमपश्यम्।

पुनः कर्मविनोदाय चिन्तयतः मे अपरदिने समस्तः प्रहरो मार्तण्डः। तमालवृक्षो
द्वितीयमपरं प्राप्य शयितुः प्रभातम्। पूर्वेद्युरिवाद्यापि, किन्तु समर्दनमपर्याप्तोऽ-
प्यर्थितो मम निद्रापि भीतेव पलायमाना।

अथ निशीथे वर्धमानाकाशेन मातृकास्वरसम्।

प्रथमा वाक्०—पश्य केयं दशा पुरस्यामुष्य। परिवर्त्तनशीलं जगद् विनश्व उच्छ्रायाः।

द्वितीया वाक्०—नगरस्य समृद्धिं विद्यावैभवं यदा स्मरामि, विकम्पते चेतः राज्ञोऽस्य न्यायप्रियता, प्रियता प्रयता[1] प्रजायां, जायाङ्गीकृतरतेः[2], रतेः पत्युः परिभावकस्य, कस्यापि[3] विबुधवर्यतां नियामयतो, मयतोऽपिविदो वास्तौ, प्रजापालन व्यवहारो लोकोत्तर एवासीत। परन्तु हन्त, सा सिद्धिः कथयापि नावशिष्टा। प्रिय किं विस्मर्यते राज्ञ उपवनम्।

प्र० वाक्०—तदपि किं विस्मर्तुं शक्यते, स्वर्यं फलपूरं, पूरकं पतत्त्रिजठरपिठराणां विविधा लताश्च परिमलेन मल्लिनानपि मोहयन्त्य आसन् परं वर्तमानेन राज्ञा सर्वं चरित्रमात्रीकृतम्। सोऽयं प्रतिक्षणं युद्धवार्ताप्रियः स्वकीयं पुरमपरस्मिन् मार्गे निर्मथितं पुरं जगतो भ्रमस्य पापाणेन प्रकल्प्य सततं युद्धाभ्यासनिरतो जगत ईश्वरतामभीप्सति। श्रूयते एतस्य कन्यैनमस्मिन् कर्मणि नियोजयति शास्ति च। यदि कश्चन चतुरस्तां राजकुमारीं सत्पथे समानीय युद्धमार्गात् प्रतिनिवर्त्य लोककल्याणे योजयेत्तदोन्नतिः हस्तामलकवत् सुलभा। राज्यायत्तः प्रतिशतं नवतिमुद्रा सैन्यप्रसाधने व्येति। यदि स धनराशि जगतः सेवायै शिक्षायै समुन्नत्यै वीयाच्चेद् वर्षपञ्चकेनैव स्याद् गरीयसी सद्व्यवस्था—इति रूढोऽयं वाचां प्रसारः।

अहं मासद्वयेन नगरस्य, राज्ञो राजकुमार्याः प्रदेशस्य च रहस्यं विज्ञायैकदा मुनिवचनानुसारं पार्श्ववनं प्रविश्य सूक्ष्मेक्षिकया तत्र पञ्चाननस्थितिं निश्चित्यैकस्मिन् प्रोच्चे तरौ सज्जशस्त्रोऽत्र उपविष्टः। अपराह्णवेलायामाखेटवेशा कृष्णाश्वचतुष्कयुताप्येकाकिनी अनिन्द्यसौन्दर्या सुन्दरी वनं प्रविवेश। श्वानः संकेतैराखेटं समीपमेव घोषयामासुः। सा सन्नद्धाऽसिं करे कलयन्ती सतर्काऽभवत्। अहमपि शरासने शरमारोप्य प्रतीक्षयामासम्। अकस्मादनल्पक्रोधो निचितदंष्ट्रः सिंहो नित्यवैरिण्याः वधाय कृतसङ्कल्प इव गर्जन् सत्वरमेकस्माद् गुल्मान्निःसृतः। छिन्नकर्णौ छिन्दती तस्य जिह्वा सत्वरमेव मानुषरक्तास्वादलोलुपाऽवर्तत। सोऽभिसुन्दरि प्रस्थितः। सिंहदर्शनसमकालमेव

१ प्रयता=पवित्रा, २ जायाया अङ्गीकृता, पुत्रीत्वेन रतिर्येन स तस्य, ३ कस्यापि=ब्रह्मणः।

लिता सुन्दरी सत्या अश्वश्वामपादादुत्थाय पलायितुमना इवोद्विग्नः संवृत्तः। सिंहोऽप्यश्वमाक्रामत्। अश्वश्च वेगेनारोहिणीमुत्क्षिप्यैकतः प्रययौ। आखेटविता सुन्दरी च भूमौ प्रसृता। सिंहश्चाश्वपादादुत्थाप्य सुन्दर्याऽऽर्तनेत्रैः सकरुणं वीक्षितो यावदग्रे प्राक्रमत्तावदेव मद्बाणविद्धः करुणं क्रन्दन् धरामशायीत्। एतत्सर्वमेकस्मिन्नेव क्षणे जातम्।

"देवि, कारणमस्मिन् घोरभयङ्करे वने एकाकिनी मृदुलतनुलताऽऽत्मानं सन्देहसिन्धौ निपात्य भ्रमसि, नैतत्तवानुरूपम्। निवेदय यत्र त्वां प्रेषयामि, क्व च तव पितरौ कथं पर्यो प्रयासि" —वृक्षादवतीर्य तस्याः संशयमपहरता विनीतेन मया न्यवेदि।

"अहमत्र पार्श्ववर्तिनो राज्ञो राजेन्द्रपालस्य पुत्र्यस्मि, युद्धाभिरुचिरहं सर्वदैवाखेटार्थमागच्छामि। बहवः सिंहा हेलयैव मया निपातिताः, परन्तु हन्त, अद्यानेन नवीनाश्वेन मुषितास्मि। समये यदि भवान्नागमिष्यदहमवश्यममरिष्यम्। अधुना जीवनदातृत्वेनाहं त्वमेव आख्यातभिज्ञानम्"—वस्त्रखण्डेन स्वेदं धूलिञ्चापनयन्त्या सुन्दर्योचे।

"आ एवम्, त्वं वात्सल्यभावपूर्णे महिलासमाजे जन्म लब्ध्वाप्यदः किरातकोलभिल्लसेवितं गर्हितं कर्माङ्गीकृतवत्यसि तत्र किमु वक्तव्यम्। नाहं शान्तिसुधाप्लुतां मे वाचं भवत्या सहालापेनोत्तेजयिष्यामि, क्षम्यो यान्यहमधुना, श्रीमती चेत् साभिलाषा गन्तुं स्थिरीभूतोऽयमश्व आरुह्यागच्छतु", अश्वाभिमुखं प्रचलता मयोचे। साच नितरां विनीताऽऽभारं हृदयेन प्रदर्शयन्ती परिचयाय मुहुर्मुहुराग्रहमाह। अहञ्चावोचम्।

देवि, समयातिपातिनी ते प्रवृत्तिः। पश्य त्वयि युद्धकर्मणि प्रवृत्तायां का दशा तव देशस्य। सर्व एव विभागाः नाममात्रमासते। एकदाहं वृत्तजिज्ञासया तव नगरपर्यवेक्षणाय प्रवृत्तः। नगरपालिकाया आयमार्गः सम्पन्नोऽस्ति, किन्तूत्कोचास्वादाः कर्मकरा चतुर्थभागमेव संगृह्णन्ति। नगरस्य रथ्या राजमार्गाः भग्ना न कोऽपि पर्यवेक्षते। केवलं प्रासादमार्ग एव सुभगः सरलः स्वच्छश्चास्ति। रथ्यासु गर्तान्यासन् यत्र पार्श्वगृहाणां मलमूत्रजलमागत्य रथ्यानिवासिनां स्वास्थ्यं दूषयत् दुर्गन्धितां प्रसारयति। रथ्या नितरां विषमाः। नवगृहाणि प्राचीनगृहतो ह्रस्वं हस्तार्द्धमग्रे निस्सृतानि सन्ति। मन्ये पौरप्रतिष्ठानाधिकारिण उत्कोचं गृहीत्वा गृहपतेरिच्छानुसारमनुजानन्ति। येन रथ्यानां सौन्दर्यं सुगमता च प्रणश्यति। रात्रौ न प्रकाशस्य प्रबन्धः। केवलं पौरप्रतिष्ठानसदस्यानामधिकारिणाञ्च गृहाणि पौरप्रतिष्ठानेन प्रकाश्यन्ते। इतरे विश्वसन्ति

सदस्यमेवैषामेवाधिकारः। प्रधानमार्गेष्वकरस्य कूटाः प्रेक्ष्यन्ते। न कोऽपि प्राणायामाभ्यासं विना तेषु मार्गेषु गन्तुं शक्नोति। वराकास्तन्मार्गस्थायिनो वि रोगपीडिताः गतचक्षुषोऽहर्निशं कण्डूयनपरा मशकमक्षिकानिवारणपराय दौर्भाग्यं दुष्कर्मतां च स्वीकुर्वन्ति। नगरे वराकबालानां पोषणाय गोशालैका पौर स्त्यस्ति। गवां द्विशती तत्र दुह्यते परन्तु सदस्यानां शिशवः स्त्रियो भृत्या कर्मकराश्च पयः पीत्वा शेषस्य पयसो दधि विधाय नवनीतं च प्रधानसदस्यहेतु प्रे षयन्ति, परिचितशिशुभ्यः प्रदीयते येषां मातरः सदस्यगृहेषु निःशुल्कं कर्म विदधत्यो लभन्ते। एवं तेषां नाम निखिलगोष्ठाङ्कं गृहीत्वा तत् श्वेतं जलं तेभ्यः प्रदीयते। नगररक्षाध्यक्षः प्रधानो नगरवैद्यः प्रतिदिनं प्रथमं दशमयं पयश्चदम पौरप्रतिष्ठानानुसारि स्वास्थ्यविवरणं ददाति। ते यत् प्रातःकालिकं पयः प्रवाहितं करोति, अतः शिशुभ्य उदरविरेचनम्। धार्मिकस्तस्य स्वार्थः सदस्यानाञ्च हितं सन्निविष्टमस्ति। दयनीयेयं दशा बे पाठशालानां नैव साध्वी व्यवस्था। अध्यापका अवसरमये समायान्ति। अ केचन विश्राम्यन्ति, अपरे वासांसि प्रक्षालयन्ति, केचन पत्रं लिखन्ति परे गृहादानीतं भोज्यं भुञ्जते, इतरे मित्रैः सहालपन्ति। केचन दुग्धं छात्रान् प्रेषयन्ति, अन्ये गृहकार्यसम्पादनाय, मध्ये मध्ये कोऽपि शिक्षकं कोलाहलं कुर्वन्तं छात्रेभ्यो दण्डचपेटादिकं दत्त्वा पुनः स्वकार्ये प्र अधिकारदोषी शिक्षकश्रेष्ठो गण्यते। योऽस्याः शिक्षकस्य मधुरं व्यर्थं अहह आत्महत्येयम्। शिक्षाया मातेव बाला एवं दुर्व्यवह्रियन्ते। स्थाने न व्यायामस्य, न स्वच्छतायाः प्रबन्धोऽस्ति। यत्र तत्र बालानां स्थितिः, कि मिति वक्तव्यं प्रमुखं वर्णितं। अतः पठितुं, बालिकार्थं सर्वस्वानि अ तुष्टमपि उद्यानभ्रमणार्थं मुनेर्दिशा प्राप्नुवन्ति। अन्यं, राज्यस्य शिष्टाचारविरोधः प्रतिपदं वर्धते। केवलं कस्मिन् दिने बालिकागमनो व स्वर्णनिदे, पुनः सा पुस्तकाध्ययनं पूर्वं नीयते। इति प्रतिभा [illegible] नैव स [illegible] मधुरभोजनेन पुरस्कारेण च प्रयच्छन्ति। एवं [illegible] शिक्षकस्य [illegible] करोति। [illegible]

अस्तमुपगताः नामकक्षासु स्थानं लभमानाः पाठशालां त्यजन्ति। अयोग्या अधःकक्षासु नियोजिताः पाठ्यक्रममनुसरन्तः कतिपयान् शिक्षकाग्रहेण यापयन्तोऽप्ययोग्याः निःसरन्ति। शिशुर् न शारीरिकं न वा बौद्धिकं सौष्ठवम्। न वाक्पटुता न च व्यायामनैपुण्यम्। बराका दुःखेन जीवनं यापयन्ति। किमेतद् भवत्या पुत्राभिरुचेर्न [illegible]।

[illegible] स्थितिरितरा खलु। [illegible] प्रतिमासं नवीनं [illegible] क्रीणाति। प्रतिमासं [illegible] मुद्राणां [illegible] प्रभुत्वमुपयोगयति [illegible]। [illegible] एधते। द्वे वस्त्रनिर्माणयन्त्रे सोऽस्य [illegible]। [illegible] प्रविश्य स्थूलीभूता। मध्यमवित्तानां परिवारस्तां [illegible], [illegible] न इति तां वेत्ति, [illegible] [illegible]। [illegible] का स्थितिरित्यपि तत्र परिसरम्—[illegible] [illegible] कथं वेत्ति। [illegible] न नियन्त्रितमन्नं प्राप्तुं शक्यं, [illegible] तस्यैव [illegible] तस्मादेव [illegible] प्राप्तुं शक्यम्, एवं [illegible]। [illegible] प्रतिदिनमाहारोपभोगं कुर्वती स्थिति सर्वं [illegible]।

[illegible] स्थितिर्भिन्ना। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] एव [illegible] च। [illegible] कोऽपि [illegible] न [illegible]। [illegible] एव [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] न [illegible] [illegible] [illegible]। न [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible]

परिभ्रमन्तः प्रहरिणश्चौराणां सुयोगाय सूचनायै च चरन्ति। कस्यापि विप
ममस्य विपद्विवरणमपि नोल्लिख्यते विनोत्कोचम्। सतीनां सतीत्वं, धार्मिका
धर्मः, धनिनां धनं, सुजनानां सौजन्यं भयाभिभूतम्। किं भवतीति विचारे सर्वेऽपि
सुहृदयो नोन्नतिं कर्तुं समर्थाः। किमेतस्योत्तरदायित्वं त्वयि नास्ति। त
केवलं युद्धकर्मण्यतिप्रवृत्ता समृद्धं सम्पन्नं देशं व्यकार्षीः। यदि कश्चन निष्प
न्यायालयो भवेत्त्वां देशद्रोहापराधे आजन्म कारावासं प्रापयेत्। परन्तु मा न
भूदत्र तव कारावासः, भगवान् जगदीश्वरोऽशुभकर्मसञ्चितिश्चत्वामवश्यं दण्डयिष्यति
शृणु नाधुना जगति कोऽपि युद्धमभिलष्यति। सर्वे शान्तिसुधां पिपासवः शान्ति
वार्त्तामिव शुश्रूषन्ते। निरवधिनिरवच्छिन्नशान्तिप्रिये पवित्रे भारते पुनरशान्ति
प्रसारयितुमीहसे! नाधुनाऽणुबमानामावश्यकता। जीवे, लोकजीवने च सहाय
भवेत्येव प्राणिवर्गस्याभिलाषः। परन्त्वमधुना लोकसंहारकृतसङ्कल्पेव शस्त्रास्त्राणि
निर्मापयसि! कस्य कृते! साम्यवादस्य प्रबलधारया समाप्लुतेऽस्मिन् जगति
तव साम्राज्यवादस्याहैतुक आश्चर्यकरः कदभिलाषः हास्यास्पदम्। जर्जरीभूतः
साम्राज्यवादः सदैव स्वैरनुयायिभिरर्थवादादिभिर्लघीयांसमाघातमेव प्राप्य विनाशाय
सज्ज इव स्थितः। किं भवती कस्यापि विवेकवतो हृदये साम्राज्यवादसामन्त-
वादार्थवादान् प्रति श्रद्धां प्रेक्षते !!

"परन्तु देव, एषा प्रवाहपतिता नौरिवाधुना महता वेगेन प्रवहति विचारधारा,
किन्तु क्षुद्रोऽस्य कार्यकालः। एषा धारा न चिरं स्थातुं समर्था। अग्नेः
शीतत्वमग्निनाऽवश्यं दूरं क्रियते सकृत्, किन्तु स्थायिनी स्वाभाविकी शीतता न
सर्वथाऽपहर्तुं शक्यते। एवमेव निर्धनधनिनोः सरोगनीरोगयोः दुर्बलसबलयोः
विवेकाविवेकवतोः साम्यं न कदापि स्थापयितुं शक्यते। एकदैव नौः पर्वतादपसर्प्य
सन्त्रस्य मार्गविवेका प्रत्यावर्त्स्यति। तदा पुनरेव भवतां साम्यवादः पुस्तकस्थानां
मन्त्रसंख्यां वर्धयिष्यति।"

"अनुमोदयाम्यहमपि तावकीनं विचारम्। मा नाम भवेत् साम्यवाद भवतः
एव भवने सम्पूर्णस्य जगतः स्वाभाविको धर्मः किन्त्वेकदेश सर्वमिदं विश्वमिदं
प्रवर्तयिष्यति, प्राचीनमर्यादाच विनाशयिष्यतीति दुष्कल्पम्। एतदपि सर्वं यथा तथ

णानां विपाकगोलकानां समानावश्यकता। जगच्छान्तिमभिलषति। जगतो जीवनेच्छा प्रबला, एतादृशे जगति न भवादृशा आवश्यकता''।

"क्षणं विश्रम्यापराधिन्या अपराधं मर्षयत्वार्यः। सापराधोऽपि परितप्यमानः साधुभिरवश्यं मर्षणीय एव।"

"क्षणिके परितापे को विद्वान् विश्वसिति। अथ मृत्युं सम्मुखमुपलभ्य श्मशान-वैराग्यमिव परितप्य पुनर्विस्मृत्य स एव पन्थास्त्वदेव चक्रम्।"

"देव, सत्यमद्य पर्यन्तमहं युद्धाभिरुचिरासम्, कन्याप्यहं पितुः पुत्रस्थानीया विश्वं विजिगीषुरासं, किन्त्वद्य भवद्विचारमाकर्ण्य युद्धं त्यक्तुं कृतसङ्कल्पास्मि। मम पितृ राज्ञो राजेन्द्रपालस्याहमेव युद्धपरामर्शदात्री, अहमेव बहून् राज्ञो विजित्याधुना रामपालेन योद्धुमुद्युक्तवती। परमद्य विचारः परिवर्त्तितः।"

"तिग्ममहसा वीरवरेण रामपालेन सह भवत्या युद्धं सर्वथाऽसमीचीनमासीत्। एतत्त्वं न वेत्सि। अहं युद्धभयङ्करं रामपालं शस्त्रास्त्रविचक्षणं तस्य चमूश्च सम्यग् वेद्मि। तेन युद्धे निश्चितं भवत्याः पराभवो हस्तामलकवत् प्रत्यक्षम्। अहमैदृशीं सर्वां शक्तिं विज्ञातवानस्मि यत् कीदृशीं सारं श्रीमती वहति।"

"शान्तं पापम्, अहं भगवन्तं सूर्यम्, परितः स्थितान् पादपान् वनदेवताः जीवनदातारं भवन्तञ्च साक्षित्वे न्यस्य क्षत्रियवंशस्य धनुश्च स्पृष्ट्वा प्रतिजाने यत् विध्वंसनात्मकं कार्यं विहाय राष्ट्रोन्नत्यै सर्वात्मना यतिष्यामि। तुष्यत्वधुना देवः।"

"नितरां प्रसीदामि। अस्तु, अहमेकस्मै महते कार्याय कृतसङ्कल्पोऽविलम्बं यामि, देवो द्रष्टव्यस्तावदनेन वत्सम्।" अप्रतोत्तरोऽहं श्रीमद्दिशि प्राचलमिति।

वनानन्दिने चन्द्राय साधुवादं वितरत्सु परिजनेषु "चिरञ्जीव, तावकं बुद्धिबलं विमृश्य नितरां प्रसीदामि" हर्षाश्रूणि मुञ्चता राज्ञा प्रत्यपादि। "परन्तु पुत्र, इतोऽप्यधिकं गरीयः कार्यं समापतितं येनाहं विषीदन् क्षणं पुरः स्थातुम न शक्नोमि। नैतस्मिन् कार्ये त्वत्तोऽधिकं कमपि समर्थं प्रेक्षे। परश्वो रात्रौ मनोरमया सह चन्द्रहे पुत्रा कमला प्रातने

समया ....

येषां शृङ्गारमुख्या अहमहमिकया तत्कृन्ते नियुक्ता
वैदर्भ्याद्याश्च येषां पदतलदलनप्राप्तसौभाग्यहृष्टाः।
श्लेषः श्लिष्टोऽङ्गमर्दे रसिकजनमुदे शाङ्गिणा श्रीनिवासा-
नासीत् काव्ये तृतीयः परिमललुलितः कान्तनिःश्वास एषः ।

इतिश्री—
मान्यमूर्धन्य—विद्वत्सार्वभौम श्रीमद्वरदरायात्मजेन
काव्यालङ्कारेण श्रीनिवासशास्त्रिणा रचिते
काव्यकोविदकुमुदकुमुदिनीनायके चन्द्रमहीपतौ
तृतीयो निःश्वासः

चतुर्थो निःश्वासः

सायं शशाङ्ककिरणाहतचन्द्रकान्त-
निःस्यन्दनीरनिकरेण कृताभिषेकाः ।
अर्कोपलोहसितवह्निभिरह्नि तप्ता-
स्तीव्रं महाव्रतमिवात्र चरन्ति वप्राः ॥

सुभाषित रत्नभाण्डागार

जीवन्धरो भद्रशतानि पश्येत्

क्वचिद् भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनः
क्वचिच्छाकाहारी क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः ।
क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो
मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दुःखं न च सुखम् ॥

भर्तृहरिः

धैर्यं धामवतो धनम्

त्रिविक्रम भट्टः

सततं भ्रान्तमस्माभिः सर्वत्रान्यविषयावगाहनेन । अधुना वयं चिरविरहिता राज्ञो नरेन्द्रपालस्य परिषदं यामः । यया त्रिभुवनमस्माकं दिवसानां तु कदैव वा वर्षाण्येव व्यतीतानि । [illegible] को ऽपि तत एव नास्माभिस्तत्र सभां द्रष्टुम् ।

अधुना हस्ते [illegible] तन्द्रं वर्धितम् । आलस्यस्य पौरराज्यम् । मूकानां विवादः । 'किमिति' नेत्रसङ्केतस्य रूपम् । लिखतां लेखकानां लेखनीशब्द एव नादम् । भ्रमर-किङ्किण्या नूपुरशिञ्जितम् । गानं [illegible], [illegible] [illegible] । [illegible]-

स्यति चन्द्रः ? क्व गतश्चन्द्रः ?! कमपि पृष्ट्वा गतश्चन्द्रः ? कदापि केनापि दुर्नपि गमनाय श्रुतश्चन्द्रमुखस्यार्दितप्रश्नपरम्परायें विचारचातुर्यमानुर्वेव समाभवने ।

भविष्यद्विदो ज्योतिर्विदो पण्डितानस्य प्रासादे सम्मेलो दरीदृश्यते। अदर-सम्भारेण ते पूज्यन्ते सत्क्रियन्ते कौशेयोत्तरच्छदासु सौवर्णीष्वासन्दीषु सान्त्वयन्तं समुपवेश्यन्ते ।

केचन महोष्णीषास्तिलकाङ्कितमस्तका आम्रपर्णानं दधतो राजनीं यदि कलयन्तः स्मश्रु शालिनः प्रगल्भमाषणै र्महीपतिं मोहयन्तो धनलिप्सयाऽऽडम्बरताण्डवं विरचयन्ति ।

अपरे च जटिला आत्मानं देवीं भगवतीभक्तं विख्यापयन्त आरक्तकौशेयवसना आपणभूषणा भूपतिं तोषयन्ति । इतरे च दुग्धमतिनोऽखिलां सिद्धिं कर एव कलयन्तः शोणितकाया भवनं प्रभासयन्ति ।

परं कोऽपि सत्यं "श्वः परश्वो मासतो वर्षतो नवाऽऽयास्यति चन्द्र" इति कथयति । पुत्रप्रणयिनी जननी उपजरसं वयः समाश्रिता "हा चन्द्र ! मन्मनःकैरवविकासक ! चन्द्र ! क्व गतोऽसि अप्रसूच्य प्रियां मातरम्"—इति विलपन्ती तस्य शयनागारं, प्रसाधनसामग्रीं वाजिनश्च प्रतिक्षणं प्रेक्षमाणा, स्मारं स्मारमहर्निशमश्रुपूर्णलोचनसरोरुहा स्वास्थ्यमेव गमयाञ्चकार ।

महाराजो रुग्णः प्रजागरकृशो निमीलन्नेत्रयुगलो गतसत्त्व इवोपबर्हमाश्रयन् स्थितः । विदूरे चैको भृत्यः प्रलम्बदाम्ना व्यजनमाकर्षति । न कोऽपि शक्तो मौनप्रभोः प्रभुत्वमपहन्तुम् ।

"विद्याधर ? हरि—सुभद्रौ महत्या प्रतिज्ञया गतौ, अपि प्रतिनिवृत्तौ ?" तन्द्रा-साम्राज्यं मर्दयन्महाराज आह ।

मन्त्री—आम् देव ! परिभ्रमणकृशाकृष्णविग्रहौ म्लानमुखौ प्रातरेव प्रतिनिवृत्तौ । परन्तु......

महा०—(मध्य एव) अकृतकार्यौ । किमेतदेव ।

मन्त्री—आम् देव ?

महा०—एतदेव सम्भावितमासीत् । शतवर्षमिव वर्षचतुष्टयं भीतम् , नास्ति को समाचारो जीवति नवेति, प्रतिदिनं पटवः प्रतिदिशं प्रेष्यन्ते, परं वेतनभुजः पटवः प्रेष्य-

चतुरशिरोमणीनां समवायः समीक्ष्यते, परं कस्यापि मुखमण्डलं कृतकृत्यत्वेन साभं नावलोक्यते। प्रतिदिनमेतदेव श्रूयते, मद्भाग्यत एतद्भिक्षाऽक्षरावलिरेव लब्धा। (किंचिन्निःश्वस्य) मन्त्रिन्! उद्विग्नोऽस्मि, अस्माद् दुःखोदधेः निःसर्तुं मर्तुं कामोऽस्मि। बहु सोढम्, इतोऽधिकं सोढुं नालमस्मि।

मन्त्री—नैतच्छोभते धैर्यधारिधुरन्धरे भवति भगवन्! पुरा किल नलरामयुधिष्ठिराद्यो विपत्तिमनावृतेन यशसा सहन्तः कालेनातुलां सम्पदं प्राप्य प्रचुरं यशस्तेनुः। शक्तिधरोप्यात्मनाऽस्मिकार्ये लग्नोऽस्ति . ...।

महा॰—(मध्य एव)—अपि अप्यासादितः कश्चन समाचारः शक्तिधरस्य?

मन्त्री—देव, अद्यैव तेनागमनं सूचितम्। मन्ये कृतकार्यः स निवर्त्स्यति। सोऽपि समदुःखसुखः।

महा॰—(विमनायमान इव) आम् लक्ष्यते।

अधुनैव वेत्रहस्तो दौवारिकः प्रविश्य त्रिर्जयं व्याहृत्य "देव! श्रीमन्मन्त्रिकुमारोऽपरेण केनचिदज्ञातनामधेयदेशजातिना सार्धं श्रीमच्चरणौ प्रणिनंसति, श्रीचरणौ प्रमाणमित्यूचे"।

महा॰—[उत्थापितनयनो दौवारिकं निपुणं निरीक्ष्य] आम् प्रेषय। दौवारिक, कावश्यकता शक्तौ व्यवहारस्यामुष्य, अस्तु, शीघ्रं प्रेषय।

प्रणम्य प्रयाते प्रहरिणि समायातः ससहचरः शक्तिधरः। महाराजं मन्त्रिणञ्च प्रणम्य, राज्ञा—"पुत्र! शक्तिधर! चिरञ्जीव"—इत्युच्यमानस्तन्निर्दिष्टकाष्ठपीठिकायामुपविष्टः पार्श्वे च सहचरः।

शक्तिधरोऽयमी वर्णेन शोणितप्रभः, अस्थूलः सुरसनाधरो मञ्जुलो वयसा पञ्चविंशतिवर्षदेशीयो, अनारब्धेर्ष्यमानमेध्य[1]-वीध्र[2]-विशङ्कट[3]-उरु[4] शेमुषी[5]गुणः, कोमलकलेवर उत्फुल्लसरः प्रभाविततमरुसभोऽस्ति।

सहचरस्यास्य विवर्णः प्रासुतमधुर्जटिलो वितततनुर्दर्शनीयतः, प्रस्वेदबिन्दुपूर्णकपोलस्थलः पीतदशनोऽवसितवासा पुरुषः इव प्रतीयते।

अथ महाराजो नेत्रसङ्केतेन सूचयन्नुवाच—

अपि कुशलं पुत्र! त्वमसि नितरां कृशीभूतः, कोऽयं समानीतस्त्वया।

---

१ पवित्रम्। २ विमलम्। ३ विशालम्। ४ विपुलम्। ५ बुद्धिः।

शक्ति॰—श्रीचरणकृपया कुशलम्। महाराज! किं विस्मर्यतेऽसौ चन्द्रमित्रं विश्वेशरः। यो हि युवराजमहोत्सवे तस्मा उच्चकुलप्रसूतमश्वमदात्।

महा॰—(विस्मृतं पूर्वोदन्तं स्मरति इव, पूर्वानुभूतां युवराजसमयघटनामनुभावित इव विस्फारितनयनः) आः (क्षणं निःश्वस्य) सम्राजस्य चन्द्रोऽस्मान् दुःखितीश्वकार।

शक्ति॰—(कथयतो महाराजस्य मध्य एव) देव! प्रतिसाधनमप्येष एव।

पीयूषरविप्लुतामिव मधुरां श्रोत्रस्रोतसा मानसमानन्दयन्तीं वाचमिमामाकर्ण्य श्रोतुमधीरो महाराज ऊचे, अप्यासादितः कश्चन समाचारः स्वमित्रस्यापि पुत्र? कचित्तस्य क्वापि गमनपदवी लब्धा? अपि कुशली वर्तते चन्द्रः?—विस्तरव्य कथ्यतां स्वकीययात्रा-वृत्तान्तः।

शक्ति॰—देव, अस्मान्नगरान्निर्गतोऽहं विचित्रविचित्राणि, शोभनशोभनानि वनानि स्थानानि नगराणि कन्दराश्चापश्यम्। परतश्च नर्मदाकूलशैलशिलागुहासु आतशङ्कथिरं तत्र वासमकल्पयम्। नर्मदायाः सुरम्योऽयं प्रदेशः। उभयतस्तटं हरितमुखं-यन्त्रकलिता दूर्वा कूलकान्तिं दुर्वत्यासीत्। विदूरं यावन्निरतामकुटिला नर्मदा श्वेतसूत्रमिव प्रयेत। कूले स्फटिकाः स्नानशिला अतीतकाले पुण्यजनतां सूचयन्। एकतः कूले नितरां निबिडं वनमासीद्, द्वितीयतश्च विरलपादपः समः प्रदेशः। एकतः शार्दूल-हरि-वराह-मल्लूक-खड्गिनां प्राज्यं राज्यं, द्वितीयतश्च मृग-चमर-शश-गवय प्रभृतीनाम्। एकतो निशितनख-विदारितकरिणां हरीणां क्ष्वेडा[1], परतश्चाक्रान्तकदम्बकाण्डानां केकिनां केकाः। एकतः समूलतरुशोन्मूलनं बृंहितं[2], परतश्च पलाशवद्दारि दलम्[3]। परस्परविरोधि प्रदेशद्वयं विभजन्ती नर्मदा प्रावहत्स्यन्दत्।

अहं नर्मदातीरवर्त्ति शिलासु शिलासूपविष्टोऽनन्तानन्दसुधां पिबन्, कदाचन हरिणशावकानां स्मामविद्धीं तारस्तां, कदाचन वन्यशशकानां शैवलप्रदेशे निरतं क्रीडां कदम्बशैलमर्दनदर्शनेषु [4]हुतवहस्फुरणं, कदाचन पादपेषु कपिपुत्रककर्त्तनं कदाचन [5]भूरिमायसमुदयमायाः परस्पर्गमनं।

समयान्तरे मुनिविरचितकया एक आश्रम आसीत्। असौ तत्र देवी

१ क्ष्वेडा — सिंहनादः। २ बृंहितं — करिगर्जितम्। ३ त्रिपर्णी कर्णिकारं — दलम्। ४ हुतवहो वह्निः। ५ भूरिमायः शृगालः।

विरक्तेन तपस्विना स स्थापितो भवेत्। शतशस्तापसकुमारास्तस्मिन्न्यवसन्, हविर्गन्धि-विभावसुधूमः पार्श्वप्रान्तमधुनात, परमद्य 'ध्वंसावशेषमात्रमासीत्। बिल्ववृक्षाणां सान्द्रच्छायासु निर्मिताः परिधयोऽद्यापि यज्ञवेदी आम्रस्थाणुशिखरेषु' धेनुदामनीघर्षण-गर्ताश्च सौरभेयीणां प्रचुरां सम्पदमसूचयन्।

उद्यानं यस्मिन् तापसाः सविभ्रमं व्यहार्षुः काननीभूतमासीत्, केवलं क्वचन क्वचन स्थिता वन्यदाडिमा बीजपूराश्च तस्य प्राचीनपरिचयमसूचयन्। कोणेष्वद्यापि देवमन्दिराण्यासन्, भग्नानि नितरां जीर्णानि। तेषां भित्तीर्विदार्य बहवः क्षुपा निर्गता आसन्। अग्निवेदिकानां—यासु वेदव्रतिनो वेदमध्यापयामासुः—लोष्ठानि प्रकीर्णान्यासन्। तत्र [3]वामलूरपूराणां पिपीलिकापूर्णानां प्राचुर्यम्।

एकं विशालं भग्नावशेषं विनाऽत्र किमपि नासीत्। परमद्यापि—सम्प्राप्तदशमीकः[4] सोऽतिथिसेवां न व्यरमत्। विदूरयात्रिणोऽद्यापि तस्य च्छायासु विश्राम्यन्तो ग्रीष्मभीष्मस्य प्रचण्डचण्डकरकिरणबाणानपानैषुः। विस्मृतमार्गा [5]अध्वनीना अद्यापि प्राङ्गणेष्वान् झञ्झावातानसहन्त। लघुलघुभिरपि स्वल्पस्वल्पैरपि फलै-र्जठरदेवमतोषयन्। यूथमुक्तान् मृगानद्यापि स स्ववेदीनामन्तः शं शाययित्वा निर्विघ्नं रात्रिं व्यतियापयितुं सहायिष्ट। अर्जुनशाखासु निषण्णाः पक्षिण आश्रम-स्यातीतगाथामद्याप्यागन्तुकानश्रावयन्। नगराणां मदमत्तमानवेषु प्रासादेषु, विलास-शालिपूपवनेष्वानन्दस्य यत्तमोऽप्यंशो नास्ति यस्तत्राश्रमस्य भग्नावशेषेष्वासीत्। तस्य मूकस्वरैण करुणरागे, अकृत्रिमौदासीन्ये भूतगाथायाश्च का विलक्षणा मादकताऽऽसीत्। माधुर्यपूर्णं प्रकृतेर्दृश्यमासीत्।

सोऽयमाश्रम एव ममाधुना वास आसीत्। अहमितस्ततः सन्देहस्थानेषु परिभ्रम्य तत्रैवातिष्ठम्। तस्य भवनानि सम्प्रति वासयोग्यानि नासन्। आश्रमस्य मध्य एकः पिप्पलस्तापसीव स्थित आसीत्, को जानीते कतिभिर्वर्षैस्तपस्यन्, जीवने कीदृशैः झञ्झावातैर्दावानलैश्चायं व्यथितो भवेत्, परन्त्वासीद्विस्तृतो निश्चलो निष्कम्पश्च। अधुना तस्य त्वचा वार्द्धक्यं व्याख्यात्। शाखासु बालत्वं युवत्वञ्च बीतमासीत्। तस्य शाखासु

१ खण्डहर—इतिभाषा। २ खूंटा। ३ चींटियों का स्थान। ४ दशमी—अन्ति-मावस्था। ५ अध्वनीनः—पथिक।

सहस्रशः पक्षिणः कुलक्रमेण न्यवसन्। शेष इव सोऽपि तान् स्वशिरसाऽधार्षीत्
ते तत्रैव न्यग्रोधवृक्षमूलस्य महदन्तरत्यन्तकूर्दन्तश्च, परन्तु स सर्वंसह आसीत्।

मया तेषां समीपे पिप्पलस्यैकतमे उच्चैः प्रकाण्डे काण्डे एको म-
व्यरचि। महता श्रमेण तालकाण्डैः वंशदण्डैरेकाकी तमकार्षमेव। सुन्दरसुन्द-
कोमलकोमलैः पुष्पपत्रैराच्छादिता सा कौशेयास्तरणमप्यत्यशेत। वंशानामेका छिद्रम-
भित्तिरपि मया परितो निरमायि। अहं विदूरात्कार्यं कृत्वा समायन् सस्नेहं सग-
र्वां मनोरमां कुटीं पश्यन्नासम्। मञ्चे ते तस्या वियोगं न सहमाने आस्ताम्। सापि म-
नेत्रैरिव सहस्रशश्छिद्रैरनिमिषनयना पिबन्तीवासीत्। अहं तस्या कोणे बहुविधा-
फलानि रक्षन्नासम्। तान्येव मम जीवनस्य साधनान्यवर्तन्त। कदाचन तृषितो
रात्रौ हिंस्रभयङ्करं नद्यास्तटमगच्छम् वन्यदाडिमीफलानां रसमेवापिबम्।

एकदाहं सर्वं दिनं कार्ये सुव्यग्र आसम्। कः पर्यमासीद् यत् कति गव्यूतयो
मयावगाहिरे, परन्तु मम शरीरं नितरामशक्तमभूत्। श्रान्तस्य मे
सोऽपूर्वो दिवस आसीत्, मच्छरीरं स्वेदरूपेण बहिर्निरैत्। अहं नर्मदायाश्शिरोभवि
शिलाफलकमेकमधिशयानः कदाचिदात्मानं, कदाचन भयङ्करं काननं, कदाचन
स्वस्याबहुदर्शितामत्यन्तकृत्यताञ्च कदाचन वन्यस्थलं, कदाचन चन्द्रं, कदाचन भवन्तं,
विस्मरन् श्रममनुदक्षासम्।

दिनपतिः पतन्नासीत्। दिनमपि तच्छोके सुप्तेदक इव म्लानमभूत्। अकस्माद्
भीषणभीषणैर्धूलिमिश्रितैर्वायुरवैः पर्यपूर्यत पश्चिमाशा। सुदक्षेणानीयबलिभिः
पूर्वेशाद्यैः सैनिकैरिवाकाशमशेषं व्याप्तं पवनप्रेरितैर्धूलिकाधरैः।

मदीयाङ्गेषु मृतप्रायेष्विव शिथिलेष्वभिनवं भयं सञ्चरितम्। जीवनधारणस्य
ममतैव विरुद्धं साहसमकरोत्, श्रान्तेष्वङ्गेषु नवीना शक्तिः स्फूर्तिश्च
समागच्छत्। अहं सत्वरतरं नियताभिमुखोऽधावम्। मन्दतापोरेकतमांशेन
विश्वं पीडनमासीत्। एवं प्रतीयते यद् विरामो भगवतः स्वर्णिमां धनुमय्या
कुर्वाते प्रसृतम्। अकस्मात् पतितां रक्ता समस्थिर। परन्तु रक्ततापि दुर्वर्ण
न भित्ता, एवैव सद्यः कालिमा परिवर्तितम्। हम्मी हम्मी नवालोकयत।
प्रकाशरहितैनैव हिंस्राभ्यां चक्षुर्भ्यां तु स्थितमपि वस्तु नपश्यम्। प्रचु-

शक्तिभिः प्रकाशदीपैरपि तिमिरदुर्गं नाशितुमशक्यमासीत्। महेश्वरीया मायेव भुवनं व्यामोहयत्। परन्त्वहं मत्कुट्यां प्रविष्ट आसम्। मया दुर्गं प्राप्त मितीवाहं व्यश्वसम्। काननं वन्यपशुपक्षिणां रोमाञ्चकारिणा कोलाहलेनोद्विग्नमासीत्। सर्वे स्वाश्रयप्रवणा आसन्। सौभाग्येन मुहूर्तात्परतदशनैश्शनैर्वियद्विशददशामाप्त्। निश्चला उडवो विपद्ग्रस्ताकाशेन सहानुभूतिमिव प्रकटयन्त्य आप्राकाशन्त।

यथाकथञ्चिन्नीरवता विस्तृता। वनभूमिः स्वपुत्रान् लालयन्तीव गाढनिद्रितांश्चकार। अहमपि फलानि प्राश्य सुप्तः परन्तु सशङ्कः सचेष्टश्च। शिरोवेष्टनं शिरस्येवासीत्, कृपाणः कटितटे लग्न आसीदेव, वस्त्राणि सर्वाणि परिहितान्येवासन्। केवल मुपानद्युगलमुन्मोच्यैकस्मिन्कोणे निहितम्। कुटीरस्यै एकहस्ततोऽपि न्यूने द्वार एवाहं शयान आसम्।

अकस्मान्मम निद्रा भग्ना। मम धैर्यधारि हृदयमधीरतामभृत। तस्य गतिः शततोऽप्यधिकाऽऽसीत्। आकस्मिकेन भयेनोद्विग्नः सहसा पार्श्वनिकुञ्जाद् गर्जनमश्रौषम्। उपविश्यचक्षुषी विस्फार्याद्राक्षं यदधो निकुञ्जे जिह्वया सृक्किणी लिहन् सिंहो भ्रमति। तस्याङ्गारप्रतिमे अक्षिणी नैशिकमन्धकारं कर्त्तयन्ती द्योतेते। पुच्छमुत्थाप्य स गभीरगभीरं सत्वरसत्वरं बुभुक्षित इव पादान्न्यस्यन्नितस्ततोऽभ्रमत्। तस्य भयङ्करा दंष्ट्राः सन्तमसेऽपि प्रत्यक्षमैक्ष्यन्त। तस्योत्पाटितं मुखं सुघटो-द्घाटितः पाटवोत्पाटने पटुरासीत्।

तस्यैका लघीयसी दृष्टिर्मत्कुटीरे न्यपतत्, एकेनैवोत्कूर्दनेन स मत्कुटीरोपर्यासीत्। हृदयभावश्चक्षुषोरग्रतः समायातः। स निश्शङ्कं गर्जन् कुटीरच्छदने भ्रमन्ना-सीत्। तस्य मुखादामर्मांसगन्धो मन्मानसमुदविजीत्। मर्मरशब्दैः कुटी स्वस्याः शोचनीयां दशां मह्यं सकरुणं न्यवेदयत। परन्तु सम्प्रति जीवनसंशीतौ चिन्ताचक्रमसमीक्ष्य हस्तधृतनिस्त्रिंशोऽभीरिवाभूवम्। परं मम कुटी सन्त्रस्तैवासीत्। तस्य निशिता नखा वंशप्राचीरस्य पार्श्वतोऽन्तः प्रविष्टा आसन्। सिंहवल्गितेन पर्णकुटी सर्वाङ्गैरकम्पत। पिप्पलशाखा मर्मरायन्त्योऽ-शृण्वन्। कुटीप्रवेशाय केवलमेकमेवासीद् द्वारम्। यस्मिन्नहं स्थित एवासम्। मयाऽतुलसाहसेनाक्षिणी उपरि कृते स मृशं गर्जितः। द्वावङ्गारौ मम नितरां समीपे

ज्वलन्तावास्ताम्। तस्य सक्रोधः श्वासः कुटीमपूरयत्। सिंहो भीषणं सगर्जं उत्पत्य द्वारस्य सम्मुखीनकाष्ठे समैत्। मयापि खड्गोऽसिश्री निर्भीत्य प्रहृत एव। परन्तु सिंहः प्रहारं वञ्चयन्नुत्प्लुत्य पुनर्महता वेगेन कुटीरे पतितः। अधुना कुटी विशृङ्खला जाता। तस्या अङ्गानि शिथिलान्यभवन्। या कड कड शब्देन सशरीरं छिन्नस्थाणावहौपीत्। अनेनाकस्मिकेन व्यतिकरेण सन्त्रस्तः सिंहोऽपि सगर्जं एकतः संवृत्य कुण्डलीनोऽभूत्। मया च तस्मै नमोऽकारि। कुटीदशा विचित्राऽऽसीत्, भूकम्पोत्तरं नगरस्य संभ्रम-सम्भग्नगात्रस्य बीरस्येव।

प्राची प्राकाशत। सूर्यदीपमादाय भुवनवीराजनामिवाचरन्ती सा नितरामराजत्।

अहं प्रातराशं विधाय गन्तुं व्यचारयम्। तस्मात्स्थानान्मम मनस्तृप्तमासीत्। क्षणं भग्नगात्रां कुटीं, क्षणमाश्रमं क्षणं पिप्पलं, क्षणं मत्प्रतिवेशिनः[1] पक्षिणः सस्नेहं वीक्ष्य पार्श्वपर्वतकन्दराभिमुखमगच्छम्।

उपवनमेवासीत् पर्वतः। वनपर्वतयोर्मध्ये एकं विस्तृतं सुरम्यं चक्षुःसरसं क्षेत्रं पर्वतनिर्झराणां विमलजलेन सिक्तसुवननतां दधदासीत्। एकतः शिल्पिनिर्मितेव सरला वंशभित्तिरभ्राजत। अन्यतश्च शिखरैराकाशं स्पृशन् विविधद्रुमलतागुल्मगहनः लोऽवनितलमाक्रम्य वियत्सुधामापिबद्भिः करीरपनसतिनिशपारिभद्रार्जुनादिभि र्झराणामनवरतसणत्कारेण च व्याप्त आसीत्।

अहमेकस्य सच्छायमहीरुहस्य शीतले तले उपविष्टः पार्वतीः घनघना वृक्षावलीः प्रमाण आसम्। अकस्मान्मया दृष्टं यत् सान्द्रद्रुमनिलये आलपन्तौ द्वौ यौ पर्वतपाषाणविकर्तननिर्मितायां गुहायां प्रविशतः। कस्तस्या निर्माणकाल ज्ञेव, कियता श्रमेण कतिभिश्च वर्षैः सा सम्पादिता भवेत्, परमयापि ष्टा। गुहाभवनान्निर्गतो "हे प्रभो? हे नारायण! हे दीनबन्धो! मां जीवये"ति विरलविरलोऽस्फुटाक्षरो ध्वनिर्मत्कर्णौ सतर्कावकरोत्।

अस्खलनपदन्यासोऽहमपश्यं यल्लोहदण्डद्वारायां कारायां विश्वशेखरः प्रवृद्धश्मश्रुः कृशः

---

[1] पड़ोसी—इतिभाषा।

कृष्णो दीपो म्लानोऽपरिचीयमानोऽस्ति। तन्मुखादेव तानि पदानि निःसरन्ति। तादृगवस्थं दृष्ट्वा हृदयमसाधारणया करुणया पूर्णम्। लघुरेव [1]विष्कम्भक आसीत्तदग्रे, पाषाणपातेनैव तं सद्योऽभिदम्। ततस्तैनं यथाऽऽनीतवानस्मि, तथा श्रीमतामग्रे स्थित एव। अनेन कथितं चन्द्रगमनवृत्तमिति।

ततश्च सभासदां साधुवादेन सहैव विरते श्रीमति शक्तिधरे प्रवर्द्धमानायाश्च महाराजस्याधीरतायां मौनं भजत्सु च सदस्येषु शक्तिधराक्षिसङ्केतितः स व्यजिज्ञपत्।

देव! केवलं देहमात्रभिन्ने परमसुहृदि श्रीमति चन्द्रकुमारे गते द्वित्रेषु दिनेषु व्यतीतेष्वहं मम निकेतनस्य क्षोभे[2] सुप्त आसम्। ममाकस्मान्निद्रा भग्ना। निशीथः। सर्वतः प्रवृत्ता च भीषणा निस्तब्धता। मूर्त्तामन्तर्धत्त तमस्विनी च नितरां तिमिरिणी। झिल्लीकदम्बझङ्कारमन्तरा कोऽपि शब्दः श्रुतिपथं नावातरत्। समस्तं जगदापादमस्तकं भयमग्नमिवासीत्। क्षिप्रधाविना श्रवणेनानुभूतो भवनस्याधोभागे कथनापूर्वो ध्वनिः। उद्विग्नो भीतश्चाहमसामयिकेन ध्यानेन, भित्तिमञ्जूषातः पञ्चगुटिकं [3]भिन्दिपालमेकं निःसार्य कुक्षि[4]गुटिकायां संस्थाप्य, नागदन्तेषु लम्बमानानां चन्द्रहासानामेकतमं लघीयांसं हस्ते कृत्वाऽशब्दितचरणः सोपानैरवतीर्याऽपश्यं यन्मम दासा लुप्तचेतना एकस्मिंश्छिद्वारे सक्षालं शेरते। तान् विहाय स्थाने विचिकित्सता मया कपाटसूक्ष्मच्छिद्रनिर्गमनलघु दृष्टं ज्योतिः। कपाटं पादाघातेन निश्चैवं यत्कपाटयुगलमन्तरतो [5]मुद्रितमस्ति। अनुभूतिः प्रत्यक्षतामभूत। कतिचन पुरुषाः शनैरल्पतन्निश्चितिभरया मम कोशजातं सत्वरसत्वरं बहिर्निरक्षिपन्। [6]विमर्दप्रकाशिकाप्रकाशाद्यखिलं वस्तुजातं प्राकाशत। नैते द्वारमुन्मुद्रयिष्यन्तीति पर्यालोच्य बहिरागत्य दृष्टवान् यत् त्रयः पुरुषा ममकोशजातं प्रमोष्य पोट्टलिकास्वाबध्य वाजिष्वायोज्य गन्तुं सज्जाः। त्रयः पुरुषाः शरीरेण, साहसेन, बुद्ध्या, शक्त्या, शस्त्रेण, छलेन, कोपेन च गरिष्ठाः,—एकश्चाहमिति विचार्यापि नाभवमहं शक्यचोर्यमाणं कोशजातं द्रष्टुम्।

---

१ ताला—इतिभाषा। २ दूसरीमञ्जिलमें। ३ पिस्तौल। ४ पेटके पास की जेब। ५ मुंदरा —इति भाषा। ६ टॉर्च लाईट।

"तिष्ठ रे! चौर्यकलङ्कपङ्किलाः! दुष्टभ्रष्टाः—इति सगर्जनमाभाष्य सद्यमेव माहृढो निष्कोशकृपाकृपणकृपाणपाणिरहमन्वधावम्। किञ्चिद्दूरं गतो व्यचारयम्, यद्येते निर्दयाः साहसिका—एकाकिनं मां हन्युस्तदा दुःखदमिमं संवादं कः श्रावयिष्यति स्वजनसम्बन्धिनः। सर्वैः मित्रबान्धवैरविज्ञात एव मरिष्यामि। मम हृदयगतिः पदे पदे व्याकुलता चावर्द्धत। उद्धताः धीरभावा एकपद एव विलीना। मुखमण्डलं खिन्नम्। करोऽकम्पत। शरीरं शिथिलतामभापीत्।

अकस्मादधः—"हिं हिं शब्देन स्तब्धतामभनक्। तत्रापि उत्साह आसीत्, स्वामिभक्तिरात्मविश्वासश्च। अकस्मात्स्थिरमभूद् हृदयम्। भीतिर्वीता। अहमसहायोऽस्मीति भावना नष्टा। पशुरयमस्माकं किमुपकरिष्यतीति विदन्नपि तस्य ह्रेषा—नवीनेनोत्साहेनाहं प्रतिबोधितोऽद्भुतधैर्येण पूर्णः।

सम्प्रति मदीयो वाहो वातेन समलगत्। तेषां वाजिनोऽपि वेगेन मार्गमतियन्त आसन्। परन्तु ममाप्यश्वस्तेभ्यो विदूरो नासीत्। को जानीते कति क्रोशमध्वानमहं व्यलङ्घयं, परन्तु नक्षत्रेक्षणेन रात्रिः स्वल्पैवावशिष्टा प्रत्यैत्। तेऽकस्मादश्वेभ्योऽवतीर्णाः। अहमप्यवतीर्य वल्गां करीर शाखायामायोज्य मर्यादया स्थितो भिन्दिपालं निःसार्य प्राहरम्। चतुर्दशी चन्द्र उदैत। व्यग्रस्य ममाक्षिणी सम्यङ् नापश्यताम्। तथापि द्वौ पुरस्तादागतौ, एकश्च परेतराजस्याध्वनैव मचरवन्।

यदा रुतजनिः। चन्द्रप्रकाशानादृतं तमः। जनसम्पर्करहितश्चायं प्रदेशः। सहसैव मन्मतीर्न धनराशि निष्कुत्प्रसादे प्राचलं, तदैव "वीर! वीर! पश्यसि! पश्यसि"—इति समश्रूयत कर्णकुहरविस्फोटनः करालो घोर अवाजः[१]। श्रुत्वा चैनमत्युग्रकाले कुत्सितरसने विधुतचपलतालौ प्रोच्छलद्धृदये कम्पमानकरकरवाले भीत्या निर्गलभिन्दिपाले दण्डितरोमनिकुरम्बे घोरतरं स्वकान्तीरे मयि निःस्पन्दमानस्य विस्मयः कमलकलकलितेनेव, कालकर्कशेनेव मर्मान्तुदितेनेव अशोभनेनैव हार्दिकेनेव, अखिलेखलकलहायनिकुरम्बरहितेनेव, कठोरवर्णेनेव हार्दिकेनेव, कर्णासंदस्येव महेश्वरदिग्भावेनेव, दृष्टपूर्वेणेव वैश्वदेवैकचारीनेव

१ आवाज।

कृष्णपटेन समावृतशरीरो नीलवस्त्रावगुण्ठिताननो भयङ्कराकारः साकार इव कालो दण्डधारी मल्ल इव हस्तधृतमल्लः कश्चन ना।

साक्षान्मृत्युमिव पुरःस्थितं तं वीक्ष्य शोचन्नहमात्मानं धिक्कृतमकार्षम्। नश्वरवृत्ते वित्तस्य गरीयसा लोभेन प्राणानपि स्वहस्तेन संशीतिभारोपयता मया स्वस्याविमृश्यकारित्वं व्यक्तम्। तरङ्गवच्चला चञ्चला जीवनपारावारे समभ्येति नश्यति च बहुशः, परन्तु तनुरत्नमिदं न पौनःपुन्येनाप्यते, हन्त! कथं निःसर्तव्यमस्मान्मृत्युमुखात्। कथमस्य विपत्-पारावारस्य परं पारमाश्रयेयमिति चिन्ताकुलो मरणमवश्यं सम्भाव्यमानः सत्वरमेवा-सिना प्राहरम्।

परन्तु बलिष्ठेन प्रकोष्ठे गृहीतोऽमुना कालेन केवलं वृथा निश्वसन् अन्तःस्थितं क्रोध-मग्निमिवां वमन्नासम्। तावदेव वायुध्वनिना[1] संकेतितः कश्चिदागत्य शिरसि विषमय-प्रचुरपरिमलमूर्च्छादायकौषधपरीतं वस्त्रं प्राक्षिपद्येन घ्राणप्रवर्त्तिनैवाहं नष्टसंज्ञः संवृत्तः। नष्टमूर्च्छश्चास्मानं लोहदण्डनिर्मितद्वारे कारागारे प्रापम्। यस्मिँश्च कम्बलद्वयं प्रावरणविस्तरार्थं, पयःपूर्णघटं अमतुम्बीपात्रं विना नान्यत् किमप्यासीत्। कश्चिन्मूको दासो द्विस्त्रिरहोभिर्भक्ष्यमन्नं प्रयच्छन्नासीत्। येनैवाहमियन्तं कालं दुःखमा-कलय्यापि जीवामि।

अन्यदा प्रभाते स्वप्नमन्वभवं यच्चन्द्रः करेणुकामारूढो महति समारोहे धमाप्रिय-माणोऽद्भुचरे नगरे राज्ञो हर्म्याभिमुखं प्रयाति, तमन्वहमपि वाजिनमारूढो यामि। विलक्षणो वाद्यध्वनिर्ब्रह्माण्डं मुखरयति। अकस्मादेको महाँस्तोभ[2]श्चलितः। तेन-महाशब्देन व्यग्रोऽहं निद्रामजहाम्। क्षणं स्वप्नं क्षणं स्वकीयां वर्त्तमानां दशां विमृशन्नहं निशां व्यगमयम्।

बभूव सुप्रभातम्। अद्य दिनं मम जीवनस्य विशिष्टं दिनमासीत्। स्वर्णसूर्य उदगात्। किरणावली प्रमोदं प्रावर्षत। पक्षिणो रवेण भाविसन्देशमिवासूचयन्। गुहावासिनो मृगा अपि सहानुभूतिं प्रकटयन्त इव मदीयद्वारदण्डे कण्डूमपानैषन्। विचारव्यग्रे मयि अविदित इव मध्याह्नमतीत्यापराह्णोऽभूत्। पादध्वनिरित्याभाति। यथानु-मितं मूकदासो भोजनमानयति। अहं जीवने निराशस्त्वासमेव। सद्यो जीवनक्षपणाय

१ ह्विसिल, सीटी। २ तोभः—तोप इतिभाषा।

परमेशं प्रार्थयमानेन कारावासदुर्बलाभ्यां नेत्राभ्यां प्रैक्षि यच्छ्रीमान्मन्त्रिकुमारः परमशक्तिधरश्शक्तिधरो द्वारस्य पुरो वेदिकामध्यास्ते। क्षणं मया चन्द्रस्वप्न इवैषोऽपि स्वप्न एव मतः। परन्तु क्षणेनैव ध्वाहितमान्द्ये मनसि विवेकरेखा समचरत्। भग्ने तालके सर्वाङ्गबलेनाहमुदतिष्ठम्। सस्नेहं, सकरुणं, सत्वरं मन्त्रीश्वरनन्दनयोश्चरण-सरोरुहयोः पतितोऽश्रुस्रोतसा वनभ्रमणधूलिमक्षालयम्।

आभारी ऋणी कृतज्ञश्चास्मि यदत्र अपेक्षितपूर्वभाजां सम्राजां नितरामसम्भावितं दर्शनसुखमनुभवामीति कथयित्वा विरिरंसतीव तस्मिन् "चन्द्रः क्वचित्"—मिति साधीरं भाषमाणे च राज्ञि पुनः प्रारभत वक्तुं सोऽप्रचुरकष्टस्वरः।

देव, चन्द्रः क्व किमर्थं वा गतः—इत्यहमेव जानन्नस्म्। यतः स मया सदैवानन्वितः। शक्तिधरस्तु नासीत्।

महा०—आम्, अस्माभिरप्येतदेवान्वमायि यद् विश्वशेखरोऽपि तमनुगतः।

विश्व०—एतदेव विचारितमासीत्, परं मध्य एव यस्मिन् विस्मयोधौ न्यमज्जं तच्छ्रीमतां पुरो निवेदितमेव।

महा०—(किञ्चिद्धैर्येण) आम्, आम् ततः।

विश्व०—देव, किं न स्मर्यते भगवद्वरसिद्धियात्रा, विमलपुरेश्वरपुत्र्या च चन्द्रस्य परिणयप्रतिज्ञा।

महा०—(सोत्कण्ठेन मनसा स्मृतपूर्वोदन्त इव) आम् कथं न, चन्द्रे गते सप्ताहे व्यतीते ततस्तिलकः समायातः।

विश्व०—एकदा सान्ध्यवेलं विधिं समाप्य प्रादोषमशनमुपभुज्य भवनमुखोपवने पवनानन्दमनुभवति मयि द्वास्थश्चन्द्रागमनं न्यवेदयत्। स्मितेन रात्रिमुखं राजयति मौनमुपविष्टे तस्मिन्नहमवोचम्:—

वातलेऽपि खिन्ना कपोलपाली गरीयांसमाधिं प्रकटयति, म्लानं मुखं कातर्यमिव व्यनक्ति, स्फुरदधरो धैर्यमिवावधीरयति, स्खलन्ती वाणी महतीमुत्सुकतां सूचयति, किमिदं किंधारय कारणम्॥

चन्द्रः—सत्यमुपलक्षितं मित्र! वस्तुतो नितरां खिन्नोऽस्मि।

अहं—कुमार, कोऽयमभिनवः खेदावसरः।

चन्द्रः—आम्, अभिनवः, यदर्थमामन्त्रणायागतोऽस्मि ।

भद्रं—अयमहं श्रीमतां जन्मनोऽवधिरेव दासः ।

चन्द्रः—सखे, सखेदोऽस्मि । पश्य त्रिपुराप्रदेशाद्दासतो बलाध्यक्षेण लब्धमिदं पत्रम् ।

विश्व०—देव, तदेवेदं पत्रमासीद्, यदुज्जयिन्यां विमलपुरेश्वरेण लिखितम् । तदिदं पठित्वा स भृशमुदताप्सीत् । व्यञ्जितक्रोधोऽवोचच्च ।

"जगज्जुगुप्सितमनाचरणीयमयशस्यमाचरितमिदं पत्रं विस्मरता तातेन, मद्दत्तवाग्दाना चेत् परिणीता, यतो न पूर्णं वयः प्राप्य शिष्टनृपविवाहिताः कुलीनाः कन्यास्तदा महद-न्याय्यम् ।"

"कुमार, शान्तं पापम् । अमरस्पर्द्धिनी ते सम्पत्तिः, नेत्रशतविलोक्या काममोहिनी ते मूर्त्तिः भूपालचक्रकीर्तितकीर्त्तेः श्रीलश्रीमहाराजचन्द्रपालस्यैकाकी प्रियः पुत्रः, अमात्यसर्वस्वं बलं, पूर्णे वयसि वर्त्तमानोऽप्येतत्सम्बन्धविघटितयाऽदत्तवाग्दानमन्येऽपि भवच्चरणसरोरुहदास्यमपेक्षत एव । विलक्षणोऽस्य भगवान् विधिः" ।

"सम्भाव्यते, परं श्रीभाविराजतिलकपर्यन्तमत्र स्थित्वा परत एतदर्थं यास्यामि ।" इति ।

तदेव, चन्द्रो विमलपुरं गतः सर्वं क्षेममेव विधास्यति देवः प्रमथनाथः । स्तुत्यमेव धेयते देवेन चन्द्रस्य । अहमेतत्सर्वं विदन्नपि श्रीमते निवेदनायालब्धावसर आसम् ।

"परं विलम्बे कोऽवलम्बः"—इत्युक्त्वा मूर्च्छितो महाराजः ।

* * *

प्रातःकालः, कमलवनोद्घाटनपुरस्सरं विचकास सुप्रभातम् । कार्यंकरप्रेरणाभिर कार-यन्ती भास्करकिरणावली जगतः कोणे कोणे प्रसृता । शक्तिधरो जितमित्रः प्रविश्य सदा उपागृह्य दर्शनान्यनुशीलयन्तं सम्राजमुपागमत् । स च हास्येनाभिनन्द्यैतमाह—

"पूर्वं महानिम्बसरसायितं कटुकषायायितं परिणामसुखं कर्म कुर्वन् नरो वरीयो यशस्तनोति; अतो राजकुमारस्वैरपात्र भवताद्यः धन्यकरोपेयमवश्यमेव भवदर्थं द्यम् ।

"मनोभावो मनस्येव स्थेयात् । परिवर्त्तता किन्तु प्रतर्कणानुच्छृङ्खलेन च भवितव्यम् । किमपि कुरु तथा भवद्भिर्यथा त्वं धन्यतरं भवेः, किन्तु मा नाम अविज्ञाताचारविचारेभ्यः प्रमदः । विवादं परिहर, किन्त्वर्थसिद्ध्यर्थे हरिभव् हरो भवेः, यथा न स पुनरुत्पद्येत ।

शृणु, मा वद। सर्वेषां विचारं श्रुत्वापि निर्णये स्वतन्त्रः स्याः। निधिं निरीक्ष्य स्वं वस्त्राभूषणे सभ्यतां मर्यादीकृत्य भजेः। धने नादाता नच दाता भूयाः। सत्यमालो भव्यभावनः सर्वदैव सक्षणो भवेः। प्रतिज्ञातपरो भूया इति।"

* * *

उपसमुद्रं स्थलम्, स्वर्णकणा इव शुभ्रसन्निभा धूलिकणाश्चण्डकिरणसम्पर्काद् भासन्ते कस्मिन्नपि दिग्भागे शकुनिकुलाकुलिता नेक्ष्यन्ते सान्द्रपादपाः। क्वचन क्वच खर्जूराणां नारिकेलानाञ्च विरलविरलाऽऽवलिः।

शक्तिधरो यानस्य प्रतीक्षाभवने क्षणं विश्रम्य राज्ञे पित्रे च सन्दिश्य सहयोगिनोऽपि नन्यानुगुणितरणि प्राविशत्। तरणिर्यमेकाऽल्पीयसी नगर्येवासीत्। पृथक् पृथ् श्रेणिविभागः वाचनालयः, भोजनालयः भ्रमणार्थं क्रीडार्थञ्च वेदिका निवासायावासाः तेषु च शयन-विश्रम-शौच-स्नानादिकर्मणां कृते नितरां सौकर्यम्। शक्तिधरोऽपि प्राग्व्यवस्थापितमावासं प्रविश्य कार्यक्रमं निरमासीत्।

अथ नौ र्वायुध्वनिना स्वनान् प्रसृज्य घर-र्-र्र् शब्देन घरघरायितधरा वेगेन विभञ्जन्ती कर्त्तयन्तीव पयोधिं प्राचलत्।

श्रान्तो भगवान् गभस्तिहस्तोऽस्ताचलचन्द्रशृङ्गमजूगुहत्। मृत्योरशरीरं दूतमिव ध्वान्तमभिवर्धितुं प्रवृत्तम्। दिवसपत्नी प्रोषिते दोषदिशेव द्यौः पतिव्रता योषिदिव कृष्णाम्बरा मौनमवलम्ब्य स्थिता। ध्वान्तविप्लवधैर्यं दिक्चक्रवालं धरितां [illegible] तिरोहितं तमसि लीनम्। प्रशान्तप्रभञ्जनेनापि लघवः शम्बाधराः पुष्करं [illegible] पुष्करिणो नवमभ्यसिञ्चन्। अकस्मादेपित मायो रंहः। क्षणेनैव गगनं [illegible] सम्पोषणेन [illegible], [illegible] क्षिप्य दृष्टिं, [illegible] प्रसारितैः कृष्ण[illegible], [illegible] [illegible] [illegible] धराधरपथान्ते [illegible] [illegible] [illegible] दिग्गजैरिव [illegible] कृष्णकृष्णैः पूर्णपूर्णैः [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

समुद्रोऽथ उच्छृङ्खलमनुष्यैरनवरतं विधीयमानां धर्षणामितोऽधिकं सोढुं न शक्ष्यतीव प्रत्यैत। स्वभावगम्भीरं तस्य हृदयं मानवानां स्वार्थपरतया विरोधीव रणाङ्गणे गर्जतो दैत्यादपि प्रचण्डं, प्रलयकारि चासीत्। कल्लोलैस्ताडिततरेः मुसलधारं पतता धारासारेण हतोत्साहस्य प्रधानकैवर्तस्य मनो विह्वलतां प्रापादि पदे पदे। निमीलितैकनयनः स कदाचन दूरवीक्षणेन परां नावं, कदाचन जलप्रावल्यं, कदाचन झञ्झावातस्य गतिं, तस्याः प्रशमनकालञ्च परामृशत्।

जनमानसानि भगवन्नामजपे समान्यासन्। किन्तु शक्तिधरश्शक्तिधर एव। तस्य सुघटितं शरीरं निर्भीको यौवनसुलभ आत्मविश्वासस्तेन सार्द्धमासीत्। भयङ्करेऽपि समये सरितां पत्युस्ताण्डवं पश्यन्, गायन्नास्त।

अकस्मात् कल्लोलसंहत्या भृशमाहता तरिस्तिर्यग्भूता, जनतायाः सकरुणः कोलाहल-स्तमःस्तोमे लीनः।

दिशि दिशि ततख्याते विद्वद्वराग्रवरङ्गतो
विततमहसः शाब्दे शास्त्रेऽवतीर्णबृहस्पतेः
व्यधित कृतधीः के० के० शास्त्री मनोज्ञकविप्रियं-
बहुलमधु तुर्यो निःश्वासः स चन्द्रमहीपतेः।

इति श्रीटीकमानीवेदवेदाङ्गविद्यालयमुख्याध्यापकानां
पण्डितप्रवरायितस्वाम्यपूजितपादारविन्दानां
श्रीलश्रीनवाङ्करापशास्त्रिणां
तनयेन
काव्यालङ्कारेण
श्रीनिवासशास्त्रिणा रचिते चन्द्रमहीपतौ चतुर्थो निःश्वासः।

पञ्चमो निःश्वासः

अपि दलन्मुकुले बकुले यया
पदमघायि कदापि न हेलया।
अहह! सा सहसा विधुरे विधौ
मधुकरी बदरीमनुसेवते॥

सुभाषितम्

अङ्गनवेदी वसुधा, कुल्या जलधिः, स्थली च पातालम्।
वल्मीकश्च सुमेरुः कृतप्रतिज्ञस्य वीरस्य॥

बाणः

इतो विद्युद्वल्लीविलसितमितः केतकरजः
स्फुरद्गन्धं प्रोद्यज्जलदनिनदस्फूर्जितमदः।
इतः केकिक्रीडाकलकलभरः पक्ष्मलदृशां
कथं यास्यन्त्येते विरहदिवसाः सम्भ्रमरसाः॥

सुभाषितम्

देव,

प्रत्यूषः प्राकाशत। मुकुरोज्ज्वलाः मुक्तावर्तुला उडुजिघृक्षुरिव वियत्क्षेत्रे धावन् दिदृक्षमाण इव वा सांसारिकमाश्चर्यं भगवान् भास्वानारुरोहोदयगिरिम्। आतपोन्मग्नजगत उद्गमविधया च मम निद्रा भग्ना। मम क्षिप्रपरीक्षिणा घ्राणेनानुभूतो गन्धे विलक्षणो गन्धः। नितरां शिथिलानि गतस्फूर्तीनि ममाङ्गान्यपि मूर्च्छामिवासूचयन्। मम व्यायामि वपुश्च पर्यङ्कपरित्यागेऽनीहम्। पार्श्वे कमलापर्यङ्कं निष्कमलं प्रेक्ष्य मनः साशङ्कमभूत्। झटित्युत्थायैतस्ततो वीक्ष्य बहिरेत्य सहचरीरपृच्छम्। ताः प्रत्यू-

'मनोरमे, किं भणसि बहिस्तु न समेता स्वामिनी जागरणसमयमपेक्षमाणा चिरं प्रतीक्षमाणा भवती मुन्निद्रयितुकामा इत आयत्य: स्म:'।

'किन्तु भवने नास्ति राजकुमारी' साशङ्काहं प्रावोचम्।

एकः प्रवाहः प्रसृतः, क्षणेन भवनस्य कोणं कोणमवगाढम्। महाराजो निवेदितः। सकोट्टपालाः नगरनियामका मन्त्रिणा सहैवागत्य व्यवतस्थिरे, परं कमला नाधिगता। देव, श्रीमति याते प्रत्यहं शुष्यन्ती नैमभापातं सोढुं शक्ष्यति, देवस्त्वरयतु"

"राज्ञ आरक्षानियुक्तैरन्ततः किं विनिर्णीतम्"। "देव, अन्ततो मन्त्रिणा नैशः प्रासादरक्षको केवलः समाहूतः, श्वयथुमत्तनेत्रो रज्जुबद्धः शिथिलाङ्गो निष्प्रभमुखो घर्घरवता स्वरेण सर्वं नैशोदन्तं प्राबोधयत्। अग्रे च रात्रौ प्रेषितानां चराणां मुखा देवः शृणोतु :—

"देव, परह्यो रात्रौ पञ्चषा जना मरुत्तराख्ढाश्वैः साश्चर्यं वीक्षिताः, किन्तु देवपौत्सवे समागमाशङ्कया न विशेषत आशङ्किताः। एको मरुत्तरो राज्ञानुहर्म्यं वीक्षितः, स एव च रात्रौ नदीमार्गमारूढोऽवलोकितः। नद्यास्तटे नाविकनायकेन सूचितं यदपररात्रे कतिचन पाटच्चराः शवेन सार्द्धं जीवननौकामारूढा वने विविशुः" इति।

चन्द्रधराणां योग्यतामफलां विभाव्य तान् किमपि निर्दिश्य स्वयमेवाग्रेसरोऽभूत्।

* * *

"पिपासा बाधते शुद्धं जलं लब्धुं शक्यते।" नवागन्तुकेन वृद्धः प्रावोचि।

"अवश्यम्, उपनदि बाहुल्यमस्य, क्षणं विश्राम्य, धूलिधूसरणमनवरतभ्रमणं, दीर्घनिःश्वासस्त्रुट्यन्ती वाक् च त्वां श्रान्तं घोषयति। त्वादृशानां कोमलकलेवराणामेवं निरुद्देश्यं भ्रमणं मनो भ्रमयति; अहमद्य भवन्तं दुर्घटनाग्रस्तमिवानुभवामि।" —गोविन्द, सद्यो जलमानय"—मुखं व्यावृत्य कैवर्त्तकं आह।

"नाविक, त्वमदः कार्यं कुर्वन्नेव वृद्धो भूतः, मन्ये बह्व्यो घटनास्त्वया दृष्टाः"

"महाशय, नदीतटं दुर्घटनानां स्थानम्। यदा यदा मरुन्महावेगेन प्रवर्षणेन च प्रवर्द्धते नदी, गृहाणि गृहिण्यः पुत्राश्च विलुप्ताः, भ्रमणव्यसनिनश्च ग्राहाणां कवलीभूताः।"

"दस्यवोऽपि नद्या लाभान्विता भवन्ति"?

"अथ किम्"।

"एषु दिनेषु त्वया किमप्यस्थाने दृष्टम्"

"परश्वो निशीथात्परतो निःशब्दगमनलघुतरमुत्तरासङ्गावृतत्रयः पुरुषाः समेत्य पार्श्व एव तमालनीला सान्द्राभा स्थल्यस्ति, निशीथे तत्र आगमनमाश्चर्यकरमदर्शि अहं जागर्ति एवास्मि वृद्धभावान्निद्रा सम्यङ् नैति, यतश्च कनीयान् मृतोऽस्ति सा न च [illegible] दरीलीना, सर्वे ...."

"स्थाने," ततस्ततः, औत्सुक्याद्वचस्तति श्रोटमतोकम्।

"ते मां मुद्राप्यकमात्रं[1] दित्सवोऽतिवेलमाग्रहीषुः, किन्तु कदभिप्रायांस्ताननुमाय साहाय्यं नाकृषि" तमालधूममाकृष्य पुनः प्रोवाच नाविकः—इतः पारमस्मिन् [illegible] विचित्रमनर्गान नरान् पश्यन्ति, जगत्ख्यातानां लुण्टाकानामेवायं निलयः। ये गताः न प्रतिनिवृत्ताः।"

"आम्, ते क्व गताः"

"क्व गताः" इति तु ज्ञातुमशक्यम्। ते महासागदेवं शवमिव, वपुरूर्मा मनुष्य स्तरणसाधना जीवननाशधोतार्थं नद्यां निपत्याभितर्न यान्तश्चक्षुषोरगोचरे संवृत्ताः। महत्तरश्च गतो यथागतम्।"

"तस्ते नावा धर्मीश्वरस्य वा"

"वनान्तरित शवीच्चयः (किञ्चिद्विचार्य) शिथिलमिव शृ[illegible]ने स्म। मन्ये कोऽप्य अगीत्।"

"त्वं मां पारं प्रापयिष्यसि?"

"बाढ़ं देव, नैतत्स्थानं यात्रा मज्जनार्थं कृते ध्यासि।"

"दुर्जनः सज्जनान् पीडयन्ति, तदिदं मे गमनमार्गं प्रापय।"

"यदेवं तथं सत्वमेव सहेष्यामि। किं नाम भवतः?"

"चन्द्रः"।

* * *

[illegible]

1 [illegible]

कल्याप्यस्तृस्थतले, विशालशास्त्रशास्त्रिसहस्रसङ्कुल, कुलभवनं कौलेयकानां गृहं गण्डकानां निलयं लुलायानां, सद्म सिंहानां वेश्म व्याघ्राणां निकेतनं करटिनां कान्तारम्।

अतिशयशीतलार्द्रायां वनावनावभिनवानि पदचिह्नानि पर्यवेक्षितः शुष्यन्तीं गलनलिकामोष्ठयोः प्रसृतां पर्पटीं प्रस्पन्दमानं चेतश्च नारङ्गरसेनाश्वास्य श्रुतवानिदं वचः।

“आः दुष्टाः, सर्वं जीवनं दुष्कर्मसु भवद्भ्यो विगमय्य इत्थमुपहतोऽस्मि। मया शतशो निरपराधा निर्दयं हन्त हताः, आः खलम्, हन्त गलोऽवरुध्यते। सत्यः पातिताः.. महात्मानोऽवमानिताः, तत्फलं मया लब्धम्। किं ब्रवै ..(घर्घरवता स्वरेण) हन्त, वराकी कमला ।”

अन्तिमशब्दश्रवणेनैव स स्वं व्यस्मार्षीत्।

वार्तां प्रचारमन्वेष्टुकामो यथा प्राचलत्तथैवाद्राक्षीन्म्रियमाणं निःसरद्वायुस्पन्दमानावयवमुष्णशोणितशोणितीकृतशोणिमश्मश्रुघोणं पादोत्क्षेपमृदुलस्थविरं नाम। तस्य श्वासस्फुटितो जिह्वाऽन्तर्गता उत्सारके दृशौ शिथिलं शरीरमासीत्। स मुखं व्यादायानन्तनिद्रायामशेत।

यावच्चन्द्रो व्यचिक्लिसदशीशीत् पिकान् सशोकयत् रम्भारम्भं दम्भयत्, मेनकां मौनयत्, उर्वशीं वशायत्, तुम्बुरुं स्तम्भयत् कदलीमृदुलतां दलयत्, सुधामवधीरयत्, चित्तहारि, जितमनसामपि विकारि, पशुपक्षिणामपि मनोहारि विमानिताप्सरोगानं गानम्।

निर्जने वने मनुष्यमृत्यु—प्रहारेण न मन्ये हिंस्रेण पुनरस्त्वेतच्चेतोहारि गानम्। शिवे! भयङ्कररमणीययोर्विचित्रो मेलः। आश्चर्यम्।

गानोत्तरं शवस्य समालोचनां विधित्सुर्यथा स प्राविशत् तस्य विमर्दि हृदयं नानुमन्यत। प्रतिनिवर्त्य द्रष्टुं शवो नासीत्। निकुञ्जाः निष्कुटवृक्षाश्चावलोकिताः, शोणितं प्रसृतमासीत्, शव उत्थाय पुष्पचिह्नितः।

उपकाननमेव प्राकृतिकं विस्तृतं क्षेत्रम्। दूर्वा नास्ति, न कुसुमलता न च पुष्पपादपाः किन्तु पर्णविच्छदाः क्वचन समुद्गिताः विशालाः शाखिनः शाखायोर्ध्वं स्थिताः। क्षेत्रादाराद् गगनं स्पृशन्त्यः पर्वतमालाः प्रेक्ष्यन्ते। मध्यमार्गप्रसरद्रक्तवर्त्मिनया शान्द्रास्थिता मसि प्रदेशस्मिन् पूर्वो समाकृष्टोऽप्यसमेन दूरान्तरं गन्तुं शक्नोति।

तत्रैकस्मिन् पादपे कौशेयदामनिबद्धायां दोलायां समानवयोवर्णवामोमूलजाति सुन्दर्यः रसापाहृतरीपूर्व सरससरसं मधुरमधुरं तारतारं गायन्तिः—

रुम् मूम् रुम् मम् सखिलद ! वर्षसि । स्थायी ।
श्रावणमासो हर्षो भूमेः सान्द्रो वातो जगदभिरामम्
माराम्हतमिव वर्षति । (१)
विद्युदियं स्वर्णारुणवर्णा विस्फूर्जितबधिरीकृतकर्णा
आहत्याश्रु रामरायति (२)
अभितस्तन्वा नीरदमाला कालिम्ना कलुषीकृतशालाः
मम मानसमसितयति । (३)
विमलेयं शाटी मम तन्वाऽऽश्लिष्टाऽऽर्द्रा तादात्म्यमुपेता
अभितो मां सखि हसति । (४)
पिकवाणी श्रवणान्तर्विष्टा विमथितमानसवर्द्धितकष्टा
रुषा द्रष्टुमिवेच्छति । (५)
मञ्जुलवञ्जुलसान्द्रनिकुञ्जे केकाविरुतं सारसरसितं
मन्मथमदिरां वर्षति । (६)

गानेनामुना विस्मृतान्यव्यापार उन्मुखो मृगगणो मन्त्रमुग्ध इव पीतमद इव वशीकृत इव रज्ज्वाऽऽबध्याकृष्यमाण इव विवशस्तत्र व्यष्टोभिष्ट । साश्चर्यः सावधान श्चन्द्रस्ता वीक्ष्य यावदग्रे प्रचलितस्तावत्ताः दोलादाम्नैव सान्द्रपादपेष्वारूढाः सर्वात्मना लीनाः ।

चन्द्रो व्यचारयत् :—"नैवं मानुषीषु कदापीदृक् रूपं प्रैक्षि । अद्य कल्पना रूपसरसा-मप्सरसां साक्षात्कृत्या प्रत्यक्षीकृता । किमाभिरपहृता भवेत्कमला ! किन्त्वासां रूपमीदृग् नाख्याति । किं कुशेशयकिसलयं करपत्रायते !! प्रकृतिस्थं पानीयमपि प्रज्वलयति ! सुषमा...वाङ्माधुर्यम्...विचित्रम् । अवश्यमेता एतत्प्रदेशस्याभिज्ञा भूयः । एतासां साहाय्येन कमलावसतिं लब्धुं शक्यते ।"—विचारचयभञ्जकं शिञ्जितमाकर्ण्यानुशिञ्जितं लब्धाशोऽन्वसरत् ।

अदृष्टचारास्वटवीष्वनुमितमार्गो विभीर्भ्रमन् शारदमेघनिबद्धमिव सितं भल्लमिव

भुवनस्य सान्द्रसुधानिर्मुक्तश्वेतमणिगिरिं, यूपमिव प्राचीनयशोधनानां स्तूपमिव धर्मस्य बौद्धस्य प्रसादं सामान्यमात्रकं मन्यमानः प्रविविक्षुः प्रदक्षिणं कृत्वाप्यैष यतितां वर्तुलमठो भवने यत्र नास्ति द्वारस्य पश्चाद्वारस्य वा चिह्नमपि।

हृदयाहितकमलं शिशुमिव सौधं परिक्रमतश्चन्द्रस्यावासन्तानं तमस्तोमं विलय्य शशीरातिरहस्यतामपात्। स्वभावनलमस्मिन्यां वनभूमौ सूर्यस्यास्तमयनेन विध्वस्यास्तं तमः। पुनःप्रादुर्भावमपोऽपि प्रादुर्भवं धवलभवनधावल्यमप्यसीदत्किञ्चित्कालम्।

सर्वेषां पश्ये सुप्तोऽसौ स्वप्निद्रानन्दः प्रत्यूष एवोत्थाय भवनभावनायां लग्नः। अथाभ्यद् गोधमेकमारोहणसाधनमुपलभ्य कौपीनं दधत् शिरोवस्त्रेण धौतवस्त्रमायोज्य गोधाय संयोज्योदतिष्ठत्।

मसृणस्निग्धभित्तौ सत्यामपोऽप्यनायासेनोपर्यागमम्। किन्तु दैवे प्रतिकूले सर्वं प्रतिकूलम्, यतो बहुभारावनिता चालगोधा प्राणानुदसृजत्।

भवनस्य नीलशिलारचितः क्रीडाद्रयमिव कालिकायाः महिषगोष्ठमिव यमस्य विलास-वेश्मेव मृत्योः विशाल उपरितनो भागः। एकस्यां भित्तौ गुप्तं लोहनिर्मितं द्वारम्। निपुण-शिल्पिनेव विरचितं यस्मोऽस्य द्वारे कपाटको द्विहस्तपरिमितो नीलरागेण रक्तो दुर्लक्ष्य-योगो लोहफलके प्रतिष्ठित आसीत्।

सर्वं विमर्शं शिथिलानि वासांसि सम्बध्य वस्त्रालये तस्मिन्निरीक्ष्य कृपाणप्रयोगेन कपाटसन्धिं विरच्य कपाटकमुदघाटयत्।

शनैः शनैरवरोहन्नेव सोपानानि प्रेक्षन्ते स्म। [illegible] धोंपरा-[illegible] सोपानान्तरालि [illegible] पतित [illegible] [illegible] विस्मृतवान्—

अन्तः घोरं गर्भं दृष्ट्वा भयम्। अभितो [illegible] [illegible] प्रतिबिम्बा हन्ति।

[illegible] [illegible] [illegible] पश्चा-[illegible]। एकतः [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

क्लिन्ने पूतिगन्धौ पथि पतितः स्वं म्रियमाणमिवामन्यत। दुरत्ययो दुर्दैवदुर्विपाकः। कामाग्निहवनकुण्डे सर्वस्वं जुहुति युवानः।

निर्वपतो जीवनदीपस्य स्वल्पीयसी प्रभा तदक्ष्णोरमतोऽनर्त्तीत्। जीवनमरणसन्धौ च सकृत् स्वकीयं सुखसमुदयमस्मरत्।

"पाटच्चराणां विनाशाय कृतया प्रतिज्ञया सहैव कमलापि नष्टा, कीदृशोऽहं दुरदृष्टः। हन्त, पालयित्री दृष्टीं सर्वापदां मान्या जननी, वात्सल्यविगलदश्रुस्नपितश्मश्रुः पूज्यः पिता च शक्तिधरः। यानसूचयित्वा समायातोऽस्मि कृतघ्नः। क्वागत्य मृतोऽस्मि। मत्प्रतिज्ञायामाहितविश्वासो रामपालो व्यर्थः, व्यर्थमेव च प्रियप्रजानामपेक्षणम्। व्यर्थान्येवाशाभवनानि विरचय्य प्रजाः प्रलोभितवानस्मि। हन्त क्लिवे मन्दभाग्यः।"

*　　　　*　　　　*

प्रातःकालः। समुदीयमानश्रीर्भगवान् विभाकरः। पर्वतशिखरे लालित्यं वर्त्तते। पर्वतावृतः प्राकृतिकोऽयं प्रदेश उपवनानि परिभावयति। तरुवारपूर्णे परमरम्येऽस्मिन्प्रदेशे फलपादपाः फलभरेण मनुजन्मनामनागमनं सूचयन्ति, यान् परिपिञ्चन्त्येका तन्वी सरित् प्रवहति। अभितोऽनारोह्या पार्वती भित्तिः, ततः सेहुण्डस्य घना भित्तिः। प्रदेशमध्यं कृत्रिममिवास्ते, परमधुनाऽपरिष्कृतम्। पथिषु कुण्डिकासु वन्यविटपा उद्गताः स्थले स्थले पतितपर्णानां कूटं, वेदिकासु बीजानि पक्षिपुरीषसङ्करश्चावलोक्यते। जल-प्रणाल्यो धूलिपूर्णा अविदिता इवासन्। मसृणपाषाणा उद्यानविश्रामवेदिका असम्पूर्णाङ्गाः काठोर्यं भजन्ते। कृत्रिमनिर्झरकुण्डिकासु मरकतपुत्रिका अङ्गभग्नतां पार्श्व-घटताश्चोपगताः।

उद्यानस्यैकत्र एकं पुराणभवनं वृक्षया दावेन वन्यैः पशुभिः पक्षिभिर्विकृतं भ्रंशितरूप-मासीत्। क्वचिद् भग्नं छत्रं क्वचिद्भग्ने कवाटे, खण्डिता भग्ना भित्तिर्वृश्चिकसर्पपूर्णा। वन्य-प्रकृतिदेव्याः पुष्पाभरणैः पक्षिसङ्गीतैः कीचकवनवंशीभिर्निर्झराणामश्रान्तनादेन सरससमीर-समीरणेन कविकल्पनाऽकल्पनीयमानन्दं विभावयन् हरितहरितेषु सान्द्रसान्द्रेषु पादपकुञ्जेषु प्रसरमाणानन्दानां मधुरमधुरं कूजतां तर्जयतामिव प्रतिपक्षिणां पक्षिणां विगतं शब्द... ...शून्यहृदयः शून्यनिकुञ्जेषु विविक्तकोणेषु कमपि गवेषयन् नद्यास्तटेऽवोष-

[illegible] निजायां विश्रम्य [illegible] प्रसार्य [illegible] कौशेयार्धं [illegible]
[illegible] सदा [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] मधुराणि [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]—

"[illegible] [illegible] [illegible] ।"

[illegible] ।"

[illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] ।"—

"[illegible] ।"

[illegible] [illegible] बाहू [illegible] । [illegible] ।
[illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] इव [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] ।

* * *

[illegible] प्रदेशः । [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] भूषितानि । [illegible] [illegible]
[illegible] महान्तो [illegible] राजन्ते । [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] इव [illegible]
[illegible] [illegible] प्राप्य मध्यद्वारे [illegible]
[illegible] "न प्रवेष्टव्यमन्तः"—[illegible] । [illegible] द्वारेषु [illegible]
[illegible] द्वारं बहिः शृङ्खलया बद्धमासीत् ।

[illegible] [illegible] प्रविश्य ददर्श—सर्वाणि द्वाराणि [illegible]

क्लिन्ने पूतिगन्धी पथि पतितः स्वं म्रियमाणमवामन्यत। दुरत्ययो दुर्दैवदुर्विपाक कामाभिहवनकुण्डे सर्वस्वं जुह्वति युवानः।

निर्वपतो जीवनदीपस्य स्वल्पीयसी प्रभा तदस्योरमतोऽनर्त्तीत्। जीवनमरणसन्धौ सकृत् स्वकीयं सुखमयुदयनस्मरत्।

"पाटचराणां विनाशाय कृतया प्रतिज्ञया सहैव कनलापि नष्टा, कीदृशोऽहं दुरात्मा। हन्त, पालयित्री हर्षी सर्वापदां मान्या जननी, वात्सल्यविगलदश्रुस्तस्तिरमश्रुः पूज्यः पिता च शक्तिधरः। यानसूचयित्वा समायातोऽस्मि कृतघ्नः। क्वागत्य मृतोऽस्मि। मत्प्रतिज्ञायामाहितविश्वासो रामपालो व्यर्थः, व्यर्थमेव च प्रियप्रजानामपेक्षणम्। व्यर्थान्येवाशाभवनानि विरचय्य प्रजाः प्रलोभितवानस्मि। हन्त भिषे मन्दभाग्यः।"

* * *

प्रातःकालः। समुदीयमानश्रीर्भगवान् विभाकरः। पर्वतशिखरे लालिमं वर्त्तते। पर्वतावृतः प्राकृतिकोऽयं प्रदेश उपवनानि परिभावयति। तरुवारपूर्णे परमरम्येऽस्मिन्प्रदेशे फलपादपाः फलभरेण मनुजन्मनामनागमनं सूचयन्ति, यान् परिषिञ्चन्त्येका तन्वी सरित् प्रवहति। अभितोऽनारोह्या पार्वती भित्तिः, ततः सेहुण्डस्य घना भित्तिः। प्रदेशमध्यं कृत्रिममिवास्ते, परमधुनाऽपरिष्कृतम्। पथिषु कुण्डिकासु वन्यविटपा उद्गताः स्थले स्थले पतितपर्णानां कूटं, वेदिकासु बीजानि पक्षिपुरीषसङ्करश्चावलोक्यते। जल-प्रणाल्यो धूलिपूर्णा अविदिता इवासन्। मसृणपाषाणा उद्यानविश्रामवेदिका अश्मचूर्णाङ्गाः काठोर्यं भजन्ते। कृत्रिमनिर्झरकुण्डिकासु मरकतपुत्रिका अङ्गभङ्गतां पर्व श्रस्ताश्चोपगताः।

उद्यानस्यैकत्र एकं पुराणभवनं शून्यया दावेन वन्यैः पशुभिः पक्षिभिर्विकृतं भ्रंशितरूप-मासीत्। क्वचिद् भग्नं छत्रं क्वचिद्दग्धे कवाटे, खण्डिता भग्ना भित्तिर्वल्मीकसर्पपूर्णा। चन्द्र-प्रकृतिदेव्याः पुष्पाभरणैः पक्षिसङ्गीतैः कीचकवनवंशीभिर्निर्झराणामश्रान्तनादेन सरससमीर-समीरणेन कविकल्पनाऽकल्पनीयमानन्दं विभावयन् हरितहरितेषु सान्द्रसान्द्रेषु पादपकुञ्जेषु प्राग्भारमानन्दानां मधुरमधुरं कूजतां सत्रंयतामिव प्रतिपक्षिणां पक्षिणां विराव शृण्वन्

ां छायायां शिलायां विश्रम्य वासांस्यवतार्य प्रक्षाल्य शाखिशाखासु शोषणार्थं मायोज्य कौपीनो नद्यां चिरं स्नात्वा धौतं वासः परिधाय छायावृक्षतले शिलापट्टे कृतासन्य उपस्थाय पार्थिवशिवार्चनस्तात्त्विहृदयो नदीतटप्रान्तप्रेङ्खमाणः मधुराणि सरसानि मृदुमास्वाद्यानि मनोहृदयहृष्टो लब्धस्वास्थ्यः पक्षिणां क्रियाभिः सम घन्युतोरं फलराण्डभक्षं ात्सवं पर्यवर्त्तत। रम्यस्थाननिरीक्षणेन तस्य रसिकचरं चेतः पाठप्रत्यावर्तनेनेव- तं शान्तिमापत् परमज्ञातमार्गेण वाणी तस्य शान्तिमभनक्:—

"मया बहुशः प्रेम्णा साम्नाऽऽगृहीता परं साऽस्मन्निन्दनादन्यत्र किमपि मूढे, ा, च। कथयति दुष्टस्पृष्टं न भक्षयिष्यामि अपि मरिष्यामि।"

म्रियतां क्षुद्रभाषिणी सा का हानिः।"

मैतद् ब्रूहि, महत् कष्टं विष्लवमानं सन्देहसिन्धौ निपात्य यामानीतवांस्तस्यै नैतादृग्- । तथाऽऽचर यथा सास्मासु प्रसीदेत्। हठिनी किं करिष्यति गलभूषणातिरिक्तम्। नि प्रैषय।"—

"अस्तु तथा करिष्ये।"

चन्द्रो व्यग्रोऽभूत्, दन्ता अधरमकाम्यन्, बाहू अस्फुरताम्। भ्रुकुटिरारासनायत। रं लोचने प्रावृषेण्यजलदाविवाचरताम्। स क्रोधमदिरां निपीय विवेकविकलो- । मथितहृदयः क्रुद्धोरग इव श्वसन्नुत्थायानुमाय मत्पार्वतभित्तेरधस्तादनुनदी- वाणी समैति; अविदितान्यमार्गो ललाटमावध्य सघमध्यानेन नद्यां पतितो लीनश्चान्तः।

* * *

वेशालोऽयं प्रदेशः। ऊर्व्यां दूर्वाया प्राज्यत्वेन नीलकण्ठकण्ठसन्निभकौशेय- ऽऽच्छादितेव भूर्विभाति। क्वचित्क्वचिदप्रसृता मालतीमौलिश्रीगणिकावकुलादयः वर्द्धयन्तः पुष्पविटपाः महान्तो महीरुहाश्च राजन्ते। प्रिया प्रणयपरिप्लुतश्चन्द्रो ये संरोप्य विकीर्पितव्यं विमृश्य सूक्ष्मया क्षमया स्वागतोक्तिश्माण इव दृष्ट्या ोक्षमाणो विदूरे श्वेतमष्टकोणं भवनमेकं प्राप्य मध्यद्वारे सितशिलाशकलेऽ- रैः, "न प्रवेष्टव्यमन्तः"—इतिलिखितमैक्षिष्ट। बहुषु द्वारेषु भवनस्यास्या- ेष्वेकमेव द्वारं बहिः शृङ्खलया बद्धमासीत्।

न्दस्तु लेखमध्यायन्, तदन्तः प्रविश्य ददर्श:—सर्वाणि द्वाराणि नीलकौशेय

क्लिन्ने पूतिगन्धौ पथि पतितः स्वं म्रियमाणमिवामन्यत। दुरत्ययो दुर्दैवदुर्वि[illegible]
कामाग्निहवनकुण्डे सर्वस्वं जुहुति युवानः।

निर्वपतो जीवनदीपस्य स्वल्पीयसी प्रभा तदक्ष्णोरग्रतोऽनर्तीत्। जीवनमरणयुग[illegible]
सकृत् स्वकीयं सुखसमुदयमस्मरत्।

"पाटच्चराणां विनाशाय कृतया प्रतिज्ञया सहैव कमलापि नष्टा, कोदृशोऽहं दुरा[illegible]
हन्त, पालयित्री हर्ष्री सर्वापदां मान्या जननी, वात्सल्यविगलदश्रुस्नपितश्मश्रुः पूज्यः [illegible]
क च शक्तिधरः। यानसूचयित्वा समायातोऽस्मि कृतघ्नः। [illegible]
मत्प्रतिज्ञायामाहितविश्वासो रामशालो व्यर्थः, व्यर्थमेव च प्रियप्रजाभरे[illegible]
व्यर्थान्येवाशाभवनानि विरचय्य प्रजाः प्रलोभितवानस्मि। हन्त [illegible]
मन्दभाग्यः।"

*　　　　*　　　　*

प्रातःकालः। समुदीयमानश्रीर्भगवान् विभाकरः। पर्वतशिखरे [illegible]
पर्वतानुगः प्राकृतिकोऽयं प्रदेश उपवनानि परिभावयति। तरुवारपूर्णे परमरम्ये[illegible]
फलपादपाः फलभरेण मनुजजन्मनामनागमनं सूचयन्ति, यत्र परिशिथिल[illegible]
सरित् प्रवहति। अभितोऽनारोह्या पार्वती भित्तिः, ततः सेतुबन्धस्य [illegible]
प्रदेशमध्ये कृत्रिममिवास्ते, परमधुनाऽपरिष्कृतम्। पथिषु कुञ्जिकासु [illegible]
स्थले स्थले पतितपर्णानां कूटं, वेदिकासु बीजानि पक्षिपुरीषमप्युपलक्ष्यन्ते। [illegible]
[illegible] धूलिपूर्णा अभवन्। [illegible]
[illegible] भवन्ते। कृत्रिमनिर्मितकुञ्जिकासु [illegible]
[illegible]।

[illegible]

पञ्चमो निःश्वासः

श्रीः

प्रतिज्ञापत्रम्

[illegible]

भाययन्ते नरकङ्कालाः। एकस्यां शिलावेदिकायां लोहकीलकपरिवृतायामेकः सद्यो मृतः पञ्चजनः प्रतीयते, सूक्ष्मया दृष्ट्या निरणायि यत्सोऽयं शवो यः पार्श्वकन्ने दृष्टः। क्वचन जीर्णं मर्मराख्यि कङ्कालस्य प्राचीनत्वं प्रथयति। क्वचनाधोनिम्नं, क्वचिद् भग्न कपालास्थि दण्डाघातेन मृत्युं सूचयति। क्वचिद्वर्तुलभिन्नं शङ्खास्थि भिन्दिपालगुलिकया मृत्युं प्रमापयति। क्वचन विशृङ्खलकशेरुकः कङ्कालः पाशकृतां विख्यापयति। इतरे वक्षोऽस्थिप्रविष्टच्छुरिका दार्ढ्यादनपगतच्छुरिकाः सद्यो मारिता इवावगम्यन्ते। आयुर्वेदीयशवच्छेदविभाग इवास्मिन्नाश्चर्यचकितः शोकशङ्की भयविस्फारिताक्षः कमपि गवेषयन्नयमधुना मधुनाऽप्यहार्ये दुर्गन्धनिधानेऽनाचार-प्रधाने, सद्वित्तिरोधाने प्रकाण्डहत्याकाण्डभाण्डे प्रचण्डे भवनखण्डे विमीर्षन्नद्य पार्श्वभित्तिवातायनादाकर्णितवान् "हा ? प्रिय"? प्रिये, "हा त्वं न वेत्सि कथमहमर्मास्म" इति। करुणाकूपारपूरपरिप्लुतेऽस्मिन् वचसि काप्यद्भुतेव शक्तिरासी यतश्चन्द्रस्त्यक्तान्यविषयो द्वारानभिज्ञ उपकुड्यं पाषाणानायोज्योत्थापितपार्ष्णिः प्रैक्षिष्ट यत्—कूपनिम्ने कारागारे एकस्मिन् कृष्णकम्बले, रसालकपोलशालिनी कमला, मलाचितवसना, शुष्कगण्डमण्डला, म्लानमुखचन्द्रा, मृतकल्पेव शिथिला, हतप्रभेव-दीपदीप्तिः, शुष्यज्जलेव महानदी, नष्टद्रुमेव वाटिका, मृतनृपेव पुरी भयङ्करा, शिखेव कूपीटयोनेर्धूमाचिता, आज्ञेव सम्राजो धूर्तैरवमानिता, वीतसुषमाऽसमा वामानां, मानाम्भोधेर्वेला लोहद्वारे कारागारे भित्तिमाश्रित्योपविष्टास्ति। अधुनापि तस्या मुखं—निष्प्रभमपि सुन्दरमासीत्, सत्यं "रत्नं पङ्के न लुप्यते"। तस्याः सम्मुखे चैकः प्रचण्डचण्डः पिचिण्डिलो गृहीतासिधेनुकः स्थितोऽस्ति। कमला-क्रोधान्धा सरोषं वक्तुमारभत—

"आः पाप! किं पौनःपुन्येन छुरिकां दर्शयसि। अरे न वेत्सि, यस्य भारतस्य परमपूतनामधेयाः सीतादमयन्तीद्रौपद्यः पुत्र्य आसन्,—तस्य भारतस्य—यस्मिन्नङ्गना जीवन्त्य एव स्वामिनाश्चितासु भस्मीभूता भगवतो भूतभावनस्याङ्कगता सम्पद्यन्ते,—तस्याहमप्येका पुत्र्यस्मि। तासां चरित्रं, साहसं, कर्म, तदेव भारतीरुधिरं मदीयशिराजालेषु प्रवहमास्ते। अमूल्यपातिव्रत्यधर्मे कर्म मादृशीनां प्राणार्पणम्। मूढ, मुधैव मुहुर्मुहुरसिं दीपयसि, धारां निशातयसि, यदि युवासि, वीरोऽसि

ई सपद्येव प्राणानपहर। परं दुष्ट॥ निकृष्ट। त्वत्सम्मुखे प्राणांस्त्यक्तुं
ज्जा। मह्यं देहि इमां छुरिकां, यया स्वाभीष्टं साधयामि। आः विव
दि तु · नहि तु त्वां किं कारयामीति विचारैः परम्"—

इति कथयन्ती किञ्चिच्छिथिला जाता, परन्तु पुनः प्रोवाच—

कामोन्मत्त! पापान्ध! पश्य! अक्षिणी उन्मुद्रय, विचारय! क्षणिक
ल्पतृप्त्यै कीदृशं महान्तमपराधं शिरसा वोढुमिच्छसि।

कुलाङ्गार? न वेत्सि भारतरमणीनाञ्चेतः स्वर्गसुन्दरं, सज्जनवच इव मृदुलं,
ालयश इवोज्ज्वलं, तपोधनविचारवत् पवित्रं शिशुस्वभाववत् सरलं, कवि
ोऽपि प्रबलं भवति। यत्र लोभलोलुपतायाः, भयभावनायाः, विलासवासनाया
च्छायाया अणुरपि नास्ति।

नरपिशाच!

मानसमुक्ताभक्षणस्पृहा हंसी किमवकरं किरति! चकं विलोकयति, मेघमत्तमयू
नृत्यन्ती मयूरी किं गर्हणीयं श्मशानगृध्रं स्वप्नेऽपि गर्धते! मूर्ख? मुधैव कुबेरायसे
पतिता विप्रुडेव चातकतृप्त्यै अलं, सा महान्तं रत्नाकरमपि कुटिलेन काणेनाक्ष्णा

इतोऽधिकं चन्द्रः श्रोतुं नाशकत्। धैर्यशिला, विपत्तेरगाधे पयोनिधौ
भग्ना। प्रलयङ्करिणा झंझावातेन धैर्यद्रुमो ध्यनाशि। स कटकटायितदशनः
सरोषः "प्रिये, मा भैषीः, आः कुसुमकोमले! साम्प्रतं स्थण्डिलमधिशेते? अस
तिष्ठ रे दुष्ट! क्व ते स्थान मदसिलक्ष्यवृत्तेः। प्रिये! आगतस्ते प्रिय
व्याहृत्य भित्तेः पातो भविष्यति द्वारमित्यालोच्योदकूर्दत। कमला
वाचमिमां श्रुत्वोत्कर्णाऽभूत्, परं निष्फलम्, यतो भित्त्यारोहणसमकालमेव,
प्रबललोहदण्डाघातान्मूर्च्छितश्चन्द्रः। आशायाः तरङ्गः शैलशिला
चूर्णिताऽऽसा तलं पस्पर्श।

* *

विशालोऽयं प्रासादः। स्थानम्।
हरितयत

परिमलेन भ्रान्तं प्रीणत्, फुल्लद्विविधसुमं, लम्नविपुलफलमवकोकिलं, वापीविद्रुतन-पीवरपवनपरिलसितमुपवनं राजते। यत्र मधुरमधुमय्यां मालतीलतायां मकरन्द-मत्ता मधुपा माद्यन्ति। यत्रोपवनचतुष्पथेषु स्फटिककुण्डिकासु मारकत-पत्रालिकासु लघुलघून् बिन्दून् निपातयन् नितरामाभाति कृत्रिमनिर्झरः। यथोचितसिकताभिर्विरचिता सरणिर्मालाकारस्य कृतित्वं, स्वामिनो विलासित्वं ख्यापयति। प्रासादो हि रक्ताश्म-विहितः सुबहूच्छ्रितो रमणीयश्चास्ते। मरणश्वेतशिलाभीरचितानि, आसमर्पितानि सोपानानि, करटिरदनशकलखचिता द्वारशाखा, दृढं राजतपत्रखचितं कपाटयुगलं, यत्र पत्रचित्रा वल्ल्यो विटपाश्च शिल्पिनः शिल्पकर्मणि नैपुण्यं द्योतयन्ति।

सभाभवने वार्त्तैव श्रूयते। परन्तु द्वारेषु केवलं मध्यद्वारमेवानावृतम्। भित्तिमञ्जूषाः, गुच्छमुकुराः, छत्रलताः 'काचवल्ल्यौ भाण्डानि' च याः छविमेधयन्ते भवनस्यामुष्य।

भवनेऽस्मिंस्तिस्रः स्त्रियः आसन्नविंशतिवयसः, गौरवर्णाः, [illegible] पौरस्त्यमिव भासयन्ति। तासां या महासुन्दरी, सुरसाम्यनिर्झरैः सौन्दर्यम्, नर्त्तयेत्याभाति, यां वयं नामज्ञाने यावत् 'सुन्दरी' पदेन बोधयिष्यामः, सर्वे मधुरविहारिणि।

किमिव निरूपयामोऽस्याः सौन्दर्यम्। अभिनवलावण्यलतिका, स्वर्गीया [illegible] चन्द्रगौरी, शर्वरीव सुषमा, प्रफुल्लकलेव ललिता, [illegible], सुकुरोज्ज्वला, मञ्जुभाषिणी, कामकान्ता, मूर्त्तीभूतेव ज्योत्स्ना, प्रेमप्रतिमा, सौन्दर्यशिला, [illegible] प्रभामयी, [illegible] [illegible] स्तनयोः [illegible], श्वेता कौशेयी शाटी [illegible] [illegible] च हीरक [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] ददर्श। अथ—

"अहो! [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible]—[illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible]

१ [illegible]। २ [illegible]।

मानूय तदानन्दमात्रमप्योद्यानस्य मध्यभवने पर्यङ्के शाययित्वा मकुलाट्टिकामायोज्य सुःसमेश्लेन तं परिवीय सान्द्रमसमासाद्य तथैव अरक्षम् ।

सुन्दरी॰—पीतवसनं कदा निहितम् ?

बालः॰—तस्मिन् वाप्यां प्रविष्टे एकस्यां शिलावेदिकायामहमाच्छः शाटी च धृते। तां विहितमतेव आवश्य रमशम तः सन्ध्या विरमति। मन्मुखं किमीक्षसे ? शीघ्रं परिवेषय। तदागमनात्पूर्वमेवाम भ्रमेतद् भवने स्थापयितुमिच्छामि। आधारो परिवेषय, एतिदद संधारय परिवेषय। अहं स्वर्णभाजनान्यानयानि (आनीय) एषु पृथक् पृथक् शाकानि परिवेषय।

सुन्दरी॰—कि परिवेषयामि, दिशताऽस्मि ?

बालः॰—आः सुन्दे ! बहुशः शिक्षितापि न ज्ञातवत्यसि।

सुन्दरी—त्वं सुरैव क्षत्रियमामेवमनोभव स्वाऽऽडम्बरं रचयसि, परमय न रामसदृशा राजन्याः। अत्र क्षत्रियाणामुत्तरस्य विवाहाः सम्पद्यन्ते। त्वं स्वयमेवाम्बे रोदिषि, अहं कथयामि यत् पश्चं कनने दर्शनानन्तरम नीचामि मनसः।

बालः॰—अम्, कामिनि ! (सप्रकाशम्) देहि पत्रं दासि।

बालः तत्र एव निर्माणका समेता।

सु॰—कामीर् !

बा॰—आम न ददासि किम् ? (विहस्य) बध्दा आयन्नदीर्।

सु॰—अस्तु, ..

बाल—अये ! सुन्दरि ! कथं न वदसि ? अयि ! मौनीभूता किम् ?

सुन्दरी—न गन्तीति महाकम्। कि सविकारं पदि पदिदेन्यो बिभ्यमि।

बाला—(सकोपेन) किमर्थं विलम्बसि, किमपि कर्तव्यमस्ति वा ? सर्वेरिति, भवति सुन्दरीकैतुकम् !

सुन्दरी—अस्तु, अत्र वदसि, सदैवम कर्तव्यमिति तथवं श्रावयामि। सम्बन्धिगुणैव कर्मिषिद्धैव विरहार्थं कर्षन्ति मानवैरा मर्त्यवी चन्द्रवंशः कलस।

एतद्गुणनिधे वदन्ति यो रमनेदिक्षितदशकतेष्ठ्यपि लोकेऽ। तत्र

पार्श्वकानने दोलारूढामपि त्वामवशयत्। चन्द्रनयनचन्द्रिका च प्रच्छन्नद्वारस्य माधा-भवनस्य द्वादशसंख्यककारायां निगडिता·····

सरो०—(साश्चर्यं सहर्षम्) कदा! क्व वा कुमुदिनि?

कुमुदिनी—आनीतायास्तु पक्षो व्यतीतो भवेत् (किञ्चिच्चिन्त्य) सरोजिनि! तं कमलां कारातो निस्सार्य सत्कृत्य तस्याः पुरः प्रेम्णा वदान्यतामदः प्रस्तुतः मन्ये कारामोचनप्रसन्ना, ऋणमपदिनीयन्ती स्वपतिना विवाहमनुमोदयेत्, परन्तु मा नाम कान्तिसिंहो वृत्तमदो विजानीयादन्यथा सोऽस्मास्वपि प्रकृष्टं निकृष्टो वैरायिष्यते।

सरोजि०—कुमुद! प्रिये! कथं ज्ञातवत्यसि? सत्यं कथय!

कुमुदिनी—(विहस्य) योगिन्यस्मि, योगप्रभावाज्ज्ञातवती।

चपला—नैवं कथयसि यद्वियोगिन्यस्मि प्रबलस्य। (उभे हसतः)

* * *

भगिनि! कमले! स्तोकं दाडिमीरसं पिब, पक्षो व्यतीतः, नाधुना तवाङ्गेषु दार्ढ्यम्। पीता कपोलपाली गर्त्तगते गलज्जले निष्प्रभे नेत्रे मम सेवां कदर्थयन्ति। कथय क्वापि त्रुटिरवहेला यदस्ति सपदपनयामि कमपि सुचिकित्सकमाह्वयामि। त्वमेवैतस्य गृहस्य स्वामिनी, वयमाज्ञावाहिन्यः आज्ञापय।

कमला—सरोजिनि, किं वक्षि। अहं सर्वथा सन्तुष्टा चास्मि। त्वत्तः कदापि न भविष्याम्यनृणा।

कुमु०—(शनैः) भविष्यसि।

कमला—भगिनि! नहि नहि मातः! देवि! (सरोजिनी हस्ताभ्यां कमलाया मुखमाच्छादयति)

सरोजिनी—प्रिये! कमले! त्वयाहं भगिनीनिर्विशेषं दासीनिर्विशेषं सम्बोध्या, बोध्या च।

कमला—यद् भवत्यै रोचते, परमृणभारमसमर्थास्मि वोढुम्।

चपला—यदि कोऽपि भवतीमनृणां कर्त्तुं परदेशस्मै किमपि देयं नाम?

कमला—देयम्! शिरोधरामुत्तार्य पादयोः पातयिष्यामि, जीवनधनमेव तस्मै मुच्छेत्तुं शक्नोमि।

चपला—अपि सत्यम्?

कमला—सत्यम्, किं क्षत्रियकुलप्रसूताया रसना द्विर्भाषते? सत्यम्, नितरां सत्यम्।

चपला—परमप्रियवस्तुवितरणे वदान्योऽपि सङ्कोचमश्नाति, अतः सम्यक् पृच्छ्यसे।

कमला—तर्हि विस्पष्टवचोभिर्वेदय कथमात्म्यमासादयितुं शक्नोमि।

चपला—सरोजिनि, त्वमधुना विश्राम्य, अहं श्रीमत्या मनो विनोदयामि। (उभे गच्छतः) श्रूयताम्:—

नास्त्यत्र सन्देहलवोऽपि यन्नन्दनपुरेश्वरो नन्दनसिंहः प्रतिभावान् सहृदयो नगराणामधिपतिरासीत्। राजसभाङ्गनं जनसमुदयेन प्रपूरितं प्रेक्ष्यते स्म। शतशो गायकाः, कलाकाराः, चित्रकारा भवनमभ्याश्रयन्त। गायकान् सादरं व्यष्टभन्। शतशः आश्चर्यभवनान्यद्यापि तस्य प्रतिभां परिचाययन्तो राजन्ते, येषु निलीनः पुमान् प्राणानेव कष्टेन जहाति। येष्वसंख्यातं धनं निहितमास्ते। यद्यपि सर्वाः कला अद्यत्वे कालकवलितास्तथापि तदवशिष्टांश एव विस्मयावहम्। वर्षद्वयं व्यतीतं स बुद्धिमदग्रियेण विधेयाऽऽहूतः स्वर्गं सनाथयामास। तत्पत्न्योऽपि अप्सरोरूपेण सेवितुं समनुसस्रुः। नन्दनसिंहो निष्पुत्र एवासीत्। केवलमेका, एषाऽपि सरोजिनी एकाकिन्येव तस्य प्रसूरस्ति। अस्या यौतुकमाधारं भवनेषु सुगुप्तमस्ति। आश्चर्यभवनस्य, तन्मार्गाणां निधेः, सरोजिन्येव पूर्णाभिज्ञा। तस्मै मन्त्र्यपि एकः प्रजाभक्तो दक्षो राजकुले कुलीन आश्चर्यभवनविशेषज्ञ आसीत्। महाराजे स्वर्गते स एवैनां राज्यस पालयन्नासीत्, परन्तु प्रियपुत्रेण कान्तिसिंहेन मन्त्रिपदप्राप्त्यै हतविधः स्वामिनमनुससार।

अधुना सरोजिनीपितृव्यः कामेश्वरसिंहो राज्यं समीक्षते। कान्तिसिंहश्च दुष्कर्मैरिति राज्यान्निस्सारितो दुष्कृतसहायैः [illegible] विदूरे गव्यूतिद्वयान्तरालस्थिते आश्चर्यभवनखण्डे निवसति। सोऽप्येकः सुरङ्गस्थानस्यै वर्तते। एवं तु सरोजिन्येव विज्ञाऽऽसीत्तस्य, सम्प्रति विदन्ते आवामपि बोधिते।

पितुः सरोजिन्यां प्रभूतं प्रेमासीत्। अश्वारोहणे, हरिदर्शने, [illegible], शस्त्रसंचालने, धावने, सत्साधनाविधानेऽपि सैषा नितरां निपुणा। एतस्याः प्रत्येकावयवं सुन्दरतायाः प्रभा। समस्तसौन्दर्यसंवेशाद् [illegible] कुसुमेभूदेव स्थितं प्रतीयते। सैषा कुसुमसुकुमारा, कर्पूरशरीरा, चन्द्रिकेव विकसिता, गौरी प्रगेव प्रभवन्ती।

अस्या वाणी भगवद्भक्तिरसा कवितेव सरसा, गाङ्गप्रवाहवत् स्वच्छा, शिशुहासवत्सरला, पतञ्जलिभणितिरिव भावपूर्णा सुबोधा च विद्यते।

एतस्या वनितावल्लर्याः सौन्दर्यवितानस्य सान्द्रशीतलच्छायायां विरिरंसया एष वीरो मानसं तोषयितुमैच्छत्। सैवाऽधुनाऽबोधबालिका नास्ति, अस्याः शरीरकानने वसन्तेन वासो विहितः, सौन्दर्यसरसि प्रेमाङ्कुरो निर्गतः। हृदयसरोवरे स्मरसरोजं विकसितम्। प्रतप्तप्रतिभे पितरि परेते स्वयमेषा सर्वस्वामिनी। स्वभावचपलत्वेन एतदा यशोनिर्जितचन्द्रे चन्द्रे चन्द्रेक्षणेन व्यसनम्। तरङ्गायितबुद्ध्यप्रमत्ताया निम्नगतां नीरमिव न प्रत्यावर्तयितुं शक्यते। कथं न भवेत्सुधांशुसंयोगे उत्कलनम्। भवत्येव योषितां सदोत्सुकं मनो मुहुः पुनश्च वारे वारे, मानसमुन्मथयति मन्मथे विलासशालिनि, केवलं शरीरसहाये सहोदित्व प्रचुरचातुर्यपुरःसरीकृतान्यविचारे च मनोविचारे कथं स्वातन्त्र्यं प्रभवेदेव। अमुं अकस्मात्प्रभवमनस्तापं विधातुं चेष्टते। अहमप्यभिलषामि यद् हार्दमिदं तयोः ... यावत् चिरं भवतीति।

कमला—कृतनिश्चितास्मि, धन्यासि, यस्या मन्दभाग्यायाः सम्मुखे ... मार्तण्डदर्शिनी, निर्धूतकलङ्का, केशाभेदसमाप्तदलङ्कारा, ... , सा सुरासुरक्षतनामभिसर्गिणी। मृतप्रायास्मि। यत्तु हन्त विमुक्ता मया ... ... हा। हन्त, हतास्मि।

एवं कथयन्ती कमला मूर्च्छिता। चन्द्रमुखी यशोमिनी कथयन्ती ... हिमार्द्रितेन, ... , व्यजनवातेन तां समाश्वासयत्।

* * *

[illegible]। ... [illegible] ... ।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

साहित्यसारस्वतभासुरोरुधी-
धुरीणता[illegible]शिरोमणेः कवेः ।
[illegible] कृतौ महीपतौ
गतो [illegible] तु पञ्चमः ॥

[illegible] कृतौ
[illegible] पञ्चमो विलासः ।

षष्ठो निःश्वासः

यो दिव्याम्बुजलोलमत्तमधुपप्रोद्गीतरम्यं सर-
स्त्यक्त्वा मानसमल्पवारिणि रतिं बध्नाति कैदारिके।
तस्यालीकसुखाशया परिभवक्रोडीकृतस्याधुना
हंसस्योपरि टिट्टिभो यदि पदं धत्तेऽत्र को विस्मयः॥

सुभाषितरत्नम्

हृदयतृणकुटीरे दीप्यमाने स्मराग्ना-
वुचितमनुचितं वा वेत्ति कः पण्डितोऽपि॥

त्रिविक्रम भट्टः

गरलसहोदरजाता (लक्ष्मीः)
यत्र मारयति तदपि वरम्॥

स्फुटकम्।

यामिन्याः प्रथमो यामः। वायुर्न वाति। बकुलकुलशय्याशायिनां गणिका-गणदारहारिवक्षसां सुगन्धशीतव्यजनेन वीज्यमानानामपि निर्लज्जेव वनिता-भाजं मुञ्चत्युष्णता। उष्णता उष्णता, तालुशोषस्तालुशोषः, हिमं हिमं, बकुलयष्टिक बकुलयष्टिका, कर्पूरलेपः कर्पूरलेपश्चन्दनं चन्दनं, जलं जलम्, अहो स्वेदः, कम्बूः कम्बूः, मशकाः मशकाः, वायुर्वायुरित्येव श्रूयते सर्वतः श्रुतौ। क्वचन प्रलम्बगुणाकृष्यमाण-व्यजनस्वनः, क्वचन द्रुतनिद्रसुन्दरीनूपुरझङ्कारः, क्वचित् करधृतव्यजनिकाभिर्मन्दमभि-विधीयमानः स्वेदजलप्रशमनः शिशूनां रोदनप्रशमनः संलापः।

प्रतिगवाक्षं समीरमिव मृग्यमाणानां मृगीदृशां वेवेष्टि कल्पशिशिरम्।
वाससैवेष्टितैरपि घटेषु प्रतप्तमेव पानीयम्। उशीरनीरशिशिरमपि ... दग्धतामेव पुष्णाति।

हार एव भारोऽङ्गदमेवाङ्गदम्। ललन्तिकैवान्तिका, रशनैवाशना, वस्त्रमेवा तूलिकैव शल्यिका, उपधानमेवापत्।

किं बहुना वायुरपि वायुं वाञ्छति, सरसामपि सलिलस्पृहा, पिपासाक्षामे नद्योऽप्यद्य सद्यः समुद्रमनुधावन्ति। मीनोऽपि दीनः। तुहिनमपि हीनम्। क मपि समलम्। प्रतिप्रतोलि "हे भगवन्! हे नारायण! दीनबन्धो! कथं जग जीवयिष्यसि" इति श्रूयते प्रवृद्धः प्रवृद्धवृद्धघोषः।

सोष्मलोकलोकं लोकं लोकं वियन्मध्यमध्यास्ते चन्द्रः।

सुशीतलजलशीतलतले शयनागारस्थप्रकुट्टिमे मञ्चे उपधानमाश्रयन् महारा रामपालो विनीतविशदवेषैर्भृत्यैर्महद्भ्यां तालवृन्ताभ्यां वीज्यमानो मन्त्रिणाऽऽलपा समीपे च न नितरां राजते राजते दीपाधानेऽप्यवस्थितो दीपः।

अथ रामपालमन्दिरे मालिन्यसमाजः शासनं समवलोक्यते। धावल्यं विदूर-प्रसृतेषु यशस्सु, चापल्यं लतालोलेष्वलिषु, [1]अगा गीतयः प्रसृताः संसारे, चालनं व्यजनानां, फुल्लता पुष्पाणां, विकासो जृम्भितास्ये, सम्भेदोऽश्रिरम्भसु। धिक् धिक् कुर्वती घटी लोल [2]स्लोलकेनाधैर्यं व्यनक्ति।

"मन्त्रिन्! शेष बहु व्यतीता रात्रिः"।

मन्त्री०—आम् देव! शयिष्ये। भूपेन्द्रं प्रतीक्षे, दत एव......

महा०—(मध्ये एव) किं सम्भावयसि मन्त्रिन्! यत् कमलां पुनर्द्रक्ष्यामि!... हन्त! महात्मनो नवेन्दुवर्मणोऽस्म्यहमेव, दुःखकारणम्। जीवन्नेव मृतोऽस्मि।

मन्त्री०—नहि, देव! नैवं वाच्यम्। महाराजानां चरणौ शपे, यतो भूपेन्द्रो गतोऽस्ति वराकेण जयद्रथगाढम्। नासौ सालसो यत्कार्यमनु प्रमादेन जह्यात् तत्पत्रमपि समायातम् (कशिपुटिकाया निःसार्य)।

महा०—किं लिखति सः—

मन्त्री०—(दीपवर्तिकां किञ्चिदुद्दीप्य) देव! स मां सम्बोध्य लिखति—

कति योजनानि प्रत्यहमहो! मयाऽऽगम्यन्ते। षष्टिघटिकात्मके काले सर्वेऽपि

---

१ नास्ति गो यासां ता अगाः-ग-रहिताः=ईतयः इत्यर्थः। २ लोलकचन्द्रेण्वुक्रम।

शान्ति न लभे। विविधरूपपरिवर्त्तनेन प्रतिक्षणमात्मानं सन्देहसिन्धौ निमज्जयन्नुनामि साशः। क्षमश्चेद् गुरौ भक्ता मिलितुमिच्छामि, मद्वचनदसप्रणामं सान्त्वनीयो महाराजः। जीवनेन कार्यं विचारये। शेषं कुशलम्।

टिपासर }

आज्ञापालको-
भूपेन्द्रः

महा०—अद्य ·

मन्त्री०—आम् देव ? अद्य गुरुदिनम्। मन्येऽधुना स आगत्यास्मान् हर्षयिष्यति।

महा०—दृश्यताम्, किं भावि, मन्त्रिन्! विरक्तोऽस्मि।

मन्त्री०—देव! आपदः प्राणिष्वेव पदं दधति। पुरापि पृथुप्रतिष्ठाः पार्थिवा आपत्तीराप्यापि धैर्यं न तत्यजुः। धैर्यधारिधुरन्धरा भवादृशा अपि धैर्यं हास्यन्ति, चेत् तदा हन्त ? कं नामाश्रयिष्यत्यनाश्रया धीरता। गगनमेव गति शक्नोति सूर्यमण्डलस्य।

द्वाःस्थो भूपेन्द्रागमनमसूचयत्। आगतश्चैकः सभ्यवेशः प्रभावितमुखोऽस्ताकृतिः उपत्रिंशद्वयाः, दीर्घाकारो व्यायामिविग्रहोऽदृष्टजन्मजः पुरुषः।

मन्त्री०—भूपेन्द्र, अपि कुशलम्? कच्चिल्लब्धो वृत्तान्तः? भूप, तवैव चर्चा वर्तते यामेष्वष्टसु।

भूपेन्द्र—किमिव कथयामि देव, अनवरतं रतो भवत्सपर्यायां पर्यायेण प्रचुरनगराण्य-गाहमानः स्वास्थ्यं गमयित्वापि पूर्णोदन्तं न ज्ञातवानस्मि। श्रीमांश्चन्द्रो मरुत्तराष्ट्रो गतवान्, तदा चालकेन किमपि प्रत्यावृत्य न निवेदितम्?

मन्त्री—विपत्तौ विपद एव पदं कुर्वते। को जानीते ततः किं सूचितमार्गेण, किन्तु स वराकः समायन् पथ्येव केनापि हृतः। मरुत्तरश्च नीतः। सोऽयं स एव आश्रय आनीतोऽन्वेषकैः। तत्पदपङ्क्तिश्च मृष्टा महत्या मुसलधारया वृष्ट्या।

भूपेन्द्रः—(निःश्वस्य) तर्हि देव! केवलं सूचयितुमेवागतोऽस्मि। कदाचित्पत्रं हनुवानि, तत्कार्यं श्रीमद्भिः सत्वरमेव विधेस्मिम्।

*   *   *

"चपले! अकारणबान्धवे, बहुभिर्दिवसैरस्मान् छेवयसि। स्वकीयममूल्यं समय व्यर्थयसि। दुरागमनेनास्मानं संशये आरोपयसि। याहि, तवाभिलषितं ...

ते स्वामिन्या अभिलषितं पूरयिष्यति परमेश्वरः। परन्तु चपले! सरोजिनी
ोत्सवे वयं न विस्मर्त्तव्याः।"

्, अपरं शृणु, कोऽपि पटुवीरः प्रबलसिंहस्तवस्वामिनीप्रेयांसं चन्द्रं द्रक्ष्यति,
ासि तम् ?

ा—आं देव! तपसाधिगतसिद्धेर्भवतः किं तिरोदधामि। स एव मम
कुमुदिन्याः प्रणयपात्रं वर्त्तते। तस्याः सूचनादेव कमला मोचिता। सर्वं
तम्। परन्तु सोऽस्मत्कुलमप्यपि न जानाति। न च कुमुदिनी तस्मै सूचयति।
ं तदर्थं किमपि करणीयं किम्?

ा—नहि, किं करणीयम्‌। न करणीयम्। कुमुदिन्यपि न सूचनीया।
सत्यवीरः प्रबलः कान्तिसिंहदुहुताय सूचयिष्यति। कीदृशो वीरो दुष्टस्य
पतितः।

—देव! एते सर्वे राज्ञो नन्दनसिंहस्य भृतिभुज आसन्, परन्तु दैवाद्वे-
ते दुष्टस्यैतस्य हस्ते पतिताः। परन्तु प्रबलः सम्प्रत्यपि सरोजिनी

।

ा—अस्तु, त्वमधुना गच्छ।

महात्मा कस्मात्कालात्तपस्यति—इति सर्वे एव इतस्ततस्त्या जानन्ति। विर-
एतत्प्रान्तीयाः सर्वे एव परिचिताः विशेषतश्चौरधूर्ताः। कार्यसिद्धये त एनं
आद्रियन्ते। एषा चपलाप्येकदा महात्मकीर्त्तिमुखरितया सरोजिन्या काय-
प्रेषिता। महात्मना—"देवि! महात्मनां सेवैवामन्त्रतन्त्रं वशीकरणम्,
ालगता सिद्धिः। ते नान्यत्किमपीच्छन्ति"—इत्युक्ता प्रतिदिनं सेवितुं
प्रत्यैति। महात्माप्युत्कण्ठया सरोजिनीक्रियमाणं चपलया विनिद्यमाणं
न शृणोति। महात्मन्ययं विशिष्टो गुणो यद् येन सङ्कदालपति तमा-
ायति। दुष्युकिभिर्मोदयति। सर्वैः सह मृदु भाषते विहस्य वक्ति,
चन यदा कदा क्रुध्यति, तदपि कर्णे। अत एव एनं सर्वे आद्रियन्ते।
योऽप्येतस्य नितरां परिचिताः यत्कुर्वन्ति चिकीर्षन्ति च महात्मने

सोऽयं महात्मा एतत्प्रदेशजानां कर्मणामभिज्ञाता, परं स्यान्नाम किमनेन महात्मना। स तु एकेन कर्णेन शृण्वन्नपि अपरेण निष्कासयन्, स्वयमनयाजन एव रत आस्ते।

* * *

कृष्णः पक्षः। निशीथः समयः। सधूलिर्वायुः सकम्पाः पादपाः। निद्रित[illegible] जनं जगत्।

निशयाऽष्टमीन्दुं विजित्य स्वसाम्राज्यं विस्तारितम्। तस्याः पैशाचिकी वधूः धराधरे प्रभावमाच्छादयत्। सद्वृत्तयश्चन्द्ररश्मय इव न्यलीयन्त। वन्यहिंस्रजन्तवो सद्वृत्तय इव विस्रब्धसुप्तानां वराकजन्तूनां जिघांसयाऽभ्रमन्।

स्वच्छसलिलं सरः। सरस्तटे अतिथिविश्रामायावासभवनानि। आलवालेषु निम्ब-न्यग्रोधा यथास्थानमराजन्त। भूपेन्द्रः शिशयिषुः सहचरैः सममन्यैरस्मिन् भवने व्यरमत्। श्रान्त आसीदिव पतन्नेव गाढमाक्रान्तो निद्रया।

"सहयोगिनः! अधुनैवाहं स्वप्नमन्वभवम्"—भूपेन्द्रेणोत्थायोक्तम्।

यदहं स्वनगराद् बहिरश्वारूढो यामि। अकस्मादश्वो गहनं वनं प्रविष्टः। पार्श्वतो वृक्षच्छायाप्रसाद्मृगाः शब्दायन्ते। मम हस्ते धैर्यं वेत्रमास्ते। परं यथाकथ-ञ्चिन्मनो दृढयन् वनान्निःसृतः। अग्रे एका नदी प्रवहति। तस्यां जानुमितं जलम्। तत्पानमपहाय एवाहं पारं प्राप्तुमिच्छुर्यामि। अकस्मान्नदीजलमलं प्राद्रवत्। जलप्रवाहो वाहोद्वेगकारी क्रोशेषु विस्तीर्णः। जले प्रोत्थिता जलावर्ताः प्रभूताः [illegible] [illegible] राश्वो निमग्नः केनापि [illegible] निष्कासितः पारं गतः पदातिर्भूतः। अकस्माद्वने [illegible] प्रवाही [illegible]। [illegible] भीतो यथा पतये, तथा यदि विस्मृतो भ्राते पतितो [illegible]। तेन भयेन [illegible] [illegible] तदा मम निद्रा भग्ना" इति।

[illegible] [illegible] सममन्य [illegible] न [illegible] [illegible] [illegible], तेनेव [illegible]। [illegible] भूमागः। [illegible] [illegible] कुटी। [illegible] विन्यस्तम्। [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

हितः प्राणिमात्रस्येव सत्यः, अहेतुकघातुकप्रकृष्टनिष्ठुरदुष्टसन्त्रासत्रस्तयाऽलब्ध-शरण्यया दयया पूरिताङ्ग इव पीवरः वाघस्त्राकलवेष्टित-कटिभागो, नाग इव निर्भीको निर्जितप्राणः, स्वाच्छअन्तरसः, करुणाप्रवाहप्रवर्त्तकः, अपारतपःपारावारपारीणधुरीणः, असितसितकेशपक्ष्मदश्मश्रु र्व्यायतललाटो महात्मा कुशासने स्थितः। समीपे चैका तुम्बी नारिकेलस्य खर्परपात्रं चिम्मटं दण्डः इति।

अथासौ प्रचुरं विचार्य महात्मनोऽनतिदूर उपविष्टः समाधिभङ्गमपेक्षमाणस्तन्मुख-कृतेक्षण आस्त। घटिकात्रयेण महात्मा साङ्गमर्दं सजम्भमुत्थायाऽग्नि प्रदक्षिणी-कृत्याचम्य हस्तयुगलमायोज्य श्लोकमिममपठत्—

अपार-संसार-समुद्र-तारिन्!

स्वभक्त-भूताखिल-दुःख हारिन्।

निशाचर-क्षोम-विनाश-कारिन्।

त्रायस्व मामुत्पलमालभारिन्।

"श्रीमतां चरणसरोरुहयोः प्रणमामि" महात्मना सावधानं वीक्षितः प्राब्रूत भूपेन्द्रः।

महात्मा०—(तूष्णीम्भूतः किमपि विचारयति)

भूपेन्द्रः—भगवन्, देदीप्यमानप्रबलसाम्राज्यस्य कलेः केलिकाले, पादैः प्रमथ्यमान-तपोधनगोधननिकुरम्बे महात्मनां तपोऽभिरुद्धिरवस्यमानन्दावहा। संसारे भगवद्भजन-मेव ध्येयः। तदन्तरा पुंसः परस्मिंल्लोके नैका काचिन्मपि प्रादुर्भवति। विषयसुखं [1]माहेय [2]माहेयमिव हेयम्। देव! भवादृशा एव जगदर्णवकर्णधाराः, सन्ति। भवादृशानां योगबलेनैव स्थितास्ते भूः।

भगवन्! दुःखदर्शिन, बालकोऽस्मि, भवतां लघीयसापि हस्तेन अस्यावर्तपतिता नौ स्तरिष्यति। महात्मन्! दयनीयोऽहम्। भवन्ति किल मादृशाः साधूनामनुकम्प्याः।

महात्मा०:—(अस्य वचनमङ्गोमाकर्ण्य क्रुद्ध इव सिन्दूररञ्जिताभ्यामिव, पुरः स्थितमूर्तियोर्निप्रतिबिम्बिताभ्यां, तिरोहितशरीरागाभ्यां विशालाभ्यां नेत्राभ्यां दहन्निव, दशनच्छदैर्दशन्निव, भ्रकुटीभिरिव, चेतनीकृतघनस्तनितावनता, गम्भीरया प्रतिध्वनि चतुर्गुणया वाचाऽन्तरौऽपि समरं इव सम्भर्त्सयन् आह) कं नाम विरक्तदुःखा-

---

१ मह्यं मतं माहेयम्। २ अहो भवमाहेयं – विन्न्।

कूपारगर्भप्रतिज्ञानाम्, ज्ञानाम्भोधिपानागस्त्यानाम्, सततसन्ततितर्कवितर्कविदार तारगतचेतसाम्, अचश्रीनमरणाय अकार्यकरणापेयपानास्वाद्यस्वादनापाम्यस्नानदत्त दर्शनकलुषितैन्यूरितनिन्दानिधिमेधानाम्, असदभिनिवेशप्रदुष्टस्वान्तानाम्, कुकृत्य सम्पादितयशसां, [1]अनभ्यासमित्यानां पशुवृत्तिपराणां नराणां वार्त्तया आवश्यकता! पूर्वं भगवद्भजनमाहात्म्यं कथयित्वा सम्प्रति नावमावर्त्तपतितां शोचति। मम कौपीनग्रन्थौ निबद्धास्ते नौः, उन्मोचय मम कक्षे विलीनास्ते निष्कासय। धूर्त! मा नाम गार्हस्थ्यवार्त्तया दूषितं विधेहि मनः। अपेहीतः। नाहं तव प्रश्ने पतिष्यामि धूर्त्त! कुलाङ्गार! कपटप्रिय! पथिकवञ्चक! हं हं हं हं (हसति)

विचित्रमदो हास्यमासीत्। भूपेन्द्रो गतप्राण इव सम्भूतः—तस्य चेतसि सांशयिका विचारादर्शः स शोचन्नासीद् यदस्य कीदृशेनाज्ञातस्वभावेनानेन समापतितः। ईश्वर एव क्षेममाचरिष्यति। परन्तु हासेन जातं किञ्चिदाश्वासनं प्राणेषु। क्षणं पक्षद्वयत एव नीरवताऽऽच्छन्ना। पुनः प्रशान्तया वाण्या मधुरस्वरेण महात्मा—

पान्थ। किमिच्छसि! कथं तव नौरावर्त्ते पतिता। वयं साधवो गतस्पृहाः। न कमपि प्रेक्षामहे। अस्थिरं विश्वम्। प्रेमपात्रस्याग्रे कथयामोऽपि। कथय किं ते प्रयोजनम्!

भूपेन्द्रः—महाराज! बिभेमि। यद्यभयं भवेत्तदा किमपि निवेदयेयम्।

महात्मा०—अभयन्तेऽस्तु, कथय।

भूपेन्द्र०—महाराज! राज्ञो रामपालस्य पुत्री कमला राज्ञी सुता प्रणयं कन्या। तस्याश्चैवस्वयमनर्कं राज्ञो भावी जामाता नाम्ना चन्द्रः—राजनगरराजकुमारोऽपि मनः। यदि धीमतां मतिमतां शान्तात्मनां महात्मनां दया भवेत्तयोः विपदि सुकेषु त्वदङ्घ्रिमपि कल्पमहोपहारस्तां भविष्यं शारदः शतम्।

महात्मा०—चन्द्रः कमलां स्वयोपहारं लप्स्यसे, किमनेनाप्रमादम्।

भूपेन्द्र०—नहि नहि देव! अन्यप्रसुते भविष्यन्ति भवन्तः। यथा कमलां कल्पयन्ति यतः

---

1 इदम् परिहत्यं वाक्यम्।

महात्मा०—भवत एताः कः शिक्षयति, हुम्, अस्तु तर्हि सत्यं कथयामि किम्?

भूपेन्द्र०—आं महाराज!

महात्मा०—चन्द्रोऽधुना "नन्दन पुरे" आस्ते। तत्रैव च तत्स्वामिसुता कमला। परमशक्तस्त्वं तौ लब्धुं; यतः कस्याश्चन प्रेम्णि बद्धः सः।

भूपेन्द्र०—नैवं प्रवक्तव्यम्। अहं पातालादपि शक्तोऽस्मि निस्सारयितुम्, का कथा नन्दनपुरग्रामटिकायाः?

महात्मा०—आः, एवम्। व्रज साधय, कुरु कार्यम्।

* * *

सायं दिष्ट्या दृष्टिः कलुषा। अविभाज्याऽस्यौ नैशिकोऽन्धकारः प्रादुर्भूतः। कुमुदिनी नरवेशमायोज्य पुरं प्रेक्षमाणा मौनमवलम्ब्यागतप्रत्यागतं विदधाति। गोपुरे कमपि[1] अदृष्टपूर्वमपश्यत् प्रादुरासीच्चालोला आलापः।

कुमुदिनी०—पान्थ! क्व यासि?

भूपेन्द्र०—किन्ते प्रयोजनम्। क्वापि यामः।

कुमुदिनी०—अरे! अहं कोट्टपालोऽस्मि पुरः। जानासि न वा?

भूपेन्द्र०—अत्रैव समायाताः (अग्रे गच्छति कुमुदिनी रुणद्धि)

कुमुदिनी०—क्व यासि मूर्ख? पूर्वन्तु कथितं यदत्रैवायाताः—अधुना चाग्रे गच्छसि, कालिमा?

भूपेन्द्र०—परीक्ष्य प्रवक्तव्यम्। नायं ग्रामटिको भट्टः, किन्तु चतुरशिरोमणिः भूपेन्द्र इति कथयन् उद्भ्रान्त इवाभूत्।

परमस्मात्कोट्टपालस्तु विशिष्टचतुर आसीत्, यतो मर्यादया एकतो भूत्वा गुटिका-भेदी भूमौ समपातयत्। तदुत्थितधूमेन च मूर्च्छितः ससहचरो भूपेन्द्रः। तत्र वस्तुयानेनाक्रान्तैः सहचरैः पोट्टलिकारूपाण्य स्वभवने प्रैषयत्। अनुसृत्य देशं द्रुतं पदेन स्वभवने प्रतिनिवृत्य भूभवननिबद्धं नष्टचेष्टं भुवि विलुठन्तं ससहचरं वीक्ष्य भूपेन्द्रं दस्य-कन्यापि पत्रालिकमन्वेषयन्ती पत्राणि लब्ध्वा तस्य दैनन्दिनीं प्रसभ्य सौदामिनीव चपला-

---

[1] अज्ञातम्।

कारा, कारावन्धनं तस्य मोचन्ती, तदुद्योगं तल्लक्ष्यं क्षणेनैव ज्ञातवती। चिरं चिन्तयमस हन्त! महानयमनर्थो जातः। अस्तु यस्मात् तज्जातम्।

*　　*　　*

पाथोनिकेतने श्वैत्यन्यक्कृततूलं कूलमासाद्य परं परमप्रमलल्लितलोहितलक्ष्मलमाम्भःकणैः सरोजिनीव बभौ सरोजिनी। सा चोत्पन्नमहाऽपद्वयोदस्तन्वि वसांसि मसृणमञ्जूषया शुष्कवस्त्राणि धृत्वा भीरुभामिनीभूषणं दूषणं साहसिकतामवहत्य शोकलोकं वाहीकभूमावागत्याभिनवां रथलेखामविदूर एवापश्यत्। आशङ्कितमना एकस्मिन् प्रोच्चं गण्डशैलमारुह्याऽभितः पश्यन्ती गव्यूत्यन्तराल उद्घाटितां भुवि शनैश्शनैर्यन्तं रथमेकमैक्षिष्ट। रथसम्मुखपादपेभ्योऽकस्मान्निःसृतया तया सारथेरेवमभूवन्नालापाः।

सरोजिनी—क्व यासि रे! पाटच्चर, तिष्ठ, पश्यामि। रथे किमस्ति।

सारथिः—मन्ये धृतस्त्रीवेषः कोऽपि धूर्तोऽसि, परं नाहं वेषेन दर्पिष्ये। जिह्वां चर्पटयिष्यसि चेत्कमचपेटो धरां धास्यसि। व्रज, अपेहि, न तेऽवस्था (कशयाऽपि ताडयति)।

सरोजि०—मूढ! मदाज्ञामवज्ञाय क्व पलायितुमिच्छसि, पश्य सज्जो भव।

सरोजिनी एकतो भूत्वा रथ्यस्य शिरोधरां कृपाणमोक्षकेन सद्य एव हारयाञ्चकार। गतग्रीवे चार्वति, अतिरोषकषाये च सारथेस्तुण्डे क्रोधोद्यमतरलनेत्रायां सरोजिन्यां समजनि जन्यम्। पादाहतः कृष्णोरग इव प्रादुर्भूतमदः करीव भीकरकायः रोषोच्छलद्गात्रः स सरोजिन्या वराक्या उपरि कटकटायितदशनः कृपाणपाणिः पतितः। परन्तु सरोजिनी सौन्दर्य एव केवलं नाग्रगण्या, किन्तु कलाकलापशालिनामपि, तत्र स्तत्प्रहारं व्यर्थीकृत्य लघीयसा हस्तेन तच्छिरः फलमिव पक्वं बिल्वस्य निपातयाञ्चकार। मृते सारथौ रथ्ये पररथ्ये च गन्तुमसमर्थेऽर्थे सफला सा सद्य एव रथान्मूर्च्छितं वस्त्रवेष्टितं पुरुषमेकमुत्तार्यापश्यत् फेनघृतमुखचन्द्रं स्वमनःकुमुदचन्द्रं रिपुपूरतमश्चन्द्रचन्दम्।

तमेवं चिन्त्यां दशामनुभवन्तं वीक्ष्य नालभन्ताश्रूणि स्थानमन्तः। तानि सत्वरमन्तर्गतदुःखताडितानि धावमानानि नेत्रद्वाराभ्यां बहिरागत्य तद्दुःखदुःखितां

भुवमपि सिषिचुः। "कथमेकाकिनी शत्रुसङ्कुले सोपद्रवे विजने वने विलपामि। कोऽत्र दस्यां विपत्तौ साहाय्यमाचरिष्यती"ति चेतसा सतर्कीक्रियमाणा निपुणं नाडीं परामृश्य मूर्च्छां विज्ञाय तदपनयनौषधीं तस्मा आघ्राप्य, कांश्चिद्बिन्दूनपि तन्मुखे नेत्रयोश्च निपात्य प्रतीक्षमाणातिष्ठत्। घटिकाषष्ठांशेन स नेत्रे उन्मील्येतस्ततो व्यैक्षत, तावदेव प्रबलमवमत्। मुखं प्रोञ्छ्य यावदुत्तिष्ठासति प्रमदामेकां चन्द्रहासतारल्येन चक्षुश्चकितयन्तीं वीक्ष्य "नहि शस्त्रात्यन्ताभावशालिनि पुंसि श्रेयान् शस्त्रपात" इत्याह।

सरोजिनी स्वेकतः पतितं सादिनः खड्गं लक्ष्यीकृत्य "गृहाणामुं खड्गमहमपि वीर कर्म दिदृक्षे" इत्युत्तीर्य योद्धुमसज्जत। घटिकां यावदभूद् बहुलविधानं जन्यम्।

"कस्त्वम्, अप्रहरन् युध्यसे।"

"महाराज! एते दुष्टाः श्रीमन्तमावध्यानैपुरितिवृत्तमहं ज्ञात्वा मनाक् सेवितवती। मूर्च्छनशिथिलाङ्गस्य भवतो मनोविनोदाय आलस्यापनयनाय च क्रीडिता, न रुषा, सेयं धृष्टता साधुशीलैः क्षम्या। सम्प्रति अनुकामीने,[1] मीनमिव पीनं रथावशिष्टमश्वमारुह्य यथाभिलषितं प्रदेशं प्रयातु देवः, अहमपि यामि। "किंनाम देवस्य।"

"चन्द्रः" "कुत्र भवती निवसति। किंच नाम भवत्याः।"

"पार्श्वे एव नन्दनपुरं तत्रैव मम वसतिः आख्या च सरोजिनी स्मर्तव्येयं कार्ये" इति कथयित्वा स्वीयं गुल्फलम्बि, अङ्गरक्षकं सकृदपहाय फट्कारेण धूलिकणानपसार्य पुनरायोज्यौत्तरमनपेक्षमाणा, प्रस्थिता। चन्द्रश्च व्यतिकरेणामुना किंकर्तव्ये व्यमुह्यत्।

अथ विरोचनो रोचींषि समकोचत्। विदूरप्रसृतहिमतिताडनसंकुचितास्विव काष्ठासु प्राबल्यं बभूव तमसः। सर्वत्राकाशे तमःस्तोमो व्यापप्रे। दुर्दिनानीव दीनान् तमांसि भुवं व्याकुलयामासुः।

दैवहतकेन दष्टः शशिलयेऽपि शिवभवनेऽपि सुखी न तिष्ठति। तस्यामृतमपि विषायते, सुखसाधनं दुःखायते, प्रसूनान्यपि प्रहारायन्ते, मातृमन्दिरमपि यममन्दिरायते। अहेतुका आपदः स्फारीभवन्ति।

---

१ अनुकामीनो – यथेष्टगन्ता।

यतश्चन्द्रः सरोजिनीमनुचलितो गहने गहने मदमत्त इवेयाय।

चन्द्रः प्रथमन्तु ज्वलितं जातवेदसं महात्मानञ्च वीक्ष्य 'क्वाऽऽयातोऽस्मीति भीतो [illegible] महात्मनः समीपमयासीदेव। स च चरणध्वनिना सतर्क आगन्तु[illegible] इतश्चन्द्रोऽपि साधुवीक्षणसमकालमेवाश्वादवतीर्य वल्गामाकर्षयन् साधोरभ्यर्णमुपेतः।

चन्द्रः—(प्रणामं कर्तुमीहमान इव) भगवन्!

महात्मा—नाहं प्रणम्यस्त्वया वधिक! वराकान्मुधैव हिंसन् भ्रमसि।

चन्द्रः—(महात्मनस्तनुचितं कोपं प्रशमय्य) महात्मन्! भवता कथं ज्ञातोऽयं यदहं वधिकः।

महात्मा—(हृष्टोऽपि कृत्रिमकोपं प्रदर्शयन्) आम्, महात्मन्! [illegible] जगद्रक्षक! त्वं नासि वधिकः। वयं स्मो वधिकाः। योगिराज! स्वागतं तेऽस्तु।

चन्द्रः—(निरीहो वास्तविकः स्तवनीयकीर्तिर्महात्मायं प्रतीयते) महात्मन्! [illegible] खड्गधारिण एव वधिका भवन्ति, किं मालाविक्रेतारो भगवद्भक्ताः! [illegible] दर्दुरा अपि स्वर्गसौभाग्यभागिनः!

महात्मा—नाहं भवत उपमानं शिक्षयामि। कस्याश्चन नायिकायाः समीपं [illegible]।

चन्द्रः—[illegible], विरम्य, पत्न्याः प्रेयसी [illegible] भवतापि वधिकादेव सम्बोध्ये?

महात्मा—(शान्तो भूत्वा) अस्तु, उपविश्यताम्। अयं पुरो [illegible] कुटीरे धर्म वर्तते, अभ्याय देहि। [illegible] गन्ता।

चन्द्रः—एवं भविष्यति चेच्छ्रीमताम्।

अथ [illegible] वृक्षे नियम्य [illegible] महात्मनस्तं [illegible] मुहुर्मुहुः चन्द्रोऽपि महात्मनः समीप एव [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible]—[illegible]! [illegible]! [illegible]!

चन्द्रः—मां लोका 'चन्द्र' इति सम्बोधयन्ति। जात्या क्षत्रियोऽस्मि। महात्मन्! किं नाम भवतः?

महात्मा०—(स्मयमानमुखः) अस्य शरीरस्य 'शक्तिनाथ'—इति संज्ञा। अस्तु, चन्द्र! सत्यं कथयिष्यसि, यदहं प्रक्ष्यामि।

चन्द्र०—आम् देव! कथं स्यात्तिरोधानं करामलकजगतां भवतां पुरः।

शक्ति०—न तेऽङ्गानि श्रमक्षमाणि, न च प्रतीयते आहितश्रमं वपुः। न च विदितवनवृत्तान्तं मनः, न च क्रूरवृत्तिः प्रकृतिः। पुनः किमर्थं [1]'चौलीभूपाटवीतोऽटवीं, पुलिन्द[2]कुलिन्देषु श्रावं श्रावं पुरः पुर नगादगं भ्रमसि। [3]'कुटरवासिनो भवादृशा [4]मारट[5]रट[6]रोदितशिवाक्रन्दनसिंहक्ष्वेडाव्याघ्रविजृम्भणव्यालकरालकेलिलालित-शार्दूलदोलनशङ्क[7]धावनविधुतधैर्ये, [8]कुधुकघे अन्यान्यवन्यशीव[9]विसरसते, [10]'सुलनस्तितं द्विपद्व्यासे ऽवने'' वनेऽनवना'' [11]भ्रमन्ति इति न चेत् कापि क्षतिस्तर्हि समुत्क्षिप्य कथनीयस्तावकोऽयं वृत्तान्तः।

चन्द्र०—किमविदितं भगवत्पादानाम्। सर्वं विदन्नपि बालवदाचरसि। धन्या भवन्तः, यैरसाङ्गाङ्घ्रियोगाभ्यवरोहुतासेन भस्मितममितं कुलस्याप्येनः। पावकपूतं कनकमिवाङ्गारावशेषं पूतं प्रतिभाति येषां वपुः। धन्यौ भवतां जनितौ याभ्यामीदृशं पुत्ररत्नं प्रसूताम्। भगवन्! अलमेतादृशमलिनवृत्तं श्रुत्वा। भगवन्! मूढं दुःखितोऽस्मि, दुःखदलभवुश्रामसञ्जातमुखसूर्योदयाश्च भवादृशा भवविमोचका एव भवन्ति शुभाप्त्या इति कवोष्णं निश्वस्य चन्द्रः स्वकीयमुदन्तं विशदं न्यवेदयत्।

गलितयौवना कामिनीव यामिनी शैथिल्यमभजत। चन्द्रो निशाङ्कं सुप्तः। शक्तिनाथस्तु निमुन्मुत्थाय, गतो यथेच्छम्।

आरभत प्राचीकामिन्याः सौभाग्यादर्शसिन्दूरबिन्दुविशालभाले। बभूव चाम्रेसर उत्तरीये स्वच्छमेरु पेटः। प्रहरमात्रेणैव बभूव मध्यमहः। परन्तु युवराजचन्द्रः सुप्त एव। तत्सलनसपोषा भोग्या निद्गभरं व्याप्नोत्। परं कोमल-दूर्वाङ्कुरमसृण-

१ चौली—वनस्थलीः। २ पुलिन्दः शबरः। ३ कुटर वस्त्रगृहम्। ४ मारटः—। ५ दस्युर्भेदः। ६ शशकाखली। ७ क्षुधा भ्रमाकः। ८ घोरावगरः। ९ एता—प्रभा। १० अनवने—निर्जने। ११ आरक्षः।

गतश्रमो हर्षकृतोद्वेगः शरीरं धुन्वन् वाजी एनमुदनिदयत्। अथ च भीतभोत्याय स गतो मुनिरिति सकृत् सम्भ्रान्तः, अथवाऽऽयास्यति किन्त्वा निश्चिन्तः, स्नात्वा प्रचण्डबुभुक्षाक्षामवदनो मुनेराशां विनापि कुटीकोणस्थानि फ समुपभुज्य बाहमारुह्याभिमुखं दण्डमायमाश्रित्यायासीत्।

नन्दनपुरप्रवेश एवासीच्छुल्कशाला। अध्यक्षेण चन्द्रस्याभूदालापः।

"भोजनालयोऽप्यन्तः?"

"आम्, भोजनालयः, शैत्याधःकृतहिमालयो बलालयः। पत्रवाचना भोजनसमये च नृत्यस्य प्रबन्धः, रात्रौ च मनोरञ्जनाय गानवाद्यमिति सर्वां सुखद भवतां पुरो नृत्यति"।

"कस्यां भूमौ स्थानं दास्यते"।

"तृतीयायाम्, यतस्तत्रैव राङ्कवास्तरणास्तृताः सुसज्जाः पर्यङ्काः। महार्हा अस्त विचित्राणि चित्राणि। सर्वा राजोचिता व्यवस्था।"

"घोटकस्य..."

"आम्, घोटको मन्दुरायां स्थास्यति। अस्मै घासादिकमप्यस्माभिर्दास्यते।"

"भोजनशालायाः प्रबन्धः कीदृक्?"

"देव! सामिषं निरामिषञ्च भोजनं पृथक् पृथक् स्थानेषु निर्माप्यते। सुपाचक वैद्यैः परीक्षितं विशुद्धं भोजनं दीयते।"

"तर्हि निर्दिश पन्थानम्।"

"कियच्छुल्कमेतस्य"—

"प्रतिदिनं दशमुद्रा" इत्युत्तीर्य तालिकां समर्प्य "कस्यापि वस्तुन आवश्यकताया सूचनीयः—इति वदन् गतः।

भवने शौचस्नानवेशागार आसीत्। स च स्नात्वोपस्थाय पाचकानीतं मधुर स्वादु भोजनं प्राश्य भवनाग्रभूभावेव शतपदीं विरचय्य भृत्यानीतं ताम्बूलदलमेकं सप निद्राङ्कमयासिष्ट।

* * *

एकस्मिन् भवने लघीयसि दीपाधाने स्थितः प्रदीपो मन्दं मन्दं प्रकाशते

प्रकाशेनामुना न शक्यते शमयितुममन्दं कौटं तमः। एकस्मिन् भग्नकाष्ठपीठे स्थितौ द्वौ पुरुषौ शनैश्शनैरालपतः।

"न जाने कोऽस्य कथं साहाय्यमाचरति वीर !"

"कापि विशेषा शक्तिरेनं रक्षति प्रबल ! परमधुनाऽस्माकं काले तथा पतितोऽस्ति यथाऽऽस्यावशेष एव संवत्स्यति। क्रान्तिसिद्धाय पूर्वमेव बहुशोऽस्य वधायावोचं परं न जाने स किमिव विचारयति, यतः 'गुप्तगुहायामेव प्रेषयितुमैच्छन् परमयं सारथिमप्यस्य निहत्य इहायातः।"

प्रबल॰—(चायचषकं निपीय) अस्तु, गतः सोऽवसरः, अधुना करणीयं विचारणीयम्।

वीर॰—विचारितमेव विद्यते। आवां तारस्वरेण चौरचौरः—इति कथयिष्यावः। रवेण सर्वे नष्टनिद्रा भविष्यन्ति, न चन्द्रः। यतस्तस्य भोजने पाचकेन प्रचुरं भङ्गा दत्ता। मदिरोन्मत्तः स मृतो शेते तद् दृष्टमेव। तत आवां तद्भवनस्याग्रे स्थितौ "अस्मिन् भवने प्रविष्टश्चौरः" इतिकथयिष्यावः। एष उपायः कार्यसाधकः। शुल्कशालाध्यक्षश्च मुद्राशतं दत्त्वा सानुकूलः कृत एव।

क्षणेनैव "चौरचौर" इत्युत्थितः प्रचण्डो ध्वनिः। जनश्चोत्थितः। चन्द्रस्तु सुप्त एवासीत्। शुल्कशालाकोट्टपालोऽपि कोलाहलममुमाकर्ण्य सपहचरः समेतः। ते सर्वे एव तेषां कापटिकानां कथनानुसारं सद्य एव चन्द्रभवनं प्राप्ताः। पश्चात् कपाटयुगलमाजघ्नुः—प्रबलमाजुहुवुश्च परं स नोत्थितः। अन्ततः कर्णविस्फोटकेन 'धड़धड़' निनादेन चकितः स उत्थितः। स्वप्नेऽप्येष शत्रुभिर्भ्रमग्रस्त एवासीत्। तथापि 'धड़धड़' ध्वानं कुर्वतस्तान् शत्रूनेव विज्ञाय सामर्षः पर्यङ्कस्थं कृपाणं पाणौ धृत्वा कोपावेशाद् द्वारमुद्घाट्य बुभुक्षुः संवृतः। को नाम गलेषु तेषु शस्त्रमनं निपातयेत्, सर्व एव दर्शकाः क्रान्दिशीकाः स्खलन्तो निपतन्तो दुद्रुवुः। केवलं सपहचरः कोट्टपालः प्रबलवीरवरौ च स्थिताः। कोट्टपालस्य मनस्यपि इत्यभूदासी तस्मिन् दृष्टमात्र चौरविश्वासः। "प्रकटमुग्धचौरोऽयं यदनर्गलमपि मुमुक्षुर्वितिष्ठते," इति चेतसा निश्चित्य सपहचरः कोट्टपालो वीरवरः प्रबलश्च पुनरपि तमुपालेभिरे। परमयं तु चन्द्रहासवलनचुम्बुरासीद् यतस्तेषां मध्यादेकोऽन्य वीरवरोऽपि भूमिसात्कृत्वा यावदयं प्रहरतीति तावदेव पृष्ठतः प्रबलेन दृढबद्ध-

हस्तयुगलोऽवर्त्तत। ते च सामर्षां मुष्टिचपेटापादप्रपातैर्मृशं व्यथयन्तः कटुवचोभिर्मर्म स्पृशन्तो युवराजं प्राध्वंकृत्य[1] भीषणाकारायां कारायां निपातयामासुः।

*   *   *

प्रातः समयः। व्युष्टवायुर्नवीनं जीवनं सञ्चारयन् रयेन मन्दोऽमन्दमानन्दं तन्वाति। उदीयमानः सूर्यः पूर्वत एवारुणदूतं प्रेष्य स्वागमनं सूचयति। अमरेश्वर राजभवनमिव वीक्षितुमुच्चैः शिराः, पर्वतोच्चप्राकारो रत्नभित्तिः कूपनिम्नया काष्ठविद्रुमया नितान्तदुर्गमया महत्या परिखया परीतो विचित्रकक्षो विहितरक्षो रक्षोऽर्सत्र आदर्श दुर्गो राजते।

महाराजः श्रीमान् कामेश्वरसिंहो वाजिनमारूढः, एकाकी प्रामातिकपवनसेवनाय वनाय जगतः प्राकृतिकं सौन्दर्यं समयस्य रामणीयकञ्च विलोकयन् मनस्येव मन इतस्ततश्चक्षुर्विक्षिपन् यन्नासीत्।

सघनवटवृक्षस्यैकस्य तले आलवालकृतासनो मालां विभ्रामयन्नेकाक्येवासीत् शुभ्र शक्तिरशक्तिनाथः। कामेश्वरसिंहोऽप्येतस्य नितरां भक्त एतस्य वैराग्यव्याख्याने सर्वोदयप्रवचने बहुश उपस्थाय स्वमतुलात्मनो महात्मनश्चरणयोरार्पयत्। बहुश एनं नन्दनपुरागमनायाग्रहीच्च। तमत्रात्रोपविष्टं वीक्ष्योपगम्य अश्वादवतीर्य देहं नमयन् "साधो। प्रणमामि"—इत्याह।

शक्ति०—(शनैः) चिरं जीव।

कामेश्वर०—(शक्तिनाथेन निर्दिष्टशिलातल उपविशन्) भगवन्! अनीदृशा औदास्येन कथम्। केनाप्यपराद्धः किम्। कथं दुःखित इव प्रतीयते भवान्।

शक्ति०—राजन्! अपराधस्तु साधुधर्मरक्षितरि भवति भर्त्तरि न सम्भावयितुं शक्यते। परन्तु यस्य योगक्षेमनाशिताशेषभीतयः साचाराः प्रजाः सुखं शेरते, येन विश्वविश्रुतयशसा शशाङ्कनिर्मला ख्यातिर्वर्द्धमानमहाप्रचारेण धर्मेण सहैव दिगन्तं नीता, यस्य प्रभावेण त्यक्तवैरा विरोधिनः पशवोऽपि परस्परमङ्कादङ्कं क्रीडन्ति स्म। येन चुरापहृत-हिरण्यं समुत्पादितभयं भृशं दण्डितं लुण्टाककुलं दस्यारातिहृदयदाहकेन प्रतापवह्निना

1 बन्धनेनानुकूल्यं विधाय "प्राध्वंबन्धने।"

विश्रुतभीतयो भामिन्यो गृहाणां द्वारमेव नाव्रजु: यं पितरमिव पालकं मातरमिव मानदातृं भ्रातरमिव क्रीडाकरं गुरुमिव शिक्षकं, कुबेरमिव धननिचयभृतकोशं प्रजा मेनिरे प्रजापतिम् तस्यैव वर्णाश्रमव्यवस्थापकस्य सनातनधर्मसमाश्रयस्य श्रीमतो नन्दनपुरनरेशस्य दास्य-समृद्धमृद्धं योग्यजनसम्पदां पदं राज्यं नङ्क्ष्यतीति विचार्य दुःखितं मे चेतः।

"किमिति कथमिति कुत इति" सामर्षं सगर्वं सविस्मयं सभयं सनयनोत्स्फारं सासूयं कथितवति श्रीमति नन्दनपुरब्रह्माण्डब्रह्मणि स पुनः प्रावोचत्।

धीरवर! वयमशेषां शेषाधारां विचरामः। सर्वेषां सुगुप्तान्यपि मानसमहोदधि-लीनानि वृत्तरत्नानि परेशदयया विद्मः।

कामे०—आम्, निश्चितमेव।

शक्ति०—भावी विमलेश्वरजामाता, माता वीरधैर्याणां राजनगरराजकुमारो भवत्पुरे समायातो राजकीयशुल्कशालायामावासं परिकल्पितवान्। स चाधुना धूर्तैश्चौरीकृतो व्यथितश्च कारायां रायां निधिनिगडित आस्ते। तमुन्मोच्य तत्प्रसादाय स्वपुत्रीं सरोजिनीञ्च समस्तगुणाढ्याय तस्मै प्रदाय सुखीभवितुमिच्छसि चेद्भव। मा नाम अतुल शस्यं विपुलकौशलकुसूलं देशं रक्तरञ्जितभुवं भुवं वीराणां, रोरुद्यमान-चेखिद्यमान-चेक्लिश्यमान-नारीजातबाल-समुदयं कार्षीः। महती हेतिसम्पन्ना सेनास्य। राजनगराधिपतेरस्य पितुरपि प्राप्तप्रशस्तिका चमूः। तत्समय एव हृदयसात्कुरु मद्वाक्यम्।

कामेश्वरसिंहस्तु श्रुत्वैतच्छिथिलाङ्गो गूढं सम्मन्त्र्य प्रजविना जवनेन शुल्कशालां सद्य एव प्रापत्। शौल्कशालिकाश्चासूचितमहाराजागमनसम्भ्रान्ता भीता हस्तयुगलान्यायोज्य प्रणमन्तः क्षमां याचमाना जयन् भाषमाणा एकतः सन्तस्थिरे। "क्वास्ते कोट्टपाल"-इत्युक्तेऽङ्गैः सङ्कुचन् विदूरत एव प्रणमन् महतः कृच्छ्राद्धृतधैर्यं आययौ सः।

महाराज०—कति सेवकाः सन्ति सम्प्रति!

कोट्ट०—देव! श्रीमतः प्रबलप्रतापतपनेन नाशितं भीषणवृत्तसन्तमसम्। तदहं द्वौ सेवकावेव पर्याप्तौ विज्ञाय नियुक्तवानस्मि। अग्रे श्रीचरणाभिधानम्।

महा०—अपि नाभूत्कापि घटनागतेऽह्नि!

कोट्ट०—जगत्पते! रात्रौ वचनपटुना चौरेणैकेनापहृतः प्रचरो रा:। बन्धन-

[illegible] [illegible]। अनुमति न [illegible] गर्वति। धीमद्भ्रो निर्दम्भं [illegible] पुरं।

महा॰—([illegible] इव) कौतूहल! [illegible] कथं मुग्ध इव [illegible]। किं तत्र [illegible]!

कौतू॰—([illegible]) [illegible]।

महा॰—[illegible] विलम्बः। [illegible]। अनु तत्र राजधानीम् [illegible]। [illegible]।

कौतू॰—[illegible]! [illegible]

महा॰—आम्, शीघ्रं [illegible]।

कौतूहलो राज्ञोक्तां वार्तां निशम्य मन्त्रिणमपि विदितवृत्तं विधाय राजद्वारमार्ग पालनप्रवाह क्षणेनैव राजान्तिकमगमत्। तानि च दम्भोविलम्बकृत्य दरबारस्थिताय चन्द्राय राजोपहारेण प्रेष्य स्वागमनं संसूच्य आजगाम अतिथिचन्द्रकामेश्वरांतिकः।

चन्द्र॰—(उत्थाय अञ्जलिं बद्ध्वा) श्रीमच्चरणसरोरुहयोः प्रणमत्ययम्।

महा॰—चिरञ्जीव! अज्ञानतो भ्रमतोऽनुष्ठितं मृत्यकृत्यं मर्षणीयं कुमारेण।

चन्द्र॰—कथमसह्यो भारो निपात्यते।

महा॰—नहि नहि! युवराज! ज्ञातोऽसि मच्छ्रीमानेव राजनगरप्रजापतिः, श्रीमानेव विमलपुरनराधिपकन्यारत्नसौभाग्यभागी। मन्ये एतद्राज्यमपि भवतः केनापि सम्बन्धेन पवित्रं भविता। अतो मर्षणीया इमे भवतो भृत्याः।

चन्द्र॰—क एषां दोषः, क्षम्या एते। दैवं हि जगतां मानापमाने, सुखदुःखे, लाभालाभे च हेतुः।

महा॰—कुमार! उत्कण्ठामावहन्ति दर्शकाः, तत्सपद्येव राजधानीं सुनाथय।

अथ चन्द्रो घोटकारूढोऽसङ्ख्यजनानुगतो राज्ञा स्वयं निर्दिश्यमानविशिष्टरचनो [illegible] व्यभ्राम्यत्।

शक्तिनाथस्थानगुरुं पुरोहितमामन्त्र्य विवाहतिथिं निश्चिन्वति राज्ञि चन्द्रेण न्यवेदि यत् पूर्वं कमलया सह विवाहो भविष्यति तदनु चान्यो विचारः, इति।

विमलपुरे व्यग्रतामाकलय्य श्रीकामेश्वरसिंहेनामन्त्र्य कुमुदिन्या मुक्तं भूपेन्द्रं विमलपुरं प्रैषयल्लिखच्च।

देव, सादरमभिवादनम्। श्रीचरणानुकम्पया कुशल्यहं परेशानुकम्पया आसन्न प्रमनानस्मि; सर्वं वृत्तं भूपेन्द्रो निवेदयिष्यति। श्रीमन्नन्दिनी नाद्यावधि स्वस्था, स्वास्थ्यप्रदः सुरम्यसर्वसुखदसाममोको रम्यथार्थ प्रदेशः—इति कतिचिद्दिनान्यध्युष्या-ऽऽयास्यामि, न कापि व्यग्रता कार्या। शेषं कुशलम्।

ललितवनम्। } श्रीमताम्
चन्द्रः

* * *

शीताप्यर्द्धियामस्तमभिनीदिष्टः। ज्योत्स्नाश्रयिणी महार्हमण्डनमण्डितानां हर्म्याणां प्रभा भासते स्म। तन्नोत्पन्नमेवेद दंशोद्भिमलविरावेण कोकिलकाकल्या विलासिनीविभावेव विलपति स्म ललितवनम्। अकस्मान्मेघैर्मेदुरं दुरवस्थं जातं जगत्। निशावसानकल्पायमानां निशीथसहायेनाधिकमसुरं तमस्तानं साहसेन वितनुम्। यत्र तत्र विद्युदिव सम्दोहिन इव शासनमवहेलितुं स्फुरिताः, किन्तु तत् प्रबलोनयाऽत्ययसम्भवयो राज्ञेः तौलिकस्तुं मन्दकां गवेषयति।

अचिरेणैवानेहसि इतिला सदिन्मिव, सहसैव वर्द्धितुं समयो वारिधरैः समारब्धः धाराप्रवाने धूम्रविधूमसम्पाताः। देव पुष्पवृष्टिरनावलं सघनं कलकल-विकलं-बभूव विश्वम्।

चन्द्रस्तत्पार्श्वे कमलं निवहं पर्यङ्के पल्लवता सहोरसा, स्पर्शिता विषय-सागरोमिव, विलसच्छ्रीः, दुर्वर्णोऽपि मलमलकृत्या सर्पति। विन्दुपातसमयेन-धनमविलङ्घयत्। तदैव देवदेवेशि संचरन् वर्णिताभ्यन्तरितविप्रदोऽन्तपुर-द्वितीं प्रहरी—"देव! स्वर्गेन्द्रः धरोऽन्यः सभासागत एको मूलो ललितवन-महद्वारी तिष्ठति, ममनेहा देवदर्शनस्पर्शेन किमपि प्रतिहारेण कथमावेदयेऽपि सोऽस्माकमर्दं किमपि विलम्बं विहारमर्मिंत कथयति, अथो देवः प्रमाण" मित्युक्तवान्। "सुवर

बहिरेवायामि"—इत्युत्तीर्य वस्त्राण्यायोज्य, बहिरेत्य, इतस्ततः पर्यट्य, बहुश अट्य कमपि पुमांसं नापश्यत्। किमभूदिति चिन्ताचक्रचक्रितचित्तश्चन्द्रः पदन्यस सद्य एव प्रतिनिवृत्तः।

* * *

"प्राभातिको मातरिश्वा ललिता लोलत्कुसुमाः सुगन्धविसरमुद्वमन्त्यो वासन्त्यो लता सुखयन्ति त्वाम्? त्वन्मेलनहर्षप्रकर्षविधुतस्मृतिरहं वृत्तमेव नापृच्छम्। तत्कथय कथं व्यवहृतं तैः। अहं स्थानस्यामुष्य परिचितोऽस्मि त्वमपि किमत्र कदापि समायाता!

कमला०—शशधर, यस्मिन्समये मयूराणां नादेन मम मूर्च्छा गता, सम्मुखे मुखायोजितवस्त्राञ्चलो भयङ्कराकाराः कारुण्यवनदहना असभ्यतानिधय आकलितचुरिकास्त्रा इवौत्पातिकाः पुरुषा मया न्यक्कृतमृत्यवः स्थिता आसन्। ते मामाहुः—

"कमले! केनाप्यविज्ञातोऽयं प्रदेशः, चतुरैरप्यज्ञेयोऽस्य पन्था अस्मद्व्यतिरिक्त गमने च ध्रुवं मरणम्। अस्माकं देवः कान्तिसिंहः कार्यवशाद् बाह्लीकप्रदेशान्तरं गतस्तदाज्ञयैव वयं तदनुचरास्त्वामानीतवन्तः। सोऽपि समये भवतीं दर्शयि तावकीनोऽयं प्रदेश इति विज्ञाय स्वस्थान इवात्र व्यवहरतु भवती इत्यामाप्य चक्षु रगोचरे संवृत्ताः। अहश्च सत्यपि क्षुत्पिपासाशामके फलबहुले चिन्ताचक्रवलीकि माणचित्ता सर्वं वासरमत्यवाहयम्। तस्मिंश्चिन्तापारावारे मदीयचातुरीतरणिर्निमग्ना साहं 'छद्मवेशान्, शस्त्रप्रयोगान्, विविधसाहसिककार्याणि वेद्मि'—इति गर्व सरभसं चूर्णितम्। दुःखितं स्वान्तं निजजनान्सस्मार—अहह! क पिता! क जननी हा! हन्त! सा तु दुर्भगाया मम शैशव एव स्वर्गता। पर्दर्शि मात्रीव धात्री अपि हन्त कीदृक्तया अहो साम्प्रतमेव आनन्दाश्रुकिरणवती गर्भुदिताऽऽसीत्। विचारितमासीद् यदधुनाऽधमिनमुखं सुखं चिरं लप्स्यते। हन्त! कता तास्मि, कीदृशी मन्दभाग्याऽस्मि। 'वा' वेतिरक्तम्भूषितचोलिभुर्व निमोहदर क भ्राता मे रामः। एवमहं विचारयन्ती विरायासमात्रमेव व्यस्मरम्। लब्धबोधया मया त एव नराः सम्मुखे स्थिता इति कथयन्तः प्रेक्षिताः।

"देवि आसन्नं स्वामी, देवः कान्तिसिंहोऽधिपमनुनयः। शीघ्रं चन्द्रमशरण दर्शनेऽपि नाधिकृतः यथा स अद्यापि मूर्छितोऽस्ति, तथा गुणी ज्ञानी मतिमान्

बलवान् ओजस्वी यशस्वी वाग्मी चातुरीतुरीतन्तुवायोऽप्येक एवास्ति। अतो भवतीं रतिरमणीयां वयं सादरं प्रार्थयामो यदत्र भवती नः स्वामिनी भूत्वा निलयस्यास्य, यौवनस्य च आनन्दसन्दोहमनुभवन्ती चिरं रमताम्। मा नाम प्रचण्डचण्डहेतौ चिन्ताशुशुक्षणौ कमलकोमलमृणालपल्लवपेशलमिदं शरीरं पातयतु। चन्द्रसदृशा बहवो राजानस्त्वच्चरणाम्बुजरेणुपरागानुरागिणः सन्ति, मन्यस्वेदं सद्वच" इति।

निशीथे एकदा शोचन्ती वृक्षमाश्रित्यासीना एवासं तावदेको मनुष्यो मदभिमुखमागच्छन्नासीत्। अहञ्च "शङ्कया भीता पादपतमसि निलीना समभवम्। स मामन्विष्याह।

"कमले! त्वदनुचरोऽहं भवतीं स्थानादस्माद्बहिर्निनीषामि। परश्शतास्ता एते मां सफलमनोरथं द्रष्टुं नेहन्ते। अधुनावसरोऽस्ति सपद्यागच्छ मा भैषीः। अनुत्तरन्त्यामपि स मां सकरबन्धं नेतुं प्रस्थितः। तावदेव चपलाचञ्चच्छटैः कृपाणैराक्रान्तः। भीतातिमन्द्रहासचापल्येन मूर्च्छिताऽभवम्। तस्य का दशा सम्पन्नेति न जाने। ततः प्रभृति कारायां वासः। दुःखविचारैराभाषः। तैरेव प्रेमा। शोकशङ्कुना व्यथनम्। प्रजागराजगरेण दंशनम्। सन्तापसिंहेन भक्षणम्। तमोभिर्नैर्मलः। अरुन्तुदाभिरार्तिभिः खेला।

चन्द्र०—(निःश्वस्य) ततः कथं मोचिता?

कमला०—तद्दिनं मम कारागृहजीवने पीयूषपरिप्लुतमासीद् यस्मिन् भवती वाचमशृण्वम्। मम जीवनवल्लरीं क्षणं व्यकरान्, परमुत्थापितकर्णा निराशा समभवम्। व्यतीतेषु द्वित्रेष्वहःसु देवी सरोजिनी, कल्पितकृष्णवेशा कारायां समापाता। मया व्यचारि यदयं निर्दयं मादृशीनां देहधारिणीनां प्राणान् गृह्णन् नूनं चञ्चरीकश्यामलकर्मकरीको मृत्युर्भ्रमति। मन्येऽद्य ममावसर इति मां नेतुं समेतः—इति। कृष्णपटकटिततनुः कतिचनाश्रूण्युन्मुच्य मामाह हसितगर्हितसरोजा सरोजिनी। सुखासि कमले! अहं त्वां जाने यत्त्वं महाप्रभावस्य राज्ञो महेन्द्रपालस्य स्नुषा, प्रभुवरस्य रामपालस्य प्रेयसी पुत्री, अतुल्यगुणनिधेर्वरवर्मणश्चन्द्रस्य प्रियाऽसि। त्वामहं बहिर्नेष्यामि। उत्तिष्ठ, त्यज ग्लानिम्। दर्शितस्तेऽद्य भाग्यभास्वान्। अधुनानुभव पत्या सह निष्कण्टकं राज्यसुखम्।" इति

अहन्तु तादृशजीवनान्मरणं श्रेयो मन्वाना वचनचातुर्यांचितं विनोदवल्लाः स्कन्धमवलम्ब्य भवनमगाम्। तस्या निर्मायारिचर्यया सत्वरैव दिनैरविगद-स्वास्थ्याऽभवम्। एकदा सरोजिन्याः प्रिया सखी चपला सरोजिन्या हृदयभवं न्यवेदयत्। अहमपि तदाभारनम्रा प्रतिज्ञातवती। सेयं देव, मम भवतश्च जीवनत्रात्री रमणीया रमणी सत्कुलीना मम भगिनीनिर्विशेषाऽवश्यमुद्वाह्या।

"कथमेतत् सम्भविष्यति, सरोजिनीसदृश्यो नरायमाणा रमण्योऽपि पुरुषमपेक्षन्ते।"

"स्त्री धनम्, धनस्याधिपतिना रक्षकेण भवितव्यमेव।"

"अद्य स्त्रियः पुरुषमनुजीवन्ति, नैतच्छोभार्हम्। आद्याशक्तिप्रतीका स्त्री रक्षायै पुरुषमपेक्षते! जगतः प्रसूः पालिका स्वपुत्रैरक्षमता स्वपुत्रानेवाह्वयति! यां पितृलोऽधिकं वन्द्यां विद्मः, आर्तौ यामेव भगवन्नूस्थाने स्मरामः सा पुत्रं पतिं भ्रातरं वाऽऽह्वयेद् रक्षितुम्। अशोभनम्। स्मर्यताम्, अपरेण रक्षितः कदापि सुरक्षितो न भवति, यः स्वरक्षितः स एव सुरक्षितः। यथा नरः स्त्रीनिरपेक्षं जीवनं यापयितुं शक्तस्तथैव स्त्रियोऽपि पुरुषनिरपेक्षं जीवनं व्यतियापयितुं शक्ताः स्युस्तदैव ताः स्वरक्षिता सुरक्षिताश्च भविष्यन्ति।"

"सत्यम्, परं स्त्रीषु मातृत्वभावनाऽन्तर्निहिता। मातृपदमनधिगम्य न स्त्री स्वां कृतकृत्यां मनुते। अतः स्त्रियाऽवश्यं पतिमत्या भवितव्यम्। भावनामेनां स्त्री केवलं ज्ञातुं समर्था न पुमान्। मातृत्वं विना स्त्रीत्वं न सार्थकम्। तच्च विवाहं च पुमांसमपेक्षते। पुमांश्च सुशीलः सुन्दरो विद्वान् कुलीनो धनी समवयस्को यः स्वदा वरणीय एव। एकदा यदि वृतस्तदा वृत एव सर्वदा। भगवान् कृष्णोऽपि नरकासुरवधोत्तरं मनसा कृष्णं पतित्वेन वृतवतीनां भावं स्वीचकार एव। परिस्थितिः प्रबला। भारतीयसर्वस्वं वचस्तु रक्ष्यमेव।"

पादध्वनिं विभाव्योत्कर्णेन चन्द्रेण त्रयो जना अवलोकिताः। भीता कमला तान् परिचीय सन्धय आदिशत्। चन्द्रस्तु तां मध्यस्थकाष्ठपीठस्याधस्तात् कृत्वा "एतेऽपि फलमनुभवन्तु—" इति कथयन् धतकोऽपातिष्ठत।

...रे, अप्रवेश्ये भवने प्राविशः, सदास्वादयाशासनगादपकल्पम्, पातय च

कान्तिसिंहखड्गधाराप्रवाहे स्नाम्, नैषी योजना विफलीभूता तामधुना साधयिष्यामः" इति सङ्गर्ज्य युगपत् खड्गधारया अभ्यधिषन्। परन्तु चन्द्रस्तु न "काऽऽजस्ली" फक्किकासहकारमञ्जरीपीयूषपानपीनमधुपपुङ्गवः, न च 'व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नसामान्य-लक्षण'मण्डनपण्डितः, नवाद्वैतवादिवादीन्द्रवैदान्तिकप्राप्तपाटवः, किन्तु करवालकेलिकोविदः, यत आपततस्तान् मर्यादयाऽपहत्यैकेनैव लघीयसा हस्तेन कान्तिसिंहशिरः समपातयत्। तस्य कबन्धे च पतिते प्रकर्षामर्षी 'चन्द्र! इयमागता तेऽस्तमनवेला, वीरवरदुःखमपि महताभीलेन यथाकथञ्चित् सोढम्, परं बोढुमेनं कथमपि न शक्ष्यावहे, अधुना तु ते शोणिताञ्जलिभिरेवैनं तर्पयिष्यावः। स्मर स्वेष्टदेवम्, भव सज्जः इति साक्षिविक्षेपं व्याहृत्य गृध्राविव जिघत्सू खड्गाभ्यां युगपदाक्राम्यताम्। परञ्च चन्द्रोज्ज्वलहासः स चन्द्रहास एव तौ समरुधत्। प्रशस्तकरलाघवतसमकालमेव तयोः खड्गौ भग्नौ। चन्द्रस्तु अविज्ञायैतद् भृत्यशिरोऽन्वकृन्तत्। ततो गतासिः प्रबलः—"चन्द्र! किं निश्शस्त्रशत्रुर्हन्तव्यः! धर्म एष आर्यवीराणाम्? अस्तु जातन्ताज्ञातम्। सम्प्रति सम्प्रतिष्ठ! द्वन्द्वयुद्धं समाचर मया सह। चन्द्रस्तु विभपि-वित्सुरपि बाभ्वेगमवरुध्य योद्धुमेव सद्यः सज्जो बभूव। निबद्धकौपीनेन बभूव सावकाशदर्शनं सपार्श्वपरिवर्त्तनं मुहूर्तं यावद्वन्यम्। परन्त्वन्ततः प्रचण्डदोर्दण्डविक्रमो युवराजस्तं कटितटे समुत्थाप्य भूमौ प्राक्षिपत्। स च विहसन् तत्क्षणादेव चन्द्रचरणयोर्निपत्यावोचत्,—"देव! ममैषा प्राणसमा उपांशु प्रतिज्ञाऽऽसीद् यद् यदि कदापि कोऽपि मां द्वन्द्वयुद्धे निपातयिष्यति तस्याहं दासः संवत्स्यामि" इति। तदेव! अद्य प्रभृति प्रभूणां चरणशरणः संवृत्तोऽस्मि इति।

वस्तुतो रत्नं स्थान एव राजते। ईदृशपुरुषरत्नस्य, सत्यवीरस्य, अतुलसाहसस्य उपचन्द्रमेवावस्थानमासीत्।

* * *

विविधधातुकृतकुसुमस्तबकेषु मरकेशधवलेषु राजतपत्राच्छादितेषु स्तम्भेषु सभानां कर्तुं रचनकर्त्तितवल्लरीनरीनृत्यमानाभिमल्लरीणां कलस्वनकलस्यूताष्टदलकमलविदित-सेवकजनचातुर्याणां, रत्नवासोवितानानमध आयुर्वेदशास्त्रमिव लक्ष्मीविलासभागि सुमन्मन्दिरं राजकुलं राजते। तत्रैव च [illegible] पूर्वा वयसा,

मनसामपि विमोहिन्यः, काञ्चनकाञ्चीकिङ्किणीशिञ्जितरञ्जितसमस्तसामाजिकजनाः कदापि कटितटे घटे वामकुलधारयाः, कदाचिदुरसि रसिकचेतोहरे, कदाचन शिरसि रसिकशिरोरत्ने, कदाचिद्धस्ते हस्तं न्यस्यन्त्यः, मोहिन्य इव प्रकामनूतनतनवाः लोलदृष्टप्रान्तप्रेक्ष्यमाणाश्चेतोहरा हरिणाक्ष्यो वारवध्वः परममधुरं, सवदनं, पञ्चदशगानेन सकर्णबद्धमाकर्षयन्त्यो गायन्ति। वैणविकाः पिकस्वराः स्वरान्धमेन्य मार्दङ्गिकैः सह सहस्तकारं तारं रणरणायन्ते। भ्रूकुंसा भ्रूविक्षेपजनितविशेषा जनान् समूहयन्ति। सर्वत्राभिनवो हर्षः पताका अपि अभ्रं लिहन्त्यः फरफरायमाणाः दुःखोदन्तकर्णदुःखितमाकाशमद्य वीजयन्तीव। प्रबलतेजस्का निष्कासिततमस्ताडितप्रदीपा अहो! निशामपि दिनयन्ति। सर्वत्र सौगन्ध्यम्। समस्मिन् मनःप्रसादः। सर्वत्र हास्यलास्ये। स्थैर्यमजीवेषु श्रूयमाणगानगमने चालस्यमासीत्।

सोऽयं महोत्सवो विविधाख्याननिपुणैर्विद्याविलासशालिभिः कविकोविदैः केवलं शान्तस्वान्तवेद्यः सकमलस्य चन्द्रस्येयत् महत् कष्टं विपद्य सकुशलनिवृत्तौ स्वागतसम्पादनाय विहित आसीत्।

रात्रिमुख एव दीपाः प्रज्वलिताः विमलपुरबहिर्भूमौ चन्द्रप्रसादस्य स्वागतसामग्रीव्यग्रो जन ईक्ष्यते। वितानस्थायिनां सर्वेषां चक्षूंषि सम्मुखलग्नानि सन्ति। अस्मादेव संसरणाच्चन्द्रागमनं सूचितम्। हर्म्ये च सज्जितारात्रिकसरोजिनी नितरामुत्का। प्रतिक्षणमित स्ततः सखीर्द्रष्टुं प्रेरयति। मरुत्तरणां दीपप्रकाशः सर्वजनसमूहं मुखरयामास। पश्यत एव द्वे मरुत्तरे समायवतुः। कनकपुरीयं सजवनिकं मरुत्तरं प्रासादमाससाद, परञ्च वितानभूमिम्।

अथ सकललोकजयशब्देन सह समवतीर्य महनीयरामपालचरणसरोजं नयननीराभिषेकं प्रणम्य, सगद्गदमाशिषं प्रतिगृह्य सभासदैर्यथायोग्यं सत्कृतो रामपालनिर्दिष्टमासनमलङ्कृत्य, वृत्तजिज्ञासातिशयं विज्ञाय भूपेन्द्रभणितमपि सङ्क्षेपेण निवेद्य राज्ञाऽऽसमनुज्ञाप्य विश्रमाशां जग्राह।

अथ महाराजो राजसदने दिनादौ दोषज्ञो, परिवसिता सिताम्बरो वरो वीरेषु प्रतापनिर्जितमहेन्द्रो भूमहेन्द्रो रामपालः, नन्दनपुरेश्वरः कामेश्वरसिंहश्च मुख्यैः सामन्तैरशेषविद्यानिधिना निधिना जरया राया होसदुर्गेरेण मतिमतां वरेण मन्त्रिणा मतिवरेण,

आयुर्वेदमहोदधिमथनमहनीयमहिम्ना हेम्नो दाम्ना विभासितगलेन धाम्नां धाम्ना नाम्ना चन्द्रशेखरेण शेखरेण ज्योतिर्विदां कनकदण्डोपनेत्रेण क्षेत्रेण सकलकलानां श्वेताक्षिपक्ष्मणा कुलगुरुणा च परामृशति। मध्ये हस्तलिखिता भूर्जपत्रमयी जीर्णाऽऽकीर्णा स्वर्णाक्षरैः स्वच्छवासोवेष्टितापि न मनोमोहिनी विराजते राजते पत्रे पुस्तिका। यस्याः पत्राणि इतस्ततः प्रचाल्य किमपि हस्तपर्वसु गणयन्ति गणकवरेण्याः। विज्ञेन दैवज्ञेन निरधारि चैत्री पूर्णिमा विवाहे वरणीयतमा वेला च त्रियामायास्तृतीयो यामः।

"सौजन्यजन्मनो नवेन्दुवर्मणः समागमनं लघीयसि समये न सुघटं पुण्यश्च पूर्णवयसो वेलाविलम्बासहः"—इति मन्त्रिणामन्त्र्य कमलाविवाहसमारोहं समारभते रामपालः।

* * *

"महात्मन्, महाराजः कामेश्वरसिंहो रामपालश्च पत्रमिदं प्रेष्य जिज्ञासन्ते यद् यानादिकं कदा किं वा प्रेष्यम्"—अश्वादुत्तीर्णः सादी प्राह।

महात्मा च तदुपहाय पत्रं पपाठ—

आत्मीयाः,

एकोऽहं बहु स्यामिति समायप्रमाणः प्रथमस्पन्दनेन व्यक्तं चराचरसृष्टे-र्मूलतत्त्वं पुरुषः प्रकृतिश्च। युगलीभूय सन्ततिसम्पदया संसृतेर्धारया अनवरतं प्रवाहणं पुराणपुरुषस्याभिलाषः। विवाहस्तस्याभिव्यक्तिः सामाजिकी। सोऽयम-भिलाषो रामपालस्य पुत्र्याः कमलायाः, नन्दनसिंहस्यात्मजायाः सरोजिन्याश्च महा महिम्नो राज्ञो नवेन्दुपालस्य पुत्रेण श्रीचन्द्रकुमारेण चैत्र्यां पूर्णिमायां विवाह रूपेण सम्पाद्यते। श्रीमन्त उत्सवसम्पत्त्यै उपस्थातुं प्रार्थ्यन्ते।

कामेश्वरसिंहः — रामपालः

नन्दनपुरम् — विमलपुरम्

कोणेऽङ्कितमासीत्—

रविरोऽभिलाषः श्रीमतामर्चया सम्पूर्यते।

असाम्मतेऽपूर्णैव प्रतिभाति। स्वतन्त्रा महात्मनः

कार्ये तेभ्यो विधिः। —सरोजिनी

महात्मा—सूचय समये समेष्यामि। न यानस्यावश्यकता।

* * *

अथ चैत्री पूर्णिमा या बहोः कालाल्लोकश्रवणयो रणरणायमानाऽऽसीत्।

अथ तुच्छतुच्छस्यापि मनुजन्मनो मनोभवभवनमनोरमे रमेशकृपाकटाक्षवीक्षिते क्षितेः पत्युर्भवने नास्ति वार्तावकाशलेशोऽपि। यत्र तत्र पन्थानः परिष्क्रियन्ते, शाराणि द्वाराणि रच्यन्ते, आसन्द्य आसाद्यन्ते, जवनिका विस्तार्यन्ते, वाद्यवादिनः शिक्ष्यन्ते, द्विपा भूष्यन्ते, शिबिकाः साध्यन्ते, भृत्या भर्त्स्यन्ते वर्त्मानि सुवास्यन्ते।

अथ भूते दिनस्य सार्धे विभाम्ना पुत्रा इव विभावर्या निःसारिते प्राय उडुगणेऽस्तोपनतासु धूपधूपितासु दिक्षु, तोमध्यानेन बधिरीक्रियमाणे च दिगन्तराले, मन्दनन्दनाशबलशालिकैर्विधुतुल्युकैर्दिवाभूतायां यामिन्यां, उपगताऽऽसमागच्छत्कामिनी-नूपुरशिञ्जितजितेन्द्रिये समये, राजपुरुषकोशलानां समानं सतर्कं कर्षेषु पदातिषु भवनः स्थितेषु कटिप्रान्तावलम्बमानकरवालेषु अश्वालेषु राजपुरुषेषु, सुगन्धवरैः रेणुरहिते सिच्यमाने संसारं, स्वस्वभवनेषु वनेषु सौन्दर्यशालिनां कलितं गायन्तीषु ललनासु, राजपुष्पशतोत्क्षेपमाशिर्षं वदत्सु द्विजेषु रामादिदेवताभ्युत्थीकृतेषु विपणीषु सङ्गध्वनि विचलयन् दिशं, कम्पयन् सकाननां मेदिनीं प्रारब्धः प्रवर्तितुं सर्वसदो महामहः।

अग्रतः प्रस्थितवाद्यविहारो [illegible], ततोऽविदिताऽवस्थितयः प्रमत्तो मौक्तिक, ततः सुराश्वा सुगन्धपुलिनावतरद्दानां पङ्क्तयः, ततो विविधप्रकारवस्तूनि, [illegible] सुवेशसदलङ्कारजनाविभिन्नस्वरसां, [illegible] [illegible] नियन्त्रितास्यो राजयः, ततश्चक्रमहोत्सवमन्दिरं [illegible] [illegible] आदिविराजमानः [illegible] [illegible], पराक्रमभूमिः सिता [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], ततः [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] रथस्य [illegible], ततः [illegible]

कृष्णवर्णानाम्, महार्हरत्नखचित-स्वर्णपीठस्थित समधिकसमरजयिसामन्तकुमाराणाम्, महामात्रप्रयत्नरुद्धशीघ्रगतीनां करिणां शुण्डादण्डविराजितसुगन्धिपुष्पदामनीमभितो-भ्रमद्भ्रमरश्रेणयः श्रेणयः, ततो भुशुण्डिकाभल्लचक्रशिशितसितासिधेनुकाशोभित-स्कन्धदेशानां परेषां करकलितनिष्कोशकरवालानां तीक्ष्णफालशोभिकुन्तधारिणां, राजपुरुषत्वख्यापकवर्त्तुलपित्तलपट्टिकालंकृतवक्षःस्थलानां, स्थलानां वीरतायाः रतानां-राजनि, जनिमतां सत्कुलेषु, कुलेषुधिधनुर्धारिणां वीरवराणां वारः, ततो मुक्तानिर्मित-राजहंसमिथुनेन, मध्यमुक्ताकलापेन, नीलमणिना रचितमयूरयुगलेन भास्वता कनक-दण्डेन रक्तकौशेयसम्पादितेन, पृष्ठस्थसत्सामन्तगृहीतेन, विशदेन आतपत्रेण प्रकटित-सुषमः, उभयतो हस्तिवरारूढाभ्यां सामन्तराजभ्यां प्रचारयमानचामरयुगलः, महार्हरत्ननिचितकिरीटविभासिभालो लोलालकः, शमीपत्रकुसुमकोरककुङ्कुमकाश्मीर-चर्चितमुखमण्डलः, दशननिर्जितकलानिधिः, कलानिधिः, स्वर्णसूत्रस्यूतपुष्पलतास्तबक-भाजा, रक्तकौशेयेनाप्रपदीनेन कञ्चुकसमाजा समेधितश्रीः, श्रियो यशस उदारताया वीरतायाः सौजन्यस्य च भाजनं सश्रीफलेन दुकूलेनानद्धकटितटः, भ्राजता स्थूलवर्त्तुलमुक्ताहारेण चन्द्रहारेण वक्षसानुकृततारापङ्क्तिः, पतिः राजनगरवसुमत्याः, मत्या विहसितकाव्यः, काव्य-रचनाचतुरः, तुरङ्गविद्याप्रवीणः, वीणाक्वणनमुग्धीकृतप्रमदः, मदोत्कटकरिकटपाटन पाटवप्रथितः, कङ्कणशिरोभिमणिबन्धेन हीरकखचितस्वर्णत्सरुनीलकौशेयकोशकरवाल-धारिणा रत्नजटितोर्मिकाहारिणा करेण द्योतितचापल्योऽपल्यः, प्रधौतधौतवसनः, सुभग-पादत्राणः, महार्हपरिस्तरणायां राज्ञी रामपालस्य परमप्रेमभुवि भुवि सम्पदां प्रतिष्ठानाख्ये; करेणुकायां कायाङ्कितचित्रायां कृतस्वर्णासनस्थितिः, स्मितेन दशनवसनयोर्लसितल्लामां प्रसारयन् रसिकतां, विकासयन् कामिनीनेत्रकुमुदानि, उद्दीपयन्मनोभवप्रभावान् सत्काव्यमिव पदे पदे हर्षयन् सर्वचेतांसि आसीत् कामिनीयामिनीमनो-वियच्चन्द्रश्चन्द्रः।

पृष्ठतश्च महान्तमनलङ्करणमपि अलङ्करणमश्वानामश्वोरसमारूढ आसीन्महामात्यो मतिवरोऽनुगतः सशस्त्रै रथारोहिभिर्वीरवरैः।

कामिनीकरपातितैः कुसुमैर्मालाभिः स्तबकैश्च मृदुला तारकितेवाभूद्वसुन्धरा।

१ पलं मांसमर्हतीति पल्यः, न स, सोऽपल्यो-न मांसभोक्ता।

चारुहासिनीहास्यैः कथमपि हातः, विलासिनीनयनवागुरया कथङ्कथमपि मुक्तः, नूपुरशिञ्जितैर्यथाकथञ्चिदनाकृष्टः, वामभ्रूदर्शनभाराक्रान्त इव शनैश्शनैश्चलन् समारोहोऽयं महामहिम्नो रामपालस्य दुर्गान्तर्हर्म्यमाडुढौके।

अथ हि भगवतोऽवतो वसुधां सुधारश्मितस्य रामपालस्य भवनं मनं विलसितमिव विभाति महेन्द्रस्येव। द्वारकपाटिकेन योजितशिल्पिनैपुण्येन पत्रेण खचितं वन्दितकृतावलोकलोचननिचयं मुख्यद्वारम्। अभितो लम्बाश्च पुष्पस्तबकलताकुलाः कौशेयीर्जवनिकाः। सम्मुखे चैतस्य रक्तकौशेयनिर्मितं विलसद्राजतकुसुमं नृत्यत्प्रान्तप्रतानिनी[1]वीजितसकलजनं द्वात्रिंशत्स्तम्भैर्विहितायामं महावितानं विततम्। यत्र सुसज्जितानि सिंहासनानि सहस्रशः स्वर्णासन्द्यो राजतासन्द्यो वेत्रासन्द्यो राजन्ते। यस्मितो निष्कोशकृपाणपाणयः पटवो भटाः समर्यादमासते।

मुग्धा नूपुरशिञ्जितद्विगुणितरयकिङ्किणीस्वनाधिरण्व्यः, मोहितसमाजेन नितान्तनन्दकेन कोकिलानुकारिणा करिणामपि मनो हारिणा स्वरेण मधुरमधुरं तरलं गायन्ति।

इतराण्यपि वाद्यानि यद्यपि स्वस्वविजयाय मनुजमानसान्यपहर्तुं प्रयतन्ते, परन्तु मुग्धवधूगानमिदं सर्वातिशायि विजयमध्यगात्।

अथ वादकेष्वेकतो भूत्वा वादयत्सु यत्सु मुक्तमार्गे च सैनिकसमुदये हर्म्यसम्मुखकुट्टिममायाता करेणुका आयतललाटपराजितचन्द्रस्य चन्द्रस्य।

निःश्रेणियोजनेन जनेन दत्ताशिषि समवतीर्णे वरे हस्तिपकेनान्यतो नीतायां करेणुकायां करधृतैः सौवर्णैः कृत्रिमदिव्यकरैः सुगन्धविसरं वमद्भिः सुरभिते जनसमुदये, सहासं समनःसमुल्लासं प्रभवत्सु चलत्सु च व्यजनेषु विहिततोरणपटआहतेऽपि परमसुन्दरीणां दरीणां मनोभवस्य भवस्य सारैः कटाक्षैः, कातरंहर्म्यप्रथमद्वारमाससाद वधूविधूयमानमानसराजहंसपक्षतिसितव्यजनं सौन्दर्यविघूर्णितनयनं, नयननीरजैर्नीराजनाकरायिताजिरं, कनकदण्डचमरग्राहिणीभिस्ताम्बूलवाहिनीभिः, पतद्ग्राहधारिणीभिर्भूषणभूषिताभिर्दासीभिर्वावाल्पितं, मङ्गलगानस्वरितं द्वितीयं द्वारम्।

[1] प्रतानिनी झालरी इति भाषा।

तत्र चाञ्चनाभिः कृतेऽर्चने कमलयापि यापितदुःखदशामिव। सरोजिन्या सह च सविभ्रमं लज्जान्तरितशरीरलज्जया पुष्पस्तवकेनाहृते चन्द्रे इतस्ततः सविलासं प्रयातासु विलासिनीषु गौडविडौजसा परिकल्पितसम्भारां परितःकदलीदण्डां चतुर्द्वारां वेदिकां सपत्नीकः कामेश्वरसिंहो रामपालश्च कन्यादानाय परिकल्पितमहार्ह-सम्भारामविशताम्। समये जगदानन्दी चन्द्रोऽपि मण्डपे स्वर्णपीठे पदमकार। यथाविधि कमलासरोजिन्योश्चन्द्रेण सम्पन्नो विवाहसंस्कारः। शामीलं भस्म वधूवरयोरङ्गान्यञ्जयामास।

राजा रामपालः 'स्वश्वातृभावमेपेतः कामेश्वरश्च दासदासीहस्त्यश्वरथालङ्कारयुक्तं यौतुकं कौतुककरमदात्। दध्नतुश्च विवाहस्यापकासशोभाः। सम्पन्ने विवाहे चन्द्र आचार्यं राजानं रामपालं कामेश्वरञ्च प्रणम्य शाकिनाथस्य पादयोः परमप्रेम्णाऽवनिनंसुः "केवलेन नमस्कारेण किम्, कामपि भूयसीं दक्षिणां देहि यां यावज्जीवं स्मरामः।" इत्युक्तः स्वकीयं महार्हमङ्गुलीयकं ददौ।

अथ सम्पन्ने उपयमनेऽबलाभिर्बलादाहूतः पुरुहूतोपमः शिञ्जानवलयया कमलया सजीवरजन्या सरोजिन्या चानुगतो गतवाञ्छुपदेवं देवश्चन्द्रः। तत्र च कृतकुलाचारो-महिलाभिराग्रहीतो नेत्रसम्पातेन परितः प्रेक्ष्य मदनसदनस्वामिनीभिः प्रमदप्रमदाभिः -ोत्कण्ठमवलोक्यमानोऽचिरं विचार्य पद्यमदः पपाठ

> कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां
> पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य।
> विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां
> बीजं प्रेमद्रुमस्य प्रभवतु जगतां भूतये चुचुकाग्रम्॥

लेभे चैकं महार्हमङ्गुलीयकम्।

तत्र च श्रृङ्गाररसस्रोतसि प्रवहमाने प्रकृत्यैव हासप्रिया प्रिया सखी कमलाया मनोरमा, रमाविनिन्दकरूपाऽकूपारं तर्जयन्ती गुणरत्नैः, रत्नैर्मण्डिततनुयष्टिः, यष्टिः स्मरस्खलितस्य, किञ्चित्परिवर्तितपदं हनुमन्नाटकीयं पद्यमदः श्रुत्वा स्मयमान-मुखी उवाच—

देव ! यदि न कालक्षेपो यदि च प्रसादसम्मुखो देवोऽस्मासु, तर्हि मदद्भुतस्वनं शुश्रूषामहे पद्मदः। अबोधविक्लवस्य ललनाजनस्यानुपेक्षणीयोऽयमनुरोधः।

"कलितवैदग्ध्यस्य दग्धस्यापि स्मरस्य प्रधानजीवनसाधनो विमुग्धस्मरी मुग्धमन-स्यजनाजनस्य कृतानुभवः सङ्केतोऽप्यत्र गरीयान्। कठिनार्थविशदनमात्रफलिका हि विदग्धवृत्तिः।" विकसितसिताम्भोजमभ्यमुखश्चन्द्रोऽवदत्।

"तथाच कलिरत्र प्रणयकलहः स एव मलं, तद्दलयननय मथनम्। मुमुक्षुभिर्नि-मित्तिशेषः। परं पदाभ्यां·· तत्प्राप्तये प्रस्थितस्य, इत्येव गायमाने चन्द्रे भ्रामुक्ता हस्तेन निषेधयन्तौ, अलमलमितिव्याहारचपला घटकितकमला रामुत्सौ मनोरमा विमोचितचन्द्रोत्तरीयः प्रमदाजनश्च।

* * *

[illegible]अनन्तशिशिरपयौवनमचेतने जगत्यपि सजीवसौन्दर्यं पूरयति स्म। [illegible] वरे रजनीरमनीरमय उत्तरोत्तमत्वेन हासेन मुखं भासयते स्म। दिगङ्गना [illegible] मादाय जगज्जनानन्दनार्थं [illegible] स्म। शुभ्रज्योत्स्ना जगतीतले [illegible] प्रसारं क्रीडन्त्यासीत्। क्वचन क्वचन नारीनूपुरा [illegible] भजन्ति स्म। इन्दीवरसमं [illegible] परिरम्भन्ते स्म। [illegible] मन्दं मन्दं वहति स्म।

[illegible] भवनेषु [illegible]। [illegible] शोभा [illegible]।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

विश्रमितुमैच्छत्, शर्करामधुद्राक्षामिश्रमासवमास्वाद्य पल्यङ्काङ्कगतयोरचिरादेवाविर्बभूव नयनयोर्निद्रा।

वीताप्यर्धद्वियामा त्रियामा। चन्द्रस्तरलतररमणीये शयनीये गवाक्षागतसुरभिनभस्वद्वाढ-निद्रोऽस्वपत्। प्रियतमा च तस्य भर्तुरङ्कं विहाय उपर्यङ्कं पर्यङ्किकामेकामध्यास्त। हृतनिद्रा, सा च निर्भरं चन्द्रप्रकाशे चन्द्राननामृतं निपीय विलक्षणां तृप्तिमध्यगात्। महोत्का सा चन्द्रस्योरसि कपोलयोः शिरसि पाणिपल्लवं भ्रमयन्ती तमपि गततन्द्रं चकार।

"पश्य देव, कीदृशी मनोरमा यामिनी, वियत् सुधाविप्रुष इव वर्षति।"

चन्द्रः—"निस्सन्देहम्। परमेतस्याः शोभा यत्या चन्द्रेणैव। अस्तु त्वमपि, मधुरां निद्रामनुभवामि। चिरं रात्रौ क्रीडतोः शैथिल्यमापन्नयोर्निद्रैव स्वास्थ्यप्रदा। अथवेदं जगति परिस्थित्यनुसारं मनोरममनोरमं वा भवति, प्रेयसि।

"(मध्य एव तद्वार्तामभूत्वा) प्रिय! भगिनी सरोजिनी सौम्यभर्तृकृतपरिणया अलं गर्विता। साम्प्रतं तु सा केनचिद् मन्त्रीत्येव गृहे—"

चन्द्र०—अये! केन किं भवति मुग्धे!

"अहं सम्यक् न विस्मरामि। अतः शृणुमः 'केलिकाले आकाशा भवति।'"

चन्द्र०—किन्तर्हि चन्द्रः।

"आम्, आम् आर्यपुत्र, स एव यस्य कृते महान् दर्पः शिरस्यारूढः सरोजिन्याः। किं वदसि अद्यत्वे तु सा विलक्षणा मानिनी सञ्जाता।"

चन्द्र०—अरे! एतादृशम्! किं सर्वथैव विस्मरसि यदस्मदं भणसि!

"कथम्, प्रियं सरोजिनी न जानासि, आर्हेसितत्पतिं न जानासि। सोऽपि दर्शनीयं भवति।"

चन्द्र०—(सोद्वेगम्) अरे! त्वं कासि! किन्नु नाम!

"धन्याः (सहासम्) भवद्भिरद्य मया पीता, अन्ये पीताः सर्वं विस्मरन्ति। अहह! एतत् कर्णेऽपि विस्मरन्ति धन्याः। सत्यम् भवन्तो मन्मथमपि विस्मरन्ति! अस्तु, सम्भाव्यते कामोन्मादे स्मृतिभ्रंशः।"

---

१ रन्ते।

चन्द्र०—स्मृतिभ्रंशः? आः पापिनि? वञ्चितोऽस्मि, छलम् (प्रकाशं प्रज्वलत्पलात्तन्मुखं वीक्ष्य) आः कुटिले! किं कृतवत्यसि। नाहमस्मि तव पतिः।

"स्वप्ने? उत जागति?"

चन्द्र०—जाग्रद्दशायां प्रकृतौ स्थितोऽहं वच्मि यत्—यं त्वं स्वपति मन्यसे सोऽयं पुरस्ते चन्द्रः।

(सनयनोत्स्फारं मुखं दृष्ट्वा) "नहि नहि भवन्तो धौर्त्यं विरचयन्ति। मुकुरे मुखं पश्यन्तु भवन्तः।" (मुकुरमानयति स स्वमुखं वीक्ष्य विस्मितो भवति)

चन्द्र०—अवश्यं मद्रूपं केनापि परिवर्त्तितम् (जलेन क्षालयति रागः पतति) पश्य मे रूपं केनापि परिवर्त्तितं वञ्चकेन।

"अरे! (अधोमुखी) भवतां किमनेन नष्टम्, अहं नष्टपातिव्रत्या नष्टास्मि! राजकुमार? नेदं भवदनुरूपम्। स्वयं रूपं परिवर्त्त्य स्त्रीणामुज्ज्वलपातिव्रतविनाशनं किं भवद्विधानां कर्म? अहह! भवादृशा एव धर्मस्यैतस्य पालकचरा नाशाय भविष्यन्ति चेत्तदा हन्त! बत!! कं नामाश्रयिष्यत्येषः। अन्याय्यम्?"

चन्द्र०—कथं मां दूषयसि? सर्वथाऽदूषणोऽस्मि। मां निरयपातिनं विधाय सर्वं सतीत्वस्य ढक्कां निनादयसि।

"तर्हि कं दूषयामि? (सविलक्षविस्मयं) अहो! भगिन्याः सरोजिन्या अपि एषैव दशा भूता भविष्यति। सा मम पत्युरागारं गता भविष्यति। अहह विस्मृत्या, ह्रिया, सङ्कोचेन, मूढदासीकथनेन द्वयोरेव च्युतो धर्मः, हा!"

चन्द्र०—किं किं मदीया प्रिया परस्याङ्के। (खड्गं निष्कोशं कुर्वन्) कोऽस्ति!

"युवराज! किम्भवन्त एव क्षत्रियाः! श्रीमन्त एव शूरवारवराः! किं मत्पतिर्नास्ति क्षत्रियः। तस्य तनावपि प्रोष्णं राजन्यरक्तं राजते। श्रीवरवरणीयवीर्यः स को जानीते किमाचरिष्यति रहः। अवक्रव्यम्? यस्य प्रियां भवन्तो रहसि छलेन प्रियाप्रेमपरायणो 'युवराजः कुकर्म कृत्वापि व जिह्वेति......" इत्यनर्गलं प्रवदन्त्यामेव तस्यां समाजगाम विकसितवदनसरोजा सरोजिनी। हसन्त्या सरोजिन्या धौतवदना चन्द्रेण साश्चर्यं वीक्षिता च तदास्मुख एव कमला समवर्तत। महदभूद्धास्यं लास्यम्।

सुधांशुनिभमन्दमन्दवदनया कमलया सततविकसितनयनसरोजया सरोजिन्या च रममाणः पद्मपुरकुटशेखरायमाणप्रबलप्रबद्धसिद्धविधीयमानरक्षो विश्वस्तै रक्षितप्रासादोऽविवादः सानन्दं राज्यमीक्षमाणः नीतिनाशितभीतिः रीतिरञ्जितानीतिप्रजः प्रजेशपरमप्रणयं वहन्, मानयन्नधिकारिण आश्चर्यभवनानीतविपुलधनराशिदेवान् वृद्धान् विप्रांश्च मानयन् प्रसन्नप्रभो विमलपुर एव स्थितिमकल्पयत्।

पुमान् सुखे सर्वं विस्मरति। प्रचुरं कष्टं विषह्य स्वकीयं जीवनं सन्देहसिन्धौ निपात्य जनयित्रीं प्रियां मातरं, कृच्छ्रतामनुभूय धनादिकमर्जयित्वात्मजमेव सर्वस्वं मत्वा पालयन्तं पितरं, शैशवसहचराणि मित्राणि, कलत्रपुत्रभ्रातॄनपि विस्मरति।

हन्त! महामदो लक्ष्मीविषम्। क्षुद्राणान्तु कथैव का यां प्राप्य शैशवे दैत्यमदीनसुर-असोपदेवदानवरक्षोमनुष्यसिद्धसाध्यद्विजमुनिमुमुक्षुब्रह्मपितामर्षिदेवपितामहादिविज्ञवृद्धाः विष्णुं दैत्यभावादिरपि क्षीरनिधौ निद्रामेव भूपतेऽनारतम्। अहह! सत्यं! "हालाहलो नैव विषं विषं रमा"। यामिमां लब्ध्वा सततऐश्वर्यं परमात्मानमपि विस्मरन्ति स्मरणीय चरिता विरञ्चितः। का कथा संसारसमाकृष्टेन्द्रियाश्वानां मनुजानाम्। यद्यपि सापेक्षं सर्वस्य भ्रमणो जनस्य, परन्तु यां प्राप्यापि न सुखेन भुञ्जन्ति, अपि तु महता दुःखभरेन। सर्वंभेप्सया, स्पर्धया, क्रोधेन, जिघृक्षया लिप्सया, बुभुक्षया, अनन्तं च दुःखसमुद्रमध्ये लभते।

> योऽसौ नेत्रनिरीक्षितप्रकृतिको सत्त्वापटुर्वाटिका—
> धाप्यारामतडागकूपसरितां रक्षस्य मर्मप्रदः।
> तेने तेन पयोनवेन कविना शोभाख्यिना द्विरियथा
> तस्मिन्महेन्द्रमहीपतौ शुभतरः! षष्ठो परिष्ठो गतः॥

इति—

श्रीमन्महेन्द्रसमरसर्वसिद्धिश्रीनरसिंहराजशास्त्रितनयेन
वैदर्भकलंकेन कम्भालङ्करेण श्रीनिवासशास्त्रिणा
कृते चन्द्रमहीपतौ षष्ठो निःश्वासः।

सप्तमो निःश्वासः

अघटितघटितं घटयति घटितं घटितं च दुर्घटीकुरुते ।
विधिरेव तानि घटयति यानि पुमान्नैव चिन्तयति ॥

पुष्पेषु यः कमलिनीकमलोदरेषु
चूतेषु यो विलसितः कलिकान्तरस्थः ।
पर्याय तस्य मधुपस्य शरद्व्यपाये
कृच्छ्रेण वेणुविवरे दिवसाः प्रयान्ति ॥

सुधासारावलिप्त इव चन्द्रचन्द्रिके वियति यतिमानसविमले परिमलोद्गारिणि कुसुमकेसरामोदसमोदे दीर्घिकार्णवगणे, हिमशीते चलतिदोलितलते, अगुरुघनसारचन्दनधूपधूमे रसिकघ्राणरन्ध्रं सन्तर्पयति नैशिके मातरिश्वनि, मयेनेव निर्मिते वैभवाम्बरकौशेयाम्बरगात्रवृते महति मञ्चे उपवर्हमाश्रित्योपविष्टं चन्द्रं परितः समासीनेषु सर्वेषु प्रकटेन दिनमनुवर्ताणायां विभावर्यां गानं साधयत्सु गायकेषु हर्षमुग्धमति इव निशि वेत्रहस्तः प्रहरी प्रविश्य "जयतु जयतु देवः"—इति विर्व्याहृत्य 'कश्चन शान्तिपरोऽतनुः तनुमानिरीक्ष्याद्गोऽविचारी यादी भवन्तमागम्य समेतुमिच्छति, देव प्रमाणम्—' इति निवेद्य, 'शम् प्रवेशय' इति श्रुत्वा गतः ।

चन्द्रश्च द्वार एव प्रहरिनिर्दिश्यमानमार्गं परितो वीक्षमाणं दृश्यन्तमागच्छन्तं दीर्घ परिचितमिव मनसि चिरन्तनमूर्तमिवपूर्ति बहुधा अवलोकितम पार्श्वे तेन सार्धं वाक्येन पश्यन् समीपमागतस्य परिचर्य आश्लिष्य मैत्रीमं ट्युत्थाय 'आः किं भवान् किमर्थम्?" इति कथयन् स्मेनोत्तमधिगम्य प्रसन्नमुखं समन्विष्य सादरं अन्यत्र एव एसुतं वदन् करोच ।

"भवन्तोऽत्र दर्शनमत्र: शीघ्रमेव प्रत्यगच्छत्र एव यद्यपि महिमा प्रमाणं उपविशत"
(सर्वे) "विज्ञप्तौ धीमन् मन्त्रिप्रवराः उपविशत"
इति इतः इतः—

"द्विर्हर्षः। अद्य कुमारस्य पुत्ररत्नजन्मनः षष्ठं दिनम्। परममित्रं कुमारस्य श्रीशक्तिधरश्च समेतः, अद्य निरवधिर्हर्षः। देवं प्रार्थये जातस्य शिशोर्हर्षवर्द्धन इति नामकरणाय"

सर्वे सभ्या एकस्वरेण :— "अथ किम्"

चन्द्रः—अपि कुशलम्? कुशलिनस्तातपादाः? मद्वियोगदुःखिता अम्बा वासराणि सानन्दं व्यतियापयति कच्चित्? पितुः परमश्रद्धास्पदं मन्त्री कुशली? भवतां कुशलवृत्तं वेदितुं व्यग्रोऽस्मि।

शक्तिः—भृशं दुःखितोऽस्मि, किमिव कथयामि!

चन्द्रः—(सभ्यान् प्रति) अद्यतनो महोत्सवो द्विगुणतरोत्साहेनानुष्ठातव्य आर्यैः। अहमपि समये समेष्यामि। 'प्रेममन्दिरे 'प्रबल! शीघ्रं प्रबन्धमायोजय'—

* * *

चन्द्रः—शक्ते, मम दुःखानि परैरनुमातुमशक्यानि।

शक्तिः—अये, तव राष्ट्रोपकृत्यै, तपसे, सिद्धये, विद्यायै धनाय वा, किन्तु प्रियायै · (हस्तं हस्तेनायोज्य हसति, चन्द्रः स्वनामाङ्कमङ्गुलीयकं वीक्ष्य श्वेतमुखो भवति) मौनम्, अस्या एव कृते वनाद्वनं भ्रान्तोऽसि, कारासेवीकृतोऽसि ताडितोऽसि बद्धोसि, ज्ञातम् एवं लभ्यन्ते मनःप्रियाः प्रियाः।

चन्द्रः—भृशं मा खेत्सीः खिन्नचरम्।

शक्तिः—खेदः! अटवीतोऽटवीं भवनाद् भवनमटतो महान्तं कालं यापयतः, भीरु-भामिनीभिरभिक्रोशं क्रीडां कुर्वतः भयानककानन[1]वानक[2]शयानकां, [3]अपसलामनीक्षित-[4]भवन्यूं, [5]भर्वरीक[6]शर्शरीकस्य[7]जन्युमन्युगर्जनां वनावनिमवना[8]घन्यूर्वमाणस्य रहः [9]साधन्तभाषणं च विदधतो न ते खेदलवोऽपि, सम्प्रति स वार्त्ताभिरेव! न जिह्रेषि?

चन्द्रः—मर्षय मित्र मर्षय।

शक्तिः—स किं क्षम्यो भवति यः पातारं पितरमात्मनस्यसहां मातरं, विनयोजनावद

---

१ वायुः २ अजगरः ३ क्षमार्गी ४ सूर्यः ५ कुटिलः ६ हिंस्रः ७ जीवः ८ निर्मलां ९ साधुः।

चिताः प्रजाः सहयोगिनो मित्राणि चासूचयित्वा दीनो हीन इव श्वासां जीवनरजन्यन्धयामिनीनां कामिनीनां पृष्ठलग्नोऽशेषबान्धवाज्ञातश्वरणरेणुं चुम्बन् त्यक्ताभिमानः कातीभवति लक्ष्यीभवति च किन्नरमुष्टितलानाम्। हन्त हता मनस्विता।

चन्द्रः—अस्त्यागः तथापि क्षम्योऽहम्। प्रथममेलने किमेवं मन्ये।

शक्तिः—अहन्तु सखे, मिलितवान् परं त्वं न। प्रियापरमप्रेमपानीयागाधरायौ शिखामामग्न आसीः।

चन्द्रः—मा स्म त्रपापारावारे पातय

शक्तिः—त्रपा वराकी स्मृतिपथमायाताद्य, भाग्यम्। सा तु त्वां स्मृत्वा त्रपते।

चन्द्रः—अलं, विरमास्माद् ...

शक्तिः—तर्हि पश्यैनम्। (अङ्गुलीयकं दर्शयति।)

चन्द्रः—पूर्वमेव प्रैक्षि। इदं शक्तिनाथाय विवाहयती दत्तवानस्मि।

शक्तिः—स शक्तिनाथ एव शक्तिधरः।

चन्द्रः—आ एवं किल तत्। विचित्रं रूपं परिवर्त्तितवानसि, मायाविन्।

शक्तिः—मायात्र का, एषा तु कला।

* * *

"चपले, इयद्दिनपर्यन्तं क स्थिता? केवलं दिनद्वयार्थं गता सप्ताहमेवागमयः।"

"महाराज्ञी कमला देवी सरोजिनी च विजयताम्। अहं देव्याज्ञया पितरावुद्दिश्य मातरञ्च सम्भाव्य आयन्ती पित्रानुशासिता यद्विमलपुरमस्माकं प्राचीना पूः। मत्पितामहोऽत्र कदाचन प्रधानामात्य आसीत्, परं पिशुनेन भ्रमितमतिर्देवस्तं निरवासयत्। तत्प्रभृति नन्दनपुरेश्वरस्य छत्रच्छायायामावासः। तत्रैव व्यतिकरेऽस्माकं सर्वां सम्पद् राज्ञाऽऽत्मसात्कृता केवलं नगरान्ते एका वाटिकावशिष्टा यस्यां मम मातामहवंशो न्यवसत्। अद्यापि तत्र मम वृद्धा मातामही निवसति। पित्रा मात्रा च प्रेरिताहं तां द्रष्टुकामाऽगमम्। वाटिकेयं विशाला किन्तु भवनं दुर्गतम्। वाटिकाभित्तिर्भग्ना पतिता च गृहमपि तादृगवस्थम्। परितोऽवकरकूटं पक्षिविष्ठा। अहं श्रमेण परिष्कृत्य जलावसनमनर्घं वृद्धामरस्य कूपं गत्वा जलमाहृत्य घटं शिरस्यारोप्य प्रत्यावर्ते तावदेवागत एको मामपरिचितो वंशोद्भिन्नो भद्रिरस्नात्तमतिः प्रचुरस्वस्वनगीतो

गोवत्सः। अहं 'त्रायध्वं त्रायध्वम्' इति वदन्ती स्तब्धपादा मृत्युं प्रतीक्षमाणाऽऽसं परमेको युवा दैवप्रेरितोऽश्वाद् व्रजन्नार्तं वचः श्रुत्वा "मा भैषीः, अयमहमागत एव" इतिकथयन् अश्वादुत्तीर्य वायुगत्या व्रजन् क्रोधोद्वेगवमदश्रुपूर्णघोणं वत्समनुधावन्नुपेत्य मम वत्सस्य च मध्यमुपतस्थौ। क्रुद्धो गर्वितश्च वत्सस्तं वीक्ष्याहन्तुमनाः प्रचलितः। युवकस्तस्य शृङ्गकावादाय पश्चाच्चकार। पुनः स पशुरुत्थाय यूनः शिरसि तथाऽऽजघान यथा रक्तधारा प्रादुर्भूता। परं युवक उत्थाय एकेन हस्तेन तस्य नासां परेण च जिह्वामाचकर्ष। एतावता च ममाक्रन्दनं श्रुत्वा पुरुषाः समेत्य वत्सं रज्जुभिर्बबन्धुः। युवा च मूर्च्छितो भुवं पस्पर्श। तममुं चतुर्दिनं यावत् संसेव्य प्रसादसुमुखं ज्ञात्वाऽऽमन्त्र्य श्रीमतीं सूचयितुमागतास्मि यदानृण्यमासादयितुं मह्यमपि अवसरो देयः।"

"यूनोऽश्वः किंवर्ण आसीत्"

"मेचकः, वराको मूकः पशुः स्वामिनमोहगवस्थं प्रेक्ष्य प्रकटितानल्पदुःखो वेगेन धावितः"

'को वासरः कश्च समय आसीत्'

'रवौ प्रातः सप्तवादनसमयः'

'निश्चितं कथैषा शक्तिधरमेवानुसरति। स एव प्रातर्भ्रमणाय गतो न निवृत्त तस्यैव मेचकोऽश्वो मन्दुरायामष्टवादनसमये रिक्तपृष्ठो निवृत्तः'

'कोऽयं शक्तिधरः'

'देवस्य परममित्रं मन्त्रिकुमारोऽस्माकं चिरपरिचितः कुमारान्वेषणाय कृतविरक्तवेशः शक्तिनाथः'

'आः शक्तिनाथ एव शक्तिधरः ! हे ईश्वर, सत्यं सत्यस्वरूपस्त्वम्'

'देवो नितरामभ्रान्तस्त्वरया सूचय वृत्तम्'

'आम् यामि'

*　　　*　　　*

"देवस्य परममित्रे शक्तिधरो मां रक्षन् गोवत्सेनाहतो मद्गृहमध्यास्ते निश्चिन्तो भवतु, देवः" इत्यवोचत्

'शक्ति स्त्वद्गृहमास्ते ? त्वरितमेव प्रधानराजकीयचिकित्सकेन सह गत्वाऽऽनय'

* * *

"कथय कीदृशी स्थितिः, अकस्मात्तव लोपोऽश्वस्य प्रत्यावर्त्तनञ्चास्माकं खेदस्य। दक्षिणो देवोऽद्य यत्त्वां कुशलिनं पश्यामि। मन्ये शीघ्रमेव स्वस्थो भविष्यसि त्वत्सेवायै कृताभिलाषा चपला चात्रैव स्थास्यति, अद्य त्वां समये द्रक्ष्यामि।" चन्द्रोऽवोच

* * *

'शक्ते ! कीदृशी स्थितिः'

'स्वस्थोऽस्मि अद्यैव स्नात्वा शिवं पूजितवानस्मि'

'कथयास्मै कार्याय को विशेषतः पुरस्कार्यः'

"एषाऽनिन्द्यसुन्दरी दिव्यदेहा चपला। एषा नक्तन्दिनं त्यक्ताहारविहारनिद्राऽनवरत मामेवापश्यत्। मूर्च्छिते मयि भिषग्वरमपृच्छत् 'भिषग्वर, अयं जीवनं धारयिष्यति किम्? जीवने कृतैः पुण्यकर्मभिर्भगवन्तमेतस्य जीवनाय प्रार्थये'। अहमेनां नहि कालाज्ञाने, किन्त्वस्मिन्नवसरे एतस्या विलक्षणरमणीयं मनोऽवलोकितवानस्मि"

'कथय चपले, किं देयमस्मै उपकाराय'

'देवो मनोऽभिलषितं दास्यति ?

"कथमत्र सन्देहः"

'विश्वस्तोऽप्यास्मा केवलं वाचा सन्देग्धि'

'निश्चितं वाञ्छितं ते दास्यामि'

"यथाज्ञापयति देवः" इति कथयन्ती शक्तिधरस्योत्तरीयप्रान्तं गृहीत्वा शिरःकृताञ्जलि लज्जावनतमुखी अतिष्ठत्।

'सौम्यः प्रशस्तस्तेऽभिलाषः, नितरां प्रसीदन् युगलस्य सौकर्याय प्रयतिष्ये दास्मि'

'देव, अपरोऽप्येक उपहारो देयो नाम, देवः प्रसीदतु'

'कथय कोऽसौ'

'देव, सर्वोऽपि परिजनः कुशलं कल्पयति, केवलं कुमुदिनी प्रबलव्यथा देवस्य प्रतीक्षमाणा वर्तते—देवोऽनुमोदयतु'

'कथमद्य तव जिह्वा समुदिता'

'दिवस्य स्नेहो मां मुखरयति'

'अस्तु'

*   *   *

कथं रे हर्ष कथं रोदिषि, आश्चर्यम्? 'कुमारपाल कथं कुमारस्यैतादृशी अवस्था'।

'अपराधं मर्षयतु देवी, अद्य सायङ्काले कुमारः सवयोभिः स्वमातामहामात्यकुलरत्नैरुच्चकुलप्रभवैः स्वसमानविक्रमैः कुमारैः पूर्वपवनप्रेरिते सुदूर्वाकोमले उपवने क्रीडन् कमपि अधिवयसं वैश्यशिशुमनाज्ञाकारिणं रुषा चपेटाभिरताडत्। चपेटाघातसंकुचिताङ्गेन वैश्यबालेनाभाणि—'मुधैव दर्पितोऽसि, दुश्शील, नैकटिक इव मातामहगेहे कौलेयकवदक्षमसि, न ज्ञायते कस्य कुलस्य देशस्य ग्रामस्याधीशो दासो वा पिता, क च पैत्री पैतामहिकी सम्पत्, न वा। अत्र दयालुना राज्ञाऽस्मत्सम्पत्त्या परिपोष्यते सपरिवारः पिता, तदधुना मातामहमहिम्नोऽनुभव सुखभोगम्, ताडयन्नपराधिनः शिशून्, दुश्चरितैश्चिरं चर। इतो निर्वासितैर्भविष्यते किं कुमारैः कार्यम्, को जानीते काटवीष्वाहिण्डमानो बुभुक्षितो भर्ता।" इत्युपमित्रं वज्रकल्पैः मर्मच्छेदनैः लोहसारनिर्मितैः पशुपतिरशुनिशितैरिभकुम्भविपाटनपटुभिः सिंहनखैरिव अमनुष्यकटुवचोभिस्त्वितउत्क्रियमाणोरस्कः सकम्पोऽनलोपमो रुषाऽश्रुप्लुताक्षो निरशब्दं रुदन् सुखसुखायितो मया चिरं सान्त्व्यमानोऽप्यशान्तः श्रीमतीमुपेतः"—

लालयन्त्यां कथङ्कथमपि सान्त्वनवचोभिः शोकं ह्रापयितुं कथयन्त्यां तन्मातरि स पप्रच्छ 'कास्माकं देशः, किं कुलं पितुः, अत्र वयं कथं निवसामः, यदि कथयितुं शक्नोसि विशदय नो चेत् पितरमापृच्छे।'

"अद्य विलक्षणोपक्रमं तव वचः श्रुत्वा प्रसीदामितमाम्, शृणु, अस्माकं राजधानी प्रतिभाति भारते प्रख्यातनामधेयं, ध्येयं सद्गुणपीयूषरश्मिभिः, राजनगरं नाम शत्रुसेनानिगलनागरमिव नगरम्। तव पिता विद्वत्प्रशस्ते राज्ञो नरेन्द्रसाहस्य प्रियः पुत्रः। एकदा पुण्याश्रमन्यायेनेतः समायातेन संस्कारवशान्मम जातो विवाहः। सानन्दमत्र निवसामः। स्वप्ना अपि नोद्विग्नाः, परमद्य तव रोदनमाकर्ण्य ममापि हृदिप्रयैश्चिन्ता विचराः प्रसरन्ति।"

"मातरौ नाहमत्र तिष्ठासामि सामि क्षणम्। लज्जास्पदमेतत् क्षत्रस्य कृते"।

* * *

प्रयाणसज्जा प्रारब्धा। शक्तिधरप्रबलसिंहयोः शासकत्वे कमलासरोजिन्यो-श्चपलाकुमुदिन्योर्हर्षस्य च दासीदासगणेन कोशेन च समं सेनासुरक्षितानां गमनं सुनिश्चितमासीत्। जलविहारप्रेमिणश्चन्द्रस्य च जलमार्गेण। किन्तु कमलाहर्षावपि जलविहरणोत्सुकौ वीक्ष्य सह गमनमनुमोदितवान्।

"पुत्रि, त्रिनयनाम्बररागविमर्दिभिः धिक्कृतैरावतबलैः सरुषसन्त्रासितदिग्गजैः गजैः परिवेष्टितां फेनसितखलीनैः निभृतोर्ध्वकर्णैर्विपुलवर्णैस्तुरगैः परिवृतां तत्कार्तस्वरभास्वरवसनवर्णाभिर्दासीभिः सेवितां पटुपटहप्रहननविगतविषादां यान्तीं भवन्तीं प्रेक्षमाणो भृशं सुखमनुभवामि"—साश्रुनेत्रेण गद्गदवाचा रामपालेनोक्तं "परमेशस्त्वां सदैवेदृशसौभाग्यशालिनीं रक्षेत्। परं मोहमदिरामोहितो वियोगं वीक्ष्य भृशमुद्विग्नोऽस्मि। दुहितः! हिताधायको वृद्धः पिता न कदापि विस्मर्त्तव्यः। श्वशुरगृहे सदैव गुरुजनानन्दकारिणी पितृकुलमुन्नतमापादयेः। अनाज्ञासम्पादिन्यो हि दुहितरः पितृकुलमवनमयन्ति, चिरायुषं हर्षं प्रेम्णा परिपालयेः"

जलाविललोचना कमलापि "पितः! सत्वरमेवायास्यामि भवत्पादपद्मप्रेक्षणाय"—इत्यामन्त्र्य प्रणनाम सरोजिनी तत्सख्यो हर्षश्च।

अतीतजीवनस्मृतौ भविष्यज्जीवनयापने च कल्पितानल्पकल्पनश्चन्द्रो जलप्रवाहताडितमालिनीलमुल्लोलं मञ्जुपुञ्जम विशत्। स्वल्पा विहरणतरणिर्ध्वनिना गमनं सूचयन्ती शब्दायमाना स्खलन्तीवाचलत्। अन्तर्वत्नी कमला इयन्तं महान्तमनालोकितं जलातिरिक्तवस्तु नीरभीषकं प्रेक्ष्य हृदयमुद्विग्नचेता भज्यमानेन लज्जमानेन स्वरेणाश्रुप्लुतविलोचनाऽवोचत्:—

आर्यपुत्र, आध्यः प्रादुर्भवन्ति, शिथिलः कुक्षिः सशूलं जघनं समन्तात्कटिपीडा मलमूत्रत्यागेच्छा च आसन्नं प्रसवं सूचयन्ति, प्राणनाथ प्राणा निर्गमिष्यन्ति। अहः दुःखम्। आः कष्टम्। अवरुध्यतां यानम्।

"कम्बुकण्ठे, कथं भयङ्करे सरित्पतौ यानमवरोद्धुं शक्यते, क्षणं धैर्यमापन्ना स्वमसुदूरं निकटतटस्थापि, स्वल्पेनैव समयेनास्य पारं प्राप्स्यामः, भगवान् शिवः शिवं विधास्यति।

"आः प्रिय,"—इत्युक्त्वा मुमूर्च्छ कमला।

* * *

"आर्यपुत्र, वयं कुत्र स्मः"।

"प्रिये, आर्तवत्सलो भगवान् स्वत एव सर्वं साधयति। एषः प्रासादः केनापि धनिकेनात्र प्रवालपर्वतस्योपरि निर्मापितः सुखसामग्रीपूर्णो भ्राजते स्वर्गस्य खण्डमिव। श्वेतस्फटिकनिर्मितं विशालं भवनं हारद्भासते। स्वर्णदण्डा मुकुरा हंसमिथुनादिरूपभाञ्जि उज्ज्वलं कुट्टिमं निर्मलपुत्रिका आश्चर्याः कलाविदः कलावत्तां ख्यापयन्ति"

"प्रबलं क्लममनुभवामि, हन्त, दैवं किं विधित्सति"—इति कथयन्ती मुमूर्च्छ कमला।

चन्द्रो यथा जलमन्वेष्टुं प्राचलत्तस्य दृष्टिः शिलालेखेऽगच्छत् "विरहाय जलधिनिधे सुखं प्रदातुं सदा नवीनेन नवप्रियेण राज्ञा राजदेवेन आनन्दभवनमिदं श्रमेण सिद्धया च निर्मापितं, पार्श्वे मधुपुरः स्तिमितः जलागारे जलमपि निर्मलम्

इत्येव पठित्वा पार्श्वस्नानागारतः स्वच्छजलमापूर्य प्रबलवर्षमानेन चन्द्रमणि जातशिरो रोदनम्। सम्भ्रान्तेनागत्य दृष्टं यत्—विशोकितान्तर्मेखन [illegible] [illegible] मनवरतरोदिति। कमला च प्रबलतीव्रमूर्च्छिता, हर्षेण मुखे स्तम्भितं [illegible] स्थितोऽस्ति। [illegible] चिरं चिन्तयामास—

विलक्षणं घटनं विधातुः। [illegible] जितरावैर्बन्दीः पौरजनम्। अत्र पुनः प्रपदनं [illegible]। [illegible] [illegible] पार्श्वो [illegible]। हन्त, विलक्षणो विधात्र भावं भगवन् किं विधास्यति।

[illegible] [illegible] मन्दरिक्ता [illegible] प्रवेश्य शिशु [illegible] [illegible] पर्यङ्के शायित्वा स्वेच्छया चकार चन्द्रः—

प्रिये, [illegible] दुर्दशाविषमतः [illegible]। [illegible] न [illegible]। अत्र [illegible] भोज्यं [illegible]। न [illegible] ते [illegible] भार्यं [illegible]। [illegible] भाव [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] मुखं मरणम्। [illegible] [illegible] निवसतु। [illegible] [illegible] एव [illegible]

आशितङ्गवीनमरण्यमतः सायाह्नात् पूर्वमेव प्रत्यावर्त्तनं निश्चितम्। शीघ्रतायै चतुरो नाविकान् सहैव नेष्यामि।

वराकी कमला किं ब्रवीतु, अगाधे पयोराशौ प्रियेण सह वियोगः बाल्यवयस्यैः भोज्याभावः—सर्वं युगपद् विचार्य्य गन्तुमनुमेने।

हर्षस्योत्कण्ठिते नेत्रे सत्वरश्च कमलामुखं सप्रेम प्रेक्षमाणः "नवशिशुः पर्यवेक्षणीयः" इति कमलां प्रेर्य यानमारोढुकामः प्रचलन् नाविकानवोचत्—

"यथाशीघ्रं चलत।"

'देव, विहरणतरणिरवतरणसमये दुरवस्थाऽभूत् व्यग्रैरस्माभिस्तदा नाख्यायि। अधुना सूक्ष्मेक्षिकयाऽवेक्षणेन तस्य स्थितिर्न शोभना प्रतीयते।" नाविकाः प्रत्यवोचन्।

'भगवान् शं विधास्यति सम्भवद्वेगेन चलितव्यम्' छपछपाशब्देन नौश्चलिता। यन्त्रस्यास्वाभाविकः शब्दः, मध्ये मध्येऽवरोधश्च सर्वेषां मनस्सु भयमुदपादयत्। पर्वताकाराः कल्लोला अभित उत्थाय नावमुपायन्, परं नाविकाश्चातुर्येण पन्थानं निर्माय सत्वरसत्वरं निर्गन्तुमचेष्टन्त। किन्तु विधेरिच्छा विचित्राऽऽसीत्। जीर्णशीर्णयन्त्रा कल्लोलाघातविहता विहरणतरणिः सामुद्रपर्वतेनाहत्य शतधा भिन्ना।

दुर्गम्यकाव्यविज्ञानदुःखितानां कृते कृते।
यातः सप्तमनिःश्वासः श्रीनिवासस्य शास्त्रिणः॥

इतिश्रीभूदेवमौलिमणिशाणायमानचरणस्य विपश्चित्तल्लजस्य
श्रीनवरङ्गरायशास्त्रिणस्तनूजेन श्रीनिवासशास्त्रिणा कृते रसिकमनः कैरवचन्द्रे
चन्द्रमहीपतौ सप्तमो निःश्वासः।

अष्टमो निःश्वासः

आरामाधिपतिर्विवेकविकलो नूनं रसा नीरसा
वात्याभिः परुषीकृता दश दिशश्चण्डातपो दुस्सहः ।
एवं धन्वनि चम्पकस्य सकले संहारहेतावपि
त्वं सिन्धुप्रभृतेन तोयद ! कुतोऽप्याविष्कृतो वेधसा ॥

पण्डितराजजगन्नाथः

पाटीर ! तव पटीयान् कः परिपाटीमिमामुरीकर्तुम् ।
यत्पिषतामपि नृणां पिष्टोऽपि तनोषि परिमलैः पुष्टिम् ॥

पण्डितराजः

रोलम्बैर्न विलम्बितं विघटितं धूमाकुलैर्व्याकुलै-
र्मायूरैश्चलितं पुरैव रभसात्कीरैरधीरैर्गतम् ॥
एकेनापि सुपल्लवेन तरुणा दावानलोपप्लवः
सोढः को न विपत्सु मुह्यति जनो मूर्ध्नापि यो लालितः ॥

सुभाषितम्

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा—
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः ।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ॥

भर्तृहरिः

सुन्दरमुनीन्द्रवसतिं दूषयितुं याति शूकरो विड्भुक् ।
इति पथिकेनापि मया सुदृढं स घोष्यते स्फुटः ॥

जहीहि गुरु गर्जितं विजहि शुण्डया शीत्कृतं
परिभ्रम शनैर्वने किमु गजेन्द्र ! गर्वायसे ।
तथा न किल केशरी गिरिदरीषु निद्रां त्यजन्
विमूर्च्छयति जृम्भया सुभग ! तावकीनं मनः ॥

सुभाषितम्

शीतम्। प्रातः। प्रियबालमनोरमरक्षाप्रवर्ग इव धनिजनगुरुबाक्षरी, [illegible]
कोशोदारभाण्डागारिकः, समुज्ज्वलदशनपङ्क्तिवृन्दवन्दनीयः [illegible]
मासश्चायं मार्गशीर्षः। अद्य प्रथमो मासः। अस्मिन्ननेहसि [illegible]
दुःखायन् प्रभुत्ववश[illegible]तनूनामपि तनुमतां तनूः, [illegible]
[illegible] [illegible] विपुलितशीतो [illegible], [illegible]
भुवनानि व्यथयन्, [illegible], पातितातपः, वितन्वानो हैमन्तिको मरुत्।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible], [illegible]
[illegible], [illegible], एकत्रीभूय [illegible] [illegible] सन्ति। [illegible]
[illegible], [illegible], [illegible], [illegible]
[illegible] [illegible], [illegible] पर्यङ्केषु [illegible]
[illegible] [illegible]।

भ्युमी विलक्षणाय नमोऽस्तु भगवते कालाय।

भयव्याकुलया सह रजनी बीता। परमकारुणिकः शाम्यो गृहीतनमस्कारो भगवन्तहस्तो ईर्म दुर्ग ताडयन् रक्तकमलताभिरिवारुणाभिर्दीधितिभिर्देदे। सूर्यस्य कोमलकोमलः सरकपाली बालालोकः पुण्डरीकेषु नवकुमदकेषु कदलीपल्लवहिमकण-प्रकरेषु कोटन्नैधायके। बालभास्करप्रभया विकसितकपाटः प्रसादोऽयं सिन्दूरपूरितशिरामण्डपायाः अनवगुण्ठितमुखा नववध्वाः साम्यं धत्ते। तस्य संस्कृत-कलशस्थापितोऽवभागः, सुवर्णकलिकाकल्पितो भव्यः पद्मरागमणिखचितचूडामणि-मुकुटं धत्ते।

महामहिम्नः भास्करकुलकलतरनाथ [illegible] [illegible] भव्यं भव्यं भवनं भ्राजते। यदपि भवनस्य निखिला सामग्री हिमधवलिता परं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। कुक्षेषु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]। न च [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—

[illegible] [illegible]! [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible]

१ [illegible] [illegible] — [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

पुनरायतास्यम्। देयानानां सम्पार्चाया दिष्टोऽप्रमादोऽस्मिन् कृपणानां धैर्यां शत्यभागगतरसानां पारपुञ्जनिर्मितानां स्वादूनां दर्शनस्य ! गच्छ गच्छ, इति।

परं त्वरितप्रज्ञो विद् कश्चिद्गुटिकातो रूप्यकमेकं निःसार्य तस्य हस्ते दत्त्वा प्रार्थयत्। रूप्यके महती शक्तिर्विद्यते, एतत् कुटिलमपि सरलयति दुर्जनं सज्जनयति।

अहह ! विलक्षणमिदं रूप्यकम्, जगद्रणक्षेत्रेऽव्यर्थलक्ष्यः प्रहारः। यस्य हस्तं लोहमञ्जूषामेतदलङ्करोति यशंवदस्तस्य संसारः। एतत् पतिव्रताः पातयति, पुंश्चलीः जारीकरोति, भक्तान् विषयासक्तान् विदधाति, विदुषो दूषयति, नीचानच्यान् करोति।

हा ! हन्त !! वर्तुलरूप्यक !!! त्यागः, उपकारः, ब्रह्मचर्यम्, सत्यम्, तितिक्षा सर्वाण्येव कथामात्रावशिष्टानि जगति त्वय्येव लीनानि। बत ! विप्राणां विश्वविलक्षणस्त्यागो हन्त दुर्वर्णे ! त्वयि त्वया वा को जानीते क्व विलीनः। यस्य शास्त्रचर्चाप्यधुना साश्चर्यमीक्ष्यते।

अहह ! पुरा ये विप्रा विश्वदानलोभेन निष्ठीवनमपि न चक्रुः, त एव रूप्यक भवति धवलधवले वर्तुलवर्तुले विचित्रचित्रे विलक्षणाक्षरे झङ्कारवति भगवति काकिण्याः भग्नकपर्दस्य लाभलोभेन निष्ठीवनमपि परिशोषयेयुः। हा ! ईदृश वैलक्षण्यं कलेः। या नार्यः पूर्वं जगतो मूल्येनापि स्वमतस्य स्वधिकं मूल्यं विविदुः ता एवाद्य हन्त ! परगृहमटन्त्य एतस्य बिन्दुवर्तुलस्य लोभेन किमिव न कुर्वन्ति...

अस्तु, रूप्यकोष्मणोष्णीकृतो गौपुरिकः प्रासादोन्मुखो भूत्वा तमुद्दिश्य कश्चित्पुरुषं सम्बोध्य "अयं महाराजान् दिदृक्षते"—इत्यब्रूत। स च 'अहं, दृष्ट्वाऽऽयामि" इत्युक्त्वाऽन्तर्गतः क्षणेन प्रतिनिवृत्य "आम्, एहि" इत्याह।

ततः समीक्षितावयवो[1] बहुमूल्यरत्नादिकं विनाऽप्राप्तान्यसम्भारः शाणोत्तेजित[2]मल्लादव्यवारणार्थनिशितसितमल्लशतविघट्टितेन, स्थूलतरायसपत्रपुष्टेन, लोहदण्डतलमपि सत्वर्तुलोन्नतपत्रिकाप्रथितदार्ढ्यसौन्दर्येण, घनाघोषवर्धितजनया महार्गलयालङ्कृतेन कवाटयुगेन समुद्घाटितं द्वारं प्रविश्य राजविभूतीः पश्यन्नगाम।

---

१ तलाशी लिया हुआ। २ मल्लैर्दस्युभिरशक्यम्।

द्वारमिदं मारकतदृषन्निबद्धकुट्टिमं बहुभिर्भवनैर्विभासमानं विकासते। अजिरे च रमणीया पुष्पवाटिका, तदुत्तरतोऽवलोक्यते राजभवनम्। पुष्पवाटिका न विशाला, परं तिर्यगिष्टकारचितवीथिभिः, पक्षिमिथुनाङ्कितमारकतालवाल[1]लग्नविटपपरिमलैः, विचित्रैर्द्रुमैः, द्विकद्विरेफमयूरसन्नादितैश्च माधवनीं वनावनीमत्यशेत।

पुष्पवाटिकाया उत्तरतो द्वितीयं द्वारं विपुललौहं विशालं शालोन्नतञ्च। अत्र क्वचन हेषाध्वनिमर्दितजना वाजिनः, क्वचन निमीलितेक्षणा मत्ता भ्रमन्मधुलिहः करिणः, क्वचन चकोरकीरगिरा विघूर्णितेक्षणाः हरिणाः शोभन्ते।

तृतीयद्वारकपाटयुगलं स्वर्णपर्णं मणिगणेन रचितैर्लतापुष्पस्तबकैः लावण्यपण्यनैपुण्यमादधत् शिल्पिनः प्रमाणपत्रमिवावभासते। उभयतः सुचित्रपात्रां परिमलभाजां पुष्पाणां परिमलमविनिद्रारिणं घ्राणतर्पणं समेभ्यो विभजन् भगवान्पवमानो विदलितोद्यानविटपः प्रवृद्धरयोऽपि कदलीपर्णपुष्करकर्णखण्डितवेगरच्युतरंह्यो योद्धेव मन्दं वाति।

अथ वेश्यः कौशेययवनिकस्य हर्म्यस्यान्तः प्रविश्यापश्यद् यत्, मुकुरोज्ज्वलायां श्लक्ष्णभित्तौ रम्याणि चित्राणि पुण्यश्लोकानां सर्वादीनि सर्वनामानि चाङ्कितानि सन्ति। मध्ये च परितो जाम्बूनदासन्दीद्विगुणितसुषमायां, सद्गुणसम्पादितायामुन्नयरूषित-तूलिकामहोपबर्हपरिष्कृतायामेकतो शीघ्रशातकुम्भनिर्मितेऽखिलमौदधिसारवैडूर्ये, मारकत-बर्हे, नीलकौशेयालङ्कृतपृष्ठे, जातरूपातपत्रे मयूरासने समुपविष्टो गुह इव, उपहार-दानेतराजन्यकुमारोपगूढः, गूढशत्रुरशत्रुः, अनारतधराधरपतिपुत्रीसेवितः शिव इव, प्रभोर्भारतिरलङ्कारस्वतीकः, राम इव दुःखितदुःखहारी, अर्जुन इव भारतप्रसिद्धः, राधेय इव दानादीनः, भीष्म इव ब्रह्मचारी धनुर्विद्याविशः, रचितवृहन्न्यासो वररुचिः, बाणारिः, दैत्यारिः श्रीशो विष्णूदयो होतृकारः, सुग्रीवः, साङ्गदो हनूमान्, सूक्ष्मशिरस्कचोऽपि परिमललुब्धषट्पदचुम्बितकेशः समुज्ज्वलायतमस्तको दीर्घसुन्दराभ्रूः गोपुरकवाटोरः-स्थलो राजा राजते।

तं कश्चनोपवीणयति, कश्चनोपश्लोकयति, कश्चन द्वारस्थायी सामन्तः साञ्जलिबन्धं प्रपन्नपाराधभिक्षां भिक्षते, कश्चन दुःखज्वालज्वलितचेताः कष्टं निवेदयते। अथ

---

१ गमला।

समापतसंगमदोषं विकलोद्विग्नराद्य बाह्यगम्यायन्दमिव नरेन्द्रं क्षिप्तिमुत्सैष्व ता
भूमिस्पृष्टि, महाराजस्य अनवेक्षमाकलय्य भ्रूसङ्केतेनैव निर्दिष्टु
महाराजयैरनयोरेवमभूदालापः।

राजा०। आनन्दितोऽस्मि श्रेष्ठिन्!

वैश्यः०। (सजातिप्रभावेन विभ्यन्) क्षाम् जगद्रक्षक। को नाम कष्ट
भवति भवद्राज्ये च कोऽप्युत्पातः। गता दुरधीराः। मदद्भुतं बलमदर्शने
पलायितम्। चिरञ्जीवतु श्रीमान् चिरमवतु।

राजा०। कोऽपि हेतुरस्ति विमागमने!

वैश्यः०। देव! देवपादानां दर्शनादृते को नाम मुख्यो हेतुः
वन्द्यपाद! वयं वणिजो देशाद्देशमटन्तः सुन्दरसुन्दराणि विचित्राणि वस्तून्यवलोकयन्
देवपादानां दयया लभामहेऽपि। गतयात्रायामहं काश्मीरदेशमयासिषम्,
वपुःपरिमलमोदितमुनिजनां सुरभिनिःश्वासां स्त्रियमानीतवानस्मि। सकलदेशतिलका
माना साऽशेषभुवनमालायमानो भवामतोऽहं समवेतसौन्दर्यां दासीत्वेनोपहर्तुं
सकामां वामाम्।

राजा०। बहुशोऽत्र दास्यः, नास्ति प्रयोजनम्।

वैश्यः०। परं देव, महता कष्टेनानीतां तां श्रीमच्चरणसरोजयोः सेवितुं
नितान्तमुत्सुकोऽहम्।

राजा०। अस्तु, प्रेष्या।

* * *

"देव, देवीमहं तां वक्ष्ये, सा वैश्योपहृता 'काश्मीरीये' ति कृतनामधेया दासी
ज्योतिःशास्त्रानुसारं परीक्षितुमनुशिष्टा परीक्षिता। महता श्रमेण अनुनयविनयेन
स्वहस्तमदर्शयन्न मुखम्। सा सत्यं त्रिभुवनपट्टमहिषीत्वानुरूपा कथमिमां दशां
इत्येव विचारः। एका स्वल्पीयसी रेखा तस्याः साम्राज्यं विदूरयति, मन्ये द्विश्चैवैरेषा
दशामनुभवति। एवावस्थं भगवतीस्वरूपा न कदाप्यवमान्या मान्या च पट्टमहिषीव"।

"किं कथयसि ज्योतिर्विद्"?

"सत्यं देव"!

"दृश्यतां किं भवति"

"देव, विलक्षणोऽयं विधिः, प्रातर्भ्रमता मयाद्य द्वौ गोपबालावपि तेजोमयदेहौ वीक्ष्य तयोर्दृष्टौ विलोकितौ। उभावेव राज्यार्हावास्ताम्। निर्बाधराज्यदात्री तयो रेखा। अहं तयोः स्थितिज्ञानायाहोरात्रं तावपश्यम्। दुर्विनीतो विचित्रोऽयं कालः, विचित्रश्चास्य महिमा। यस्य आत्मनः प्रतिमूर्तय इव मन्त्रिसामन्तमान्यधनिवंशावतंसा अमलकुलजलनिलयनिर्गता मणय इव शाणोल्लीढाः स्वर्णस्यूतवाससः सुगन्धिगौरशरीराः शोभालाः कृष्णवाला बालाः सहाया उचितास्तस्यैव शिङ्घाणपूर्णघोणाः खञ्जल्लाला दूषिकादूषितवीक्षणाः प्रकामं पुढिकिरन्तः सविग्रहा इव काला नग्ना बालाः सहचरा आसन्। यस्यालकेषु प्रयत्नादिदं परिमलातुलं तैलं, सुगन्धसुरभगन्धशाद्वं पाशपटलभिन्नमवलेपनमथोचितं तस्यैव दुर्दिनपरिभूतभ्रमस्य पेरोरिव एडकामूत्रमिश्रिता धूलिर्धारणाय। प्रतिदिनधावननिर्धौतोत्तरच्छदे प्रतिदिनं सौलिख्यमानतूले मृदुलमृगरोमास्तरणे शीतलविद्युद्व्यजनवीजिते सौवर्णे कौशेयतन्ती परिगुम्फितौ मञ्चे शयनोचितो हलफालविषमेषु प्रचण्डकरतप्तेषु स्थलेषु शयान आहूतोऽपि न जागर्ति स्म। यस्य सुमधुरं सामोदं सरसाज्यं भोज्यमुचितं तस्य यवागूश्यामाकमसनम्, तदपि कदाचिदल्पकं कदाचिद्दग्धम्। काश्मीरनारङ्गाम्रतपलदाडिमीकापिशायनीफलोचितस्य करीरबानं दुष्प्रापम्। मायवन इवोपवने भ्रमणोचितोऽजागोष्टनिष्ठुरसेवी। धात्रीभिर्मातापितृभ्याम् सप्रेमाभ्यर्थनोचितो भोजनाद रोदिति स्म, विलपति स्म। बकुलगन्धिकाचाम्पेयनागकेसरवञ्जुलमञ्जुलघटेन स्नानोचितोऽद्य स्वेदबिन्दुदूषिततनुर्लक्ष्यते। रक्षा अपरिष्कृता धूकालयाः केशा अनीदृशां समर्थयन्ति। कर्णयोः पोञ्छनम्, अक्ष्णोर्दूषिका, हारोचिते गले मलरेखा, तनौ दौर्गन्ध्यम्, करयोस्स्फुटनम्, कमलकोमलयोः पादयोर्विपादिका, शरीरे कार्ष्ण्यम्, मत्यां मान्द्यम्, प्रतिभायाश्चप्रसालमन्तरेऽदर्शनमतमम्। दुर्दैवे, देव, किं कृतवानसि अनपराधिनि शिशौ, विलक्षणोऽसि रे अघटनघटनापटनसहीयः। सोऽभवत् देव, ममापरोऽवतारो दृष्टो यदेदृशं दृशीमेतदर्शयिष्यामि पश्यामि। मम मतिर्वा भ्रान्ता धात्रापि वा विपरीतलिपिः, नैवाहमस्मिन्नु शक्नोमि।"

*   *   *

घनतिमिरं नालमिन्दुं विरचितकरणनेपथ्या मरवी क्षत्रियसेनेव प्राची सर्वभावान्

विक्षिपन्ती घनध्वान्तमध्वंसयत्। पराजिता रात्रिर्मुखमन्तर्दधौ। प्रातरर्कः सि पुरयोषितां मन्द्रगम्भीरो दधद्ध्वनिर्मदिरक्तां प्रसारयामास। प्रकृतिकलत्रेव पुनर्जहास। पङ्कजवनस्य मुकुलानि विचकसुः।

प्रगेतनं पवमानं सेवितुं सदश्वमारूढो याति चित्रपुरेश्वरः। मार्गे कावपि सुभौ धाकूपाटवौ कोमलकमनीयतनू मलिनमुखौ शीर्णवस्त्रौ बालौ दृष्ट्वा स ज्योतिर्[illegible] स्मृत्वा सस्पृहः सप्रेमावोचत् "बालौ! कस्य तनयौ स्थः"?

"देव! कृष्णगोपसुतौ स्वः।" ग्राम्यशिशुसुलभया ह्रिया तयोर्ज्येष्ठोऽब्रूत।

"अपि शिक्षितौ किञ्चित्।"

"नहि देव! अध्यापको रूप्यकं याचते, अस्माकमुदरदर्यैव न पूर्यते, [illegible] गतमासे मृतौ गावो महिष्यश्च महामार्यां मृतास्तदा वराकाणामस्माकं क [illegible] पठनप्रबन्धः" "आवामभृत्या गाश्चारयावः"।

"अपि कार्यं कर्तुं शक्नुयः?"

"देव! कश्चनास्मभ्यं कार्यं ददात्येव नहि। आवां व्यजनं चालयितुं, [illegible] शक्नुवः परं नास्मादृशेषु कश्चन दयते, दरिद्राणां दर्शनमेव परिहरति लोकः। देव यदि दया भवेत्तदाऽऽवामपि दुःखोदन्वतः पारं गमेवहि।

राजा तु विहस्य दुर्गे व्यजनचालनकार्याय आदिश्य जगाम।

अधुनैतयोः सुदिनानि समितानि। पावकेन सहायेतयोः प्रेम भूयम्। [illegible] दर्शिते [illegible] दयते। सोऽप्यवशिष्टभोजनं ताभ्यां प्रायच्छत्। [illegible] स्वभवो बुद्धिर्विशदता परिवर्तिता। तौ स्वधर्मेण विनयेन [illegible] मत्वा च [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible]

[illegible], [illegible], [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] इव [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

मध्ये मध्ये राज्ञो मुखं निपुणं निरीक्ष्य किमपि विचारयन्ती पुनः स्वं कर्म सावधानमाचरति। बहिःस्थितौ बालौ च राजभयेन शिशुस्वभावात्कलैः शनैरालपन्तौ मृदुता सूत्रणान्तर्व्यजनं चालयन्तौ स्थितौ स्तः। यद्यपि शिरोगृहं परितोद्वारं तदपि कस्या अपि दिशोऽद्य भगवान् समीरो न सरति। दूरस्थयोर्बालयोरप्यालापं काश्मीरीया ध्यानेन शृणोति।

कनिष्ठः—भ्रातः कामपि गीतिमालप रे।

ज्येष्ठः—नाहं जनामि।

कनिष्ठः—केशवस्तु बहु जानाति।

ज्येष्ठः—तेन किमस्माकम्। आवान्तु न जानीवहे।

कनिष्ठः—तर्हि किंचिदन्यदालप। अन्यथा तन्द्रा शिथिलयति, ऊष्मा ग्लपयति।

ज्येष्ठः—यदि आग्रहस्तर्हि शृणु—

अद्य मया एकं पद्यं रचितं, गुरवे श्रावयिष्यामि त्वमेव पूर्वं शृणु—

> क्व राजास्ते चन्द्रोऽस्तमितरिपुवृन्दो नरवरः
> क्व हर्यो बालोऽस्ति क्व नु जलधिजातो नवशिशुः।
> क्व माता मान्या नावहह! कमला धर्मविमला
> कराळोऽकाले हा! किमिव विदधे कालवधिकः॥

बालस्तु श्रवणमात्रप्रसन्नो नष्टप्रमीलः शुचिर्बभूव। परन्तु काश्मीरीया बीजयन्ती मधुरमधुरं स्फुटाक्षरं सुगम्यार्थं श्लोकमिमं श्रुत्वा किमपि स्मारितेव निशितच्छुरिकया हृदि विदारितेव सन्तापसन्तानग्रसितं मुमोच। तानि च तस्या विषादप्रसादेन नरेन्द्रमस्तके निपेतुः। अयोगोलकतापतप्तैरिव मृत्सीकरैर्निर्द्रनिद्रमौलितेन राज्ञा पृष्टम्—

"कथं रोदिषि? काश्मीरीये, विशदय, अहं ते दुःखकारणमचिरं जिज्ञासे"।

का०—देव! भवति शास्तरि कोऽत्र दुःखलोऽपि। किं तमस्तोमहन्तरि भगवति सवितरि समुदिते सम्भाव्यते तमोलेशोऽपि?

रा०—सत्यं कथय कथं रोदिषि? अभयं ते ददामि।

का०—महाराज ! क्षिमाम्हेप, किन्तु कथयामि, नितरां दुर्विन्दर्मि। यत्तिभिर्दुःखजालैर्मिः हृदयं भवद् इदं विखेदयिष्यामि। न चामुचि[1] शान्ते स दुरवसाल्यमारोपयितुमुत्सहे, अलमधुना कदुदन्तं श्रुत्वा। मा नाम प्रदीप्तानलं क्षयन्तु,स्मरन्तु।

उदितविस्मयहस्तेनोत्तरेण बहुशः काश्मीरीयामृतं स्नातुं कृतसङ्कल्पश्च स त्व पर्यन्य पानीयं निपीय बहिश्चत्वरे आसन्दीमाक्रम्योपविष्टो वृत्तं श्रोतुं समोऽनन्तरं सा च कथमप्यवरुद्धवाष्पा पृथिव्यां समुपविश्य प्रवक्तुं प्रारभत—

वनपाल ! यद्यत्यन्तं कुतूहलं यदि च मन्दभाग्याया दुर्वृत्तं दुःखदं तत् श्रुतुं तदा शृणोतु—

वर्त्तते प्रततप्रतापपरीतः[2] सादितशत्रुशरीरः,[4] धनपुण्यधर्मशरीरः[4] विमल पुरेश्वरो रामपालो नाम, विलक्षणस्यास्यैवाहं मन्दभागा तनया···

राजा०—(साश्चर्यम्) तत्र भवतो विमलपुरेशस्य पुत्री··· !

कादम्बरी० । आम्, देव !

राजा०—आम् , ततः त्वरस्व।

का०—ततो देव, श्रीमन्नरेन्द्रमतमालायमानस्य नवेन्दुपालस्य पुत्रो विद्युत्पाल परिणीय प्रसूतपुत्रां श्वशुरालयमानयत्। जलमार्गे ममाभूदेकोऽपरः पुत्रः। सहसा नासीत्। जीवनायावश्यकं वस्तुजातमानेतुं मत्पतिर्विमानरोहे। तरिः बद्धः क समुद्रे स्थिता क्षीणाऽऽसीत्, अवतरणसमय एव विद्रुमपर्वतहता दुरवस्थनभङ्ग किञ्चिद्दूरं गता समुद्रपर्वतेनाघट्टिता, मत्पतिश्च पर्वतोद्घातेन विलीनः। अद्भुतस्य पश्चद्वारेण विलोकयन्ती आरोहिता निशा न्यपतं सर्वसहायमसहाया।

इतो हर्षस्य कारितस्य चाक्रोशेन कथञ्चमपि नष्टमूर्च्छां हर्षं सखिभिः सितस्फोरणैः सान्त्वयन्ती "नानिष्टं शङ्कनीय"मिति मनसैव दीनमनैर्योऽसकृत् पयोराशौ भोजनमानेतुं गतं पतिं प्रतीक्षमाणा सर्वं दिनं व्यत्ययापयम्।

अपराह्णेदिननिरन्तरयात्रापरिश्रान्ते रक्तमिते विरिरंसौ पश्चिमदिशामवलम्बिते भगवति

1 अनुचि—अशोके। 2 सूर्यः। 3 शिरः। 4 शरीरम् (औणादिकः)।

हृत्पदीपिती तत्कण्ठितं हर्षं शान्तयन्ती स्वयमपि बुभुक्षिता तृषिता जलमन्वेषयन्ती हेरम्बागारं जलागारं प्राप्य पानीयं निपीयोत्सङ्गवारिजाऽदासम्।

चन्द्रिका विकसिताऽऽसीत्। पर्युदाने प्रोक्षा भित्तिः। एका कल्मलिका पादपतरंगाय भित्तेरधस्तात्तामायाति। वृक्षाः सफलाः सपुष्पाश्चासन्। बुभुक्षितौ हंसावर्णनीमाकर्षयन् मामदुःखयन्। बालविलासमाकर्ण्य शाश्वन्नेत्रा परोद्यानप्रवेशा-र्हानि किमकरिष्यम्। पत्रपुष्पफलानामविरोधिनेन यन्तं सद्भूरं परिहरन्ती झटिति गत्वा रसालानि नागरङ्गाणि दाडिमानि च संत्रोटयित्वा धौतवस्त्रपुटे संस्थाप्य सभयं वीक्षमाणा सर्वं अवहरम्। स च कान्यन्यपि फलानि सानन्दमुपभुज्य सुष्वाप।

मदीया दशा विलक्षणाऽऽसीत्। भर्तुरागमनं प्रतीक्षमाणा, नौकाविघट्टनेनानिष्ट-माशङ्कमाना प्रघनवेदनाभिभूता बहुकालं निद्रां नालभे।

शान्तो निशीथसमयः, सर्वतः शान्ता तन्द्रानुविद्धा निशा मां प्राप। प्रतप्त-सर्वाङ्गीतल्पिता किमकरिष्यमहं दैवनाट्ये।

बुभुक्षयैव प्रथमं निद्रासी दुःखेऽपि दुर्दिने दुःखाकरोति। तथाप्यन्या-ऽश्रम्। प्रतिदिनवीर्यांभ्यासः पल्लवहरणर्तुर्दिनं मेने। पत्यौ माम चतुरवर्णं व्यतीताय। अहं परमस्थाने स्नानसी फलान्वदन्ती भवन एव समयं यापयन्ती अवर्तिषि।

एकदाऽहं बहिर्निन्दे वेलायां शोचयन्ती तत्प्रयुक्तया बाली हादयन्ती बाहु-पूर्णमनं विनिवाय्यपरं वैसमनुभवत्यम्। यदा मयौ निकेतनस्य पार्श्वेन एकमीर् बल्लौस्तरस्य रम्या आसन्। अनेनाहं बटोः कलात् दुर्गं दृश्यते। सहसा चलन्ती मौ दशा, एषैं एतादृशम्, भीर्दविद्धलौ बर्तिलुपे दृशि, बदर निर्निमेषि ! बूहि किं कारणम्, भगवति, प्रकाश्य वचनम्"।

"महानुभव, कर्ण सैनिका भाग, मन्देऽस्तुतस्तैवेदिशेण भवन्त इतः प्रापिताः। अहं चतुर्षयम्। कल्पी भवत्पदसारवरतीर्थं भूभागमालयेव सौभाग्यमावहमेणी स्वरेयम्"—विनिर्दिशेव करोत्पन्नस्तरम्।

"भगवति, त्वं मम धर्मभगिनी, आगच्छ स्वगृहं वरं वरं प्रार्थयस्व नि।" इति कथितेन इदं विचार्य स्तुत्वा भवत एव, अनेकजनैराकर्णितः।

निर्गतोऽयं निर्विघ्नमनुगच्छन्तर्षि। सहसा केन प्राप्य वधूं दृष्टवत।

विवरमिव जिगमिषुरकूपारतलं दिदृक्षुश्चलाभवन्नौः। नावि भाराधिक्यमभवे पापपुञ्जश्च। उभयतः कल्लोलाघातश्चासीदेव मुहुरसमः। वायुना चलितेऽम्बुनि शुभाशया सदैव भग्ना नौः। एकस्मिन् शकले हर्षवारिजौ परस्मिन् कुसुमा [illegible] अहं च। शेषं मूल्यभाण्डादिकं यादसां पत्या स्वाङ्कीकृत्वा स्वाश्रितेभ्यो वितीर्णम्। मज्जतां जनानां भीषणं चीत्कारमाकर्ण्य जलधिर्जहास। [illegible] विप्लवमानौ विह्वलौ हर्षवारिजौ विलोक्य द्विहस्तमितकाष्ठफलकसहायाहं विरसा मूर्च्छामालिङ्गितवती। अर्यस्यास्य विशिपे भागेऽभून्मे मूर्च्छाविरामः। एष मां नगरं नीत्वा वाटिकायामरक्षत्। उत्तमा प्रसाधनसामग्री, चतुराः प्रतिक्षणं मां [illegible] संलग्ना दिदृक्षवः सप्रयत्ना दास्यो ममाग्रे प्रस्तुता आसन्, अर्हत्तमं भोज्यं च।

एकदा रात्रौ घनचन्द्रे चाकाशे प्रसाधितवेशः परिमलालकः सार्थवाहः पापात्मा कन्दर्पशरक् [illegible] भगिनीं मत्वाऽऽनीतायां मयि पतिव्रतायां पांसुलललनातुल्यां दृष्टिं प्रक्षेप्तुमैच्छत्। परं मया, "नीच! कदर्य! वितथप्रतिज्ञ! नाहं गणिका, अपि तु कुलीना क्षत्रियाऽस्मि, तन्मूढ, यदि मामग्रतस्तेन स्प्रक्ष्यसि चेज्जीवता ते मृत्युर्भवेत्" इत्युक्तः परमभीरुर्भुजङ्गिताया: सिंह्या इव संक्रोधाया मम वचोभिर्भर्त्सितः सार्थवाहः [illegible], स्वभावचतुरः, अतोऽनेनापि कार्येण मत्तो धनमनेनागुप्तमित्येव मद्दास्यर्गं प्रैषयत्।

पूर्वस्मिन् दिने मदुपगमनवाक्यश्रवणेन [illegible] दृष्ट्वा विस्मिता [illegible] [illegible]

यो राज्ञामङ्कादङ्कं भ्रमन्नावकाशमलभत यश्च भाविनश्चक्रवर्त्तिनं विदुर्वाणीयवाणयो वचनवस्त्वस्यायैषा दशा ? विचिकित्सते शास्त्रषु मामकं मनः। हन्त ! किमिदम् ?

राजा॰ हन्त किन्नाम भ व त्याः

काश्मीरोया॰ देव ! कमला।

राजा तु सत्वरमुत्थाय विगलदश्रुः सर्वदाऽवगुण्ठननिलीनं धरादर्शि तस्या मुखं मटित्युद्घाट्य निपुणं निरीक्ष्य कराभ्यां दृढ बद्ध्वा भृशमरोदीत्। कमला तु महाराजस्यापूर्वालिङ्गनधृष्टतां विलोक्य निर्विण्णा विविक्षुरपि वक्तुमसमर्था सम्भ्रान्ता विस्फारिताभ्यां नेत्राभ्यां कमपि प्रचुरं दृष्टचरमिव पश्यन्ती कथमपि विपुलेन बलेन कराभ्यां मुक्ता विवेकविकला एकतः स्थिता।

राजा तु विह्वलः पादयोरानतः "प्रिये ! यं त्वं नष्टं मन्यसे, यश्च त्वामनाथां बारां राज्ञावजहात्, यस्य कृते त्वं वराकीव हेवितमृतिका भ्रमसि, यश्च श्रीलक्ष्मीनवेन्दु-नयनानन्दनोऽप्यनानन्दनः सोऽसावभाग्यो भाग्यशाली च भर्त्ता तव चन्द्रः।"

कमला तु पुनर्निपुणं निरीक्ष्य मुखचन्द्रं चन्द्रस्य "हा ! प्राणेश" इति कन्दनेन-सार्द्धं करमलमुपगता पतिता च मालती लतेव चन्द्राङ्के।

विलक्षणो मनोहारी परममधुरः सहृदयहृदयसंवेद्यामन्दानन्दस्यैष समागमः। नाटकीयवस्तुनो यवनिकापातो जातः। क्षणेनैव महदन्तरं जातम्, दासदासी दास्यो विविधोपचारैर्स्य्चर्यामिषन्निन्युः। घनीकृताकाशशोभास्तोभाः[1] कमलागमनाय दिग्पुटं विरलयामासुः।

* * *

'न्यून, उन, एहि एहि। राज्ञी लघवे श्रावितं पद्यं पुनः श्रावय, परममधुरमासीत्।'

न्यूनः—यथाऽऽज्ञापयति देवः। (श्रावयति)

राजा—कस्यात्मजो युवाम् ?

न्यूनः—(शिरः प्रणम्य) कलशलक्षस्य छत्रच्छायायां श्रीमत्तेजःप्रभावक्षतदुःखो गोधनजीवी कृष्णनामा गोपाल आसीत्। पुरा स श्रीमत्सामन्त "वीरचक्रधर" स्य नगरे वसन्नासीत्, परं दुष्कालमहामारीभिर्विपुलेन राजकरेण च भृशं पीडितो देशराज्यं

---

1 स्तोभ (क्षुभ हिंसायाम्)

त्रिविधमङ्गलं विज्ञाय मम मातामहसदनमायातो देवदत्तया सम्यक्कृत्वाजीवनः सुखं न्यवसत्। स ऐषमः श्वसनकपीडितो देहं जहौ, तस्यैवार्वा तनयौ स्वः।

"हर्ष, किन्त्वं कृष्णस्य पुत्रोऽसि, अपि स्मरसि परिचिनोषि माम्? किं बलनिकेतं विस्मृतवानसि?"—हर्षस्नेहदुःखविगलदश्रुस्नातानना कमलयोचे।

न्यूनः—(स्तब्ध इव आश्चर्यचकित इव कमलामुखं निर्निमेषनयनो विलोक्य तद्वचनरीतिश्च परिचीय) "आः मातः?" इत्युक्त्वा साश्रु गलमालिलिङ्ग।

उत्तापतप्तमरौ पीयूषवर्षिणः प्रावृषेण्या वारिदा वसुधां स्वर्गयामासुः, कयर आरामश्रीं भेजे। स्थली रसिकानां मनोमुदे क्रीडास्थली जाता।

कृष्णगोपालस्य पत्नी ससम्मानमाहूता पृष्टा चाब्रवीत्—

"एकदा मध्याह्ने वृद्धो मामुपेत्याह। 'प्रिये नावयोः सन्ततिः, वृद्धोऽहं त्वमपि च, वार्द्धके आवयोः सेवायै परमकारुणिकेन भगवता प्रेषिताविमौ विधिविपाकदारुणवेला-विपन्नौ रोदनस्तब्धकण्ठौ जलसम्पर्कम्लानौ प्रवाहोह्यमानदारुशकलसहायौ यथाकथमपि सुकोमले तटे समानीतौ कम्बलान्तःकृत्वा घृतं विलिप्य त्वदन्तिकमानीतौ पाल्य चैनौ देवदत्तौ"—इति।

स्वभाववशादहमवोचम् "समाप्तसप्तमीक, बुद्धिस्ते भ्रष्टा, प्रतिदिनं कमपि समानयसि अद्य मृताम्बो वत्सः, अद्य श्वाऽद्य गर्दभः, मन्ये त्वमेव धात्रा निराश्रितानामेकमाश्रमःसृष्टः। शृणु, एकदाहं युवतिरासं, त्वदाज्ञापालने कष्टानुभवो नासीत् परमधुनाहं वृद्धा स्वस्यैव जीवनाय आवश्यककृत्येऽपि सालस्यं वपुरेतेषां निराश्रितानां सेवायै नालम्। क्षमस्व अद्याहं तवान्तिमामाज्ञां पालयिष्यामि परं नान्यदाहमाज्ञाप्या"—इति।

"शृणु, वृद्धे! एतौ मानवजातीयौ देवदत्तौ बालकौ, एतादृशावधैवानीतवानस्मि। इमौ प्रेम्णा परिपालय।"

वृद्धे देव, गवां महिषीणाञ्च समूह आसीत्। षण्माषकं घृतं प्रतिदिनं भवति स्म। दुग्धस्य दध्नश्च घटाः पूर्यन्ते स्म। धान्योऽपि पयस्तृषा आसन्। गृहे केवलमावां दम्पती आस्व। अहमेतावेकस्यां कोमलायां शय्यायां शाययित्वा नवनीतं विलिप्य पर्यचरम्। [illegible] दृष्टपुष्टौ सञ्जातौ। [illegible] दूरं करथेति। प्रथमं रोपणावस्थावर्तिनौ, नवनीताहाराभ्यासवर्द्धितदेहौ सुन्दरकान्ती

द्वौ सवेणीकौ अभूतामेतौ। वृद्धेनैतयोर्विवाहादि कर्त्तुं यथो विक्रेतु
पालनभारश्चम्। किन्तु देव, वृद्धोऽतृप्ताभिलाष एव मृतः। श्वसनकेन स
ः। ग्रामे कश्चन वैद्यो नासीत्। पश्चादागत एको डाक्तरः पञ्चाशन्मुद्रा
गतः परं सोऽल्पज्ञस्तस्य जीवनं रक्षितुं न शशाक। तस्यान्तिमेच्छा एतयो
ासीत्।
ना देव, एतौ मम जीवनस्य स्तम्भौ भवता दयया सूत्यौ नियोजितौ।
कृते कन्ये मयावलोकिते, मुद्राश्च सञ्चिताः, शीतकाले एतयोर्विवाहं विधाय
पादयिष्यामि देवस्य कृपया। यद्यपि नैतौ विवाहयोग्यौ, परमहं वृद्धा न जाने
देहं त्यजेयम्, अतो विवाहं विधाय निश्चिन्ता बुभूषामि।"
नितरां प्रसीदामि"—हस्ताभ्यामुत्थाप्य सिंहासनमारोहयता राज्ञोचे "त्वमद्य-
जीवनं हर्म्ये एव स्थास्यसि राजमातेव सम्मानवती, एतौ च तव पुत्रौ अस्य
ाजानौ" इति।
दिवसादुरनयनयोरथावास्ताम्। तत्रभे सम्पन्नः संस्कारः। भविष्यद्वादी
पि प्रभशतं प्राप्त्। प्रत्यग्रसामग्र्या स्नपितौ भासद्वाससौ स्वर्णकौशासि-
पन्नध्यौ सुरभिशरीरौ विविधशिक्षकैः शिक्ष्यमाणौ मनोयोगेनाध्येतुं प्रवृत्तौ तौ।

* * *

मोवाकः। दिनकरखरतरकरनिकरभर्ज्यमानतनुतनवः प्रक्षीणाः पक्षिणोऽनुन्नताभि-
षु सपरिवारं स्थिताः प्रचलत्पचमानपर्णमर्मरध्वनिशङ्किता ईक्षणमुन्मीलयन्तः
वहारा आलस्यमभ्यस्यन्ति। पथिका न तथा पथि पाथेयं पाथः पथ्यं
। मासेऽस्मिन्नास्ति पाथःपूरपूरिताम्बरधरच्छटास्यामलं वियन्, न च
निशरिमावको वलभीविस्तारको विस्फूर्जथु, न च स्वचाकचक्यचमत्कृतिचयेन
चमत्कारिणी पीताम्बरस्य भगवतो नीलवपुषोऽनुकर्त्री, महान्धकारेऽपि
प्रवर्त्तं प्रदर्शयित्री, जलधारासङ्गिनी चञ्चलचला छटा। कविकामिनीव सा
ना दीना विभवभरासहे जगति स्वमुखं मुखं दर्शयितुं न शक्नोतीव।
लधरदर्शनोन्मत्तमनसां मेघनादानुलासिनां नीरदपटलस्यामलपल्लवितकाननिम्नं
ीतमेव। प्रफुल्लरसालमञ्जरीमरन्दपीतमत्तमनसामां पुंस्कोकिलानां धवधरमनं

स्तमपि विरतम्। वृष्टिजलभरिष्यमाणालवालानां बालानां शाखिनां मनोहरको कूप-स्पन्दनविकासोऽपि निरासः।

सिकतिले, तिलोपमधुरो से प्रोञ्छीयमानरजसि प्रदेशेऽन्तराऽपः सुरसान् विरसान् पल्वलान् किमु हृदानपि विशोष्योत्पाटयन्, शाखिशाखा मारयन्, स्वभावनीलं नभो धूम्याभारेण पीतयन्, अनभिभवनीयाभाःविभूतवकलकलानिधि, शैत्येन [illegible] मलवर्गमिव गिरीशस्य, हासमिव प्रकृतेः, यश इव कवीनां, प्रभवमिव गुणानां, शुभ्रांशुमपि मलिनयन् प्रचण्डभुवनतापः। मनुजमृगाणां मरुषु [illegible] मव प्रमथा [illegible] रेषु रागः। [illegible] पांशी प्रयाता।

परमन्ततु चित्रपुराधीशः पुष्करिणीतमेरी नितरां सुखी मग्नो धाराभोऽस्ति।

[illegible] भगवान् कालः। एकस्मिन् काल एव निविधभावना विभावयति। एकः [illegible], चन्द्रस्य कमल [illegible] च वा दशाऽऽगतेन, [illegible] कवीनामस्मानपि तन्नोदते स्म। जगत् [illegible] व्याप्तमासीत्, [illegible] [illegible], [illegible] विगतु [illegible] वा [illegible], [illegible] प्रयोजनम्। [illegible]

[illegible] गतिः [illegible] कालः। [illegible] पतिशुवमनेता [illegible] [illegible] भूषते। [illegible] [illegible] [illegible] गु [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] पामेवते। [illegible] [illegible] इव [illegible]।

अत तु [illegible] शिरः [illegible] गुणगुम्फिता [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] सौन्दर्यं [illegible] इव। [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] प्रमद्, [illegible] [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] [illegible], [illegible], [illegible]

१ [illegible] [illegible]। २ [illegible] [illegible]।
३ [illegible] — [illegible]।

खचिता सक्थी, नखेषु मुखरमञ्जीरः, स्वर्णकिङ्किणीशतालङ्कृतं गुल्फालङ्करणम्; शाट्य-ग्रथाश्लिष्टजघनदण्डं चण्डातकं[1] करे चासितपटश्चैतेऽधिकां छविमेधयन्तेऽस्याः।

परमप्रेमपरा, सतीशृङ्गारभूता कमला वीजयति। प्रचुरानुकम्पा चम्पा च पादौ संवाहयति। एकस्यां शुभासन्द्यामुपविष्टया व्यजने व्याप्रियमाणया कमलया भवत्यालापश्चन्द्रस्य च।

कमला०—देव, तदपि कथनीयम्।

चन्द्रः—अये, किमिव कथयामि, महानसौ वृत्तान्तः, शोकाकरश्च।

कमला०—आश्वेव जिज्ञासे श्रीमन्, यावन्न श्रोष्यामि तावच्छान्तिं नैष्यामि।

चम्पापि भृशमुक्ता—

चन्द्र०—श्रूयतां यदि कुतूहलम्, प्रवालपर्वतहर्म्याद् भवत्या वियुक्तोऽहं...

कमला०—(मध्य एव) नाथ! को नामायं प्रवालपर्वतः?

चन्द्र०—मुग्धे! जलजन्तवः प्रवालकीटाः स्वावासाय जालमयं गृहं विरचयन्ति, तदेव वर्द्धमानं कालान्तरेण पर्वतरूपतामुपैति, तत्रैव हर्म्यं निर्मितमासीत्। प्रवाल-पर्वतान्तःपातित्वेनैव तत्रत्यं जलं मधुरं निर्मलं तत्सान्निध्यादेव तरङ्गाणां स्थैमित्यञ्चासीत्, परन्तु प्रसंसक्तेन प्रभावो द्योतित आसीत्। अस्तु, भवत्या दत्ताज्ञः शीघ्रं निकटवर्तिनो नगराद्दशमूलीयौषधीः बलातैलं गव्यमाज्यं यवानीमोदकान् पूगपाकञ्चानेतुकामः प्राचलम्, परन्तु मम नौर्भग्ना। विभिन्नफलकेषु जीवनरक्षाव्यापृतानां तत्प्रयोजको हेतुश्च विधिरेवासीत्। पयोधिपयःशैत्यशीतले कमलामलकणाचितनमस्क्रियमाणव्यजने कोमलसदृशीमृदुले सिकतिले व्यपगतमूर्च्छोऽपि नितान्तं शिथिलः शीतवातवीजितस्तन्द्रा-पूर्विकां निद्रामलभे। परं तवोपालम्भप्रचुरैर्दुःस्वप्नैरपेतनिद्रस्त्वां हर्म्यञ्चाधिकृत्य व्यलपम्। हन्त, प्रचण्डचण्डझञ्झानिकरैर्मेरौ भालती पादमारं मारयिष्यते। हंहो, वेधः! एतदेव विघटयितुं त्वयैतदाचरितम्? विदूरवासिन्यामज्ञातायां प्रेम .. मत्सुखेप्वात्मानं निपात्य यामानीतवान्, हन्त, सैव वामामचन्द्रिका असहाया विपत्स्यते। मामपेक्षमाणा तर्केन्वा हर्पं वहन्ती उत्सङ्गे न च वारिजं बहिर्गतागतं कुर्वती मामनागच्छन्तं वीक्ष्य वियोगविधुरा नूनं वार्धौ पतिता कयापि तिमेः कवलीभूता।

झञ्झावात! प्रपातय! समुद्रबन्धो! आत्मसात्कुरु मकराः कराभ्यां गृहीत!

---

[1] "लहँगा" भाषायाम्।

स्तमपि विरतम्। वृष्टिजलभरिष्यमाणालवालानां बालानां शाखिनां मनोहारको नूतनच्छदनविकाशोऽपि निराशः।

गिरितटे, तिलोपमसुखे खे प्रोड्डीयमानरजसि प्रदेशेऽन्तराऽपः सुरूपान् विरचयन्, पच्चलन् किमु हृदानपि विशोष्योत्पाटयन्, शाखिशाखा नाशयन्, स्वभावनीलं नभो धूम्याकारेण पीतयन्, अनभिभवनीयाभाभिभूतनवकलङ्कनिधि, सैत्येन निर्जितहिमालयमञ्जलमिव गिरीशस्य, हास्यमिव प्रकृतेः, यश इव कवीनां, प्रभवस्थानमिव सुकर्मां, सुधालिप्तसर्वाङ्गं भवनमपि मलिनयन् प्रचलत्युरुवातवातः। मनुतनूमानां नयनेषु हास्यं, न च प्रमया विजितबिम्बफलवरेष्वधरेषु रागः। तेष्वधाग्रकर्षे ता पंक्ती प्रसृता।

परचन्द्रस्तु चित्रपुराधीशः पुत्रपत्नीसमेतो नितरां सुखी मध्ये शयानोऽस्ति।

विलक्षणचर्योऽयं भगवान् कालः। एकस्मिन् काल एव विविधभावना विभावयति। एकः समय आसीत्, चन्द्रस्य कमलयाः हर्षस्य वारिजस्य च का दशाऽऽसीत्, स्वर्धरायां जगत् कर्णनाशाऽपि तन्नेक्षते स्म। जगत् स्वसुखे व्यासक्तमासीत्, कस्यापेक्षा कः कीदृशोऽस्ति, जगद्गर्ते निपततु पातालं वा प्रयातु, किमितरेण प्रयोजनम्। परमद्य

कमलाया न गतदिवससाधारणः कालः। साद्य पतिपुत्रसमेता स्फीता, महिषी-देवी-पट्टराज्ञीशब्दैर्मूष्यते। एककाले शतशो दासाः सरसकर्थं पुरः समवतिष्ठन्ते। विलासिनोऽपि भ्रुकुटिविलासमात्रेण सर्वमन्तःपुरं पाल्यते। अहेतुकेऽपि

[illegible]

खचिता शाटी, करेषु मुक्तामञ्जीरः, स्वर्णकिङ्किणीशतालङ्कृतं गुल्फालङ्करणम्; शाट्य-ञ्चलाश्लिष्टअपनद्धं चण्डातकं[1] करे वासितपटश्चैतेऽधिद्धाः छविमेधयन्तेऽस्याः।

पश्चात्सत्वरा, सतीप्रकारभूता कमला वीजयति। प्रचुरानुकम्पा चम्पा च पादौ संवाहयति। एकस्यां शुभासन्द्यामुपविश्य व्यजने व्याप्रियमाणया कमलया मन्दस्मितालापचन्द्रस्य च।

कमला०—देव, तदपि कथनीयम्।

चन्द्र०—अये, किमिव कथयामि, महानसौ वृत्तान्तः, श्रोतव्यश्च।

कमला०—आदेव जिज्ञासे श्रीमन्, यावन्न श्रोष्यामि तावच्छान्ति नैष्यामि। चम्पापि मुखमुत्का—

चन्द्र०—श्रूयतां यदि कुतूहलम्, प्रवालपर्वतहर्म्याद् भवत्या वियुक्तोऽहं...

कमला०—(मध्य एव) नाथ! को नामायं प्रवालपर्वतः!

चन्द्र०—मुग्धे! जलजन्तवः प्रवालकीटाः स्वावासाय कालमयं गृहं विरचयन्ति, तदेव वर्धमानं कालान्तरेण पर्वतरूपतामुपैति, तत्रैव हर्म्यं निर्मितमासीत्। प्रवाल-पर्वतान्तर्गर्भितत्वेनैव तत्रत्यं जलं मधुरं निर्मलं ततोऽभिम्यादेव तरङ्गाणां रवैर्मित्रमासीत्, परन्तु प्रतापकेन प्रभावो दोषित आसीत्। अस्तु, भवत्या रहितः क्षीप्रं निष्कर्षितो भगवद्रामतीर्थपथेः कलातीतं गम्यमाज्यं यवानीमोदकान् पूगपाकपानेनुकमः प्रापतम्, परन्तु मम नौर्भग्ना। विभिन्नफलकेषु जीवनरक्षाम्बुपतानां तरङ्गोत्कटो हेतुश्च विधिरेवासीत्। पयोधिपयःपीतस्वीतले कमलामलकमनीयतनमरसिकसमस्पन्दने कोमलस्पर्शगृहे सिकतिले स्यरगतगृहोऽपि नितान्तं शिथिलः शीतवातवीजितलसत्-पूर्णिको निद्रामस्थे। परं तदीयक्षमभरधुरैर्दुःस्वप्नैरेतैरिरस्ता हर्षविहीन-स्वलम्। हन्त, प्रबलवल्लकारनिर्भरौ मस्ती पदभरं मार्दयन्ते। हंहो, देवः! एतदेव विस्तरितुं तदेवैतदवर्णितम्! विद्रुमवर्णिन्यमलशालायां प्रेम पद्मुकुलोपात्तमनं निरम्य ममनीलयान् हन्त, हैव बलामवर्षिष्य अमहता विस्मये। मनपेक्ष्माणा तर्जन्या हर्षं वदन्ती हस्तद्वयेन च वारितं वदितोक्तं कुर्वती मामनुपपन्नं पौरव विनोदपरिया नूनं कथौ रक्षितो करमपि विनैः कलकंभूता।

भगवन्! भगवन्! प्रभुचन्द्रो! चन्द्रचतुर मयाः कल्पनां पूर्णं।

1 "चण्डातकम्" अन्तरम्।

मित्र ! प्रवात ! श्रूयते त्वं ग्रामानपि प्रचलन् सुमंत्रहसि, वनान्यपि समूलम् नयसि ! तदा 'प्रवात ? अहमेव बहुभारः ?—(हसित्वा) पश्यत कीदृशी निष्ठुरा अस्याः करुणापि नोदेति ..

कमला०—आम् आम् करुणाकूपार ! भवतामिव करुणा जनेषु कस्यापि मा नाम भूत्। धन्याः ! स्त्रियमपि न सरमहः । हन्त ! कारुण्यम् ?

चन्द्र०—अस्तु पुनरहमेवं व्यलापिषम् ।

सुखिनोर्वत ! केलिकामयोः परतन्वोरपि साम्यमीयुषोः ।

हरता महमावयोर्विधे ! निहताः हन्त ! वयं नु दुःखिनः ॥१॥

हे विधे ! केलिकामयोः क्रीडाभिलाषयोरत एव सुखिनोः तन्वोर्भेदेऽपि अभिन्नजीवयोरावयोर्महम्=उत्सवं हरता नाशयता दुःखिनो वयं निहताः ॥१॥

रतिहास्यपदानि चिन्तयन् गमने विभ्रमचेष्टितानि च ।

विजितेन्दुमुखे कथं प्रिये ? कमले ! कश्चन हा ! जिजीविषेन् ॥२॥

विजित इन्दु येन तादृशं मुखं यस्याः सा—तत्सम्बुद्धौ प्रिये कमले रतौ ते हास्यपदानि, गमने विभ्रमेण चेष्टितानि च चिन्तयन् कश्चन् कथं जिजीविषेन् ॥२॥

जघनेऽयि ! निधाय मच्छिरो रचयन्त्या रचनां कचे क्वचित्

मुखवासन एति शस्त्रतां कुसुमेषोरधुना स्म किं ! प्रिये ॥३॥

अयि प्रिये ! मच्छिरः स्वजघने निधाय क्वचित्=स्थाने समये वने उपवने वा कचे रचनां रचयन्त्या भवत्या मुखवासनः कुसुमेषोः शस्त्रतामेति स्म । अधुना किम्, त्वयि मृतायां वार्ता एवावशिष्टा इति भावः ॥३॥

तपनीयललाटपट्टके ललितं वर्त्तुलबिन्दु ते सखि !

स्मरतोऽपि कुजीवनं प्रिये ! प्रजति स्मृत्यवशेषतां नहि ॥४॥

प्रिये ! ते=तव तपनीयं=स्वर्णं तद्वद्भास्वरे ललाटपट्टके ललितं वर्तुलबिन्दु हिङ्गुलस्य योगेन रचितं वर्त्तुलबिन्दुं श्रियो दधति । तत्स्मरतोऽपि ममैतत्कुजीवनं स्मृत्यवशेषतां=मृतिं न व्रजति ॥४॥

१ प्रवात=सामुद्रिक बवंडर (साईक्लोन)

प्रथिताभकपोलतल्लजात् ललितात् पक्करसालवद् वरात् ।
व्यथते हृदयं ममाधुना हसितात् कन्दुकवत्समुज्ज्वलात् ॥५॥

प्रथिता - जगत्प्रसिद्धा आभा यस्य तस्मात् कपोलतल्लजात्=श्रेष्ठाद् गण्डयुगलात्, पक्करसालेन - रसालफलेन तुल्यात् वरात्, हसिते=हासावसरे कन्दुकवत् समुज्ज्वलात्=समुन्नतात् कन्दुकवद्धासमानात् कपोलादधुना मम हृदयं व्यथते ॥५॥

कुसुमाचितहेमपट्टिकाललितांस्तन्वि ! विचुम्ब्य तेऽलकान् ।
त्वद्वाप्तसुगन्धसत्क्रियः सदयं शाययतीव मारुतः ॥६॥

कुसुमैः=पुष्पत्वेन न्यस्तैः, हीरकशकलैः आचिता = खचिता हेमपट्टिका=शिरोभूषणभेदः, तेन ललितानलकान् विचुम्ब्य, त्वत्तोऽवाप्ता सुगन्धसत्क्रिया येन त्वत्केशपरिमलप्राप्त्या प्रसन्न इति भावः। मारुतः - वायुः, सम्प्रति मां=सत्कारकारिणमत्र पति सदय = तव ऋणित्वेन शाययतीव ॥६॥

विकचानन आकुलाङ्गनो रजनीनाथ उदेष्यति प्रिये !
हततुल्यगुणो महात्मनां सुखदो हन्त ! हता महात्मता ॥७॥

प्रिये ! अद्य रजनीनाथश्चन्द्रः, विकचं प्रफुल्लमाननं यस्य अत एव आकुला अङ्गना येन कामोद्दीपकत्वात् तथाभूत उदेष्यति । यतो हतस्तुल्यगुणः समानगुणो यत्रैवम्भूतः । महात्मनां - महाशयानां सुखदः = हर्षप्रदः अद्यतना महाशयाः स्वसमाने कष्टे प्रसीदन्ति । हन्त ! खेदे, महात्मता पुरातनी महात्मपदविहिता - नष्टा। "सर्वे भद्राणि पश्यन्तु" इति—तेषां विचारोऽपि विदलितः ।

तव लोचनमित्रमम्बुजं समदुःखप्रमदं विकल्पये ।
प_तिमन्तमुदीक्ष्य यद् विधुं समकोचीन् तव मृत्युशाङ्कया ॥८॥

अहं अम्बुजं, तव लोचनमित्रं अतएव तव दुःखेन प्रमदेन च समौ - तुल्यौ दुःखं प्रमदो - हर्षश्च यस्य तथाभूतं विकल्पये - विचारयामि । यत्कमलं विधुं द्युतिमन्तं वीक्ष्य मृत्युमनुमाय, कमलायां त्वयान्तु कदाप्येवं प्रफुल्लाननो नोदगात्, मदयोदेति, तन्मन्ये मृता कमलेति विचार्य, समकोचीत् - सङ्कुचितकाद ॥८॥

अधरे मधुरानने ! प्रिये सुरतामोदनवेऽधुना स्मृतम् !
न्यसनं तव कोमलाङ्गुलेर्विरतं मां विदधाति जीवनात् ॥६॥

अयि मधुरानने ! सुरतस्य य आमोदः मनोहारी परिमलस्तेन नवे ! सुरतोत्सवेषु अधरे कोमलाङ्गुलेर्न्यसनं = स्थापनं मां जीवनाद्विरतं विदधाति ॥९॥

समितो नहि विस्मृतेः सृतिं सुभगौ बिल्वसमौ कुचौ तव !
अयि मञ्जुलदेहवल्लरीसुषमान्यक्कृतकामकामिनि ! ॥१०॥

अयि ! मञ्जुलदेहवल्लर्याः सुषमया = परमया शोभया न्यक्कृता = दूरीकृता कामकामिनी = रतिर्यया सा तथाभूते ! ते सुभगौ बिल्वसमौ, कठिनौ वर्तुलत्वेन शालिनौ च कुचौ विस्मृतेः सृतिं = विस्मृतिमार्गं न समितः = न गच्छतः ।

कमला—(मन्दं हसन्ती, अपाङ्गेन चन्द्रं पश्यन्ती निश्वसिति ।)

चन्द्र॰—(हसन्) किमर्थं मुधैव कृत्रिमनिश्वासविधौ व्याप्रियसे ।

कमला—नहि देव ! अहं भवतो जीवन एव नौकाघट्टनात् शङ्किताऽऽसम्, परन्तु भवन्तो वृत्तास्वादमनाहायन्तोऽविच्छेदेन प्रकृतमनुसरन्तु । आं ततः ?

चन्द्र॰—ततोऽहं पुनरपि "दैव ! किमनार्यं कृतवानसि, अमिताश ! विपन्नां मातरं दृष्ट्वाऽपेतहर्षो हर्षोऽपि नूनं कथावशेषतां यास्यति । हा ! नवजातः शिशुर्मे विदलिते लतेव पृथिवीतले प्रसरिष्यति । मामदृष्ट्वा रुदन्तं बालं हर्षं कमला सान्त्वयिष्यति "पुत्र ! हर्ष ! नवीननवीनानि वासांसि, स्वर्णसूत्रस्यूतं छत्रम्, आसव मुक्तामुक्तोपिका, पटत्कारान्, फुल्लझरीः ज्योतिश्शलाका आनेष्यति मा रुदिहि रे हर्ष ! मा रुदिहि" परन्तु हन्त ! कियत्कालं सान्त्वयिष्यति, अन्ततः... । "हा ! हन्त ! प्रिये ! ममास्ते मनोरथाः" इति विपुलं विलप्य चेतनामजहाम् । सर्वां [illegible] प्रकृत्यानिलस्मूर्च्छया एव व्यत्यापयम् । प्रातः प्रबुद्धो विलपन् जीवनं [illegible] गत्वाऽऽत्मानं जलसात्कर्तुं सज्ज आसम्, परन्तु मध्यमभवो भगवान् यदिच्छति तदेव भवति, यतस्तस्मिन्नेव समये एव [illegible]पर्णाभिः कम्युचिभिरिव वितताभिर्मण्डलाकाररचनाभिर्जटाभिर्

द्भासितमुखमण्डलः प्रोन्नतायतललाटो भास्वरोन्नतघोणो भस्मत्रिपुण्ड्राङ्कितपरिणाहिललाट-मांसलवक्षःस्थलः, सव्येन दण्डमितरेण कमण्डलुं करेण कलयन्, लम्बमानरुद्राक्षमालः, कदलीदलकौपीनः, पीनश्मश्रुरगम्भीराकृतिः कृती, तेजसा शान्तेन पापपुञ्जानपि रञ्जयन् कृपाकुरिवाधर्मस्य दलनः, प्रभवो धर्मस्य, विहतपापपुञ्जोऽतमाः, शमदमनिर्मलमनाः, अस्मद्दयालुर्दयालुर्मुनिः। स च गभीरया वाचा शब्दयन् शब्दगुणमुवाच—

पुष्कराक्ष! नास्ति पापमात्महननतुल्यम्, यस्मै दुःखाय म्रियते तत्तेऽचिरादेव सम्पत्स्यते सुखम्। मा स्म पातकं कैषीः। आयाहि तपोवनं प्रविशावोऽतिवर्त्ततेऽर्चनवेला, इति। वनभूमिं विपूय ऋषिशिशुश्रमेण निर्मित आश्रमो लघीयानेवासीत्, परं घण्टाघोषेण पुष्पपरिमलेन धूपगन्धेन च मुखरित आसीत्। क्वचन निद्राक्षा हरिणा रोमन्थं वर्त्तयन्ति स्म। क्वचन धेनवो नवौधस्येन स्नपितधराः स्तनन्धयान् स्तन्यं पाययन्ति स्म। क्वचन पत्रपात्रहस्ताश्शाः पुष्पाण्यवचिन्वन्ति स्म। असर्वभक्षिणोऽप्यक्षीणाः पक्षिणोऽभ्यास-प्राचुर्याच्छास्त्राण्यभ्यस्यन्ति स्म। कृतरक्षा वृक्षाश्च विपुलफलपरितोषितमुनयो नयोपपादिताः प्रजा इव फलं ददति स्म। पापिनामपि मनसि तपःप्रभावं जनयन्ती वनावनीयं विलक्षणा भव्यरमणीयारणीयशस्येनसा रहिता हितासीत्। तत्राहं कश्चित्कालमध्युष्याश्रमं सश्रमोऽरण्या-नोष्वसंसक्तचेताः। परिपात्यमानवरवारणदृढकुम्भोत्पाटननिःसृतमुक्ताभास्वरनखमयूखाः देवशा इव ज्योतिषा भासन्तः, सम्भ्रमधावनप्रहृष्टकात्यायनीप्रदत्तधन्यवादहस्ता इव हर्ष-वर्षेण हरिणभ्राणान् हरन्तो वारणमारणोपारूढगर्वा भ्रमितपिशिताशनमदमरमन्थराः, जृम्भणदरीदृश्यमानशोणितशोणरदनसदनाः, बालभास्करवर्णेन, मृगराजत्वख्यापक-ध्वजेनेव, मृदुललोमनिचिताग्रपुच्छप्रदेशेन शोभितपृष्ठप्रदेशाः वनवसतयः, केशरिणो रणायन्ते स्म। क्वचन केशरिकिशोरकाः भीरुभयङ्करं कैशोरशौर्यं रचयन्ति स्म। क्वचन करिणीकलभभूषितासितपार्श्वं, कालवज्राघनदाशङ्कयत्, सायेऽह्नः स्नातुं सरो गच्छत्, शुण्डकुण्डेषु नीरमापूर्य पूरितालवालं, भज्यमानवृक्षव्रजं, स्रवन्मदं चलच्चरीकं कज्जलपर्वतमिवाञ्जनाम्बुसिक्तं, बुभुक्षितं, प्रखरकरटं करटिकुलं कृत्या आकुलयति स्म। विहितत्रं हिताः द्विपपोताश्च वराकहितं हिंसन्ति स्म। क्वचन[1] मरुकमल्लूक[2]वल्लुकाक्रान्त-निशान्तायां निष्ठुरशूरासगरपूरपूरितायां काननभुवि, भुवि विपदां बालजलसिक्तपल्लवयः,

१ मृग। २ पक्षी।

नामोल्लीढोप्रविराणा घोरसोमपघोणाः, घोणिनो द्रुमान् घर्षयन्ति स्म। क्वचन ध्मायगुरुकर-कौलेयकत्रासस्रस्तैः, त्वरार्धचर्वितरोमन्थैः, फेनिलवदनैः, जडजानुभिः जीवने हतात्तोरितररिमग्रनुपि मेलियाम इत्याश्लिष्टमृगीभिः, मृगीभिः सप्रेम कण्डूयमानैः, मृगैर्विस्फार्यमाणनेत्राः सञ्जातनेत्रा इव, नरीनृत्यमानमयूराः क्वचन कपोतकेलीलालसिताः, क्वचन विशालबिडालालसिताः, क्वचन वन्यवराहभीषणभरयनीरमाः, सततभल्लूकभयकम्पितगल्वलाः, क्वचन शुकपिकविभ्रममाणसमघोषाः, तालभुजङ्गमानगुणैरभिनयाञ्चितपत्रपूरपूरितदुर्गटवः प्रकाण्डमारन्दमिलितभाण्डैस्तालतमालरसालशालाश्वत्थनिम्बैर्विहिताभिधानाः, अनोश्रमकारणानाः, क्वचित्करिदन्तलोलुपशुभिन्दकुलाऽऽहिण्डमानाः, भयङ्करदर्शनाः, दुरगुजनाभागाः, अविदितनरशाः, वनभूमीर्भ्रमन्, क्वचन पर्वते, क्वचन वृक्षमारोहन्, सिद्धगन्धर्वमकलोकयन्, हसन्, रुदन्, विलपन्, पतन्नुत्तिष्ठन् श्रीचन्द्रमनेकमन्यपदार्थं वर्तमानं सर्वमीशस्यापि वशिनामपि, अस्तोदितो उभयविलापमप्तैरपसो दुःखितो, दृष्टं दृष्टं श्रीचन्द्रमागमनो बलाय च दृष्टौ भ्रमवासिति।

तेन यामन्तरेव [1]विचारमलिना सन्ध्या शाम्यां भेजे। केशा इव तमोमलप्रकाशा विरेजिरे। प्रादुर्बभूव च कालाम्बरधारिणी विरहेव विभावरी। अद्रमेदान्धविधाता रात्रदृष्टे सांनिध्यं समगमभूयकालाक्षरमवने बलेऽपि निद्राहोऽदर्शित।

स्फुरन्। अवदिन्त विपद् पद्मागमसुदयलक्ष्मी विलम्। समगु दशमाप्य लक्ष्मवर्त्मन गुणुद्रुः। कौमुदी लाफाम्भायस्य विरविन इव तमिमलनमया। ने कष्टेर्ष्ये, कोवाय घोडवीनिर्मेतमनु। ग्रामान्तिको हस्ती इव मनोहरन् बली उपक्रममपस्मरः। दोषमसमिन्नां धौमित्रवनां वैरचर्निः रजनी स्मरा।

अथर्ष विचलितुमविदवांविरहः प्रवृत्तनां विनाय वन्यपदार्थं प्राप्य, यतीन्द्र गृहविरामस्य समागतमविनय चन्द्रमस्मर्भिर्हो धनवर्णाड राजर्ण मग विरहमनां निरवराम कथां यन्त्र। विचारविसर्गी मध्यरात्रद्वे कार्यमुपदामनां वर्णो विचारे प्रत्यहं चन्द्र, वैचर्णत स्म।

मन वृत्ता - विरहाद्, कदापि विना अस्मिन्न मनश्चिन्त्य मनः।

1 वैनिरे इति पाठ्ये पाठेन - मद्वेन।

नागरिका बालाः स्वभावचपला दुष्प्रकृतयश्च मां मूढं मन्वानाः कोलाहलेन बधिरयन्तो हसद्भिः कण्टकमयीभिर्यष्टिकाभिश्च नितरां दुःखयामासुः। परमहं दुर्दैवदुर्वीक्षणवीक्षितः सर्वं सहमानः किमपि नावोचम्। दयाशीलानां कतीनाञ्चिन्नृणां भर्त्सनया बालेषु यातेषु तदनु प्रचलन्नेकं भवनमयासिषम्। भवनस्य प्रधानद्वारे बालमित्रायित-शरच्छोणितायितलोहितमलयजायितवसने भगवदम्बरायितवर्णाचञ्चलायितकाश्मीर-नीरायितकृत्तकर्णदाक्षरैः परमशोभनं—"टीकमानिदेवेदाङ्गविद्यालय"—इत्यङ्कित-मासीन्नाम। अङ्गाष्टिपं यत्तौ पारायणिका आसन् येषामसौ निलयः। विशालमदो भवनम्। सम्मुखे विडौजसो दिशि पञ्चद्वारं सभाभवनम्। द्वौ त्रिद्वारौ तदभितः, उत्तरस्यां दक्षिणस्याञ्च द्वौ द्वौ त्रिद्वारौ, वरुणदिशीति द्वारं, प्रपा, पथिकावासादयश्चासन्। मध्येविद्यालयमेको हरितपत्रनिचयनिचितो निम्बः समुल्लसति स्म। अहह! कीदृङ्मनोरम आसीद् वृक्षराडसौ पिचुमन्दः। यो हि तस्मिन्नृतौ प्रकटितनवच्छदनविकासहासदृश्यमानपत्रगर्भमुखरक्तिमा, सर्वामयैकजायुः[1] सघनघनच्छायः कपोतैर्जगीयमानानवद्यहृद्यगुणनिकुरम्बो व्यलसत्तमाम्। यस्य कुटिलकाण्डे च-ञ्चपुटाग्रेण पक्षति कण्डूयमानो नितरामाभाति स्म केकारवचेतनीकृतच्छात्रवृन्दः केकी। यस्याधस्तादचक्रमदन्तः पारस्परिकस्पर्द्धया उपर्युपरि पतन्तो विलक्षणामानन्दमादकतां प्रसारयन्ति स्म कपोतपुङ्गवाः। येषु च निपतन्तोऽवराकाः काका भस्मनिपतित-स्थेन्द्रालकस्य साम्यं दधति स्म। येषां निशितचञ्चुप्रविक्षता क्षितिन्न पिनीविभाति स्म। आमोदमुदितमनोनासिकः, परिमलप्रलीनसमाश्रयः, विलक्षणोऽमन्दो गन्धः प्रसर्पति स्म पिचुमन्दात्। सर्वरुजां निवर्तने, विशिष्टमुदां प्रवर्त्तने चायमेव हेतुः। अत एव परिपुष्टवपुषोऽविज्ञातरोगाश्च सुखं शेरते स्म छात्रा यत्रत्याः। यस्य मूलतो मध्यदेशं यावदाश्रिता, नितान्तमृदुला, सपुष्पार्कवल्ली, लावण्यवती प्रिया वधूरिव सत्यङ्गमाश्लिष्यन्त्यपूर्वां सुषमामाह्लादञ्च जनयति स्म दर्शकस्य। या चारुकैर्धवलैः पुष्पैः, हरितैर्दलैश्च, हरितकौशेयावृतशरीरा हीरकखण्डमण्डिता रमणीवाभाति स्म [2]अर्कवल्लरी। यया प्रेमरसा किसलयकरैः प्रदत्तमन्यपदं इव प्रफुल्लति स्म नितराम्।

---

[1] औषधम्। [2] विलायती आककी बेल।

ईशानकोणस्थप्रद्वारे आलम्बतां महर्घितल्लक्ष्याणां चन्दनभारमालानां छात्र परमात्मसत्त्ववान् शुभ्रपुस्तमागमम्। प्रैक्षिषि च छात्रा भगवन्तमुपश्लोक्यं केचनोपलचयरचितकुण्डिकाप्रतिष्ठापितस्य महामहिम्नः शिवस्य समर्हां विदधति। क ऋद्धिसिद्धियुतस्य भगवतः करिमुखस्यान्तरायनाशकाः स्तवाः पठ्यन्ते। इतरत्र काष्ठ विराजितपित्तलकुम्भासनस्य श्रीलक्ष्मणस्य पादोदकं जरीगृह्यते। अन्यत्र पार्श्वकुल्य प्रविश्य सिन्दूराङ्कितविद्रुमविभासिवर्णमालायाः, केसरिणी लावण्यधरायां कन्दर विराजमानायाः, त्रिशूलरूपाया भगवत्या जगदम्बिकायाः पदयोर्निपत्यते। सम् चारय भवनस्य काष्ठपीठप्रतिष्ठितपुराणः, श्मश्रुनिचितमुखः प्रौढ जसराम इत्यास्य इ भगवच्छङ्कराचार्यकृतां गीतिं गायन्नासीत्—

जय नारायण ! जय पुरुषोत्तम ! जय वामन ! कंसारे !
उद्धर माममुरेशविनाशिन् ! पतितोऽहं संसारे ॥१॥

दीनोद्धरण ! नरकरिपो ! नर ! केशव ! कल्मषहारिन् !
मामनुकम्पय दीनमनाथं कुरु भवसागरपारम् ॥२॥

जय मुकुन्द ! राधावर ! सुन्दर ! जय शिशुपालविनाशिन् !
जय करुणामय ! जय गजरक्षक ! जय वैकुण्ठनिवासिन् ॥३॥

त्वं जननी जनकः प्रभुरच्युत ! त्वञ्च सुहृत् कुलमित्रम् ।
त्वं शरणं शरणागतवत्सल ! त्वं भवजलधिवहित्रम् ॥४॥

जय जय देव ! जयासुरसूदन ! जय मुरमधुहन् विष्णो !
जय लक्ष्मीमुखकमलमधुव्रत ! जय दशकन्धरजिष्णो ! ॥५॥

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि गर्भनिवासम् ।
सोढुं नालं पुनरपि माधव ! उद्धर मां निजदासम् ॥६॥

यद्यप्यहं सकलं कलयामि किमपि हरे न हि तत्त्वम् ।
तदपि न मुञ्चति मामिह माधव ! पुत्रकलत्रममत्वम् ॥७॥

अपराधं मे मुरहर ! परिहर कुर्वे चरणश्रयणम् ।
संसारार्णवतरणे करुणावरुणालय ! भव शरणम् ॥८॥
जनकसुतापतिचरणपरायणशङ्करहृदयपरिगीतम् ।
तारय नाथ ! परं पुरुषोत्तम ! मां भवजलधिनिपीतम् ॥९॥

तत्रत्याश्छात्रा यदा रात्रौ पठन्ति स्म, सूर्य उदेति स्म । तेषां शास्त्राभ्यासः शुद्धः, गुरुभक्तिः स्थिरा पूर्णा, निवसनं सरलं विनीतम्, वचनावली मधुरा ओजस्विनी, खाद्यं पानञ्च देयं साधारणमासीत् । ईश्वरभक्तिस्तेषामीदृशी यत्ते घटैः शिवं स्नापयन्ति स्म, विविधनियमव्रतानि, पालयन्तिस्म । तेषां सद्व्यवहारोऽविनीतासमयतिस्म, तेषामेतद् वैरविरोधेन शून्यमासीत् । ते परस्परं मात्सर्यं न कुर्वन्ति स्म । सहपाठिभिः पाठचर्यां कर्तुं, श्रोतॄन् विनीतभावेन सत्कर्तुं, तैः शिक्षितस्तदर्थमादानुग ते प्रवीणा आसन् । पारस्परिकं प्रेम तेषां जीवनकालस्य विशिष्ट आनन्द आसीत् ।

मध्याह्नसमये सद्भिरन्नैः सत्क्रियमाणोऽभुक्षि । पाकशाला महीयसी धूमपूर्णा आसीत् । तद्भोजनस्थलाः स्वच्छ एव निर्दिष्टा आसन् । भोजनस्थानेषु एकैकं द्वौ द्वौ बटूकौ, सूपः, सरसमोदनञ्च परिवेषितमासीत् । महानस्येकं भोजनभाजनं दत्तम् । सर्वं वस्तु, यथा स्वादुत्वं तस्मिन् भोज्ये आसीत्तथा नाद्यावधि मयास्वादितम् । यतो भोज्यं भोज्यं भोज्यं घृतगन्धि, पायं पयं [illegible] पदस्तुति नाप्यगमम् । तद्भोजनसम्बन्धि तत्र सर्वा भोजनरचना स्मर्तव्यमुरलन्ति ।

[illegible]भूत् । अद्यप्रभृति [illegible] अध्यापकभवने सुन्दरोपविष्टान्, महोन्नतदीर्घ[illegible], [illegible], [illegible], परिहृत[illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], शान्तान्, दान्तान्, [illegible] [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible]

इव हृन्मध्यसान्निध्यीकृतान्, विष्णूनिव द्विजेन्द्राश्रयान्, शिवानिव लब्धविभूतीन्, भवभूतीन् कालिदासान्, त्रिविक्रमान्, रामानिव शास्त्रार्थमवनिमुपागतान्, कृष्णानिवार्जुनसम्पूजितान् नारदान्, श्रीमन्नृपतिमुकुटायितवीरबलविपुलोरस्कांसलउतरलोकश्रीगङ्गासिंहशासितबीकानेरराज्यान्तर्गतदृढप्राकारवेष्टितमास्वद्राजदुर्गराजदुर्गस्य, शिवाधिष्ठितेशानकोणविराजमानच्छात्रनूपुरितान्तःकरणसद्धर्मनिधानधरणदंष्ट्रस्यमानधर्मशरणप्रतिष्ठितचरणाश्रमिरमणशास्त्रवर्मच्छात्रवारणसलिलयष्टीक्रमानीवेदवेदाङ्गविद्यालयप्रधानाध्यापकानपश्यम्।

ततः पारायणिकाः पुस्तिका उद्घाट्य स्थिता आसन्। मां तथा स्थितं वीक्ष्य तेष्वेकतममाहाचार्यः—"ननु रामचन्द्र ! पृच्छ, कोऽयम्, कुतः समायातः, किमिच्छति ? आकृत्योपजातिरिव प्रतीयते"।

दृढोरस्कः, ललाटविलसच्चन्दनो, व्यायततनुः श्वेतवासाः, निःसरच्छ्मश्रुः, सन्, शास्त्राध्ययनाविलया वाण्या सप्रश्रयमाह सः—"पान्थ" ! कुतः समागमनं, का च जातिः" अहञ्च "विदूरादागमनं क्षत्रियोऽस्मि" इत्युत्तरम्।

स च तदेव वाक्यं विस्मितामरश्रिमानां पुरः प्रापयत्। अहमपि विमूढ इवेतस्ततः पादौ निक्षिपन् तेषामन्तिकमुपगम्य प्रणम्योपविश्यागादिषम्, 'भगवन् ! कामपि हृदयान्तर्वर्तिनीं वार्त्तां विकीर्णामि, यदि...

अथ ते मन्मथानन्तोऽपि स्वकीयमन्यं प्रकटयन्त आवश्यकं कार्यं विहाय मन्यावश्रमधान्तमपि समस्तं पौरं तेषामेकतमं कथयामासुः—

"मोहनलाल ! भवन्तु यूयं श्वः प्रातरेवागन्तारः"

अथ उन्मनस्के तस्मिन् रामचन्द्रेण, आरेश चाज्ञानाभिमदेन सहर्षिणा, गद्गमधवर्णिमत्ते स्निग्धया वाचा पीयूषमिव वर्षन्तः स्नुयन्ती मद्, दयहृदयम् बध्नविधर्मैरुपदन्तो मां भगवान् किमभवनाद्

"भगवन् ! दुःखस्य परां काष्ठामनुभवामि"।

"वत्स ! दर्शय दर्शय"

अहं तेषां पुरतो दृष्ट्वा प्रसार्य मृदंगिकादण्डतोऽहं मध्ये पूर्णं निवार्य इवा इव।

पण्डिताः—हरिवंशोत्तम ! इमां वा दशामनुभवसि। .... !

अहम्—एवं देव !

पण्डिताः—भवद्धस्तेऽस्मासु त्रिलोकीराज्यसुखं पश्यामः। (क्षणं विमृश्य) परमलीयसी बाधा, अर्द्धस्य सत्तां नु न निवारयति कोऽपि। सर्व्वं वाच्यं सैषा व्यवहृतिः।

अहम्॰—उदरपूरये अलब्धाशानां नः क्व धरणीरमणीभ्रूभङ्गभूमि शरीरम्।

पण्डिताः—किमिव कथयामः।

अहम्॰—देव! अहमपि अस्माद् दिनार्णवान्निःसरिष्यामि, ममाप्युद्धारो भविष्यति कदापि?

पण्डिताः—उद्धारः, (घटीयन्त्रे पुस्तकमवलोक्य गणयित्वा) आमुद्धतिस्तु भगवतीप्रसादात् शीघ्रमेव, परमेष्वेव दिनेषु दुःखमपि लप्स्यते।

अहं॰—देव! दैवेन दीयमानं सर्वं सहिष्ये।

सायं सम एव छात्रा प्रचुरश्रमपर्य्यवसनाः श्रममपनेतुं, शौचं निर्वर्त्तयितुञ्च गच्छन्ति स्म। अहमपि पण्डितवरान् शिरसा सादरं प्रणम्य सतीर्थ्यैः सहागमम्।

छात्रेषु बहुष्वपि त एव मुख्या आसन्, ये पण्डितानामन्तिके दृष्टाः। एते सुधामवधीरयन्त्या वृन्दारकगिरा मनसपि मगरयन्तः, हास्येन, क्रीडया दिनश्रममपनयन्तो विचेरुः। स्वभावं विलक्षणबुद्धयो विद्यार्थिनः।

शौचं निर्वर्त्य परावृत्तोऽहमपि। विद्यालये दृष्टवान्, उपभित्ति सञ्चरका कूपासीत्। अमृतमधुरजलस्य पल्वलम्—कुण्डम्। तत्रापि पुष्पविटपाः सुगन्धं विकिरन्ति स्म। तन्मध्ये वेदी स्थपुटा कन्दोलिनः। विद्यालयपूर्वदिशि मण्डपम् आसीत्। वैश्वानरे पञ्चपूर्णानि पात्राणि सन्तानिकया राजन्ते स्म। देवर्षिप्रतिमाश्च पदे परिकल्पिताः सन्ति। स्पर्द्धाम्नो मौनं प्रतिमाश्रयेति छात्रा ध्यायन्ते स्म।

पूर्वोत्तरे। प्रथमस्तु अन्नाक्षरार्णिनाम्, द्वितीयस्तत्र मेषाणां महामण्डलम्। प्रासादम्। यत्र विद्यार्थिनो मेधया ऊर्ध्वभूय कलकलायन्ते।

अहं धूमशकटोर्विकासालये[1] प्रतिष्ठम्। स्पष्टं समीपे विलक्षणमेवासीत्। ... कैरवकैदार ... न्ति स्म। ... ष्वेषु ... तदा ... दुर्दर्शः ... विलय ... कुर्वन्ति स्म। ... ऽभूत्। ततो ... स्म।

1 धूमशकटस्थानम्।

उद्यमविधमा प्रासरत्। क्षणेन धक्-धक्कायितचरणी, पथिकशोकहरणी, दिक्करिणी अभीष्टदेशप्रापणतटी शकटो समेता। अहं प्रथमश्रेण्या आवासेऽविशम्।

शतश उपनेत्रधारिण्यो रमण्यो वातायनेभ्यः प्रेक्षन्ते स्म। दैवाद्विद्यालये मम वस्त्राणि प्रक्षालितान्यासन् यतः कोऽपि पृच्छको मां चिटिकार्थं नाखेदयत्।

*　　　*　　　*

कान्तारम्। बहुशोऽवलोकिता सान्द्रा द्रुमावली। दूरत एव द्रुमदलमध्यतो दृश्यमानं रक्तध्वजं लक्ष्यं कृत्वाहमचलम्। गव्यूत्यन्तरे परमरमणीयं मन्दिरं प्रोच्चभूमौ शिलाशकलानि सौन्दर्येण न्यस्य विरचितमासीत्। अग्रे च प्रस्तरमयं कुट्टिमं यत्र सहस्रशो मनुष्याः स्थातुं शक्नुवन्ति, नवीनमिव प्रतीयते स्म। श्वेतमसृणपाषाणसम्पादिता द्वारशाखा, शिल्पिसम्पादितं कपाटयुगलमासीत्। मन्दिरमनावृतमेवासीत्, अहमन्तरविशम्। सुन्दरं विशालमजिरम्, भव्यानि भवनानि, चेतोविकर्षि च सभाभवनमासीत्। मन्दिरं भगवत्याः शाकम्भर्या आसीत्। पवित्रमूर्त्तिः पूजकश्च स्वकीयमनुष्ठेयं निर्वर्त्योपविष्ट आसीत्। परमातिथेयः स मदीयं वनोचितं सत्कारं विधाय मद्वृत्तमपृच्छत्। अहमपि सर्वं विशुद्धभावेन न्यवेदयम्। जगदम्बिकाचरणशरणो मद्दुःखहरणे सकरुणः स मह्यं मन्त्रमेकमुपादिशत्। सप्ताहं यावत्पूजकाज्ञया कृतार्चनजपध्यानोऽस्वार्थबन्धुं पूजकं प्रणम्य, लब्धाशीः माल्यमाल्यविभूषितकण्ठः प्रसन्नमनाः प्रातरेवैकं पन्थानमाश्रितोऽचलम्।

सायङ्कालः, प्रभाविभासी भास्करो विरहितां पश्चिमाशामालिङ्ग्यारुणिमाऽऽचक्रमे।

विदूरतः संसरणसम्मुखमेव करिकुम्भाघातसहाभ्यां जटिततीक्ष्णायसशूलाभ्यामयसाभ्यामावृताभ्यां कपाटाभ्यामुत्पाटितरिपुसाहसं, हसन्तमिव वीरगणं धैर्येण, प्राणापहारकं, नीलशिलं तोपकोपसङ्कोचकं गोपुरमपश्यम्।

बहिर्विस्तृते चतुष्कोणे क्षेत्रे नग्ननिस्त्रिंशानां रक्षकानां चन्द्रहासचमत्कारैरायसान्यप्यररराणि राजतानीव राजन्ते स्म। पन्थानमभितः शीतलच्छाया सान्द्रा द्रुमश्रेणिः। प्रतिद्रुमं मारकतप्रभया दूर्वया लालितानीव ललितालवालानि व्यद्योतिषत।

"रक्षकाः" मया पृष्टं 'कयाऽऽस्ययालङ्क्रियतेऽदो नगरम्! कस्य च वंशस्यावतंसो भूपः! कानि चाक्षराणि यमाप्य धन्यानि भवन्ति!

से मामदमदर्शिदया व्याजह :—"पान्थ ! विन्ध्यपुरनाम्नोऽमुष्य नगरस्याधिपतिः [illegible] श्रीमान् [illegible], वैशिष्ट्यं प्रवेशमिच्छते"—इति

[illegible] विद्रुतिमिव वेगेन धावन्ती समागतः। अहं सहसा [illegible] किन्तु [illegible]।

[illegible] [illegible] विपुल[illegible] [illegible]।

प्रियवर ! पात्रं नेत्रयोः
मम चेतोऽङ्गनिदधते (स्थायी)
अरे पथिक ! अयि निष्ठुर ! मम हृद्रायकिशोर !
मथितं वत्सो हरन वै कुत्र गतोऽसि रे चौर ! (१)
मोहकमन्त्रपरीहृता प्रिय ! भवदीक्षणतः
विचरामि गतचेतना यदा प्रेमिल पथिक ! (२)
विदूरामहमातुरा न विषमेतनमास
विरहाग्निनुदते ननु निधनं यामि विमान ! (३)

[illegible]

[illegible]

प्रमोदिनः प्रतियुवकं योद्धुं युध्यमानांश्च द्रष्टुं समनयन्ति स्म नामपट्टिकया स्म । गोपालिकानां प्रसन्नहृदयोद्गाररूपा गीतयो गीता आसन् ।

पूर्वरात्रमतिवाह्य मध्यरात्र आयन्नासीत् । तीक्ष्णरयो वायुरवायत । श्रा[...] न्ताः सर्वे सुखं सुप्ताः । पथिकानां किमु प्रहरिणामपि यातायातोऽशब्द अ[...] गमरणदीपाः मूकमुनय इव दण्डिता नरा इव च निश्चला आसन् । एका स्वप्न[...] मुग्धा विधवा विदूरे ज्वलत्, परन्तु शान्तनिशायां निकटमिव प्रतीयते स्म ।

निशे ! हे आलि ! नाथः क्वास्ते मे [1]
सुखासं सुखनिद्रया,
निद्रां स्वप्न ! जहर्थ (स्थायी)
रे ! स्वप्नाधम ! वञ्चक ! प्राणप्रिये वियुनज्मि ।
स्वप्नारे ! दुष्टासत्वं कथं दष्टः ॥१॥
मन्दस्मितसुधया हरन्, मत्प्रासादसुधाम् ।
[2] विहृतवर ! नाके यातोऽसि ॥२॥
स्पर्शेनाङ्गं विपुलयन्, गमनधीरितहंस !
हताशां मुक्त्वा यातोऽसि ॥३॥
मुकुरे वीक्ष्य मुखं मयाऽसूयि शरीरं हन्त !
वदनजितनीरज ! यातोऽसि ॥४॥
भ्रातुराह्लादं चन्द्रिके ! मयि दुःखं माऽऽधेहि
हितायासनीयं भगिनि ! ॥५॥
नास्ति तमिस्रा यामिनि ! रुचिरा दा न भूतासि ।
दयितवरमयि ! दयितं देहि ॥६॥

---

१ [illegible]

२ [illegible]

जलमग्ना अभवन्मम आशा [illegible] [1]

मृत्यो ! चरणौ ते शरणम् ॥७॥

[illegible] बभूव। [illegible] स्म।

[illegible] मन्दिराणि, [illegible] च [illegible] स्म। [illegible] स्म।

[illegible] स्म। [illegible] स्म।

[illegible] स्म। [illegible] स्म। [illegible] स्म। [illegible] स्म। [illegible] हा! [illegible]!

[illegible] अपि [illegible]।

हा ! [illegible] (भारती)

[illegible] दुःसहं दुःखिता।

[illegible] ॥८॥

१ [illegible] ११२६-२५ [illegible]।

चन्द्रभासिललाटपट्टः, शुभ्रवारिजलोचनः ।
रम्यतैलसुगन्धिमूर्धा हन्त ! दव ! समापितः ॥२॥
मच्छिरः स्वाङ्के निधाय लालयन्तं सत्पतिम् ।
हा ! लभे काहं हताशा हन्त ! बत ! हा ! हा ! हतः ।३॥
श्वेतपक्ष्मशिरोरुहा श्वश्रूर्मदीया त्वद्गतिम् ।
याता भवन्तं द्रष्टुकामा नाथ ! नाथय वागितः ॥४॥
तानि पूर्वदिनानि चित्ते, हा । विचार्य करोमि किम् ।
श्रीनिवाससुशान्तरूपं, संनमामीशं सतः ॥५॥

करुणया कण्टकितचेता अभ्याक्रन्दं गच्छन्नेकं भव्यभावनं सज्जनमन इव विशालं
स्वच्छञ्च गृहमपश्यम् । नूतना रसालपर्णस्रजोऽशुष्कानि सिन्दूरकुङ्कुमस्वस्तिक-
चिह्नानि अर्द्धमूच्छिताः कदलीस्तम्भाः पूर्णा जलकुम्भास्तस्याभिनवां वास्तुप्रतिष्ठामसूचयन् ।
शतशः क्लिन्नचक्षुषो धैर्यधरा नरा विनता वनिताश्च गतागतेन देहलीमघर्षयन् ।
अस्मिन्नेव ग्रावद्रावं जनाः क्रन्दन्ति स्म ।

अथाहं विपुलविचारो विप्रप्रासादान्निर्यतः कस्माच्चिन्नुरज्ञासिषं यदिदं जनपदगुरो-
र्वेदविदुषः कर्मशौण्डस्य विप्रस्य भवनम् । अस्य चैक एव पुत्रो युवा । एष एकदा
लोकमध्ये सर्वहितैषिसभायां स्वातन्त्र्यमुपदिदेश । अतोऽयं शङ्कितमनसा जनपदाध्यक्षेण
निगडितुमाज्ञप्तोऽवश्यं मृत्युदण्डाय कल्पयिष्यते । निर्दोषोऽयम् । नवीनं हर्म्यमनेन
निरमायि । वृद्धो वलीपलितो धवलमूर्धा चपलग्रीवोऽरदनवदनो यष्टिधृताङ्गयष्टिर्भग-
्नसहायोऽस्य पिता । अपनेत्रा विलुप्तश्रवणशक्तिर्जरती जननी । सम्यग्जात-
यौवनवनविकासा हन्त ! हताशा नवोढा कुलीना सुन्दरी चास्याप्रजा धर्मपत्नी, सर्वेषा-
मपामाश्रय एष वेदविद्याविचक्षणोऽद्य विपत्स्यते विप्रयुवक इति दुःखितानां कष्ट-
म्नेन सहानुभूतिं प्रकटयति नागरिको जनः । किं न पश्यसि ! एताः सर्वा विपुलवैभवा
अट्टालिका मलिनाम्बराभिर्विधवाभिरेवाध्यास्यन्ते । सहस्रशो युवानः स्वातन्त्र्यसंग्रामे
सङ्ग्रामे नेत्रकोशिताः पाशेन यमावासं प्रेपिता इति ।

राजपथ एव विप्रप्रासादः पार्श्वे चासीत् सर्वहितषिसभाकार्यालयः । अहं तत्र

प्रविश्य जवनिकाच्छन्नद्वारस्य गृहस्याग्र कृष्णकाष्ठपट्टे 'प्रधानमन्त्री' इति पठित्वा "अन्तरागन्तुं शक्नोमि महाशय" इति पृष्ट्वा तेन 'आम् स्वैरम्' इति प्रत्युत्तरितः प्रविश्याद्राक्षं यदेको वृद्धः समासन्नसमोक्ष एकस्मिन् भग्नमलिने पीठे उपविष्टोऽस्ति। भित्तौ च लोकनेत्रणां त्रुटितभुग्नानि चित्राणि।

अहम प्रणम्य भूतले उपविष्टः "भगवन्, कथं केयं दशा नगरस्यास्य"—"अप्यस्ति कश्चन शासकोऽस्य नगरस्य?" इत्यप्राक्षम्।

"अस्य नगरस्य शासको द्युमणिवंश्यः कल्याणसिंहो नाम प्रख्यातपौरुषो वीरेषु, शासनव्यवस्था चाद्यतनेषु दिनेषु नगरस्य प्रक्षीणा"—मन्दं स उदतरत्।

"यो नाम्नैव केवलं कल्याणसिंहः पालकम्मन्यः सूर्यवंश्यः सन्नपि दुरवस्थस्य राज्यस्य रक्षायै असमर्थो मुधैव क्षत्रिय उच्यते। तस्मिन् जीवति जाग्रति वैदेशिको राष्ट्रं विमर्दयति, तस्य कीर्त्तिं कलङ्कयति, क्षत्रियत्वं व्यपाकरोति, धिग् जीवनम्। धिक् चास्य "प्रजाहितव्रतिनो वयम्" इत्युद्घोषः। यथा हरिणप्राणहारी हरिर्मृगेन्द्रस्तथायमपि क्षीणः कल्याणसिंहः"।

प्रधानमन्त्री•—नैतत् सत्यम्। शासकस्त्वयं बलवान् धार्मिक एवासीत्। परमधुना वृद्धः। केन्द्रस्य गौराङ्गाधीनम्। किमपि कर्त्तुं नाप्नुयाद्राजकः। शासनञ्चैतस्य न परम्पराप्राप्तं किन्तु बलाधिगतम्। तदाहं शिशुरेवासम्, मम पिता कथयति स्म यदस्य नगरस्य जनसंख्या लक्षत्रयमितासीत्। एको राक्षसोऽस्मिन्नगरे समायातासीत्। यावन्तो नरास्तस्य सम्मुखं समागमन् सर्वानभक्षयदमारयच्च। अनल्पे नागरिके पलाय्य नगरान्तरं गतेऽपि राक्षसोऽत्याचरत्, अतोऽत्रत्याः क्वापि स्थानं न लभन्ते स्म। एकदा एतत्प्रदेशाधिपेन राज्ञा "यद्येवं कृते कतिपयैरेव दिवसैर्भग्नप्रजः शून्यराज्यो भविष्यामि" इति विचार्यैव प्राबन्धि यत्, प्रत्येकं गृही प्रत्यब्दं राजाज्ञानुसारं निशीथे स्वपालितपशुमेकं तण्डुलं मांसलं महिषं सपादमणमितं मिष्टान्नमेकं नवीनघातुं युवानं (न तु स्त्रियं) प्रहेषयेद् इति।

राजा प्रतिदिनं रक्षोभक्ष्यमाद्भुदाता प्रार्थ्यत च "मा नाम राष्ट्रं नाशय" इति।

राक्षसोऽपि ततः प्रभृति अन्यायप्रसमस्तन् प्राक्षीदत्।

एकदा दुर्भाग्यक्रमागतं प्रारब्धैरस्य नाद्यपरत्वावसर आसीत्। पुत्रस्यैक एवासीत्

पुत्रो वृद्धाया मातुर्मया निग्रहयकमात्रं गमाश्रयः। भ्रामरनाक्रमदवो रक्ष तदा करयामपि येनार्या शैनिकोऽधिकारिणोऽमुत्रविश्वाऽऽगतो विश्रान्तवक्षांद् निग्रहे। अथच पुत्रा धात्रभावोत्तमः करणोदनं धृत्वोद्गम दत्यासवन्द् यदेतोऽथ स्रोतः सारयन्, भित्तौ रोदयन् निरन्दगद्गदकण्ठो वक्त्रमसाधोऽपि दुः "हा! पुत्र, तत्राहं यास्यामि रक्षोक्षुधशामी सं दोप्यामि त्वं मा गाः" इति निवर्द पुत्र! अगतलोचनां सुलोचन! को नेष्यति नयन! सम्भाषिष्यति मायमदव सुखं प्रस्यति पटो! हा! हतास्मि बटो! अमुष्मै दिनार्थेन पालितो दुग्धघृतसेवनेः हा! सूनो! इति समस्तहताडनं रुदती तन्माताऽऽतुरास्मि। अन्यतः प्रिय! प्राणेश्वर! मत्पयनचन्द्र? अविदितजगदानन्दासि? ·हा! हन्त!! भवन्तमन्तरा कथं हिन्विष्यामि, अन्वेष्यामि स्वामिन्! भवन्तः स्वामिनोऽनुज्ञां पालयन्तः सानन्दं गच्छन्तु, हा! प्रिय! इति प्रचुरं चीत्कृत्य ससकृच्छुरःशिरस्ताडनं रोदयमाना युवकाङ्गनाऽ नानि भुवि लोठयति। एकतश्च मुमूर्षवे विप्रबालकाय राक्षसतृप्त्यै चोदूखलस्फोटितम् तितऊविशोधितस्यान्नस्य रसवत्यां[1] वल्लवैरन्तिकायां[2] मधुरं क्षरदाज्यं भक्ष्यं निर्मीयते। कृतोऽलिञ्जरेषु[3], पिठरेषु च [4]ऋजीषपक्वं घृताक्तं सोपस्करं सचुक्रवेसवाराद्यर्कं धभेपजजलानिश्रं बाह्लीकगन्धि सनिशाङ्गं[6] साक्षीवं राक्षससम्बन्धि मिष्टान्नं [7]निष्टन्व रैवेष्यते।

विदलितभीरुधैर्यं दुःखितां दृश्यमदो वीक्ष्य समुपजातदयो गृहाजिरे निरुद्ध न्, सशङ्कं दृष्टो गम्भीरवाचा तान् सम्मुखयन् प्रावोचन्—"मा शोकं कार्ष्ट, मृतसकलकुटुम्बोऽहं संसारे निवृत्तजीवितेच्छो मरणमेव श्रेयो मन्ये। अमुना नश्वर- रेण. ईदृशः सदवसरः कदापि न लप्स्यते; अतोऽहमेवाद्य तस्य रक्षोराजस्य भीभूयोपैष्यामि। वृद्धौ! मा शोचतम्। भवदाशालताश्रयः पादपः सुदृढमूलः स्वैरं विलसतु। नवोढे! मा स्म तनुं शोकाग्निसात्कार्षीः, न वियोक्ष्यसे। पत्यु- रिरसवं विधेहि इति।

द्ध—करतलं देव! एभिः सुधामधुरैः शब्दैः सिञ्चन्नागतोऽसि स्वर्गतः। परन्तु

चाल्नी। २ सूपकारः। ३ चुल्लिः। ४ महाकुम्भः। ५ तापवाहन "तवा" वणम्। ७ तेमनम्।

अहं भारतीयः स्वस्य सुखस्य कृते न कमपि दुःखयिष्यामि। भवानपि [illegible]रया अपि अङ्गभूषणं सौभाग्यसिन्दूरं नयनोत्सवश्च। अहं स्वनेत्रे शोषयित्वा [illegible]र्दयिष्यामि।”

[illegible]ल्याणो नाम क्षत्रियकुमारो जगति न कमप्यात्मीयं पश्यामि। मां [illegible] न कश्चन नेत्रे आर्द्रयिष्यति। भारतीयक्षत्रियस्य कर्तव्यं मां विवशयति [illegible]विद्यते जीवति विप्रकुमारं हन्तुं न कश्चन समर्थः। अहमप्यार्यो भारतीयां [illegible]लङ्घयिष्यामि।”

(मुद्रां एकीकृत्य) अहो! धन्योऽसौ कल्याणः। यस्य नामसङ्कीर्तनेन [illegible]म, अतिसारश्चाप्रतिषिद्धो भवति स्म मुहुर्मुहुरधरेष्वपि, भीता भामिन्यो [illegible] स्म गर्भानपि, राज्ञः सन्देशहरमेव दृष्ट्वा जिगमिषव इवासन्नसत्त्वास्तस्यैव [illegible]रस्य दलितारेः पुरः स्वेच्छया प्रविशन्ति, धन्योऽयं धन्यौ चास्य [illegible]तौ सुखदर्शं पुत्रं जनितवन्तौ यः परार्थे प्रेम्णा देहं दददपि निरहङ्कारः [illegible] धीमन्वयशेखरीमां सुधामधुरां वचसि पेपीयमानाः कथञ्चमपि आतनिश्वासा [illegible]रा देभिरे।

[illegible]र। सर्जनमभूद् भग्नं परिपुष्टे मांसले मर्दिते। इतस्ततो मित्राणि अन्तिम-[illegible]रणम्। शम्भुरणो मनो मुह्यमानः, क्रन्दन् हरता च वचसा राजशासनं [illegible] इतः मन्दन्दर्शितपरः पुत्रं आह स्वाप्स्य! प्रशस्तमनेहा हा! हा! [illegible]। कर्दि मरणचयनमिति इति।

[illegible]न्यकारम् अन्तर्नित्या शिलादलांसव विचित्रविधिं विचित्रं समादाय मदिर-[illegible]र्दस्थले मिश्रे निरतोचाः। मंदिरचित्रोज्ज्वलकलावणनूनं च, पिनाकवीरा-[illegible]र्ता निर्मितः, सर्वेषु सुन्दरच, दुःखदर्शनयवंशप्रेमी, सोत्कण्ठा हर्षाहिला, [illegible]रत स्नेहशैलकारः, कलुषितः, कनिष्ठा शिला रामाचले स्म। एको [illegible]ण्डपकमको क्रोधराजश्च शिखामूर्तिस्थ सकलदुःखयां सौख्यसंके, [illegible] रत लिए, यत्र मूर्त संक्रमितमयेहम्,’ सत्र मीनलोचय-[illegible]र्दो है आरहन्त, दोलस्तुतम्, कर्कशुम क्रोधः पराहारेण पशुं च, [illegible]स्मदर्शनम्।

अवक्षण उरुः, प्राणिप्राणहारिणी भयङ्करा मनस्विमानोद्दीपनी भीषणा सामग्री । कल्या-
णश्च विसृज्य विप्रात्मजं कासरं धावयन्, कासारं गत्वा पयः पीत्वाऽधिगतशान्तिः पथि
कस्मैचन वराकाय हालिकाय सैरिभं दत्त्वा, शिलामेत्य अपूपादीनुपबर्हीकृत्याशयिष्ट । अथ
मौनमाश्रयति पतत्रिपूरे, अन्धकारेणान्धीकृतास्वाशासु, किञ्चित्प्रकाशमानेषूडु-
अञ्जनमिव वर्षति वियति, मृत इवेक्ष्यमाणे समस्मिञ्जगति, निशीथदीपेष्विव विद्योतमानेषु
खद्योतेषु, निशीथप्रायायां निशीथिन्यां सहाहाकारं रुदत्सु गोमायुषु, ज्वालाज्वाल-
क्रोशन्तीषु शिवासु, राक्षसागमनमपेक्षमाणे, विचारोर्मिसङ्कुले च कल्याणे प्राचलद्दुष्पातवातः ।
मन्दस्थः समीरः क्षणेन सूक्ष्मस्थपत्रखण्डवतां दधत् प्राबल्यं भेजे । प्रकम्पनकम्पिताः पादपाः
सहतोड्डीयमानैः पक्षिभिः सूचयामास राक्षसागमनम् ।

अथोत्थितः स दूरत एवापश्यत्—अशुभदर्शनं निष्केशेन भूर्जत्वक्कान्तिना
विस्फोटव्रणाङ्कितेन रक्तकस्य चर्मप्रच्छन्नोपलेनेवाशिरसेन शिरसा, निम्नमध्येन अधिक
उच्चेन धूम्ररोमराजिविभासिना भालेन, भीष्मत्वौ कूलान्तशृङ्गां कालिन्दीमिव मिलद्द्वे
भस्मपङ्क्तिमिव च दधानम्, विरलबालां धूसरितां भ्रुकुटीम्, शुष्काम्बुसरस्सर्पा
श्रवणौ, क्रूरे गर्तगते बदरबीजोपमिते सिक्तावर्णपक्ष्मणी वीक्षणे चोन्मीलयन्तं भेकवत्
पूतिगन्धिशिङ्घाणमृतया दोलावेऽधःपतनप्रसृतया शाखामृगैर्भक्षितयेव समुन्नत
मसूरिकाङ्किणया बभूव इव सुस्पष्टमलायमानभ्रष्टितया विपुलबालया नासिकयोत्कर्णि
निशितास्यैः दीर्घं मांसबिभ्रशया विकर्तितया वा बहिर्निर्गतैरालोहितसिताञ्जनाभैः
दन्तविवृते रदनैः प्रपूर्णवदनं विवृतपुटोभयाधरं प्रलम्बमानचिबुं दीनदन्तं चर्मचरा
निर्गीर्णपुच्छकुपी गण्डौ दधानं पुच्छदेशिना पाणुभ्रेनेव आलोडितेन बहिर्निर्ग
विरलेन श्मश्रुजालेन ध्यातानतम्, अत्यजमीक्ष्यमाणमनुष्यूहया मांसादनमांसल्या भीषण
विट्टलम्बदननं पीनेन सर्वर्तमेव मस्तिताने [illegible] रुधिरादिग्धेन [illegible]
प्रविश्य मांसपूर्तिर्लम्बन । स्फुटनाशेन [illegible] दीर्घे
प्रलम्बेन [illegible] दीर्घ[illegible] मनुष्यमांस
[illegible] अमितमांसमर्मनिष्पेषेण [illegible]
[illegible] प्रदेशे भीषयन्तं [illegible]
[illegible]

कुम्भप्रवेशलिप्सोभयजानुतया समन्ताद् भ्रमन्मक्षिकं शुष्कायतपादं श्वेतनखमपि रक्तनखं भक्षितभुवनमप्यनाप्तभुवनं सततं भुञ्जन्तमप्यलब्धाग्नं प्रस्फुटविपादिकं समलकलेवर भक्षितमानवं दानवम्।

यमभितः श्वान इव व्याधम्, कुमन्त्रिण इव कुनृपतिम्, असत्प्रतीहारा इवोत्कोचिनो न्यायाधीशान्,[1] मुनिमा इव धनिनं सहचराः केचिदेककर्णाः केचिद् भग्ननासिकाः कृत्तौष्ठाः लम्बोदरा अनेत्राः काणाः केकराः कुणयः शुष्कोदरास्तनुतनवोऽतनुतनवश्चोर्ध्वकेशांशत-शूला इवैक्ष्यन्त। परिषदियं सज्जनजलपानागस्त्यभूता, नियमयममेधोच्छेदमद्रूपा, वेदेन्ध-नाग्निसमा, योगिजनसमुद्धूलनवात्या देवार्चनप्रचारनीवरुणालयावर्त्तातिमिका कारुण्यप्रासाद-भूकम्पानुरूपा दयालतादावाग्निसमा, विद्यार्थिकुलकृतान्तरूपा, विपुलसुरा[2] अपि सनातनधर्मो-द्धारकमारकपुरःसरा आसीत्। अग्रे च कालायसव्युत्पत्तेन[1] आच्छादनावरणेनेव चर्मणा संवृतशरीरः, परिपुष्टमांसलग्रीवः, रम्याभुग्नविषाणमण्डलो, ललिततिलकायमानसितरोमराजि-परिष्कृताऽऽयतपट्टायितललाटः, प्रलम्बपुच्छदण्डेन भ्रमता दूरयन् विघ्नसङ्घातान्, उपरि-विन्यस्तेन तैलपूर्णचतुर्वर्त्तिना स्वर्णदीपेन प्रकाशितशरीरः सभीकृत्वेभः सैरिभः सलीलं सानन्दं सजृम्भं साराव विस्फारितनेत्रं सजिह्वाभ्रमणं पश्यन्नागच्छत्।

येषामाकृतिरेव जगदद्भुता कथं न स्यात्तेषां मांसादत्वं प्रकृतिसिद्धम्। मतस्ते-षामागमनेन मुसा विस्मृतयोऽपि निद्रां जहुः। सहसा दीपो निर्वाणतां गतः। क्षणादे-समपि सर्वे सहचरा इन्द्रियागोचरतां जग्मुः। सकलप्रवेशदुर्धर्षाकृतिरनावृती राक्षसश्च शिलासमीपमेत्य सीवन्तं तं महिषानुचरभक्ष्यस्य सिद्धान्तस्य न्यूनतां मद्विपाकवश विभाव्य नगरदाहिका कोपाग्निना भीषयमाणः "कस्त्वं रे !" इत्युच्चैरब्रवीत्।

मौनमवलम्बमाने च तस्मिन् पुनः स साभिमानमाह—"मुमूर्षो ! मन्दभाग्यो वो भूयो दोषद्वयं मां विस्मृतवान् किम् ? किं स न वेत्सि यत्तस्य नगरं मम प्रातराशादाप्यकल्पम्। सत्यं स कथं विस्मरिष्यात्, मयापि तन्नगरे एषु दिवसेषु नाभ्रमि। अस्तु, त्वमधुना

---

१ मुनीभ, मुनीनि निमते=धरमान्ति धन्यादन्ते = मत्संदन्ति च। माष् मने धातो च "अतोऽनुसर्ग्ग" क०। २ विपुलः सुरा अभिवायुदमनन्तरो यत्रामेवं भूरि। पक्षे—विपुला सुरा=मदिरा यस्यां सा। ३ टैङ्क।

दंष्ट्राभूषणं विधाय नगरं प्रवेक्ष्यामि, इत्तिरि, स्मरामीष्टं यावदहं कुलिशकठोराभ्यां कराभ्यां त्वां नामृशामि।"

विपुलोत्साहः स्मित्वा क्रोधोत्कम्पवेपथुरुत्थाय सम्मार्जयन् सोऽब्रवीत्—क्रोऽसि रे! सत्त्वाधम! किमर्थमुपशिलमागत्य निद्रां हापयसि? स्वपिमि, सप्रपसर इतः, सिंहस्य सुखनिद्राभङ्गको मृगो मा भव! याहि याहि दर्शय पृष्ठम्, इति।

राक्षसे स्वश्रुतपूर्वैः परुषवचोभिरुद्दीपितमन्यौ कल्याणः प्रबलपराक्रमया लोमगोलकभयङ्करया दृढया साङ्गुष्ठाङ्गुलिबद्धया सिद्धया मुष्टिकयोर आहत्य सप्रौढि अवदत् "राक्षसाधम! समेतस्ते मृत्युः। कदर्य! नाधुना ते विमुक्तिः। तावद्गर्जे शोच भ्रम उच्छल यावन्मम मुष्टिवृष्टिविनष्टतनुस्तिमिराप्यायितसमीरो विमुक्तमर्लोऽन्यलिजनुषि कस्यचिदस्मादृशोऽजिरं न पश्यसि। विपुलाध! बहवस्त्वया धर्माध्या देशमध्याः मानिनो विपश्चितो नीच! भक्षिताः। विषदानेत्रनिःस्यन्देन महीयसी हरसी त्वया सम्पूरिता अधुना त्वघन्य! प्राप्तस्त्व प्राणहर्ता कर्ता चित्रपुरवासिनागरिकनिकरस्य सुखम्। विम्रयान्त! चिन्तयान्तिमचिन्तनीयम्।" इति

अथ क्ष्वेडानुकारि घनघनाघनध्वानानुसारि दमितजगारि वच आभाष्य उत्प्लुत्य समिव तच्छिरो दृढेन करालकरतलेनामृदुलयत्। पुरोपयोः सत्वरपदन्यासमृदुलितपयोमुष्टिकापतनसङ्कुचितावयवयोः खिन्नखिन्नगात्रयोस्तयोः सध्वानं सकरतलघातं बभूव तुमुलं जन्यम्। ततः स शुण्डिशुण्डामिव प्रचण्डां शिलामिव नीलां शाल्मामस्य माहिषीमिव आयसीमिव तद्ग्रीवां दोर्दण्डेन मृशमादायोत्थाय गजमिव तं बलदृप्तं श्रोण्योर्भूतलेऽपातयत्। तेन च दिगन्तव्यापिना कणकुहरभेदकेन ध्वानेन भीतः परिभूय आस्यातुमिव वियद्विहारिणं विनतानन्दनं शब्दितसकलप्रदेशो दिशास्वगमद् क्वे केकाभीमितजनं केकिनम्।

अथासौ प्रसृतस्य तस्योरसि समुपविश्य रुदन् वचनसूचीभिः प्रारब्धमुष्टिवृष्टिरब्रवीत्।

"रक्षोऽपसद! जगतोविषाद! निषाद! क्षणस्थायिनस्ते प्राणाः स्मराभीष्टम्" इति। परं परमगर्वः स क्रोधाश्रुपूर्णवीक्षणः पद्भ्यां दद्भ्यां नखाभ्यां तुदन्, नासिकया प्रबलं समुच्छ्वसन्, मुष्ट्याऽऽहतो मूर्ध्नि, फेनमुद्वमन् नसा रुधिरञ्च, मुखं व्यादाय शमुतो मर्दनमनुभूयानन्तविश्राममन्वभवत्। तस्य प्राणमरुत् नागरिकमित्रैरेव सद्य एव

लब्धेव वीतः। तस्य पाटितमपि मुखं भीरुधैर्यं पर्यक्षत। शून्यः स प्रदेशः प्रहार-कोलाहलेन गुञ्जितः। तस्य लोहचपेटा अमोघाः प्रहाराः सक्रोधे ज्वलन्ती चक्षुषी निशिता दन्ताः स्फुरन्तावोष्ठौ निःश्वसन्तो नासिका तस्य वीरत्वपरीक्षायै अलमासन्। परं स उत्तीर्णः। तस्य च कर्णनासानिर्गतेन मेदस्विना नीलगाढेन पिच्छिलेन प्राक्षिप्यत वसुधा क्षतजेन, दधती अन्वर्थाख्यां मुमुद इव मेदस्विनी।

अथासौ जन्यजन्यश्रमश्रान्तो विस्तृतं माहिषं चर्मास्तीर्य रक्षोवक्षश्चोपधानी-कृत्य गाढमशयिष्ट। शशादनवायसारातिव्याघ्राटकर्करेटुककरसकृत्प्रजकाकोलातायि-दाक्षाय्यकौकुराणां रावेण सार्द्धं वाद्यध्वानेन सविस्मयमुत्थितोऽपश्यत् स यत् तार-गम्भीरं मुरजमृदङ्गतालपरिवादिनीवादिनो वैपञ्चिकाश्च पञ्चजना समायान्ति। स्वर्ण-सूत्रितकुथस्थमणिजटितकार्त्तस्वरकल्पनायां[1] मदोन्मत्तसलीलगमनायां दन्तावलवनितायां विग्रपुरपतिः मन्त्रिप्रमृतयोऽसंख्याताः सुवासःसज्जितवाजिनः सादिनश्चायन्ति स्म। कल्याणस्तु सैनिक आसीद् व्यवहारानभिज्ञः, युयुत्सयाऽऽगच्छतस्तान् विशङ्कमानो विकोशासिर्व्यालीढमर्यादियोदतिष्ठत।

"देव! स्वागतं विनीतभावेन विधेयम्, पुनरयमस्मत्सुरत्राता सविशेषं सत्कार्यः, अतः पद्भ्यामेव चलनीयम्, अन्यथा को जानीते किमाचरेदेष युवा" इति मन्त्रिणा प्रतिबोधितो हस्तिनोऽवतीर्य करकलितपूजापात्रो मन्त्री राजा च तमभ्यर्हयामास समारोहेण पुरमानयच्च।

"वीरवर! देशस्य दुःखमपनयन् सपरिवारं राजानमेव न हि, सकलं देशमेव वशी-कृतवानसि। अस्मदर्थे प्रचुरं कष्टं विसह्य स्वकीर्तिलतां देशभैनेऽर्थश्मा कृतवानसि।"

कल्याणः—आर्य! अबहुकृतकार्यमात्मानं भवत्प्रशंसितं श्रुत्वा जिह्रेमि। क्षत्रिय-धर्म एषः। का नवीनता!

मन्त्री॰—महतां महत्त्वमेतद्यद् देववर्ण्यं कर्म कृत्वापि न प्रमाद्यन्ति।

कल्याणः—केन सूचकेन राज्ञ एतत्कष्टं दत्तम्!

मन्त्री॰—विपश्चितामपश्चिम! जगति जना जनानर्दितान् वीक्ष्य प्रहृष्यन्ति। ते चावसरापरदिने तत्र "कथं स द्यौ हतः"—इति दिदृक्षया यान्ति। तैश्च भीरुभिरद्य महता प्रयासेन राक्षसो मृतो मतः। ततश्चोपहारलिप्सवः क्षतजेन लिप्तदण्डाग्रा

1 कटेड़ा = कूँची।

राज्ञ राक्षसमारणं सूचयाञ्चक्रुः। केचन दलमायोज्य वार्त्तांसि लिख्वा "अस्माभिः स देव! प्रसह्य हतः"—इत्यपि प्रोचुः परस्परं व्यवादिषुः। महाराजमुखगमने नवीनं ज्योतिरुदगात्। मानससमुद्रस्योपहारतरङ्गाः कराभ्यां निर्जग्मुः। ग्रामाणामधिकारपत्राणि लिखितानि। सर्वेषां मुख्यो भारैर्मृताः।

अहं विचार्यावोचं "देव! किमर्थं निर्धनीक्रियते कोशः। अन्नदया एवैते न कदापि व्यापादि राक्षसोऽमुष्यैरेव। अथ किमेषु देवं बलमुपेतम्! देव! यदि राक्षसो मृतस्तर्हि अनन्यसाधारणो हन्ता तत्पृच्छ्यतु कस्यावसरः कोऽगमत्"—इति।

तत्र च व्यतिकरे भवद्गमनं भवच्छ्यनय विदितम्। अतः परं यज्जातं तज्ज्ञातं एव श्रीमद्भिः।

कल्याण—आम्।

मन्त्री॰—कस्य वंशस्य विभूषणं देवः।

कल्याण—राजन्यकुलप्रभवोऽहम्।

संसरणे सद्वासोभूषणैर्नरैर्नारीभिश्च कुसुमवर्षिभिर्मधुरादरवाग्भिश्चाद्रियमाणः कल्याणः राज्ञा राजभवनमानीतः।

केवलमेतन्नगरनिवासिन एव न हि प्रान्तीया अपि समुदिताः। मानवमहोदधेर प्रान्तरहिता आगन्। सर्वो जनः प्रान्तप्राणप्रदातुर्दर्शनाय आकुल आसीत्। कल्याणः महाराजेन सह राजभवनस्य गवाक्षे स्थितो जनसमूहं नन्दयामास। चिरस्य विशुद्धदीपा लोकचक्षूंषि चमत्कुर्वन्। महाराजश्च लोकं सम्बोध्य[1] वर्णितकरा महत्येव प्रावोचत्—

प्रियाः प्रजाः! अद्यतनं दिनमस्मज्जीवनस्य प्रदीप्ततमं दिनं वर्त्तते। केन वा के कथा दैन्या केन कल्याणस्य महाप्रभावस्य पूनः आभारं प्रदर्शयामो मनो न निश्चिनोति अस्माकमपि नैतादृक् क्रियते यत् प्रत्यर्पं वयमात्मानमपादयामः।

तत्पश्चात् स्वयम् राजा पुनः पठति स्म—इत्येतं तेजोऽधिराशिरिव स्वराष्ट्र प्रणम्यो महत्त्व एतद्गुणैरिभ्येव राजर्षिर्दृतः। एतद् गुणत्रयमपि मूर्त्ति वर्त्तते। अतोऽयं राजा सर्वैरनुमर्दिन। भगवता राज्ञः परं चौर्यमर्दितो

1 सम्बोध्य।

चितम्। अस्माभिरीशात्म्येन तत्कुलपरम्परया स्वीकृतम्। अद्यैनं युवानं वीक्ष्य अनुतप्तो लज्जितश्चास्मि, अत इतः प्रभृति अयमेव प्रजानां शासकः। लोकस्य न्यायं योग्येऽधिकारिणि समर्प्य भाररहितोऽहं नितरां प्रसीदामि। नवीनमण्डलस्य शासने इत्थं-विधमानन्दमनुभवन्तो भवन्तः श्रेयः श्रेयश्चाप्नुवन्तु—इत्यस्तु मे शुभाशीर्वादः इति।

महाराजः स्वयं स्वमुकुटं तस्य शिरसि पर्यधापयत् करवालं करयोरादायार्पयत्, चामरधारणाय सर्वतः प्रथमं व्याजयत्।

महाशय, अधुनायं नितरां वृद्धः केवलं नाममात्रेण राजा। केन्द्रादेशानुसारिकार्य-निर्वहणे विवशः किं करोतु वराकः इति।

अथाहं प्रधानमन्त्रिणं सम्भाव्य ब्राह्मणबटुनाऽऽलपितुकामस्तदावासं गत्वा यमदूतो-पमैश्चतुर्भी राजपुरुषैः कृतेक्षणं शृङ्खलाबद्धपदं सहयोगिभिर्भविष्यत्कार्यं कमायाऽऽलपन्त-मनितरसाधारणवैदुष्यमनालस्यं कर्मे कर्तुमाक्षेपयन्तं विप्रयुवानं वीक्ष्य तद्भावमुग्धस्तस्योद्देश्यं विभाव्य तस्य जीवनं परमावश्यकं मन्वान उदघोषयम्ः—

"मान्याः, शासनस्यान्याय्य परां काष्ठां स्पृशति। परोऽपराध्यति दण्ड्यते चापरः। अस्मदीया एव भ्रान्त्याऽस्मान् हन्तुमपेक्षताः। कर एव गलमपजिहीर्षेच्चेत्कथं जीवनम्। अस्माकं भ्रातर एवास्मान् हन्युस्तदा कथं जीविष्यामः। अस्माभिः प्रतिज्ञातव्यं वयं संघटिताः शासनमनुकूलयिष्यामः। एतदर्थमेका विचारपरिषत् स्वतन्त्रोपवने परेद्यवि पञ्चनदनसमये भविष्यति सर्वैः समेतव्यम्। एतदाह्वानञ्च सर्वेभ्यः श्रावयितव्यं येनाधिका जनाः समागच्छेयुरिति।"

वृद्धावुपगम्यावोच "शोकं त्यजतम्, अहं भवत्पुत्रमन्यांश्च कारावासिन उन्मोचयिष्यामि नो चेत्स्वीकृतापराधो भवत्पुत्रस्थाने शूलमारोक्ष्यामि। अहं कथयिष्यामि यन्मम प्रबन्धो मदाज्ञया मयि रोगग्रस्तेऽनेन पठितः। पाठको निर्दोषः। भवत्पुत्रस्य रक्षणं देशस्य कृते परमावश्यकम्। धन्यौ भवन्तौ यौ स्वार्थं परित्यज्य देशस्य निर्माणाय स्वातन्त्र्याय च प्राणार्पकं सुतं प्रासुवाताम्। भवादृशामाश्रयेणैव स्थिता भूः"।

त्रयोदशपलन्यूने पञ्चनदनसमये स्वतन्त्रोपवने मनुष्याः स्त्रियश्चाऽऽगमुः। धरिणी मास्वान् प्रसन्नमानेव प्रतीयते स्म। पञ्चनदनघण्टाघोषेण सममहमुत्थाय सभापतिपदाय जनमद्गुरुं प्रस्तूय पार्श्वमध्ये स्थापिताया भारतमातुः प्रतिमाया गले पुष्पहारं समर्प्यावोचम्।

समवेतासद्योगिनः ! सुहृदः !

सर्वतः प्रथमं स्वं सर्वथा निरोश्वरमस्माभिः प्रतिज्ञातव्यम्, यदहं स्वेच्छ स्वं भारताय तस्य सेवायै स्वतन्त्रतायै उन्नत्यै च समर्पये। एतदर्थं कदाचितो वृश्चिकतोदः काशवासो मराकादनं परिजनैर्वियोगः क्षुधा द्वन्द्वदण्डो मृत्युरच मन्निर्णये प्रतीपयितुं न शक्याः। स्वार्थं परित्यज्य देशहिताय वर्णवर्गधर्मनिरपेक्षः कार्यं करिष्यामीति।

यूयं सर्वे भारतस्याधिपतयः, स्वतन्त्रे भारते सर्वस्य समानमुत्तरदायित्वम्, इदमनुगुणं भविष्यति मदहमाज्ञापयामि, परमहं भवद्भिर्नियोजितोऽनुशिष्टः सहयोगीव निवेदयामि।

अस्माभिर्यथाशक्ति संघटय देशस्योत्थाने यतितव्यम्। वृद्धैरेतद् विचारणीयं यद् स्वाधीनं भारतं द्रष्टुं कः स्थास्यति—एष विचारः कर्मणि शैथिल्यमौदासीन्यञ्चापादयति। सर्वेषामस्माकं कर्तव्यं यद् वयमस्मज्जीवनसर्वस्वं स्वतन्त्रभारतस्याधारशिलाया अधस्तात् स्थापयिष्यामो यत्र कोऽपि नेक्षेत। अद्यतना भोगा अस्मद्बान्धवरक्षिता इत्यवधार्यताम्, परतन्त्रतायां घृतादनात् स्वतन्त्रतायां घसादनं गरीयः। मरुम्भिः प्रजा घासमेव जघास।

विश्वसन्तु, एष दासो विजये पराजये तेजसि तमसि सुखे दुःखे सदैव भविष्यति। अहं किं दातुं शक्नोमि, ऋते क्षुधां तृषां श्रमं खेदं क्लेशं मृत्युं वा। एतज्जीवनं भारतमातुश्चरणयोरर्पये।

सुहृदो भ्रातरो भगिन्यश्च,

संघर्षं चालयितुं घनस्यावश्यकता वर्तते। निर्धनो ह्यसमर्थः स्थातुमचलने समये। एतदर्थयुगम्। अर्थस्याय महती प्रतिष्ठा। घनस्य प्रतिष्ठोन्मूलनमस्माकं ध्येयम्। परं नार्य तस्य समयः। अतः कण्टकेन कण्टकमिवानेन परतन्त्रतोन्मूलनीया। अस्माकं कार्यं न सरलम्। सद्यो दीर्घकालः कठोरश्च सम्भाव्यते। शासकस्य हृदयं नवनीताभं न भवति अपि तु वज्राभम्। यत्र स्त्रीणां चीत्काराः शिशूनामार्त्तनादाः वृद्धानां धूंतकेयाः अश्रुद्रमं कर्तुं न शक्ताः। अतः सर्वसाधनानां संग्रहोऽस्माभिः कार्यः। अस्माकं भ्रातरो भगिन्यश्च करकवाला भुशुण्डिकामादाय सर्वविधाः परिस्थितीः प्रतिरोद्धुं समर्था भवेयुः, यद्यपि नास्माकं शस्त्रेषु विश्वासः। परं क्षमाऽपि शक्तौ त्यामेव वरीयसी। भारतस्य परिश्रमप्रियाभिः प्रजाभिर्नेदमाशंसितव्यं यद् परेषां

छलेन व्यसनेन लुण्ठन्तो धनिनः, साम्राज्यवादिनः शासनस्य लुण्ठने साहाय्यमा-
तोऽस्मत्साहाय्यं करिष्यन्ति। यैर्धनिभिः स्वार्थं साधयितुं सलक्ष्यैः साम्राज्यलोलुपः
सम्मिल्य विश्वस्यान्नदाता कृषकोऽन्नाय परमुखापेक्षी, विश्वव्यापाराय तन्तून् वयन्
वायश्च तरुण्याः पुत्र्याः लज्जायै वासांसि याचमानो विहितः। कारर्मयविश्वकर्मानुरूपं
रं निर्मायापि शकरवासं वसन् मर्तुं बाधितः, स एव समाजस्य कलङ्कः स्वार्थी
का इव शासनस्य घटकः स्वस्य साधारणमनोरञ्जनाय लक्षशो रूप्यकाणि प्रवाहयति।
न्यायो बहुदिनं यावन् न स्थास्यति। आधुनिको धनी ज्वालामुख्या क्रीडति
णि सोऽनवहितो निश्चितं पतिष्यति। किं सम्भाव्यते सोऽस्माभिः सहायिष्यते?
ताकं शवे हसिष्यति, स्वाधीनसंग्रामाग्नौ दत्तात्याहुतीरवहेलयिष्यति, क्लीबोऽपि
रयरतः प्रेमस्पृशा भ्रंशयितुमेषिष्यति। स्वार्थिनो देश्या वा स्वविदेश्या वा स्वार्थे
। रक्तं शोषयतां धनिनां वा नान्तरम्।

गृहीतधनस्य कणाः स्वतन्त्रतामन्दिरस्य पथि विकरिष्यन्ते, भारतमातुश्चरणयो-
न्ते इति।

मास्थले विशेषतो विधवाः स्त्रिय आसन्निरलङ्करणा नराश्च, तथाप्या-
ं कृपिस्तत्राभूत्। क्षणेनैव भारतमातुरग्रभूः कर्णनासागलाभरणैरङ्गुलीयकैश्च
। परमनेन स्त्रीणां तृप्तिर्न जाता, ताभिर्न ज्ञातमासीद् यदत्र धनसंग्रहो भविष्यति,
रेऽदिने सभायै आजग्मुः। तासामाग्रहेण द्वितीयस्मिन् दिने तस्मिन्नेव समये
। सभाऽभूता।

रस्य सर्वाः स्त्रियोऽद्य आकुल्मिता इव कौशेयखण्डेषु बद्धान्याभूषणान्यादाय सम-
वेता। तासां मुखेष्वेका विलक्षणा तेजोमयी छाया व्याप्नोत्। आभूषणानां
राशिर्भूषणानां राजतानां सौवर्णानां भाजनानाञ्च कूटं भारतमातुश्चरणयोर्जातम्।
उपहारत्वं वसन्ताम् प्रेक्षितवन्तो बालिकाः पुलकिताः प्रणयस्नातमुख्यो
सकेसः सर्वं वासमनुभूतवन्त इव वृद्धाः स्वतन्त्रभारतवेदिकायां जीवनसञ्चितं
यवैषुः।

निरन्तरं रुदतीं युवतिं समालम्ब्य मुक्तमुक्ताविता उपस्थाः स्त्रियः समाजग्मुः।
सन्दिग्धहृदयाः फलेन शुष्कता मञ्जता स्वरेण प्राबोधयन् मदस्य सरल

सुशीलो युवा भर्ता राजद्रोहापराधे बद्धोऽस्य शूलमधिरोपित इति। "हन्त, हन्त," इति कोलाहलः सर्वतो गगनं व्यनादयत्। अश्रुपूर्णारक्तलोचना रमणी च स्वसौभाग्यसिन्दूरेण सह रत्नखचितं चषत् शिरोरत्नमञ्जली कृत्वा भारतमातुश्चरणयोरार्पयत्।

सत्यम्, ईदृशदेव्याश्चरणेषु प्रहोतुं देवास्तपोरता मुनयश्च लालायिताः।

एका वृद्धा स्खलन्ती एकेन हस्तेन वक्षसाश्लिष्टं चित्रं परेण च दण्डं दधती समेता। हिमश्वेता सा रुदत्यवोचत् "एतन्ममैकमात्रस्य पुत्रस्य चित्रमस्ति। अस्य पिता महापण्डितो विद्याव्यसनो मनस्वी निर्धनो युवावस्थायामेव देहमजहात्। तस्याभिमेच्छाऽऽसीद् यत्तस्य पुत्रो महान् विद्वान् भवेत्। शिक्षा परया निविडाऽऽसीत्, तत्कृत्या च पुत्रमानसे निम्ना दमनीया भावना न भवेचातोऽहं वनात् शुष्कं काष्ठं समानीय विक्रीणन्ती सुतं पाठयन्ती जीवन्त्यासम्। एकदा मम पञ्चदशवर्षो निर्भीकं भाषमाणो माणवकः शासनेनाबद्धः। एको गौराङ्ग आयुक्तः सह दशभिरन्यै राजपुरुषैर्मे शिशुमाहूयावदत्-"वन्दे मातरम्" न वक्तव्यम्। परं विक्टराव्हयोऽदम्यो [illegible] मे तस्याग्रे एव तारस्वरेण "वन्दे मातरम्" इत्यवदत्।

पदातिप्रवृत्तिरधिकारी कशयाऽऽहन्तुमादिदेश। विद्यालयस्य प्राङ्गण एव गात्र-[illegible] [illegible] कशास्तस्य कमलकोमले कलेवरे निपेतुः। एतदन्तरं माणव-कास्मिंस्तं भोजनमादायाहमप्युपेता। स वन्दे मातरमिति कथयन् भूमौ पतितः। तेन कदापि ताडनं नानुभूतमासीत्। तस्य त्वचो निर्गच्छद् रक्तं धरायां [illegible] शनैःशनैः "वन्दे मातरम्" वदन् स जीवनाञ्जलिं भारतमातुश्चरणयोरार्पयत्। [illegible] एव [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] प्रियतां बभार। [illegible] अर्धोन्मत्ता पश्यन्ती [illegible] [illegible] उन्मत्तेव [illegible] [illegible] [illegible] मूर्च्छिता। दिवसत्रयानन्तरं ममैतेन मम मूर्च्छा भग्ना। गौरी [illegible] [illegible] पुनःपुनर्[illegible] अभ्रमीत्। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] पुत्रं [illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—इति [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]म्। वृद्धाविरहेण वशी बतः स्फुटं रोदितुमारेभे। अश्रुतोतः नेत्रद्वारेऽस्मान्
[illegible]नान्धा बहिरगात्, धैर्यस्य कन्धः कम्पतो मग्नः। कायो मग्नः। विद्यानु मनस्विता
[illegible] च। मुर्ष्भितं तयोर्द्वयोः कोडे च प्रसुप्तमासीत्। वृद्धया चिरं शोकार्ता साचा
[illegible] परमोदारात् स्थापिते।

[illegible]वोचम्, ययमवश्यं सफला भविष्यतो यशेरस्य शरणागतदीनार्त्परित्राण-
[illegible] दिव्यो निवसन्ति, तद् भारते कथं विरंस्येत्? यामिः पतयः पुत्र भ्रातरः पितरः
[illegible] स्वाधीनतावेदिकायामारोपिता आहुताश्च, तासां भारत कथमवसादेत्?
[illegible] धावन्तौ युवतो मध्ये पतसताम्। अहमधोमूर्धा जननामथापदम् :—

[illegible] प्रथमे [illegible]ऽस्माकं भाग्यनिर्णयो भविष्यति। अस्मदवसानमनु
[illegible] [illegible] समीपतरमिति। अस्माकं जीवनप्रदीपः प्रातर्भमणी विलेष्यते,
[illegible] घटाकाशो महाकाश इव। परमस्मदीया विचारा विभ्रमिन् विमुन्धेरस्य-
[illegible] [illegible] [illegible]दिष्यन्ति। अस्माकं मुष्टिमेयं मरणं यदि विनश्येत,
न किम्। [illegible] [illegible] [illegible] सौजयः। तेन
[illegible] [illegible]। एवं सन्तुरोधं [illegible] यदेव [illegible]-
[illegible] [illegible] [illegible] भारतीयेषु [illegible] च स्वार्थं
[illegible] [illegible] [illegible] भविष्यति।
[illegible] [illegible] भावश्च चिरं [illegible]।

[illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—
[illegible] [illegible]। "[illegible]"

* * *

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

१ [illegible]। २ [illegible] ([illegible], [illegible])

समागमो यद्यपि सिद्धान्तविरुद्ध आसीत्, परमस्वजनरञ्जनाय, रङ्गन कारखाने म्रियमाणेभ्यो लोकभावनामधिकारिभावनाञ्च ज्ञातुं समागमनरहस्यं मत्वा विहितमनयाऽऽलस्याभावं गताः।

ग्रामसीम्नि कस्यापि समानशीलस्य धनिनो विशालं भवनं तेन स्वायत्तीकृतमभूत्। तस्य विशाले सभास्थले कुसुमकुड्मलाकारेषु पुण्डरीकसितेषु सहस्रशः काचभाण्डेषु उत्प्रभाः प्रदीपाः प्रद्योतन्ते स्म। अभितः वर्णवैचित्र्यभिदुद्दामाभिरप्सरोभिरधिष्ठित-मिन्द्रपुरीमनुकुर्वति सभास्थले नगरस्यानर्जितधना धनिनः कृषकोपार्जितधनाः समन्तात् उत्कोचिनो राज्याधिकारिणश्च कौशेयासनेषु बृहदुपबर्हपृष्ठाः मद्यं पिबन्तस्ताम्बूलं चर्वन्तः पतद्ग्रहे निष्ठीवन्तो धूममाकर्षन्त आसन्। मध्ये च विलासलीनः सलोमः।

* * *

गृहीतमुद्रेण द्वारपालेन बहिरेवासूचि यदुपस्थाता महोदयो गानसमाप्तिपर्यन्त-मेवान्तःपुरं प्रवेक्ष्यति, आलापेच्छा चेत् प्रतीक्षितव्यमेव। वयं कोणे कथञ्चन प्राप्तस्थाना हृदये शोकशल्येन विद्धा अपि गानमञ्चे उपविष्टाः।

अथैकाऽऽनखशिखान्तं रत्नखचिता नर्त्तकी निःसरदनन्तचन्द्रा पौर्णमासी विशेष मसृणा अनन्तचक्रतारासमायुक्तं पारावताम्बरं शिरसा वहन्ती स्यूतरञ्जननवनीतकौशेयकञ्चुका विद्युल्लेखेव मञ्चमुपेता। सा जानुभ्यामवनिं गत्वा बृहत् कमलकुड्मलं हस्तयो-र्विकास्य अञ्जलावादाय स्मितेन सितयन्ती सभास्थलं जनसाधुवादेन सार्धमुपस्थातु-श्चरणयोरार्पयत्। पार्श्ववर्त्तिनो ज्ञातं यदुपस्थाता महान् कलाकारोऽस्या गुरुरिति गुरुवन्दना।

अथ सा प्रविशद्भिरनेकैर्वैणविकैर्मार्दङ्गिकैरनुस्वरं प्रक्वणद्भिरनुगता हस्तौ भ्रमयन्ती विरचितपदन्यासा हन्वधः शिरसि मध्ये च हस्तं न्यस्यन्ती अङ्गुष्ठतर्जन्यौ परस्परं योजयन्ती मण्डलितचञ्चच्चण्डातका अलक्तकचित्रितहस्ततला विद्युदिव चञ्चलतया झणत्कृतनूपुरा कदाचन चूर्णकुन्तलान् स्पृशन्ती कदाचन झणझणायमानां रशनां प्रक्वणयन्ती कदाचन मुद्रया हस्तौ संयोज्य विभजन्ती उत्तरीयं हस्तयोरादाय वातवेगेन रतिध्वजमिव प्रसारयन्ती पादतलेनापि तालं रचयन्ती चक्षुर्मुद्रया विश्वं विमोहयन्ती पद्मविलासविभासितसौन्दर्यां मुद्राभिरेव गानस्यार्थमुद्बोधयन्ती सप्रभमुखी ओष्ठपुटा

भावं भानवमानसे उद्भिदयन्ती ग्रीवां मध्यञ्च चल्यन्ती कमलकुड्मलायितावुरोजौ
दी कज्जलाक्षी प्रलम्बकृष्णकुन्तला दीपशिखातिलका साङ्गविक्षेपं नृत्यन्ती
रभत :—

मम मनो व्याकुलम्

रात्रिन्दिवमलि ! मिलनं चिन्तत्। (स्थायी)

शीतः सान्द्रो वायुर्वाति

विद्युत् पत्या सह चाभाति

प्रोषितपतिका मुग्धा तरुणी

घनघोरघटां पश्यन्ती

भृशमेतद् ! उद्विजते।

मम मनो व्याकुलम् (१)

पृथ्याशादीपं दृष्ट्वा

अङ्गनमध्यमहो उपविष्टा

सज्जा भूषावेषाद्यं रलि !

द्रष्टुं श्याममुखं भृशमुत्का

सुविलम्बो मां तुदते।

मम मनो व्याकुलम् (२)

गुर्वाश्लेषणमधुरालापन-

हस्तस्पर्शैः प्रेमोत्पाद्य

चतुर्मेलं निद्रां हृत्वा

क्षराय न वाराः गणितुम्

प्रियतम ! स्वरमेहि।

मम मनो व्याकुलम् (३)

दमयन्ती हस्ताभ्यां नवनीतकन्दालमुत्थाय छन्नच्छन्नरुनझुनपुर प्रदर्शितोरकामकोटिं धरायन्ती विद्युल्लेखेव दाक्षिण्या आगतो भ्रमरकान् कोमलमलम्बामिरङ्गुलिभिर्मध्ये मध्येऽप्रसारयन्ती थरु थुन्यरु थुरुपादन्यासेन शिरसि मकुटमुद्रां रचयन्ती अपाङ्गे कर्णमूले नेत्रयोश्च हस्तं विन्यस्य त्रिविधभावं प्रकाशयन्ती मध्ये मध्ये स्कन्धमुन्नमयन्ती मोहिनीव रराज।

मध्ये भावोद्बोधनाय द्रुतविलम्बितां गतिमाश्रित्य आरात्तिकमुद्रां सा प्रकल्पयन्ती तदा भित्तिरिष्टकाश्चापि धन्यवादान् व्यतरन्।

मदोन्मत्त उपस्थाता सर्वेषां समक्षमेव प्रदर्शितानुरागस्तस्याः कम्बुकमनीये ददत्तकन्धरे सक्षावलिहारं स्वहस्तेनाबध्य हस्तमायोज्यान्तःपुराभिमुखं गन्तुमना अभवत्। एतत्सङ्केतेन सर्वं एवोत्थाय अपसरन्। अहञ्च कथमपि जनव्यूहं प्रतीर्य वपुषैव अनभ्यस्तदैन्योऽपि तं प्रसादयन्नवोचम् "स्वामिना समयो दत्तः" इति। परं मैरेयमत्तः वशीकृतकामिनीसमुपारूढगर्वो विगलितदन्तस्थ्यवदोष्ठोऽस्फुटवाक् भर्त्सयन्नाह—"अरेऽद्य नायमनेहा"।

अथाहं बहिरुपेत्य सहयोगिनः सूचयित्वाऽचलम्, द्वास्थः पुनरुपहाराय हस्तं प्रासारयत्। "एतादृशस्य धनिनो द्वास्थस्त्वं किमु अस्मान् खेदयसि? समुद्रे क्व बिन्दोः स्थानम्"? अहमवोचम्।

"क्वात्र धनम्। स्वामी प्रतिमासं पञ्चविंशतिमुद्राः प्राप्नोति शासनतः व्ययश्च प्रतिदिनं पञ्चशतम्। वर्षद्वयं व्यतीतम्, मासिकं मुद्रात्रयमेव न लभ्यते। शिशूनां पालनं भवादृशानां दययैव सम्पाद्यते" स उदतरत्।

* * * *

वयं समयात् पूर्वमेव न्यायालयमुपेताः। वाकीलस्यान्वेषणमारब्धम्। तत्र जनसमुद्रेऽन्वेषणमेव दुष्करं नवीनेन। परं तस्य लेखक उपलब्धः। सोऽवदत् यदयं गानवाद्यरसिको वाकील उपवनभोजने कस्या अपि गायिकायाः सम्मानभोजने सम्मिलित इति। पञ्चसहस्रमुद्राः गृहीत्वापि देशसेवकानां प्राणैः क्रीडा विचार्य मनो घृणया पूर्णम्।

न्यायालयो जनसमुदयेन परिपूर्णः। अप्राप्तस्थाना बहिरजिरे वृक्षाणामालवालेषु

स्थले व्यहरिष्याम्। समये भारतवर्षुन्यपिताः शासनाय विनियुक्ता नियुक्तैर्विप-रीतः सह व्यापारमकुर्वत। अभियुक्तानामनुसन्धानाय तेषां भारतीयः पक्षः। कस्ते दशा अथ किं परामृश्यते? पौरजनैरप्येषा समितिरभियोग-परीक्षा संस्कर्तव्याऽभवत्। तदा नियोजितो मदीयः प्रार्थनया मदस्साधिनी समितिरभियोगकार्यवहने भवेदिति। [illegible] विभिन्नस्थलेषु प्रस्ताव [illegible] निर्णये प्रतिनिधयश्चाभवन्। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] धीयते इति। पादविनाय श्रवणं स्वीकृतम्।

[illegible] तु मया कृतमासीदेव, अधुना प्रकृतेः प्रकृत्यैव हेतोः प्रतिदिनमर्थकः [illegible] एव धारयेति स्म। [illegible] ततः [illegible]। [illegible] अत्यन्तमधुना विचिन्तो भूतः।

[illegible] सर्वदा गंतव्य भावम्। एकदा [illegible] सह मम [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] स्म। [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] सर्वे [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] स्म। [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] स्म।

[illegible] [illegible] स्म। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] स्म।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

अद्य समस्मिन् नगरे सर्वेषु कर्मसु हरितालं[1] प्रसृतम्। नगरस्योद्बुद्धयो न्यायालय-मुपेताः। कारावासिनः सैनिकसुरक्षिताः समये समागताः। कारावासिनां सङ्ख्या अधिकाऽऽसीदतो दशैवागन्तुमाज्ञप्ताः। आगतमात्रा एव ते "वन्दे मातरम्" "जयतु स्वतन्त्रं भारतम्" "उत्क्रान्तिर्जीवतात्"—इत्युद्घोषैर्विष्णुपदमेव व्याकुलयामासुः। असह्यत्र्येयजनगलनादिना ध्वानेन न्यायसमितेरासनमेव दोलायितमभूत्।

कारावासिनः पुष्पमालाभिराच्छन्ना आयसं गृहमानीताः। भृतभुशुण्डीकानां सैनिकानां पङ्क्तिरभितः सज्जाऽऽसीदेव।

शासकीयप्राड्विवाकोऽभियुक्तानामपराधं पुनः श्रावयामास।

(१) अभियुक्तैर्मुग्धा जनता महाप्रतापं राजानं द्रुह्यन्ती कारिता। राजद्रोहः।

(२) सभायां बहवो वधा जाताः। नरहत्या।

(३) दुर्बलमनसां मनस्सु दुर्भावनां सङ्घर्षभावनायोत्पाद्य तेषां दुर्गतिरत्रैव प्रजानां दौःस्थ्यम्। आदिरादिः।

प्रतिदिनं होराष्टकमेतत्कार्यं प्रचलदासीत्। शतशः साक्षिणो भारतीया अपि स्वतन्त्रतासङ्घर्षिणां विरुद्धं मुद्रालोभेनानृतं वक्तुं सज्जाः स्थिरीकृता आसन्। अभियोगोऽप्यमादराभ्यो मेषेभ्य चलन्नासीत्। अपराधिषु बहवो राजपुरुषैः परुषं ताडिता देहमत्यजन्, केचन रुग्णाश्चिकित्सालयेषु न्यवसन्। शासनस्य विशालाः मुद्रा अधिकर व्ययिता आसन्। परं कार्यं निर्णयाभिमुखं नासीत्। अतः शासनेनैका विशेषा [illegible] [illegible]ऽऽसीत्। अतः सर्वं बलं सर्वः समयोऽस्मिन् कार्ये लग्न आसीत्। [illegible] [illegible]भियोगे जीवनं समेतम्। अन्ततोऽन्तिमं प्रतिसरीभागदिनमभ्युपेतम्। न्यायाधीशानां मण्डलं [illegible] [illegible]भिर्मण्डपमारोहन्[illegible] प्रलम्बेन भ्राम्यमाणं ग्रीवाबन्धनेन [illegible] मणिबन्धघटीं पश्यन् सम्मानिते उच्चैर्मञ्चे [illegible] यथास्थानमुपविष्टम्। सम्मुख एव [illegible] राजा आसन्। [illegible] [illegible]

---

1 [illegible] "[illegible]" [illegible]। नायं [illegible]। [illegible] [illegible]। २ [illegible]।

भ्युपेताः। अस्माकमाशावसहस्रमुदोऽपि कथमपि लब्धावकाशाः? स्खलदुपनेत्रः स्वेदस्नातः पुलकीकृतचतुरागतः। होरावतुष्टयं यावदन्तिमं प्रतिपरीक्षणं जातम्। नितिर्मोक्षमोचिनस्तर्का न्यायालयाजिरं मोदयामासुः। शेषेऽस्माकं त्रिविक्रमपण्डित सीत्। जनकरतलध्वनिना वर्द्धितवाणीप्रवाहः प्रचुरोत्साहः कृतसंनाहः स न्यायाधीश-मण्डलाभिमुखोभूत्वावदत्। सर्वे श्रोतारश्चित्रलिखिता इवाभवन्। यदा कदा जनकरतल-ध्वनिस्तान्बाधापमात्। तस्य भाषणस्य सारमिदमस्ति।

यदि कश्चन स्वभ्रातरं शिक्षयितुमुत्तुं स्वावलम्बनाय स्वोन्नत्यै वा प्रयतते स किं पराधः? देशं स्वतन्त्रयितुं सेवकसंघटने तेषां कर्मक्षमतोत्पादनश्च तेषां नैतिकमुत्थाने राजद्रोहः। शासनस्य प्रणालीं समालोचयन् स्वस्थचेताः किं द्रोग्धा? उत्कोचिनां र्थसाधनाय परान् पीडयमानानामधिकारिणां समालोचने किं राजद्रोहः?

असंख्याता नरा नार्यश्च कारासु निगडिताः, बहवो वसन्ता वीतास्तेऽथ ताभियोगा एव रासु सीदन्ति, राष्ट्रं तेषामायत्यै चिन्तितम्। भारतं स्वतन्त्रयितुं कष्टं सहमानेभ्यो यदि दण्डं दास्यते, यद्यपि तेऽधुना दण्डमेव भुञ्जन्ति बहुभिर्नृपैः कारासु कष्टं सहन्ते, तेनात्यधिका विरोधिनी भावना भारतीयेषु जागरिष्यति, येन शासनस्य महती हानिः सम्भाव्यते।

स्वोन्नतिः स्वातन्त्र्यं सर्वतः प्रथमो धर्मः। देशभक्तो देशोत्तरस्वार्थं यदि यतति तदा न कोऽप्यपराधः। अथ नागरिकाचारोऽयं सदाचारो गण्यते। अत एते निर्दोषाः। अफजलखानघातात्तस्मादाश्रित्य निःशस्त्रोऽपि शिवराजो राजनीतौ न क्वापि सापराधो र्गणितः। स्वोन्नत्यै कदाचन स्वधर्मसिद्धान्तप्रतिकूलमपि समाश्रयन् न द्वेषो गण्यते।

स्वातन्त्र्यं सर्वेषां जन्मसिद्ध ईश्वरप्रदत्तोऽधिकारः। स नरहत्यापराधी यः स्वेच्छया परान् लक्षीकृत्य मारकरूपेण प्रहरन् सफलो भवति। आश्चर्यम्। शासनविहिता हिंसा कोऽपराधस्वेषारोप्यते। सर्वा हिंसाः शासनीयराजपुरुषैः कृताः। अतो नास्त्ये-षामीदृशेऽपि दोषः। न्यायस्य मर्यादयामेते सर्वथाऽदोषाः। न्यायस्य परिपाट्याः पालनं न्यायालयस्य प्रधानं कर्म इति।

न्यायाधीशानां कृते सङ्कटमुपस्थितमासीत्। परीक्षणनीतिरप्येव तेऽभियोगतत्त्वं संस्थापयितुम्। तेन कस्यापि जनस्य प्रमाणितो नाभूत्। परं कथमपि ते दण्डमवश्यं दद्युरेव। त्रिराशी तेषां निरपराधोऽद्योषेण मुक्ता। निराशी दण्डसंस्कार-

मासेन पञ्चशती पञ्चवर्षकारावासेन दण्डिता। कारासु निवसतां दण्डः समाप्त
आसीत्, अतः सर्वे तत्क्षणमेव मोचिताः पौरप्रतिष्ठानस्य विशालं भवनमुपेताः जननेतृ
सोल्लासं सत्कृता रात्रावेव चित्रपुरमायाताः।

कार्त्तिककृष्णपक्षः। दीपावलीमहोत्सवो बहुभिर्वर्षैः रुद्ध आसीत्। मृत्युमुखं गता
कोऽवसर उत्सवस्य? सर्वे दीनवदना अल्पिताशा हतोत्साहा हीनहासा दृश्यन्ते स्म, दे
महोत्सववार्त्तैवार्त्तिकरी। सर्वेषु कारावासिषु मुक्तेषु राजाज्ञयोत्सवश्चक्रे। सुख-
कारिणां वस्तूनां महर्घता सम्पन्ना। तैरहोरात्रं गृहाणि धवलयद्भिर्भोजनवेलैव न लब्धा।
इतः पटरागिणां काष्ठरागिणामप्यभावः। सर्वेषां मुखे मनसि चानन्दः। सर्वे
करौ पादौ च परिमार्जने लग्नौ। गृहा अवकरनिकरव्याप्ता विपणयश्चापि समुद्-
मुद्गिरन्। पौरप्रतिष्ठानस्य भृत्याः सरणिसङ्करपरिमार्जनायां प्राचुर्येण व्यग्रा अनवरतं
महिषैर्गर्दभैर्वहन्तो व्याकुला आसन्। नगरे नवीनं जीवनं समेतम्। सुधालिप्तैर्हैम-
रागरक्तैश्चित्रचित्रितैस्तैलस्निग्धैः कवाटैश्च नगरं विचकास। मलिनं मालिन्यं क्वा
गर्त्तगतमभूत्। संसरणानि जननिरीक्ष्यतां भेजुः।

महालक्ष्मीरात्रौ प्रदोष एव गृहेषु विचकसुर्दीपावल्यः। विविधं न्यस्ता दीप-
पङ्क्तयो संसरणं दीपयामासुः। विलक्षणरागः प्रकाशः प्रकाशते स्म। कान्दविका
प्रसादयद्भिर्लालामाश्च्योतयद्भिः स्वर्णरजतपत्रलिप्तैः सवैचित्र्यं न्यस्तैः काञ्चनस्तूपा
मार्गैर्मिष्टान्नैर्विपणीः पूर्णयामासुः सौन्दर्येण। इतः फलविक्रेतारोऽपि दाडिमजम्बीरा-
स्तरञ्जितपिठरः पुरपानार्पयामासुः। वस्त्रापणिकानां विपणयोऽद्य प्रोज्ज्वलाभासैर्वसे
दीप्यन्ते स्म, येषु पञ्चप्रभां द्विगुणयन्तः प्रकाशा अवलम्बन्ते स्म। मनोहरमञ्जूषासु वि
स्वर्णरजतभूषणा भूषणविक्रेतारश्च चक्षुर्वञ्चयन्ति स्म। ताम्बूलिकानां विपणिष्वद्य मेला
इव लक्ष्यते स्म। तेषां वार्त्ताविचारा एव दुर्लभः। परिणामे परिदेविनो द्यूतदेविनश्च
राजाज्ञयाऽदीव्यन्। युगपद्वचनोद्भवस्तेषां कोलाहल आकाशमपि व्याकुलयति स्म
तेषु केचनाहसन्, परे उदासत।

अभितो वेदध्वनयः श्रूयन्ते स्म। विभविनां भवनेषु गायका गायन्ति स्म
रमणीभूषणशिञ्जितानि विश्रूयन्ते स्म। पटवासवासितवसनाः परस्परालापप्रहृष्टितप्रेमा
तुराः प्रेक्ष्यन्ते स्म। यथारीति सम्पन्नोऽभूदुत्सवः।

अपरदिने सभाभवने समासीनेष्वखिलेषु सामन्तेषु, प्रतिष्ठितेषु नागरिकेषु च, वाधितारकयन्त्रेषु च लग्नेषु एकस्मिन् स्वर्णासने स्थिते मयि सजायां च समज्यायां राजा राजसिंहासनादुत्थाय सभ्यान् सम्बोध्याब्रूत :—

प्रियाः! सभ्याः! विदितमेवैतद् यन्नगरजनमनःसरसिजविकासकरस्य वीरवरविरोचनस्य श्रीचन्द्रकुमारस्य स्वागतचिकीर्षया आभारप्रदर्शनमिषेणैतस्य महत उपकारस्य कृते किमपि देयमसमीक्षमाणाः केवलान् साधुवादान् दित्सामहे, इत्येव महोत्सवस्य विषयः। महत आनन्दस्यावसरो यत् श्रीचन्द्रकुमारो वीर्यविजितेन्द्रस्य श्रीनवेन्दुपालस्य पुत्रो विमलपुरनन्दननरेशयोश्च जामाता विद्यते।

प्राणप्रदाने प्राणदानमपि स्वल्पदानम्, परन्तु 'अदानान्मन्ददानं श्रेय, इति कृत्वा कामपि तुच्छां सत्कृतिं कुमारचरणरेणोराराधयामः। श्रीमन्तो जानन्ति यदस्माकं पूर्वो महाराजो मह्यं तेजोऽतिशायित्वेन पालकत्वाच्च राज्यं दत्तवान्, ते गुणा अद्य मयि हीनाः, उपनवतितया अहं प्रजाः पालयितुं सर्वथाऽसमर्थः। अतोऽहं राज्यं लोकस्य न्यासं सौम्ये सर्वधुरीणे समर्पयन्नमैकमात्रसन्तत्या राजकुमार्याश्चम्पायाः पाणिपल्लवमप्युपहरामि। अनेन कर्मणास्माकं पूर्वस्य राज्ञः प्रणाली पालिता भवति या नितरामुपयुक्ता इति।

प्रशंसतां जनानां साधुवादेन सहैव मन्मिउरसि छत्रं चामरयुगले च संलग्ने। ततः सल्लग्ने व्यूढा देयं चन्द्रिकाचयाञ्चितेव, नवनीतनिर्मितेव, मृणालमृदुला, सघनवटच्छायेव नवविदलत्कलितद्रुमावलीव शीतला, मन्दमुग्धस्मिता, शस्यश्यामला वसुधेव सञ्जीवनी, लावण्यलीलाविस्तारिणी, वीणावाद्यप्रवीणा, मुकुरविमलकपोला, हिमशुभ्रवदना, रुक्मिणी, सत्यभामाऽनुराधा त्वमिवापरा चम्पा। ततश्चैतद्दुर्गं प्राचीनं, जीर्णोद्धारेण नवनिर्माणेनाभिनवतां नीतम्। दैवात्त्वमपि लब्धचराप्यद्य लब्धा, पुत्रावपि।

सम्प्रति सुखी समृद्ध्या यशसा राज्येन स्त्रीपुत्राभ्यां त्वयैव समोदन्तः।

> श्रीविद्वद्रुचिरं नितान्तमधुरं वागीशवन्द्यं लस-
> शास्त्रं तन्त्रकृतश्च विद्रसिकपाणाग्याहितोऽगाद्भुवि।
> रम्यं मानिमनश्चिरं रमयतां तस्याष्टमोऽयं वचन्
> दूरश्चैतस्य भवेन्मयूखमहितोऽहीनो गुणैः सत्कृपः॥१॥

इति—

[illegible] सुसरसं सुरसमकान्तमनुपमं
मधुमात्मं [illegible] धीमद्ग्रन्थार्थिनः सुखदं
[illegible]
[illegible] गुणैः [illegible]

श्रीनिवासशास्त्रिणः

चन्द्रमहीपतिः निगदसमाप्तो विभागः।

सर्वसद्गुणसहिता धिया युक्ताः ये विद्वांसस्तेभ्यो रचितम्, सत्परमतत्त्वापि विद मधुरम्, सरसाख्यम्, अत एव धर्मार्थैरन्वितं किमपि यकत्—यकत् विशां रसिकानां च अर्हितचन्द्रमहीपतिचरितको ग्रन्थः भुवि शर्मिमनः चिरं रमयताम्। एतस्य ग्रन्थकर्तृत्वं च धर्मा पंचेशकोऽध्ययनशीलः, मधुरैरपि विविधैर्वचनैः मण्डितः गु अतएव गुणैः अहीनः=पूर्णः सतां कृपया यस्मिन् एवंभूतो भवेत्। तत्रयप्रथमो निगदः समाप्तः। पद्येऽस्मिन् श्रीनिवासशास्त्रिणा विरचितश्चन्द्रमहीपतिः—इतिवाक्यं निःसरति।

नवमो निःश्वासः

विद्वज्जनसम्पर्को नष्टेष्टज्ञातिदर्शनाभ्युदयः ।
कस्य न सुखाय भवने भवति महारत्नलाभश्च ॥

मीनवती नयनाभ्यां चरणाभ्यामपि प्रफुल्लकमलवती ।
शैवालिनी च केशैः सुरसेयं सुन्दरी सरसी ॥

अद्यापि तां कनकचम्पकदामगौरीं
पुल्लारविन्दनयनां तनुरोमराजिम् ।
सुप्तोत्थितां मदनविह्वलसालसाङ्गीं
विद्यां प्रमादगलितामिव चिन्तयामि ॥

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥

रचना विरच्यमानाऽनुपदं क्लेशयति नव्यवामेव ।
कालेन परिचिता सा सुकरा गलभूषणीकर्त्तुम् । अत उपसंहराम्येनाम् ।

शाकिधरो मनोमोदिन्या कुमुदिन्या प्रचितपलया चपलया साहसन्यक्कृतराजन्यया सरोजिन्या च सहितः समायातो राजनगरम्, स्वकीयं चन्द्रस्य च वृत्तं राज्ञः पुरो न्यवेदयत् । सरोजिनी बालारुणं विना प्रभातमिव मन्दमलयसमीरं विना कुसुमितवसन्त इव प्रेयांसं विना नाधिकमराजत, किन्तु किङ्कर्त्तव्यमित्यलं एकाकिन्येव मधूपारो स्पृष्ट्वा प्रासादं प्रविष्टा । चन्द्रविलम्बे शाकिधरस्य सरोजिन्याश्च विशेषतः शङ्कितमभूच्चेतः, परं परमविनोदिनोऽस्य सम्भाव्यते विनोदविलम्ब इति विचाय किञ्चिदस्थैर्यं बभूव मनः । मास ऋतुरयनम्, ऊनवर्षो वर्षं, प्रतीक्षायामेव व्यतीयुः । शतशः सूर्या उदिता निमग्नाः, सुदीर्घाणि अहान्यायुः स्वामानि बभूवुश्च । विशाला निशा राज्यं तेनुर्नेशुश्च, विटपा विचकसुः काष्ठमात्रयावतस्थिरे च । परं चन्द्रो न समायातः । महाराजो विचित्रप्रश्नैश्शाकिधरं प्रतिदिनं खेदयति ।

पुनः पटवः प्रेरिताः, पुनर्वियोगवारां निधेः शोकसागरस्य च प्रवाहोद्गाराः प्राबल्यं प्रापुः। मालिन्यं पुनर्मनुजमुखमण्डलान्यभजत। महाराजे मन्त्रिणा मन्त्रयति द्वाःस्थो युद्धविभागाध्यक्षागमनमसूचयत्। इङ्गितज्ञः स तं प्रैषयत्। स च त्रिः प्रणम्यासूचयत्—

'देव, महत्या सेनया राजनगरमधिगन्तुकामश्चित्रपुरेशः समेति। शतं शिबिकानाम्, प्रतिशिबिकं निष्कोषनिस्त्रिंशानां बलवद्वपुषां पदातीनां शतम्, भीशुण्डिकानां सादिनाञ्च त्रिशती, मदमत्तमातङ्गस्थायिनां द्विशती, भल्लकराणां नराणां चतुःशती। विज्ञानवशा असंख्यातयन्त्रा परा सेना, तस्या रक्षायै चाश्वारोहिणां पदातीनाञ्च दशसाहस्री। परा च मरुत्तरारूढा वस्तुजातरक्षायै पञ्चसाहस्री। सहस्रशश्च कर्मकराः सेवकाः पाचका निवेशकाः। प्रतिदिनं गव्यूतिपञ्चकं प्रचलन् वनाद्वनं कृतनिवेशः समायाति।'

राजा॰—दुर्दैवेऽविचारितागमना विपदः स्फीता भवन्ति। मन्त्रिन्, को विचारः?

मन्त्री—युवराजे गते सर्वत्र शिथिलता विद्यते विभागेषु, अस्यां स्थितौ सन्धिरेव गरीयान्।

राजा॰—नहि नहि, एतन्न भवितुं शक्नोति।

महाराज्ञो नवेन्दुर्वीर आसीत्। शक्तिधरप्रबलावपि गणनीयगुणाकरम्। एतेषां साहसगिरा निर्जीवानां मानसेऽपि साहसविक्रमाभ्यां समचारि। राजनगरमेवं जगद्विदितगौरवमासीत्, चन्द्रे गते शिथिलता तामजुगुहत्। तथापि समुद्रः दुर्भेद्यो मानसं गर्वविस्फारितं प्रमथयेव।

विभागाध्यक्षागमनेन, विद्युत्स्पर्शेनेव तेषां नवीना स्फूर्तिः समाजगाम। जलसेना जले विपद्ग्राहिणी च विद्यति, मरुत्तरसमूहश्च स्थले सज्जिता। 'स्वधर्मसैनिक[illegible]' सन्नाहं वर्द्धयामासुः। नगरमन्धतमसेन[2] परिचितं कारितम्। समुद्रे प्रकाश[3] स्तम्भानां प्रबन्धका नियुक्ताः। जलनिमज्जिन्यो[4] विस्फोटकपोताः युद्धाश्च[5] समुद्रे प्रसारिताः। परं पयोभिःकास्फोटकाः[6] पर्यटनार्थं प्रेरिताः। अट्टहा[7] लोहमयबला दुर्भेद्यदुर्गाणि[illegible] चागाद्धयामासुः। [illegible]

---

१ [illegible] २ ब्लैकआउट (Black out) ३ (Light-boxes) ४ [illegible] ५ [illegible] ६ टारपेडो (Torpedo) ७ टैङ्क (Tank)।

तैलक्लिन्धा बभूवुः। जगतीं सन्देहसिन्धौ जुघुक्षिन्तुं विषोद्गामका वमाः विस्फोटकवमा[1] नगरभस्मकर्मणोऽग्निवमा[2] शीघ्रविस्फुटनशीलाः,[3] समयापेक्षिण[4]श्च वमाः प्रचुरमात्रया निर्मिताः। गोलिकोद्गामिनीनां[5] शक्तिः परीक्षिता। नरसंहरणा विषाक्ता[6] अश्रुसारिणः[7] क्षावकाः[8] सोदोत्पादिनो[9] विसर्पसम्पादिनश्च गेषाः,[10] प्रभाव-प्रचारेणैव भुवं भीषयाञ्चक्रिरे। परप्रयुक्तान् गेषान् व्यर्थयितुं दुष्टवातोपरोधिका[11]-सङ्ग्रहः समारब्धः। परमसुन्दर्यो गानवाद्यप्रणयलीलाप्रदीपा वीणाकण्ठ्यक्षरतामावेदुः। [12]वार्तायन्त्राणि सैनिकवासस्य कृते नियन्त्रितानि। तारविभागे,[13] दूरालापयन्त्रविभागे,[14] [15]आकाशवाणीप्रेरकविभागे च राजनियन्त्रणानि स्थानवन्नुः। राजभवनानां धनिभवना-नामुपरि पार्श्वतश्च सिकतासंग्रहः समजनि। चिकित्सालयेषु विशेषचिह्नान्यङ्कितानि। शिशूनां स्त्रीणाञ्च कृते पृथग्व्यवस्था प्रारभ्यत। भूरक्षागृहाणि[16] प्रचुरमात्रया सत्वरसत्वरं निर्मितानि। वायुयानविघ्नकतोपाः[17] भविष्यत्प्रदेशकयन्त्रेण[18] उच्चतानिर्देशकयन्त्रेण[19] च संयुक्ता आश्चर्यकरं दृश्यं बभुः। वायुयानदर्शनाय प्रकाशीनि प्रकाशयन्त्राणि[20] आविष्कृतानि। तस्मिन् राजनगरे यानान्तरजालाः[21] प्रसारिताः। गुप्तभावप्रयोगाः

---

१ वमतीति वमः "टुवम् उद्गिरणे" 'पचाद्यच्'। विस्फोटयतीति विस्फोटकस्तस्य पदार्थस्य वमा इत्यर्थः। (High explosive bombs) २ दाहकवम (Incandiary bombs.) ३ पृथ्वीपर गिरते ही फटनेवाले Immediate bombs. ४ टाइम पर फटनेवाले बम (Delayed Action Bombs)। ५ मशीनगन Machineguns, ६ जहरीली गैस (Poisonous gases)। ७ रुलाने वाली गैस Tear gas। ८ छिंकने वाली गैस Nose irritant gas। ९ कुनकुन दर्द पैदाकरने वाली गैस Lung irritant gas। १० फफोले उत्पन्न करनेवाली गैस Blister gas। अत्र सर्वत्र गेषु अन्विष्यधातोरितरमात् घञि 'गेष' शब्दः। अन्विष्यता – अन्वेषण-मविकरणमितिवत्। ११ गैस के असर को न होने देने वाली टोपी Gasmasks। १२ वायरलेस। १३ तार। १४ टेलीफोन। १५ रेडियो। १६ जमींदोज खन्दक। १७ हवाईजहाज को नष्ट करनेवाली तोपें Anti Aircraft Gun. १८ जिससे यह मालूम होता है कि गोला जब वहां पहुंचेगा, वहीं जहाज भी होगा। १९ जहाज की लम्बाई मील, फीट, इंचोंमें मालूम करने का यन्त्र। २० अधिक प्रकाशवाली लालटेन। २१ बैलून बैरेज (Baloon Barrage) एकतरह का जाल, जिससे रगड़ लगते ही जहाज में आग लग जाती है।

सङ्केतलिपियथार्थज्ञापने नवां रीतिमनुसस्रुः । पक्षिणोऽपि श्वानोऽपि शिक्षामेत्य लक्ष्यमुद्दिश्य इन्द्रियज्ञाननिपुणा विविधमार्गप्रवीणाः लिपिजालसंयुता तत्तत्कार्यवहने[1] नियुक्ताः ।

लघवो युद्धपोताः[2] रक्षकपोताः[3] सहायकपोताः[4] औपचारिकपोताश्च[5] विविध-सम्भारैः सम्भृताः ।

अथ राजनगरस्य चत्वरान् चतुष्पथसमुदायानभितोऽभिनव आहवकोलाहलस्तन्यते । सोऽयं वारणार्थिनामीप्सितः कालो वर्त्तते । अलब्धमणिषु नवयुवकेषु किमु प्रौढेष्वपि सर्वत्र उत्साहो मुखरीभवति । सर्वेषां करौ शस्त्रसाधने लग्नौ स्वस्वशुभेच्छारूपिणा प्रेर्यते । परितो वीरतावरवचांस्युच्यन्ते श्रूयन्ते च । भटानां वीरभावो भेरीझङ्कारेण दुन्दुभि-ध्वानेन चतुर्गुणितो भवति । युद्धवाद्येन योद्धॄणां पादाः स्वयमग्रतश्चलन्ति । पूर्णौजसोऽत्यन्तोना अश्वा अपि रणकण्डूमपनेतुं सर्वप्रथमं जिगमिषया कृच्छ्रेण सादि-भिर्वार्यन्ते । मदमत्ताः करटिनो घण्टाघोषैर्विश्वं वाचालयन्तः प्रावृषेण्याः सविद्युतो वारिदा इव अभितो भ्रमन्ति । खड्गानां खणत्कारेण कुन्तानां प्रभया भुशुण्डिकानां तोपानां तुमुलेन शब्देन शङ्खानां ध्वनिना सर्वा दिशोऽद्य परस्परमालपन्त्य इव प्रतिभान्ति । सर्वोच्चदुर्गशिखरेऽभिमानलालिता जगन्मानिता कीर्त्तिलतेव विजयपताका फर्फरायते । मुकुरमनोहरे, निर्मलनिर्मले, प्रोच्चप्रोच्चे आकाशे हर्म्याणां कनककलशाः, विरोचनकिरण-कुलेन धौता इव विश्वं विहसन्ति । तत्र तत्र वातायनेषु स्थिताः सौभाग्यसुन्दर्यः कमनीयाः कन्याश्च पुष्पाणि पुष्पमालाश्च विकिरन्ति । यत्र तत्र वन्दिवृन्देन वीरवराणां वर्णना वर्ण्यन्ते । भगिनीभिर्भ्रातृभाला भूष्यन्ते । कश्चन संवर्मयति, इतरोऽनुलोमयति परोऽभिषेणयति ।

मन्त्रणामन्दिरे मन्त्रिणो मन्त्रस्यापक्षीणतामक्षीणयितुं सप्रयत्नाः प्रतीयन्ते । अभितः सतर्काः धृतद्विनलिकाः सैनिकप्रहरिणः सदर्पं भ्रमन्ति । एको दूतश्चित्रपुरनामा-ङ्कितपदकप्रतिष्ठ आगत्य प्रहरिणमसूचयद् यत् "स चित्रपुरेशस्य पत्रवाहकोऽस्ति

---

१ सैन्यार । २ छोटा संगी जहाज Sloop । ३ Escort ship. ४ Auxilary Vessels. ५ Hospital Ship.

महाराजं दिदृक्षते" इति। प्रहरी च तं प्रहरिगणाध्यक्षाय न्यवेदयत्, तद्वृत्तं सभाध्यक्षं राजानमबूबुधत्। स च तस्यागमनं दूतागमनविधिनानुमेने। अखिलनिबद्धपट्टिकः स परितः असंख्यसभ्यावलीपरिवृतां परिषदं उपगम्य महाराजं ददर्श। यत् कुङ्कुमैर्नाति-तोऽर्धतनोरुत्थितः शाखेषु गुम्फितो मुक्ताफलैः, अनुमारस्य यदि चामरवर्ण इव शोणद्रवाणो राजा राजते। तत्र विः प्रणम्य जननैर्दैविविधभावसभ्रमया वीक्ष्यमाणः पत्रं प्रददौ। महाराजः पत्रं गृहीतोऽथलौकस्य मन्त्रिणं पठनायादिदेश। अनन्तरमधोमुखस्य प्रहरी हरौ राजानमप्यधावत्।

धीमत्सेनापतिसावलिताशक्तसकलग्रन्थदेदीप्यमानवर्णिततमाधिपदिव्यमौक्तिकगुच्छगुम्फगम्भीरसद्विहितविनिर्मितसौधसमस्तमानम्, अक्षतसाधनभूयुगमुखपरम्परादृग्गणेषु गुण्डितदीर्घदीर्घिदिरपेषु प्रतप्तमणिमयमाणेषु धौरितूवरणेषु तादृशं हानेहे सभाम्बरगुरमानं प्रचमति।

श्लोकः
चित्रयुग्मम् } भवतो गुर्वधीरगुणः प्रभुतः कल्पः।

अथ अनायासं पर्वतेश्वरेति कुशलेविवधिरतेषु पौरमध्यवर्तिनश्चित्रिता विवक्षन्तु वीरमन्त्रेषु प्रथमार्थे च राजत्व पत्ररहितेन सह मन्त्रिणं एवमपृच्छत्—

"कुशलो वर्धमानो महाराजः?"

"अथ देव।"

"भवने च शिवराज?"

"अथ देव।"

"नगरोऽपि सर्वमेव कुशलम्?"

[सर्वमेव सर्वत्र कुशलमस्तीत्युक्त्वा विरत इव] "अथ देव।"

"किं भवतः देवस्य विश्वासपात्रमस्ति भवतामपेक्षत एव?"

"अथ देव!"

"विश्वासे एव स्थास्यति किन्नामः?"

"अथ देव!"

"तदा किमस्मत्सत्क्रियामपेक्षते सः ?"

"आं देव !"

"तर्हि सूचय वयमाधारयामः ।"

"आं देव !"

"किं चन्द्रेण 'आं देव'—इत्येव कथयितुं नियुक्तः !"

"आं देव !"

वार्त्तैव परिवर्त्तिता । ईश्वरनारायणयोराम्रनिम्बयोः, दीनारकपर्दयोः, सुभिक्षदुर्भिक्षयोः युद्धसन्ध्योरिव भेदो बभूव । शत्रोरभिमुखं प्रयात्री महती सेना चन्द्रस्वागत-चिकीर्षया प्रोज्ज्वलमानसा बभूव । कर्णाकर्णिकया क्षणेनैव समाचारः सर्वत्र प्रसृतः । मलिनमुखे नगरान्तरे विलक्षणा दीप्तिरागता । सर्वे सम्मिल्य पताकाभिः संवरणैः परिमलविकिरन्दामैर्मालिकामालाभिर्द्वारस्तम्भैश्च पुरं पुरन्दरपुरयामासुः ।

* * *

हीरकपञ्जरस्थकीरगिरा विघूर्णिते प्रासादे स्वस्थान्यामासीना राजमाता । मिलत् भज्यमानानां आम्रमानानां विकसतां पुष्पलतानां सौन्दर्यं भवनमीरभराशाय धीरधीरः समीरो विहरन् विस्तरितुमिव वाति । सरोजिनी च सख्यपि सखीशने हर्म्यपृष्ठे परमप्रेमप्रवृद्धप्रणदा स्वयमेव लघुना व्यजनेन व्यजयति । कलकलितकोशा कुमुदिनी च शिशिरनी नैपुण्यशिक्षणे निमग्नचित्ता प्रथमाद्दुरधिष्ठात् पार्श्वं तथा हर्म्यस्य रचना सौन्दर्यं दीर्घ्यं द्वाराणि व्यवस्थानपेक्षते । सैव हर्म्यरक्षायै अधिकृता । शतशो दासदास्य आज्ञया परितो भ्रमन्ति । एका दासी तस्याः कर्णान्तिकं शनैरवोचत् । स च सरोजिनीम् ।

सरोजिनी—पुनः कथयसि वा व्यामोहः ?

कुमुदिनी—व्यामोहः ! महाराजमुखात् श्रुतम् ।

सरोजिनी—किं श्रुतम् ।

कुमुदिनी—दीपवपुरोऽस्यैव तव सौभाग्यचन्द्रः समायाति ।

सरोजिनी—[illegible] ।

कुमुदिनी—(सस्मितम्) [illegible] !

सरोजिनी•—श्रूयतां राजसभासंवादः ।

*　　　　*　　　　*

योजनदीर्घः समारोहोऽयं नगरसंसरणानि व्यापत्। हर्षवर्षप्रसन्ना भूमिरिव कारामपि विरहितवृत्तं चकार। तोपानां निनदेन दिशोऽपि विज्ञपिता।

समये राजभवनं प्रविश्य अभ्यर्चितपितृपादः पितरं मोहमुग्धमुखीं मातरञ्च ननाम चन्द्रः। प्रणेमतुश्च हर्षभुवनेशी।

अथ सरोजिनी कविकामिनीव कृशा प्रोच्चविचारा कमलां प्रणम्य प्रश्नशतेन कुशलमपृच्छत्। कमला च कमनीयाङ्गुल्या चम्पां निर्दिशन्ती सर्वमसूचयत्। क्षुण्णमानसा सरोजिनी च प्राणप्रियाणामेतां विपत्तिं संश्रुत्य नाशक्नोद्रोद्धुं बाष्पाणि।

*　　　　*　　　　*

"देव, महतो दुःखस्य विषयः, महामात्यो विद्याधरः संन्यासाक्रान्तोऽकस्मादगच्छद्" -कृष्णवस्त्रेण भृत्येन महाराजो नवेन्दुर्न्यवेदि।

"हाः विद्याधरो दिवं गतः, अद्यैव मया सह बहुशो राष्ट्रिययोजनास्वालप्य गतोऽत्र हन्त! कीदृक् क्षणभङ्गुरमिदं शरीरम्, कीदृशो व्यामोहः, धनीविरामिकीनं वयः, सुतः परमसुन्दर्योऽप्सरस इव वध्वः सोदर्या इवाकलहाः मृदुलस्वभावाश्च, प्रियतिसा पादभ्रमणविपुलप्रतिभश्चन्द्रः सुभगौ पौत्रौ, सुव्यवस्थञ्च राज्यम्, तथापि नाहं रक्षुमुत्सहे, अनन्तेयं मोहनिद्रा हन्त!

"भृत्य! यानमानीयताम् शीघ्रं मां गुरुसमीपं प्रापय—' नवेन्दुना प्रोक्तम्।

*　　　　*　　　　*

"गुरो! कीदृगयं संसारः कथमस्मादावर्ताद् बहिर्गन्तुं शक्यते"?

राजन्, अज्ञानमेव बन्धनम्। अजानन् यथा पुमान् अन्धकारे भ्रमन्ननुभवति दुःखं तथा न जानन्। ज्ञानमेव मोक्षः, अज्ञानमेव बन्धनम्। सृष्टिरियं मायाविनिर्मिता। नात्र सुखम्। पुमाल्लोकसुखच्छाया भ्रमन् दुःखलेशानेति। सुखं तु केवलं भगवत्तत्त्वानुसन्धानम्। स्वनगरैकान्ते निवसन् मदुक्तविधिना ध्यानप्रवणो न चिरेण प्राप्तव्यमधिगमिष्यसीति मे विश्वासः

*　　　　*　　　　*

"वन्द्य पण्डित, किं नाम मन्त्रः"?

"महाशय ! मां जनाः के. के. शास्त्रीति भाषन्ते" ।

"के. के. शास्त्रीत्यस्य कोऽर्थः" ?

के. के.॰—अर्थन्तु भाषका एव जानन्ति, परं लोके भाष्यते मन्नामैतत् सैनिक !

सैनिकः॰—(सहासम्) एतदेव पृच्छयतेऽनर्थकं सार्थकं वैतत् ?

के. के.॰—को जानीते ।

सैनिकः॰—कः = ब्रह्म व जानाति ?

के. के.॰—(अनपेक्ष इव) सम्भाव्यते ।

सैनिकः॰—(सादरम्) मर्षणीयार्यः । उत्कण्ठाकलितचेतसा पृष्टम् ।

के. के.॰—केचन कविताकामिनीकान्तः, परे च कमलाकान्त इति सरूपं प्रकाशयन्ति ।

सैनिकः॰—आ एवम् । आकृत्यनुरूपम् (किञ्चिद्विरम्य) किं क्रियतेऽत्र महानुभावेन !

के. के.॰—किं क्रियते, अस्मिन् काले किमपि कर्त्तुं शक्यते ? कः पृच्छति पण्डितान्, कोऽद्य पिपठिषति संस्कृतां वाचम् । दोहासवैयारचयितृणामल्पज्ञानां केवलं कण्ठमधुरिम्णा मोहयितृणां तथाकथितानां नवीनानां कविम्मन्यानामद्य सम्मानः । साथ जगद्व्यापाजनन्यपि विश्वेनोच्यमानापि विभिन्नरूपेण, मृतभाषेति शस्यते म्लेच्छभाषाविद्भिर्नेत्रहीनैः । संस्कृतज्ञानां सुदुस्तरतरा दारिद्र्यापगा प्रतिदिनमेधते । यया प्रसेव्यमाना मानमहोदधिचराश्चक्रवर्त्तिभिरपि प्रत्यहमर्च्यमानचरणयुगलचराः सम्प्रति अविगणय्य अम्बरमध्यगणितगभस्तीन् खेदस्नाताः प्रतोलीतः प्रतोलीं पर्यटन्ति बचक्नवः ! येऽञ्जलिजलमात्रतुष्टास्तपोधना राज्ञोऽपि बाहीकृत्य देलुः, सक्रोधेषु येषु लोकपालानामपि त्यक्तस्थैर्यधैर्यं मनः, त एते प्रक्षीणतपोवैभवा अज्ञातजातीनां धनिनां गृहेष्वनाहूता यान्तो विना प्रणाममाशिषं वदन्त उद्गारे जृम्भणे च 'चिरञ्जीव' इत्यादि भणन्तो मिथ्याचरणध्वाङ्क्षायन्ते ।

असारपोतकौचयुताधिगतधनाश्चरित्राचारविरहिता धनिनश्च समुद्रफेनसुधाकरकारण्डवाण्डपटलायितसितद्वितशीतवसनविभूषिताः कुन्तलतैलपरिमलेन भवनमामोदयन्तःसद्वारलमोदीराः शीततापनियन्त्रकेण सेव्यमाना राजतपादपेषु मञ्चेषु स्थिता

वेषमिव तत्रभवन्तः स्वयोत्साहकान् वदंश्चाथ मग्नमानान् भर्त्सयन्ति । धर्मरक्षकाः प्राप्तान्वे-षणत् क्षत्रियाः, परं तेऽधुना मांसि मद्ये च शौर्यं चिन्तयन्तो निजा [illegible] पयन्। मन्तोऽनुनीता आलाः [illegible] परस्परविरोधविनाशितधरा दिशा [illegible] कुर्वन्तरेषां पुत्रोत्सवे सम्मानं लभन्ते ।

राजानश्च [illegible] न लभन्ते दुरावरा [illegible] ।

सैनिक, विविधवर्णिनोऽयं [illegible] राज्ञोऽपि भिक्षुकान् करोति, धर्ममूर्तीन् हरिभक्तादीन् [illegible] निष्कास्य [illegible] रौद्रदर्शी च मरभोमिव [illegible] ।

[illegible] नगरेऽस्माकं गुरुरामदासो [illegible] प्रयद्-[illegible] समदर्शितामावहति । [illegible], बहुः प्रतिज्ञा अनेन [illegible] [illegible] परमगुरुणा मधुना [illegible] कथं स्मरेत्, [illegible] कथं [illegible] [illegible] ।

सैनिकः—सत्यं देव ! एतदेव कारणम् । यत् भवतो हृदयेन [illegible], [illegible] । अहं [illegible] [illegible] विधीर्येत । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वाद्यम्, यत् [illegible] [illegible] । स च भवतो न च [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible]

पूर्वं पुरुषाणामाशया स्त्रियोऽधुना च ता एव वर्मं दक्षिणयन्ति। प्राचीनानां वालि यथा तथैवाधुनिकानां धूर्त्तता।

नवीनाः सम्प्रदायाः प्रतिदिनं प्रेक्ष्यन्ते। जगति जागरूकदम्भारम्भा जना जठरपूरणाय अविवेकिजनवञ्चनाय सुतरां स्वपरिवारपूर्त्यै मिथ्यासत्प्रचाराय च नव सम्प्रदायं प्रचारयन्ति। नवीनत्वञ्च प्रचलितविपरीतत्वम्। जगत्प्रचलितस्य सम्प्रदाय व्यवस्थापका जटिला मुण्डिनो वा, अतो नवीनैः केशा लुञ्च्यन्ते, प्राचीनाः स्नान्ति वन परोपकाराय प्रेरयन्ति च, नवीनाश्चाक्लान्तो मातापित्रोरपि सेवां कदर्थयन्ति। चन्द्रमुख कमलिनीकमनीयतनुलताः कदलीकोमला बालिकाः परलोकतारिण्यादिसदैवाद्भुतैः प्रवञ्च वचोभिः प्रलोभ्य यौवने पदमर्पयन्त्यः प्रार्थिता अनेकैर्वरैः प्रथिताः पृथुगुणैः केश विलुच्य वासःपट्टिकां मुखे आबध्य स्नानज्ञानाचारसंस्कारान् सर्वथा परित्यज्य केव विषयनिरतैः (केवलिभिः) छद्मधर्मगर्त्तेषु पात्यन्ते।

के० के०—अक्षरशः सत्यं कथयसि।

सैनिकः—भगवन्, जगतः स्वाभाविक एष धर्मः। नद्याः प्रवाहोऽपि नैक स्थापयितुं शक्यते, किं पुनर्मानवानां चञ्चला प्रवृत्तिः। विचाराः प्रतिक्षणं परिवर्तन्ते। अस्तु, अहं देवस्य परिचयं श्रोतुकामः।

के० के०—स्वल्पीयान् कविरहमस्मि, सोऽहमधुनाऽस्वस्थ इति गृहीतावकाशो गृहे निवसामि।

सैनिकः—तर्हि श्रीमन्तः कवितामपि तन्वन्ति॥

के० के०—आम्, कदाचित्कुतूहलपरवशः।

सैनिकः—किंविषयिणीं देव!

के० के०—को विषयः, यस्यावसरः समापतेत्, स एव विषयः।

सैनिकः—गुरो! जगज्जालोद्विग्नं चेतः साहित्यचर्चां चरितुमीहते। यदि नास्ति भवतो वेलाविलम्बः, यदि चेमं साहित्यसुधयाऽनुजिघृक्षन्ति, तर्हि पूरयन्तु ममाभिलाषम्।

के० के०—क्षत्रिय! कः संसारविहारी एतस्माज्जगज्जालादुन्मुक्तोऽस्ति। महता अप्यस्मिन्नसौ गुम्फितं बद्धाः, परं साहित्यचर्यां चरितुमीहास्ति चेद् मृदि कं विस्मयमधिरत्व रत्नं प्रसादयामः। त्वमस्माकमद्याभिनवः साहित्यातिथिः।

सैनिकः—गुरो ! सायं समयमेवाधिकृत्य कापि सरसा मनोमोहिनी स्वान्तः-प्रसादनी रचना भवेत् ।

के० के०—यतिष्ये । गद्यं रोचते उत पद्यम् ।

सैनिकः—भगवन् ! पद्यम् ।

के० के०—श्रोतव्यं तत् । अहमस्य समयस्य शब्दचित्रं भवतः पुर एवावतारयामि—

सुखदशारदपौर्णिमचन्द्रमःसुविशदप्रभभास्वरविग्रहाम् ।
अवहुदर्यनुरक्तकृतौ ध्वनीं विपुलविघ्नमचिन्त्यगुणां नुमः (१) ।

सुखं ददातीति सुखदो यः शरदि भवः शारदः "ऋत्वण्" शारदः पौर्णिमचन्द्रस्तद्वत्सु-विशदप्रभः—उज्ज्वलकान्तिः, भास्वरश्च विग्रहो यस्याः सा ताम् अवहुदर्शि भक्तस्य कृतौ-रचनायां विघ्नसमूहम् अपसारयन्तीं अनिर्वाच्यगुणां कामपि नुमः ।

जिगमिषुर्दिशि पाशभृतः पयोरपहरन् कमलश्रियमीक्षितः
परिचितैरिव लज्जितमानसः समभवत् परिरक्तसिताकृतिः (२) ।

पाशभृतः—वरुणस्य, दिशि—पश्चिमायां, जिगमिषुः—गन्तुमिच्छुः पयोः सूर्यः, परितो रक्तश्चासौ, सिता आकृतिर्यस्य स समभवत् । कमलानां श्रियं—शोभां अपहरन्, परिचितैः—लोक-लोकैः ईक्षितः—दृष्टः, अतएव लज्जितमानस इव । अपहरणसमये दृष्टः सर्वोऽपि लज्जते । अयञ्च सहस्ररश्मिरमुष्मिन् क्षुद्रगर्ह्ये कर्मणि प्रवृत्त इति महल्लज्जास्पदम् । लज्जितस्य मुखं रक्तं सितं च भवतीत्यनुभूतम् ।

सकलवासरतिग्मरुगातपव्यथितकाय इवोज्ज्वलितोऽग्निना ।
जलनिधाविव मङ्क्तुमभीहते कमलजातविशोकविभाकरः (३) ।

कमलजातविशोकी चासौ [illegible] एव सूर्यः । अग्निना उज्ज्वलित इव पहिरपथः प्राकृतो नर इव, [illegible] तिग्मरुचा आतपेन व्यथितकायः—दुःखितशरीरः [illegible] त इव ।

[illegible] ।

[illegible] ति वा (४)

इनः = सूर्यः । अमगे वीक्षितं = दृष्टं, पापकदम्बकम् = अनाचारसमूहं, गमयितुं = वर्जयितुं, मुनितां = मुनिभावं, मयितुं = प्राप्तुं, गिरिगुहाम् = अस्ताचलदरीम्, उपविश्य = आसन्नं परिकल्प्य तितप्सति = तप्तुमिच्छति ।

खरमात् (जातं) कुलं = स्वकुलं = सूर्यवंशस्तेन वर्द्धितो यो वार्धिः = समुद्रः (षष्टिसहस्रसगरसुतास्तं मृगयमाणैरेव खनितः—इति पौराणिकाः) तं वा उपैति ।

उपतटोद्गतपादपमञ्जुले किसलयारुणिते नववञ्जुले
विशदवारिणि वार्धितटे शुचावयि ! विधित्सति सान्ध्यविधिं रविः (५)

रविः, तटस्य समीपं उद्गतैः = उत्पन्नैः पादपैः मञ्जुले = सुन्दरे । किसलयैः नवपत्रैररुणिते, नवाः = नूतनाः वञ्जुलाः = वेतसा यत्र, शुचौ = विशुद्धे चन्दनैः रवादितिभावः । विशदं वारि यत्र तथाभूते वार्धितटे = समुद्रकूले, सान्ध्यविधिं विधातुं = कर्त्तुमिच्छति इव ।

क्षितितले कमला भवतां प्रिया युवकराजकवाञ्छितसुस्मिता ।
इति निवेदयितुं जलशायिने त्वरितमस्तमगादिव भास्करः (६)

क्षितीति—"युवैव युवकः, राज्ञां समूहो राजकं "गोत्रोक्षे ति वुञ्" तेन वाञ्छितं अभिलषितं सुस्मितं यस्याः सा भवतां प्रिया = भवतां प्रियेव सुन्दरी कमला, क्षितितले मर्त्यलोकेऽस्ति—इति जलशायिने भगवते विष्णवे निवेदयितुं इव भास्करः = सूर्यः त्वरितं यथा स्यात्तथा अस्तमगात् ।

सैनिक० । शास्त्रिन् ! केयं कमला ।

के० के० । कवयो हि नाम केवलकीर्त्तनपरा वस्तुनः सौन्दर्यमुद्गिरन्तो निर्दूषणं दोषभाजोभवन्ति, अम्भोजनिरिवाम्भसः । कापि भवेत् कमला ।

सैनिक० । तदैव निस्तारः । अस्तु, प्रकृतमनुसरन्तु ।

उपगतेऽपगति जगदक्षणि विपुलगर्वसदर्वविघूननान्
गगनसंसरणात्परिमार्जितं निपतितं पततीन्दुसमं रजः (७)

जगतोऽक्षणि = चराचरस्य नेत्रे भगवति सूर्ये, अपगतिं = अस्तं प्राप्ते, विपुलगर्व-
सौ सदर्वा = श्रेष्ठाश्वस्तस्य विधूननात् = कम्पनात् निपतितम्, इन्दुसमं = कर्पूरतुल्यं
:, गगनमेव संसरणं = राजपथस्तस्मात् परिमार्जितं सत् पतति। श्रान्तोऽश्वः
ीरं विधूनयति।

> उदरदर्पविनाशकृतश्रमाः शुककपोतमयूरपिकादयः।
> कथयितुं दिनदृष्टमिवाद्भुतं विविशुरेत्य कुलायचयांस्तरून् ॥८॥

उदरस्य "नाहं केनापि पूरणीयं भवामि" इति यो महान् दर्पस्तस्य विनाशे =
ाशे कृतः श्रमो यैस्ते शुकादयः पक्षिणः, तरून् = स्वाश्रयान् वृक्षान्, एत्य
नदृष्टमद्भुतम् = आश्चर्यं परस्परं बालेभ्यो वा कथयितुमिव कुलायचयान् विविशुः।

> अगरुतः शिशवोऽशनयान्विताः सकणचञ्चुपुटानथ वीक्ष्य तान्।
> विदधते विरुतम्, नवपत्रिताः शकुनिभिर्विटपाः सुषमामिव ॥९॥

न गरुत् येषां तेऽगरुतः = अपक्षाः, अतएव शिशवः = बालाः पक्षिशावकाः। अशनया =
बुभुक्षया, अन्विताः = युक्ताः, सकणं = अन्नकणसहितं चञ्चुपुटं येषां ते, तान् पक्षिणः,
ीक्ष्य दृष्ट्वा, विरुतं = कलरवं विदधते = कुर्वन्ति। अथ विटपाः शकुनिभिः = पक्षिभिः
ाकारिभिः, नवपत्रिताः = सञ्जातनवपत्रा इव सुषमां = परमां शोभां धारयन्ति।

सैनिकः—साधु! पण्डित! साधु! वस्तुतः कविताकामिनीकान्तोऽप्यसि। कवीन्द्र!
ुभूतोऽस्येकस्मिन् विषये, पुनरिमां पूरयित्वा अनुगृहाण विलक्षणार्थां समस्यां "दिनकरे
जनीकरतां गते।"

:० के०—(क्षणं नभो विलोक्य) शृणु—

> प्रचलितेऽह्नि, तमोलिहि भास्करे कमलिनीवलनादिव संस्थिते।
> मुखरितं विहितं विभिरावनं दिनकरे रजनीकरतां गते ॥१०॥

अह्नि = दिने प्रचलिते, तमोलिहि = तमोहन्तरि भास्करे = सूर्ये च, कमलिनीवलनात् =
लिनीसङ्कोचात्, 'वल' संवरणे ल्युट्, संस्थिते इव = मृते इव दृश्यमाने, अत एव दिनकरे
ेः, रजनीकरतां गते प्राप्ते, विभिः = पक्षिभिः, आ = समन्तादवनमवनं मुखरितं =

माचालितम्। निशाकरणे सूर्यस्यापि अस्तमयनेन साहाय्यम्, अतो दिनकरस्य रजनीकरत्वं युक्तम्।

लघुषु पुष्परथेषु कृतस्थिति भ्रमति वृन्दमिदं रमणीजुषाम्।
विमलमाल्ययुजां सुहृदामितो दिनकरे रजनीकरतां गते ॥११॥

दिनकरे रजनीकरतां गते लघुषु = स्वल्पेषु, पुष्परथेषु=सुखभ्रमणार्थेषु रथेषु "रथं "वग्धी" इत्याख्यातेषु "असौ पुष्परथश्चक्रयानं न समराय तत्" इत्यमरः। कृता स्थितिः तत्, रमणीजुषां = स्त्रीपरिग्रहशालिनां वृन्दं=समूहो भ्रमति। इतश्च विमलमाल्ययुजां = निर्मलस्रजां सुहृदां = मित्राणां वृन्दं भ्रमति।

अरुणिते सुरवर्त्मनि तारकाः बृहतिकाङ्कितशुभ्रकुशेशयाः।
वसुरिवाततनुभास इनद्विषो दिनकरे रजनीकरतां गते ॥१२॥

दिनकरे = सूर्ये, रजनीकरतां = अस्ततामिति यावत्, गते प्राप्ते, इनद्विषः = सूर्यविरोधिन्यस्तारकाः, सूर्ये उदिते एता निष्प्रभा भवन्ति अत एताः सूर्यं द्विषन्तीतिभावः। अत एवाततनुभासः = प्रोज्ज्वलाः। अरुणिते = लोहिते, सुरवर्त्मनि = वियति, बृहतिकायां = उपर्याच्छादनवस्त्रे, अङ्किताः रक्तस्वर्णसूत्रैर्चित्रिताः, शुभ्रकुशेशयाः = सितकमलानीव बभुः।

वियति मौक्तिकवृन्दमिवाततं रवितुरङ्गमकण्ठतलाच्च्युतम्।
विपुलभं भमलं प्रतिभात्यदो दिनकरे रजनोकरतां गते ॥१३॥

सूर्येऽस्ते विशिष्टप्रभं नक्षत्रवृन्दं रवितुरङ्गमाणां = सूर्याश्वानां कण्ठतलाच्च्युतं वियति = आकाशे, आततं = विस्तृतं मुक्तावृन्दमिव भलं प्रतिभाति।

कमलिनो मलिनो समभूदरं कुमुदिनो मुदिनो भ्रमरैः समम्।
सरसिका रसिकाचितभूमयो दिनकरे रजनोकरतां गते ॥१४॥

दिनकरेऽस्ते कमलिनी = नलिनी, अरम् = शीघ्रं मलिनो समभूत्। सरसिकाः = सरस्यः रसिकैः = भावुकैः, आचिता = व्याप्ता भूमयो यासां ता अभूवन्।

अहनि कार्यकदम्बभृशाकुलं जनकुलं शयनीयगृहं गतम्।
नभस आविरभूत्सुमहत्तमो दिनकरे रजनीकरतां गते ॥१५॥

सूर्येऽस्ते, अहनि = दिने, कार्यकदम्बेन = कर्मसमूहेन, भृशमाकुलम्, नरकुलम् शयनीय-गृहम् = स्वावासं गतः। नभसः सकाशात् सुमहत्तमस्त्वाविरभूत्।

क्षणदया विततं स्वशिरोंऽशुकं रजतपुष्पयुतं कृमिकोशजम्।
गगनमृक्षगणेन विभात्यदो दिनकरे रजनीकरतां गते ॥१६॥

सूर्येऽस्ते, अदो गगनम् = आकाशम्, ऋक्षगणेन तारकासमूहेन क्षणदया = रात्र्या, रजतपुष्पयुतं कृमिकोशजं = कौशेयं स्वशिरोंऽशुकम् = उपरिवस्त्रं विततमितीव विभाति। धन्वदेशे स्त्रियः कौशेयं रजतपुष्पाङ्कित "ओढना" पदवाच्यं उपरिवासो दधति इति।

कनकदामहिमांशुसुचन्दनैर्विहितकल्पन एप महेश्वरम्।
अभयदं भजते क्षितिनिर्जरो दिनकरे रजनीकरतां गते ॥१७॥

दिनकरे रजनीकरतां गते = प्रदोषे, एषः क्षितिनिर्जरः = भूदेवः, कनकदाम = धत्तूरस्रक्, हिमांशुः = कर्पूरः, सुचन्दनः काश्मीरागुरुप्रभृतैः विहिता = कृता कल्पना पूजनसामग्री येन सः अभयदं महेश्वरम् = शिवं भजते।

यमदमैर्विमलं गतवासनं नियतशान्तिजुषो विदुषो मनः।
झटिति संश्रयते विभुमव्ययं दिनकरे रजनीकरतां गते ॥१८॥

नियतशान्तिजुषः = निर्बाधां शान्ति दधानस्य विदुषः = ज्ञानविज्ञानसम्पन्नस्य यमदमै-र्विमलम्, यमदमाभ्यां मनसो विमलकराणि सर्वाणि साधनान्युपलक्ष्यन्ते। वासनारहितं मनः प्रदोषे झटिति अव्ययं विभुं श्रयते।

जपति मन्त्रपवित्रकुशासने वटुजने हरिणाजिनधारिणि।
समुदगात् कुमतेरपि सन्मतिर्दिनकरे रजनीकरतां गते ॥१९॥

सूर्यास्तसमये मन्त्रैः पवित्रे कुशासने हरिणानामजिनं = चर्म धारयति तच्छीले वटुजने = ब्रह्मचारिजने जपति सति = जपं कुर्वति सति, कुमतेरपि = नास्तिकस्यापि शोभना बुद्धिः समुदगात्।

स्मरति योगिजने विधुशेखरं मलिनकर्मजुषामपि मानसम्।
द्रुतमहो! परमात्मनि सङ्गतं दिनकरे रजनीकरतां गते ॥२०॥

सूर्येऽस्ते योगिजने विधुशेखरम् = शिवं स्मरति सति, मलिनकर्मजुषां = निन्दितकर्मसेविनां मानसमपि अहो ! आश्चर्यम्, द्रुतम् = शीघ्रं परमात्मनि सङ्गतम्।

नदति वाद्यवरं सुरमन्दिरे कनककुम्भविभूषितसानुनि।
प्रविदधत् किल दुष्टजनव्यथां दिनकरे रजनीकरतां गते ॥२१॥

कनकस्य = सुवर्णस्य, कुम्भैः = कलशैर्भूषितं सानु यस्य तस्मिन् सुरमन्दिरे, दुष्टजनव्यथां प्रविदधत् = प्रकुर्वत्, वाद्यवरं नदति।

पिपठिषुर्निजपाठ्यसुपुस्तिका ज्वलयितुं किल दीपमयोमयम्।
विशति सत्वरमग्निगृहं वटुर्दिनकरे रजनीकरतां गते ॥२२॥

सूर्येऽस्ते निजपाठ्यसुपुस्तिकाः = पठनीयपुस्तकानि पिपठिषुः, अयोमयं दीपं ज्वलयितुं वटुः = ब्रह्मचारी सत्वरमग्निगृहं विशति।

किरणकर्मकरैः परिशोधिते क्षणदया वितते तिमिरे घने।
विपुलभं प्रतिभाति वियद्वपुर्दिनकरे रजनीकरतां गते ॥२३॥

दिनकरे = सूर्ये रजनीकरतां = चन्द्रतां प्राप्ते सति, प्रकाशकत्वेन चन्द्रस्य तेजोदानाच्च। क्षणदया = रात्र्या वितते = विस्तारिते, घनतिमिरे किरणकर्मकरैः किरणकर्मचारिभिः शोधिते वियतः = आकाशस्य वपुः विपुला भा यस्य तथाभूतं प्रतिभाति।

विरहिणां प्रचुरार्त्तिकरः शरः विहितसालसचौरजनाकरः।
वितनुतेऽतनुतेजसि सत्वरं दिनकरे रजनीकरतां गते ॥२४॥

अतनुतेजसि = विपुलतेजसि दिनकरे गते सति, विरहिणां = स्त्रीवियुक्तानां प्रचुरार्त्तिकरः = विपुलव्यथाप्रदः शर इव। विहितः = कृतः सालसः चौरजनाकरो येन, चौराश्चन्द्रिकायां सालसा भवन्ति, तथाभूत एव चन्द्रो रजनीकरतां सत्वरं यथा स्यात्तथा वितनुते विस्तारयति। दिनकरभयादिति भावः।

मदनमोदकरो वनितावतां धवलरश्मिभिरन्धमधो नयन्।
द्रढयतेऽतुलकान्तिविधुर्निजां दिनकरे रजनीकरतां गते ॥२५॥

दिनकरे गते = सूर्येऽस्ते, अतुलाकान्तिर्यस्य तादृशो विधुः, वनितावतां = स्त्रीमतां,

मदनमोदकरः—स्मरकरः, हर्षकरश्च, धवलरश्मिभिः—शुभ्रकिरणैः, अन्धं—तमः, अधो नयन् निजां रजनीकरतां—निशापतितां द्रढयते ।

अलकमञ्जुनिकुञ्जतिरोहितद्विजपतिः प्रथिताभसुविग्रहा ।
झटिति सज्जति विश्वजिगीषया दिनकरे रजनीकरतां गते ॥२६॥

दिनकरे रजनीकरतां गते—सूर्येऽस्ते अलकानां मञ्जुनिकुञ्जे तिरोहितो द्विजपतिर्यया सा, प्रथिता आभाऽस्ति एव सु शोभनो विग्रहो यस्याः सा कापि झटिति—क्षणमपि नातिवाह्य विश्वं जेतुमिव सज्जति ।

सैनिकः०—अल्पितधिषणधिषण ! गुरुवर ! साधु,

भवति यच्छविमत्कमलाकरे नयति यत्कमलापतिरर्चने ।
ग्रहपतेर्विरहे मलिनं हि तत् कमलजं कमलं कमलाकरे ॥२७॥

कम्—जलम् अलयति—भूषयति तत् कमलम्, कमलजं—पयोजं, कमलाकरे=लक्ष्मी-हस्ते, छविमद् भवति । यत्कमलं कमलापतिरर्चने—पूजने नयति, तदेव कमलं ग्रहपतेः—सूर्यस्य विरहे मलिनं कमलाकरे—ह्रदे वर्त्तते । नापरं स्थानं विधित्सति ।

अथ वियोगजनिर्वद ! कोकयोः प्रियवियोगमहोत्कटशोकयोः ।
असुखमेति सुखात्परतः सदा नियतिसिद्धमिदं जगति ध्रुवम् ॥२८॥

प्रियवियोगेन महोत्कटशोकयोः कोकयोः—चक्रवाकयोः, वियोगजनिः—वियोगोऽभूत् । सुखात्परं सदा दुःखमुपैतीति नियतिनियमः ।

गणिकया गणिका सुषमान्विता गृहगवाक्षनिधापितकूर्परा ।
पथिचरान्नयनेन विकुर्वती धवलिते वियुधायन इन्दुना ॥२९॥

वियुधायने—आकाशे, इन्दुना धवलिते—प्रकाशिते, गृहगवाक्षे निधापितः—कूर्परो यया सा, गणिकया—"जूही"पदवाच्यपुष्पेण सुषमा—परमाशोभा तयाऽन्विता गणिका, पथिचरान् पथिकान्, नयनेन विकुर्वती—विकृतिं नयन्ती विद्यते ।

सुललनामणिनूपुरशिञ्जितं वलयमङ्कृतयोऽमुसोद्गताः ।
कुमुदबान्धवशोभितदिग्व्रजे न पुरुषस्य हि कस्य हरन्ति हृत् ॥३०॥

कुमुदबान्धवेन = चन्द्रेण शोभितयासौ दिगम्बरस्तस्मिन्, सुलक्ष्मणां मणिखचितद्रुपुराणां शिञ्जितम्, भट्टानां = शिरोरुहाणां, मुखेन = द्वारेण, उद्गताः = निःसृताः, वल्गन्भङ्ग तयश्च कस्य पुरुषस्य हृद् = मानसं न हरन्ति ? अवश्यमेव हरन्तीतिभावः।

सैनिकः—साहित्यामलसरोराजराजहंस ! कवीन्द्र ! धन्या भवन्तो य एवमद्वितीयमकरन्दमोहिभिः पीयूषमयैः काव्यालापविनोदयन्ति मनः। नानावास भवादृशां साहित्यावताराणां समागमाः सागमानां सम्पद्यन्ते।

के० के०—सेनापते ! बहवो जगति काव्यकलाकलापकलापिनः किल। येषां काव्यमूर्तीनां मादृशास्तु छात्रत्वेऽपि न मताः। परन्तु सरणिरियं प्रत्यहं प्रशीयमाणा।

सैनिकः—गुरो ! चित्रालङ्कारपूर्णां कवितामपि तन्वन्ति भवन्तः ?

के० के०—तस्याः काव्ये गडुभूतत्वं मतमाचार्यैः।

सैनिकः—भगवन्, तेषां रचने वैदुष्यं तु परीक्ष्यते एव भवेन्नाम गडुभूतत्वम्। सोऽपि रस आस्वाद्यः।

के० के०—आकर्णय—

सैनिकः—आमवहितोऽस्मि। देव ! सान्ध्यविप्युचितोऽयं कालः। तथा यतनीयं यथा देवानां स्तुतिरपि सहैव भवेत्।

के०के०—अस्तु, एवमेव यतिष्ये। अयं सर्वतोभद्रः शिवस्तवः—

देवं कुशं शङ्कु वन्दे रंहतां ककतां हरम्।
कुनाम्बरं रम्वनाङ्कुशं सरं व्यव्यरं सशम् ॥३१॥

कुत्सितान् = दुष्टान्, श्यति = तनूकरोति यस्तादृशं देवं = भगवन्तमुमापतिं, शङ्कु = दण्डवद् वन्दे। किम्भूतं–रंहतां = वेगवताम्, अविचार्य कुर्वतामितियावद्, ककतां गर्वं कुर्वतां "कक लौल्ये" लौल्यं गर्वश्चापल्यञ्च। अनुदात्तेत्वलक्षणमात्मनेपदमनित्यमिति ज्ञापकात्। हरम् = नाशकम्। सशम् = कल्याणसहितम्। कुत्सितं न अम्बरं यस्य तम्, रमन्ते = क्रीडन्ति ते रमः = विलासिनः "रमतेर्विच्" तेषां वनस्य = समूहस्य अङ्कुशमिव। सरम् = संसारं प्रति, अरम् = शीघ्रं भक्तस्य विपत्समकालमेव व्यवी = विधिर्योऽस्यसौ, रक्षकः।

अर्म्या तुमो भासमाना यान्धवाद्गुभादिमा ।
तुवाममा नात्वभासमोदमानाननाऽऽशुभा ॥३२॥
रसासाररसामन्दकासारां समसामताम् ।
तां मसामसुसाहित्यां शंमरांररसाहिताम् ॥३३॥

सुगमम्। पूर्वमर्द्धयमकम्, द्वितीयो मुरजबन्धः। तां भासमानां – तेजसा ज्वलन्तीम्, अर्म्या – देवी उमा। बन्धो बन्धनं तत्सम्बन्धी बान्धः स एव वादः गृहस्था-श्रमरूपो वादः तस्मै शुभा – श्रेष्ठा, आदिमा च। नुतां – प्रणमतां जना-श्रवर्तिनो, नाल्वभावं – विपुलो भस्ते मोदमानाननं यस्याः सा आशुभा। आशु – शीघ्र-प्रसादशीला भा यस्याः सा।

रसानां – शृङ्गारादीनां य आसारः – धारासम्पातः स एव रसो जलम्, तस्य अमन्द-कासारां – महाजलाशयरूपाम्, समसा – असत्वेन, समताम् – अर्थपूर्णाम्। मा लक्ष्मी अस्यास्तीति मम् – शोभासम्पन्नम् "अर्श आद्यच्" इत्यच्। सामम् तेन सु – शोभनं, साहित्यं यस्याः सा ताम्, शं – सुखं मिमीते एभिरिति शम्मराः – रसाः, "रमेरन्" तावामरोति "अम रोगे, शिच्" शम्मरान् – विष्णु, तं रान्ति – आददते, इति शंमराः – उत्तराश्रितेषां रसेन – प्रेमरसेनाऽऽहिता – स्थापिताम्।

मारतो विषमा धाम्नःपामाद्दसकाठिना ।
मालिका देग्धुमा गेया यागेऽमागमतो रमा ॥३४॥
महेशायामनयनां नमामो जगदम्बिकाम् ।
महेशाधनयनां समाप्त्यां जगदम्बिकाम् ॥३५॥

सुगमम्। पूर्वं यमकम्, अपरत्र श्लोकार्द्धयमकम्। वयं महेशस्य पत्नी – सुन्दरे बदने यस्याः – सा तां नमामः। अमद् अम्बरेषु – श्रेष्ठेषु दग्धपुरम् श्रेष्ठं – शुभं, बन्धेषु बसे अग्रतः च ताम्, सर्वेषु – श्वेषु, सर्वां – सम्पत् "स्वोऽरे दम्भरन्" इत्यत्र। अर्थेन मनसः – त्रिपुरेश्वरपत्न्याम् – समवर्तमानाम्, सा दयालो दिव्या – विरहिता। यत्तया सुन्दरेषां मध्ये सरस्वत्या – एतेषां सर्वां – द्वन्द्वेषां भक्तिः एव निश्चिता च, बन्धौ च। ते श्रद्धेया इदं यावत्सम्पत्तेषु मध्ये –

इति मेदिनीकोशः । मालिका — जगद्धारिणी "मलधारणे" देवी — देवनशीला जगतः संसारस्य, क्षमा — सहवर्त्तिनी शक्तिरूपेण, यागे — पूजायां गेया — 'सर्वं वास्यं ... [illegible]' प्रथमं गणनीया, रमा — उत्कृष्टरूपा एवं भूता या उमा तां नमामः ।

पालिका जीववृन्दस्य लये महति कालिका ।
कापि माता सतां मान्या भवे जयति विश्वपा ॥३६॥
पाकशासनसम्मान्याऽनन्तदेवमहाधिपा ।
पाशाबद्धपापिपूरा पाथोजाङ्घ्रिसुपादुका ॥३७॥

सम्बन्धः । जीववृन्दस्य — प्राणिमात्रस्य पालिका — रक्षिका । महति लये — महाप्रलये कालिका — क्षयकर्त्री । पाकशासनस्य — इन्द्रस्य सम्मान्या, अनन्तदेवानां — असंख्यातानां सुराणां महाधिपा — अधीश्वरी, पाशेन आबद्धः पापिनां पूः — समूहो यया सा । पाथोजं — कमलं तद्रूपम् अङ्घ्रयोः सु — शोभने पादुके यस्याः सा, विश्वं पाति रक्षति सा, सतां मान्या — पूज्या कापि — विलक्षणा माता भवे जयति — सर्वोत्कर्षेण वर्तते ।

श्रीर्या नित्यं कुशवासं भेजे चन्द्रसमानना ।
मनोरमकलाधारां तां नुमो धीवरां चितः ॥३८॥
सततभ्रान्तकमलो हंसः शान्त्यै भवेद् ध्रुवम् ।
दैत्यवृन्दशिरोहर्त्री श्रीवरा नो दिशेद्दिनम् ॥३९॥

सर्वत्रान्वयः । युग्मकम् । या चन्द्रसमानना यस्याः सा श्रीः — शोभाशालिनी कुशे वासो यस्य तं कृष्णं भेजे — सिषेवे । तां मनोरमाणां — इच्छानां [illegible], [illegible] वयं नुमः । सततं भ्रान्तं कमलं येन तथाभूतो हंसः ध्रुवं शान्त्यै भवेत् । [illegible] इति [illegible] । श्रीवरा — श्रेष्ठा दैत्यवृन्दस्य शिरोहर्त्री [illegible] दिनं दिनं दिशेत् — दद्यात् ।

रमा या मारमायामा क्षमा श्यामा क्षमान्विता ।
उमा [illegible] हे मानः ! मानमाधर ॥४०॥

[illegible] । हे [illegible] ! या त्वं [illegible] — [illegible], "[illegible]" [illegible] ।

मायायाश्च असमा = सहवर्त्तिनी। "अमा सह समीपे च"। रमा = लक्ष्मीरूपा। क्षमा = तद्रूपा, श्यामा = सदैव युवतिः। दमान्विता, प्रेम्णि = प्रेमविषये असमा वामा, नास्ति समस्तुल्यो यस्याः सा वामा उमा = पार्वतीरूपिणी त्वं मानमाचर = विधेहि।

मुक्तिवर्ये! मुरारिस्त्रि! मुक्तोपेतमुखाम्बुजे!
वामावर्येऽव कृष्णास्त्रिप्रिये! पूतपदाम्बुजे ॥४१॥

चक्रबन्धः। हे मुक्तिवर्ये! मुक्तिदाने श्रेष्ठे! मुरारेः स्त्रि! मुक्तैरुपेतं मुखाम्बुजं यस्याः सा तथाभूते! वामासु वर्ये! कृष्णश्चासौ अस्त्री = अस्त्रकुशलस्तस्य प्रिये! पूतं = पवित्रं पदाम्बुजं यस्यास्तथाभूते! मां = तव शरणागतं अव = रक्ष।

सततं नम्यते या श्रीरस्तु सा नितरं पवा।
वारेण योगिनीनां सहिता मा नितराममा ॥४२॥

धनुर्बन्धोऽयम्। या श्रीः सततं नम्यते, सा योगिनीनां वारेण = समूहेन सहिता, मा = माता, नितरां पवा = अत्यन्तं पावनी, नितराममा च = अत्यन्तं समीपवर्त्तिनी चास्तु।

सैनिकः—एकदा देव! देशभ्रमणोत्कोऽहं विद्वन्मतल्लिकाक्रान्तकाशीं भगवतस्तारकतारयितुर्निःस्वार्थमुक्तिप्रदस्य विश्वनाथस्य पुरीं गतः पूर्णपुरीमन्नपूर्णां शिरसाभिनम्य, जगदघौघनाशनसङ्कल्पायां त्रिभुवनवन्द्यायां महेशोत्तमाङ्गसङ्गायां गङ्गायामखिलं मलं विशोध्य, भैरवदण्डं कालभैरवज्ञानम्य, भवं विध्याय, वृन्दारकवाणीसुधासतृष्णः कवितोत्कः कस्यापि कवीन्द्रस्य भवनमगमम्। दृष्टवांश्च पद्ममष्टदलाकारं यदभितोऽष्टदलाग्रेषु कर्तुर्नामापि न्यस्तमासीत्।

के० के०—आम्, आम्, भवन्ति तादृशा अपि बन्धाः। तानपि शृणु—

श्रीर्यस्य धच्छन्मुखचन्द्रदैन्यशा नितान्तरम्या मुदभाजिनी स्त्री।
वामेतरः स्यान्मुरदैत्यघातुकः स श्रीपतिर्मे मुदमावहच्छविः ॥४३॥

पद्म कमलबन्धाः। यस्य विष्णोः चकन् = विलसन् मुखचन्द्रस्तेन दैन्यम् = शोकं श्यति = तनूकरोति सा, अत एव नितान्तरम्या, मुदभाजिनी = हर्षप्रिया। रम्यापि यदि हर्षं बाधते तदा तया किम्? श्रीः = लक्ष्मीः, स्त्री = पत्नी। स मुदमावहन्ती छविर्यस्य स

तथाभूतः, एतेन सौन्दर्यं व्यज्यते, मुरदैत्यघातुकः = मुरहन्ता, एतेन वीरत्वं गम्यते। स श्रीपतिः = विष्णुर्मे = मम वामेतरः = दक्षिणः = अनुकूलः स्यात् = भूयात्।

श्रीशङ्करः कामरिपुः शुभस्पृशा नितान्तमव्यान्मखनाशकोऽक्ष्णा।
वामेतरः स्यान्मददो कदम्बकसमृद्ध ईड्यो मदमत्तशीर्विः ॥४४॥

कामरिपुः = श्रीशङ्करः, मखनाशकः = दक्षयज्ञविध्वंसकः, अक्ष्णा = अक्ष्णनुरः, शुभस्पृशा नेत्रेण मां नितान्तमव्यात्। मदं = हर्षं ददतां कदम्बके = समूहे समृद्धः, मदेन मत्तानां = दृप्तानां शीर्विः = हिंसक ईड्यश्च अस्माकं वामेतरः = दक्षिणः स्याच्च।

श्रीद्रौहिणामाशु विनाशकर्कशा निश्शेषदेशेऽशुभनाशिनी स्त्री।
वामाभिरामाऽऽशु निहन्ति दैत्यकसङ्घं नुमस्तां शुचिना हतो रविः ॥४५॥

या वामासु = स्त्रीषु, अभिरामा = सुन्दरी, श्रीद्रौहिणां = समृद्धिद्वेषिणां आशु विनाशे कर्कशा, या च निश्शेषदेशे = सर्वत्र, आशु = शीघ्रमुपद्रवसमकालमेव, अशुभनाशिनी = अकल्याणहन्त्री, अथ च दैत्यकसङ्घं निहन्ति। यया च शुचिना = शृङ्गारेण "शृङ्गारः शुचिरुज्ज्वलः" रविः = सूर्योऽपि हतः = अपतेजाः कृतः। तां नुमः।

श्रीभास्करो दीप्ततनुः समस्तशा निश्शङ्कमव्यात्ततकान्तिरक्ष्णी।
वारेण रश्मेस्तमसां व्यपोहकः समः समेषां तरुणारुणो रविः ॥४६॥

श्रीतुल्यां भासं करोति अतएव दीप्ततनुः तता = विस्तृता कान्तिर्यस्य तादृशः अक्ष्णी, रश्मेः = किरणस्य, वारेण = समूहेन, तमसां व्यपोहकः = नाशकः तरुणारुणः समेषां = सर्वेषां समः = तुल्यः, रविर्मां निश्शङ्कम् = असंशयम्, अव्यात् = रक्षतात्।

श्रीर्यस्य हस्तीशमुखस्य दुःखशा नित्यं गतास्ते शरणं शुभा स्त्री।
वामः खलानां शरणं नु मेचकसर्गो नुतोऽल्पाशयविघ्नजागृविः ॥४७॥

यस्य हस्तीशमुखस्य = गजाननस्य, दुःखं स्यति, तादृशी जगद्दुःखहन्त्री, शुभा = पतिव्रता स्त्री, श्रीः = ऋद्धिसिद्धिरूपिणी, नित्यम् = सततं शरणं = सेविकात्वं गता = प्रकाशते। स खलानां = दुष्टानां वामः, मेचकसर्गः = चित्रविचित्रावयवः अधस्तान्नरत्वा-... गजत्वात्। अल्पाशयाः ये विघ्नास्तत्र जागृविः = जागरूकः। मे शरणमस्तु।

सैनिकः—आश्चर्यम्! शाब्दिन्! भवदपि तस्य चित्रमेव पुरः स्थापयति। विलक्षणो भवतोऽभ्यासः। देव! किमाख्यं वृत्तमिदम्!

के० के०—इयमुग्रमालिः। यद्यपीन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्राप्रभृत्योः समानाक्षरयोरुग्रमालिः प्रयुक्ता प्रसिद्धा च, परं समुत्कर्षेनेनोद्धार्यमाणानां वर्णानामियं नवीनोग्रमालिः। "एवं विलक्षणाऽपि मिश्रिताम्०—इत्यादिना तस्या विधानात्।

सैनिकः—आ एवम्। गुरो! हारबन्धे नाम समगच्छेयाम, तदा मुक्तोमनं स्यात्, यथा कस्याश्चन नायिकाया गलेऽर्पितमिव। यदि सम्भाव्यते तर्हि भवतैव गीतगुणायाः सुन्दर्याः कमलाया एव गलेऽर्पयताम्।

के० के०—उक्ते हारबन्धे तु नाम न समेष्यति, परं परस्मिन् षट्पुटके हारबन्धे समेष्यति। शृणु, श्रावयामस्तावत्—

मिथ्यारम्भेऽतिकान्तिप्रतिमसमसमष्टी मुग्धे मुक्तमुद्रा,
ऐन्द्राविद्रावदक्षे! हृदयहृदयदरे! दस्तु कस्तां कलौ कः।
मन्येऽमन्दं मदेनं विनयानतविहन्ये हृदेरां भ्रान्त्या।
शम्भावे! भास्वभासे! मणिमयमधुरे! धुर्यधुर्ये! स्तौमि॥४८॥

कविः कमलां विशिनष्टि हारबन्धेन। अयि! कान्ते! [illegible] आनन्ददर्शिनि! कमले! मिथ्यैव [illegible] वर्तते, [illegible]—विपुलभयं, प्रतिमा—तुल्या, समा—सर्वं, समष्टिरेव तत् [illegible] मुग्धे। एकः सौन्दर्ये सर्वं जगत्, एकस्तस्यानुपमेयम्, इमदं समर्पयति भवः। [illegible] मुग्धे [illegible] मुद्रं—हर्षं गच्छति [illegible] मुक्ता भवति। [illegible] हृदय-[illegible]। अयि! ऐन्द्रि [illegible]! [illegible]—[illegible] [illegible] स दैव—[illegible], "[illegible]" [illegible]—[illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] हृदे! मनोज्ञे! [illegible]—[illegible] [illegible] दरो दुर्गं यस्य तस्याः! दस्तु [illegible] कलौ मुग्धे को [illegible] कर्ता [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] इति भावः। अयि! [illegible] मदे! [illegible]! "[illegible]" "[illegible]" इत्यमरः। [illegible] भाव: [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]-

निर्माणादिति भावः। तथा मणिमयैः—मणिखचितैराभूषणैर्मधुरे! वे मुख ममन्दं—विपुलं मलेनं—तमोराजं प्रति, विनशनकृतिः—विनाशनम्, तत्र कृत्ये कर्मणि कृतेशम्—विहितेशं मन्ये—जाने। चन्द्रनाशस्य तमोऽपि त्वन्मुखं नाशयति। त्वं प्रहृष्टं शं—कल्याणं दधाति तादृशी। अयि! धुर्याणां—सौन्दर्ये अग्रगण्यानां धुर्ये! प्रथमगणनीये! अहं त्वामेव स्तौमि।

सैनिकः—अहह! पण्डितसार्वभौम! कवियशस्विन्! (स्वकीयां मुक्तामालां शाखिश्रेणो गले पातयन्) धन्योऽसि! शोभनं विरचितवानसि। नामपरिपाटीं तद्गुणानपि वर्णयन् वैचित्र्यमाश्चर्यं च कृतवानसि। (परितो वीक्ष्य) अनुमीयतेऽसौ याम इव गतो यामिन्याः।

के०के०। आम्, इयानेव प्रतीयते। चन्द्रचन्द्रिकया पुनर्दिवाभूता रात्रिः।

सैनिकः—आम्। अन्यत्किमपि श्रावयिष्यते?

के०के०—(वक्षसि दृष्टिं क्षिपन्) अये! इयं कुतो मयि दृश्यमाना देदीप्यमानमणिवर्णा [illegible] महार्हा माला।

सैनिकः—(गद्गदमनोहमानोऽपि) गुरुवर! एषा [illegible] श्रीमता [illegible] दत्तेन, कविकुलरत्नैरभिनन्दिते ध्यानविषयीकृता।

के०के०—अस्तु, शुश्रूषा चेदन्यच्छ्रावयामः। [illegible]

सैनिकः—श्रोतुं समुत्सुकोऽस्मि देव! महतीयं कृपा।

के०के०—शृणु,

नुमः प्रदात्री गुणभूषणा मां नुमः प्रदात्री गुणभूषणा माम्।

नुमः प्रदात्री गुणभूषणा मां नुमः प्रदात्री गुणभूषणा माम् ॥८६॥

[illegible] प्रदात्री—प्रदानशीला, गुणा एव भूषणानि [illegible] [illegible] अथ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

कलाऽभिमणस्थानाः, तेभ्यः सन्वन्ति — शर्म ददति ते गुणभूरयो विद्वांसः "सनोतेर्विच्" तेषां गुणभूरणां — विदुषां छवे प्रदात्रीं मां — मातरं नुमः। गुणभुवन्भूरन्ति ते गुणभूरयः 'ऊष(?) इच्छायाम्' क्विन्, तेषां गुणभूरणां — गुणस्थानन्ताऽधमानां प्रदात्रीं — प्रकर्षतयाऽवखण्डनशीलां मां देवीं नुमः।

चिन्तामणिमातचितप्रसादसमुज्ज्वलाङ्गां स्तुम ईशायामाम्।
चिन्तामणिमातचितप्रसादसमुज्ज्वलाङ्गां स्तुम ईशायामाम् ॥८०॥

समुद्गयमकम्। चिन्तामणिः — अभिलषितवस्तुदं रत्नम्। तस्य मातेन — समूहेन चितः — निर्मितो यः प्रसादः — प्रसन्नता तेन समुज्ज्वलान्यङ्गानि यस्याः सा ताम्, ईशायामाम् — शिवप्रियां स्तुमः। अथवा — इत्यपः शब्दः, [illegible], स येषामस्ति तेऽमितः — शाब्दिकाः, तेषां मतेन, मतं प्रतिज्ञा-[illegible] तदेव मतं, तेन चितः — उत्पन्नो यः प्रसादो नैर्मल्यं तेन समुज्ज्वलां, चिन्तां — स्मृतिरूपाम्, मां — लक्ष्मीम्, ईम् — लक्ष्मीं स्यन्ति ते ईशाः प्रधनतया(?) [illegible] यामां — प्रतिपूज्याम् स्तुमः।

सासिः सिसा सासिसासा सासुमूः सेः ससासमोः।
सासासी सासुसा साऽऽम ससेंऽसासिः ससाससा ॥८१॥ (गुप्तम्)

एकाक्षरः। सस्यन्ति — विच्छिन्दन्ति [illegible] [illegible] इन्, [illegible] — [illegible] असिना सह वर्तते या सा सासिः — [illegible]। सिनोति — बध्नाति — [illegible] स सिः — बन्धः। 'षिञ् बन्धने' [illegible] "[illegible]" इति [illegible]। [illegible] — [illegible] ददाति सा सिसा। "[illegible]"। [illegible] असिना सह [illegible] सा [illegible]। [illegible] — [illegible] सह वर्तन्ते ते [illegible] — [illegible] [illegible] वा, तान् [illegible] — [illegible] वा [illegible] "षू प्रेरणे" क्विप्। [illegible] — [illegible], तया सह वर्तते [illegible] सेः। [illegible]। [illegible] — [illegible] "[illegible]" [illegible] [illegible]। [illegible] — [illegible] [illegible] — [illegible], [illegible], तान् [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] — [illegible] — [illegible], [illegible]। [illegible], [illegible] — [illegible] "[illegible]" [illegible], [illegible] [illegible]। [illegible]।

सासुसा—असुभिः सह वर्तन्ते ते सासवः—विपुलौजसो दैत्याः, तान् स्यति सा। अंसे—स्कन्धे असिर्यस्याः सा। ससाससा—समानान्स्यन्ति ते ससः—दैत्याः, एकत्रितदैत्यानां दैत्याः समानाः। "समानस्येति" सभावः। तान् अस्यति स्यति च सा, पचाद्यच्—उत्तरव कान्ताट्टाप्। सा—गौरी "सा च लक्ष्मीः बुधैः प्रोक्ता गौरी सा स च ईश्वरः"—इत्येकाक्षरकोशः। आस—असुरांश्चिक्षेप। तामुमां नमाम इति परेणान्वयः। कुलकम्।

रजोजर्जजजज्जूराऽजी जजञ्जे रजाऽजरा।
रराजौजोऽजिरे राजेर्जर्राजे रुजोरुजा ॥५२॥

द्व्यक्षरः। रजसा—रजोगुणेन, जर्जन्ति—भर्त्सयन्ति "जर्ज भर्त्सनादौ, तुदादिः"। तथाभूता ये जजन्तो दैत्ययोद्धारः "जज हिंसादौ" भ्वादिः। तान् जूर्यति सा 'जूरी हिंसायाम्' अजन्ताट्टाप्। अजी, अजस्य—अजन्मनो भगवतः स्त्री। जजञ्जे—जजतो—युध्यमानान् "जज युद्धे" ज्रिणाति—वयो हापयति सा "ज्रि वयोहानौ विच्"। उरुजा, उरुतो—महत्तो जातापि अजा। अजरा—नियतावस्था। राजेः—समूहस्य, दैत्यानामितिभावः रुजा—पीडा जर्जरस्य—क्षीणतां गतस्य, साजेषु दस्य। ओजोऽजिरे—ओजस्विनि रणाङ्गने रराज—शुशुभे।

योयायियाययीयायाऽरीरं रो रेररेररम्।
ददाददा ददादुद्दे लालेला लोललीलला ॥५३॥

एकाक्षरपादः। यौति—मिश्रयति स्वजीवनेऽधर्मं स योः—नीचवृत्तो राक्षसादिः। "यु मिश्रणादौ, विच्" तं यातीति यायी—तादृग्विधो रक्षःसमूहः यातेर्णिनिः, युद् च, तं यति एवम्भूतो यो ययीः—मर्मस्थलमिन् यानं यस्याः सा, तेषां विनाशायेतिभावः। या प्राप्ते घञ्। अरीरं रोः। अरि—शत्रूमीरित्वा इति अरीरम्, ईर क्षेपे। धातूं प्रतिध्वेतर्थं। रोः—शब्दायमाना। अट्टहासादिनेतिभावः। अरेः—शत्रोः समीपे अरं—शीघ्रं रेः—गमनशीला। "रि गतौ" विच्। ददादद—ददते इति ददः, तमाददते सा ददादा—दातृणां दात्री। ददादुद्दा—ददान्—दातन् आदुनोति इति ददादुत् तं दति—खण्डयति सा ददादुद्दा। इलायाः—पृथिव्याः, इला—दीप्तिः। लोलां लीलां लाति—आदत्ते सा तथाभूता।

लातातलल्लां तालोन्नतां नीतोन्नतिं नुताम् ।

हंहो ! हंसासिसंह्रासां नमामो मामुमाममा ॥५४॥

द्व्यक्षरपादः । लातः = आदत्तो गृहीतो यः अस्य = विष्णोः तलः पादतलमिति भावः । तस्मिन् लल्ला = ईप्सा यस्याः सा ताम् । तालवदुन्नताम् । नुताम् = नमस्कारिणीं, नीता उन्नतिर्यया सा ताम् । हंसः असिश्च ताभ्यां समः संह्रासो यस्याः सा ताम् । अमा = निकटं वर्तमानाम्, उमां मां = भगवतीं नमामः ।

नमामहे हेममानभासितां जजतां सिमा ।

शिवावाररवावाशि राजिताजिर्जिताजिरा ॥५५॥

प्रतिलोमानुलोमपादः । हेम्ना = सुवर्णेन यो मानः = चित्तसमुन्नतिः, मत्समो नास्तीति विचारः, तेन भासिताम् = उज्ज्वलां नमामहे । किम्भूता सा—शिवानाम् = शृगालीनां वारस्य रवेण वाशते तस्मिन् = युद्धे, जजताम् = युध्यमानानां सिमा = मारयित्री । षिञ् हिंसार्थः, पचाद्यचि टाप् । जितमजिरं = रणक्षेत्रं यया सा । राजिता आजिर्यया सा ।

याचते मनसा वाण्या भक्तायादभ्रदायिनी ।

नीपिदाऽऽर्द्रदयाऽऽक्ताभण्यावासा नमतेऽचया ॥५६॥

गतप्रत्यागतम् । मनसा वाण्या वा याचते भक्ताय, अदभ्रं = प्रचुरं दापयति तच्छीला । नीपम् = कदम्बं तदस्यास्तीति नीपी = कदम्बप्रेमी भगवान् कृष्णः, तं ददाति सेव्यत्वेन सा । आर्द्रदयाक्ता = आर्द्रत्वमेपदयाऽऽक्ता = आर्द्रा कोमलमानसा । भणिनो = विद्वांसस्तेषु आवासो यस्याः सा । अचया = नास्ति चयः = वृद्धिर्यस्याः सा । वृद्धिविकारमात्रस्योपलक्षणम् । तामसौ नमते ।

जलजाततलसद्धस्तहृद्यायाः शरणं गतः ।

साशङ्कानां शरण्यायास्तस्याश्चरणनीरजे ॥५७॥

निरोष्ठ्यः । जलजातेन = कमलेन लसन् शोभमानो हस्तो यस्याः सा हृद्या च तस्याः । साशङ्कानां शरण्यायाः चरणनीरजे = पादपद्मे शरणं गतोऽस्मि ।

ततश्चाग्रे निवसति श्री के० के० शास्त्रिणि अश्रावि "शास्त्रिन् ! शास्त्रिन् ! एहि"—इति ध्वनिः ।

के० के०—आयामि भगवन् ! (सैनिकाभिमुखम्) मां श्रृणु—

नुमो मां सद्बुधान् दृष्ट्वा मूढमानसमूलपलान् ।
ददद्वागनुकम्पातो मोदमानां त्वरं मुनान् ॥५८॥

अनालम्ब्यः । सद्बुधान्–श्रेष्ठकवीन् । मूढम्–विचारशून्यं मानसमूलकं येषां तथाभूतान् मुनान्–मुनिविशेषान् कवीन् । दृष्ट्वा ददद्वागनुकम्पातः–दैन्यविवेकपूर्णवाणीरूपया दयया, त्वरम्–शीघ्रं मोदमानाम्–हृष्यन्तीं मां नुमः ।

पुनरश्रावि, "शार्मिन् शार्मिन्" इति ध्वनिः ।

के० के०—एमि प्रियवर ! लक्ष्मीचन्द्र ! एमीत्युत्तीर्य यावद् विरमति तावदेव मत्युत्पन्नमहोत्कण्ठोऽपृच्छद् विचारचतुरः सैनिकः—देव ! कियद्वयसा महीमहिता देवेन !

के० के०—वीता शरदां विंशतिरागत ! मोदेन वयसि सातोपम् ।
अधुना धारासारैरविमलकेशां भजामो माम् ॥५९॥

असंयोगः । हे आगत ! वयसि–अवस्थायां, सातोपं–सानन्दं, शरदां विंशतिः वीता–गता । अधुना मोदेन–परमप्रेम्णा धारासारैः, अविमलकेशां–कृष्णकचां मां–भगवतीं भजामः ।

पुनः श्रुतः "शार्मिन् एहि सत्वरम्, व्यत्येति भोजनवेला, शीघ्रतायै प्रेरयन्ति विपश्चितः"—इति ध्वनिः ।

के० के०—महोदय, अनुल्लङ्घनीया गुरुजनाज्ञा, भवादृशां समागमोऽप्यानन्दकः परं समाह्वाननिबन्धो मां विवशयति । समयो लभ्येत चेत्पुनरपि साक्षात्कारेण सम्भाष्यः । मन्ये भवन्निवेशोऽप्यकारणविलम्बेन सोत्कण्ठा भविष्यन्ति भवदनुचराः । आम्, भवतः किं नाम ?

सैनिकः—(प्रणमन्) देव, चन्द्र इति ।

के० के०—कुशलम्, अस्तु यामः

प्रयाते कवौ तत्यागविधुरं प्रदेशं मूर्ध्ना सम्भाव्य चन्द्रोऽपि निजमर्वन्तमारुरोह ।

* * *

अगणाई निरन्तरं धारासम्पातः। गहने तमसि इतौ सूर्याचन्द्रमसौ दृष्टिपथमेव नागच्छताम्। वर्षाः, अप्रगमनम्, दन्तावघट्टनं शीतम्, शीतकरो वायुः, एतेषु नापि प्रावरणं, वस्त्रं क्लिन्नम्, अरण्यमार्द्रम्, दीपशलाका शीतला, कम्बलीकेषु कर-सम्पुटम्, गृहाणां निवसनविमुक्तः कन्दुकांशनिमिथिनो गमनव्यापारो कोलाहलः।

एवं हाहाकारः प्रवृत्तः। समाकारयन्नपि शीतमध्ये "अवन्त्यादय दुर्भिक्षस्य च दुःखार्थं वृत्तं प्रतिदिनं प्रवासमागुः। अनर्थेभ्यो नगरेभ्यो नगरान्तर्निर्गतैः पौर-जनैभ्य"स्तावतानुसल्पन्ति। "विद्युल्लताकः सर्वेऽपि पौष्टिकादेशाद् इतं गगनं पर्यन्तो व्यापो बभूव।

स तु दुर्दिना कार्यौदरस्यसमूलैव यद् सर्वोपिनी दुर्भिक्षजीविते प्राणे प्रेषयन् निराश्रयाद् बहुला सर्वां परिस्थितिं परिज्ञाय स्वकीयानिवासनिवासहस्तौ पद्मकालादस्य परिचितेषु निवसन्तो मां सुवरेद्। कादिशाथ "उत्तपके पापमग्नो दौर्भिक्ष्यव्यापाराः" स्वयमिदं क्षेत्रे वर्षितः, वनस्पतयस्वादयः आपद्यनेव इतः सद्भुवेन इत्थं पुनर्नमिन सांदरं प्रेषयामि, एव इत्यारोऽसगरः, परमिदं सर्वत्र धैर्यं दसरु संतापन कालेषु पुरतो-ऽवर्ते न भवेद्, अकालोभूय .उत्सवादीः मनाजे सदुर्भूतौऽस्मम्। स्वर्गेऽपि शास्त्रिवं वं प्रार्थितो तथा निविष्टस्य निवारयितुं सम्बः" इति।

एवमनावस्य विपालो पुनः प्रस्तुतस्य पौष्टिकव्यापारस्य दशा। कादम्बरीकेषु एव प्रकाशनैव निवृत्तः प्रचारः प्रकार एव सर्वतः, प्रकाश पुरस्तात् स्वान्तरेणैव स्थाने निरपवादितं करोति। यद् हिंस्रमुपस्थापयेद्।

स्वस्वः समर्थीनो दुराचारैरिदानी लोकचै "अतिविपदावस्थायां विद्युतः, कस्य च पर्यवेक्षितायवस्थायां मोक्षसायां च। विद्वद्विपदौ दौर्भाग्यव्यापार-केन्द्र संवाने व्यवसायेन च दर्शकां विदित्वा। अतोऽपि सदुपदेश कारकैर्निवेशं सततं इतुं प्रेरितः। एवं स पर्यवेक्षणस्य कार्यं विद्योतयेत् न कर्तुम्। स सर्वं तत्र विशिष्टपुरस्य पार्श्वस्थिततया सर्वत्र।

१ क्व. २ हृत् ३ मध्याह्न. ३ दुह वाच. ४ अगाच (B.…)। ५ मध्यस्य (C. ३५१) पुस्तकं कालीनस्य इतरे सदृश।

सर्वत्र पृथ्वी जलाप्लुताऽऽसीत्। उन्नतभूभागेष्वभितोजलाः पल्ल्यो ग्रामाः प्रेक्ष्यन्ते स्म, येषामुटजेषु कूजतां मानवानामार्त्तनादः सहृदयानां हृदयं व्यथयति। न नार्यः शिशवः जलजीर्णशरीरा नग्ना बुभुक्षिता अर्द्धमृता मृताश्च वृक्षेष्वारूढाः सन्ति जलप्लावे महता वेगेन शुष्कतृणौघा इव गावो महिष्योऽश्वा उष्ट्राश्चोह्यमाना अश्रुतवेदना करुणस्वरेण रक्षितुमाह्वयन्तः पतयः स्त्रियः, स्त्रियः पतीन्, मातरः शिशून् परित्यज्य काष्ठेषूपविष्टाः सहैव हिंस्रैः सर्पादिभिश्चोपेता अद्वयमाणाः परिस्थित्या मित्रतामापन्ना क्रन्दन्तः प्रवहन्ति। उल्लोलाः पार्श्वभूमिं भञ्जन्तो वृक्षांश्चात्मसात्कुर्वन्तः शब्दायमाना बधिरयन्तो भीषयमाणाः प्रजन्ति। पुलिनेषु प्रजा एकत्रीभूयापि जलरक्षणसु साधनहीना दीना मृत्युमेवापेक्षन्ते। काश्चन पथिषु मुखं व्यादाय अक्षिणी विस्फार्य विस्मृत्य च शून्यदृष्ट्योऽविश्रान्तभावेनानुद्देश्यं व्रजन्त्योऽवलोक्यन्ते।

चन्द्रस्य मानसमदो विलोक्य नितरां दुःखितम्। स शीघ्रं प्रत्यावर्त्य वस्तुपरैः सिद्धं भोजनं वासांसि काष्ठं दीपशलाकाः शुष्कमन्नं पात्राणि निवर्तयितुं प्रायच्छत्। जले सहस्रशो नाव उद्घाट्य मुक्ताः। [1]असत्यपरिखिन्नानां सर्वत्र प्रबन्धो विहितः। सर्वतो [2]भारवाहिमहत्तरैः [3]बाष्पशकटीभिर्वायुयानैश्चार्ताः समानेतुं प्रारब्धाः। आरोग्यशालायाः[4] कृतयोऽस्याश्चिकित्सका मनोयोगेन तेषां सेवायै रताः। आरोग्यशालायां केवलं शय्यासहस्रमासीत्। रुग्णानां सङ्ख्या चायुतद्वयी। चन्द्रेण अन्तःपुरं रोगिणीनां कृते दत्तम्। कमला च रोगिजनार्थे नियोजिताऽऽसीत्। आरोग्यशालाया अन्तःपुरस्य च कोणं कोणं रुग्णैर्व्याप्तम्। [5]विरामदेषु शय्या निवेशिताः।

कमला आमध्याह्नमारोग्यशालायाम्, अपराह्ने आतुरैरान्तःपुरे महिलारोगिसेवायां व्यतिनाययति स्म। निशीथे च [6]विमर्शकाशिकामादाय पूर्णामारोग्यशालां पश्यन्ती भ्रमति। चिकित्सकाः अन्ये परिचारकाः पदे एव स्वं स्वं कार्यं कौशल्येनाकुर्वन्। प्रतिदिनं सा भगिनी [illegible] मार्गं चिकित्सकेन [illegible] मार्गं परिशोध्य [illegible] तेषां स्वास्थ्याय भोजनाय विश्रामाय निद्रायै च पृच्छन्ती धैर्यमुपदिशन्ती रोगिमानवान्

१ अम्बुलेन्स, २ ट्रक, ३ रेलगाडी, ४ [illegible] = शल्यकर्मागार, ५ बरामदा = विरामो विश्रमोत्सवनं वा। [illegible] विश्रमं [illegible] वा [illegible] वा।
६ टार्च [illegible]।

मृतस्वबान्धवान् नष्टधनान् गतगृहान् सान्त्वयन्ती मुग्धस्मितेन स्मयं सञ्चारयन्ती रोगिण आह्लादयत्।

स्त्रीविभागे कारुण्यपूर्णं दृश्यमासीत्। मृतमातृकाणां शिशूनामपरिसङ्ख्येयाः शय्या आसन्। प्रत्येकस्य कृते एका धात्री क्रीडासाधनानि चासन्। अन्तःपुरस्य सर्वा दास्यः शिशुसेवायां गृहीताः। कमला स्वयं मातृहृदयेन तान् लालयति स्म। यदा सा विभागे प्रविशन्त्यासीत्, सर्वे शिशवः "अम्बा आगता" इत्युच्चैर्वदन्तस्तां पर्यावृण्वन्ति स्म।

हतमातापितृपतिपुत्राः स्त्रियोऽनारतमार्त्तं रुदत्यो जीवनं हातुं कृतसङ्कल्पा औषधं पथ्यं भोजनमनश्नन्त्य उच्छूननयनाः कमलां व्यथयन्त्य आसन्। सा तासां परिचयमधिगत्य जनसेवाविभागतः[1] प्रतिक्षणं दूरालापतो लुप्तसम्बन्धिनां कृते जिज्ञासमाना सान्त्वयन्ती स्वहस्तेनौषधं पथ्य भोजनं ददती धैर्यमुपदिशन्ती अवर्त्तत। स्वल्पैरहोभिस्ता तां देवीत्याहुः। परं कमलया भगिनीनिर्विशेषं प्रेक्षणाय प्रेरिताः सौहार्देन भगिनीशब्देनोल्लासयामासुः। सर्वे एव रोगिणो व्यथासमये तां समीपमेव ददृशुः।

उल्लाघानां पुरुषाणां महिलानां च कृते विविधाः कुटीरोद्योगाः स्थापिताः। शिक्षार्थं रुचिमन्वीक्ष्य शिक्षका नियुक्ताः। शिशवः शिशुशालायां प्रेषिताः। सर्वेषां नामानि चित्राणि परिचयेन सह वृत्तपत्रेषु प्रकाशितानि।

चन्द्रः प्रतिदिनं जलाप्लुत क्षेत्रं [2]फलकविमानेन स्वयमपश्यत्। एकदा स जलप्लुतं प्रदेशमवेक्ष्य प्रत्यावर्त्तमान एकस्मिन् पुलिने शिबिरसन्निवेशमपश्यत्। स्थानमिदं राजनगरतो नातिविदूरमासीत्। सन्निवेशश्च सुभगः सुदक्षैः सैनिकैः कृतरक्षो व्यवस्थितो जलप्लावेनाप्रभावितः शान्तश्चासीत्।

एका हीरकमालेव भास्वरा स्वर्णरागा रमणी नद्यास्तटे सान्ध्यविधये अभिसूर्यमुपविष्टाऽऽसीत्। शोणितशोणितौ तस्याः करौ बद्धाञ्जली आस्ताम्। सान्ध्यवेलोऽरुणिमा तस्या वर्त्तुलोच्चलकपोलयोर्निपत्य तां सेवयति तस्याश्छविं द्विगुणयति। मुग्धा यदा कदा कपोलयोरापततः केशान् मृदुलमृदुलाभिस्तनुतनुभिः कराङ्गुलीभिरपसारयति, स्वं मुखं चन्द्रमिव विशदयति।

यत्रेयं विनीता वनिता स्थिताऽऽसीत्तस्मादनतिदूरे एवापरं पुलिनमशोभत।

---

१ पुलिस। २ ग्लाइडर—चुपचाप चलनेवाला हवाई जहाज।

पुलिनं जलजाल्मप्रशमपम्रपुष्पैः क्षुरैः पूर्णमासीत्। उल्लासः, शान्तिः, सौन्दर्यम्, प्रकृत्यं सुन्दरतमं रूपं तत्रासीत्। जगतश्चिन्ता, तृष्णा, मात्सर्यमभिशापः, आक्रोशः जनरवश्च सर्वथा नासीत्। विविधरागाः पतङ्गिका अलिततरु रनाद्यङ्कि घोषयन्त्यः क्रीडन्त्य आसन्।

अभितः क्षुद्रा नद्यो मध्यकुल्या मुग्धा इव प्रवहन्त्य आसन्। प्रचण्डधारासम्पातोद्विरता प्रकृतिः सम्प्रति शान्ता भवन्ती नीरवतां शनैश्शनैः प्रसारयन्ती मत्स्यानिव निर्जनशान्ति स्लालयन्त्यासीत्। सर्वतो जलक्षालनविगतमला नयनहारिणी विपिनविभूतिर्मानसं हरति स्म।

सन्ध्यासमय आसीत्। प्रदेशशान्ततां विचार्य तत्रैव सन्ध्योपासनां विधित्सुश्चन्द्रः सन्निवेशपुलिने स्थानाल्पतया अवतरणासौकर्येण पार्श्वपुलिने फकविमानमवतरणायादिशत्। नदीशिलातले उपविश्य मुखं प्रक्षाल्याचम्य प्राणानायम्य सान्ध्यविधिप्रवणोऽभूत्।

आकाशबिम्बं स्वच्छनदीजले दृश्यते स्म। चन्द्रो विचारयामास, महद्विशालं वर्तते एतदाकाशम्। अहह! हिमगिरिसदृशा दृशामनवधयोऽयुतशो वारिधराः सूर्यसदृशा ग्रहाश्चास्मिन् सावकाशं चकासति। विज्ञायते सूर्यः [1]सपादनवकोटिक्रोशमितं दूरमस्ति। अस्माकं पादाङ्गुल्यां कण्टकेन विद्धायां यावता शैघ्र्येण मस्तिष्के ज्ञानं भवति; तथैव कल्प्यतां यद्यस्माकमङ्गुली सूर्यसामीप्यमेत्य तत्तापाद्दहेत्, तदा तद्दहनं पञ्चदशवर्षैरस्माभिर्ज्ञातं भवेत्, इयान् सूर्योऽस्मत्तो विदूरोऽस्ति। अहह! एतादृशा अनन्तसंख्याः ग्रहा आकाशाजिरे चरन्ति, ये विदूरत्वादस्माभिर्लघुलघवः प्रतीयन्ते।

अकल्प्यमानकल्पना नीहारिकाश्चास्मिन्ननन्तब्रह्माण्डेऽनन्ता असङ्ख्येयाश्च सन्ति, विदूराश्चैतयो यत्—यः प्रकाशः प्रतिक्षणं[2] षडशीतिसहस्राधिकैकलक्षक्रोशमितमध्वानमतिक्रामति स प्रकाशस्तत्र [3]त्रिंशल्लक्षवर्षैर्गच्छेत्। विज्ञायते एषा भूमिरपि यस्यां सचराचरं जगदिदं वसति कदापि सूर्यस्य भागो ज्वलदङ्गारप्रतिम आसीत्। परं प्रकृत्या बहिःशीतलीभूय क्वचन काले सूर्यगोलकान्निःसृता, अद्यापि तमभितो भ्रमति। एवं चन्द्रोऽपि [3]एकाब्जवर्षपूर्वं पृथिव्याः सूच्याकृतिर्भाग आसीत्। सोऽयमेकदा पृथ्वीतो भिन्नः। तेन भूमौ [4]सप्तविंशतिक्रोशनिम्नः खातः समजनि। स एव समुद्र उच्यते।

१ सवा नौ करोड़ मील। २ प्रकाश का वेग १ मिनट में १८६००० मील है। क्षण — मिनट। ३ एक अरब। ४, २७ मील गहरा। सभी जगह क्रोशसे मीलही माह्य है।

एषा भूमिः—अष्टसहस्रक्रोशमिता महती स्थली—आकाशे प्रचण्डगत्या सततमटन्ती वर्तते। पूर्वं यदा चन्द्रो पृथिव्या [illegible] गतिशीलाऽऽसीत्, तदा[illegible] [illegible] परन्तु अधुनाऽस्या गतिर्मन्दा जाता, प्रतिहोरं केवलं [illegible]सहस्रक्रोशमात्रम्। अहह! धावितां पृथ्वी महती [illegible], [illegible] प्रतीयते। ज्येष्ठा नाम नक्षत्रमहो! [illegible] वर्तते, यस्मिन् [illegible] पृथ्वी मातुं शक्नुवन्ति। हन्त! एवं [illegible] नक्षत्राणि आकाशे भ्राजन्ते। [illegible] विद्यमानसि। हन्त! कीदृशी विलक्षणाऽनन्तता महाकाशस्य!

चन्द्रे कल्पा भवन्तीति शास्त्रं परिचाययति, परन्तु विद्यते तेऽस्मी नरो भूपरा[illegible] [illegible]—इति सर्वो विजानाति, परन्तु हन्त! [illegible]—[illegible] [illegible] इयन्तो महान्तोऽपि, कल्पाः भवन्ति, येषु पृथ्वी [illegible] [illegible]। [illegible] सूर्यो [illegible] सूर्यः [illegible] सूर्यः, [illegible] [illegible] सूर्यो न भवेत्, कोऽपि, यदि नेदं सम्भाव्यते, तदा [illegible] [illegible] हिमीभूय [illegible]।

सूर्यः [illegible] समासन्न। शब्दान्तरेण पृथ्वी [illegible] [illegible]। [illegible], एवं सह एव [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] सम्मिश्र [illegible] [illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] च [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] एवं [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

१ हर घण्टे ६६६०० मील। २ कम से कम ०००,००,००, ००,००,००० पृथ्वी समा सकती है। ३ ९ नील पचास खरब मील, ९,५०,००,००, ००,००,०००।
४ Electric generator. ५ अनाद्येषु।

मासीत्। नीरसं शुष्कं वायुमण्डलं कान्तिकेनोन्मादकेन सौरभेणेव पुष्परागपरिमलेन प्रकम्पितम्। प्राङ्मौहूर्तिकं तमोऽपहन्तुमुपक्रमवा विभेव सा शनैःशनैः पुलिनमारोहत्। तस्याः मुखं पौर्णिमचन्द्रवदाह्लादकं सामवासीत्। यं प्रसितुकामा सर्पिणीव वेणी—यस्यां कुन्दसुमनसश्चन्द्रं रक्षितुं वेणीसर्पिणीमाक्रमणेच्छयाऽऽश्लिष्यन्त इवैक्षन्त—आपार्ष्णि लम्बमानाऽऽसीत्। साक्षाल्लक्ष्मीरिव भासमाना सा सम्मुखीभूय चन्द्रं प्राणमत्।

चन्द्रेणैतादृशी साधनसम्पन्ना सम्पन्नसौन्दर्या रमणी अद्यावधि नेक्षितासीत्। तस्याः मुखमण्डलेन सा परिचितेव कदाचिद् दृष्टेव च प्रतीयते स्म। विस्मितः स स्मितावलोकनेन तामुदतरत्।

अथ सा "देव! प्रमदाजनस्य धार्ष्ट्यमक्षम्यम्, परं विपुलं क्लिष्टस्य धार्ष्ट्यं क्षम्यं भवति गुणज्ञानाम्। अतोऽहं काप्यपरिचिता कांश्चिदपृष्टपूर्वान् प्रश्नान् पिपृच्छिषामि, दयनीयाहं दीनवत्सलैर्दीना" इति सप्रश्रयमवादीत्।

तस्याः स्वरे सङ्गीतवत् सुकोमलता माधुर्य्यञ्चासीत् सौन्दर्य्ये च कवित्वम्। उत्तेजनावशात्तस्या नेत्राभ्यां विचित्रं ज्योतिर्द्योतमानम्, ओष्ठौ स्फुरन्तौ शरीरञ्च रोमाञ्चितमासीत्। तस्याः स्फुटं विकसितयोश्चक्षुषोर्मादकता, अरुणकपोलयोश्चोल्लास आसीत्। सौन्दर्यं तस्याः शरीरसौधेऽट्टहासं कुर्वदासीत्। साधनायास्तेजोमय्याऽऽभया सा तपस्विनीव प्रतीयते स्म।

अथ चन्द्रस्तस्याः निःसीमं साहसम्, उत्कृष्टां वीरतां साधनाञ्च, अनितरसाधारणीं प्रतिभाम्, अलौकिकं सौन्दर्यम्, पार्ष्णिस्पर्शिनः सुचिक्कणान् कलावलयितान् कृष्णोज्ज्वलान् केशान्, सुभगान्यङ्गानि विलोकयंश्चकितस्तर्कवितर्काकुलो नेयं लज्जावनता भयविह्वला सुरसुन्दरीव भव्यदर्शना दुश्चरित्रा भवितुं शक्नोतीति विचारयन्नवोचत्—

चन्द्रः—आम, स्वैरं स्वैरमभिधीयताम्। अभिधास्ये अभिधेयम्।

रमणी॰—कदापि देवः स्वपवित्रपादविक्षेपणेन किमपि पाषाणीभूतं पुरमलञ्चकार ?

चन्द्रः—आम्, एकदा · ··

रमणी॰—कतीनां वर्षाणां वार्त्ता ··

चन्द्र॰—युगादधिकम्भवेत् ·

रमणी—सत्यम्, तत्र भवान् कति दिनान्यवात्सीत् ?

"मासद्वयमभवत् ।"

"राज्ञोऽन्तःपुरमप्यवालोकि ?"

"आं पाषाणपुरस्य पाषाणीभूतमन्तःपुरमवालोकि ।"

"किं किमवालोकि तत्र ?"

"विद्युल्लमवालोकि, भवत्यप्यवालोकि ।"

"अहमपि किमिति ?"—इति रमणी प्राह ।

"चित्रालेख्यगतया भवत्याः साहाय्यमकारि ।"

"नातः परं श्रोतव्यमस्ति देव !"—प्रफुल्लनयननीरधनीरेण पक्ष्मावलीं स्नपयन्ती [illegible] मन्तर्निहितहृदयभराक्रान्तमुखी रमणी "देव, साहं मन्दभाग्या राज-कुमारीमि, या पातालविहारिणा हरिणा हरिणरूपेण देवेन पाषाणपुरे प्रेषिता [illegible] दुर्विरूपबुद्धेः [illegible] न कथं प्रभूतम् । [illegible] [illegible]

किमपि कष्टं नाभूत्। अद्य भगवानमृतमरीचिर्जीवनेऽपि सुधाविष्टो न्देव यदहं पवित्रचरित्रेण मनसा प्रेर्यमाणाऽऽराध्यदेवमभ्यगमम्। भवत्यधिगते मम चिन्ता व्यपगताः। यात्रायामसङ्ख्येयैः कष्टैराशङ्काभिश्च व्याकुलमानसाऽऽ परमधुना आशङ्का, चिन्ता, व्याकुलता च युगपदेव व्यपगता। अधुनाऽऽदिश कुटिलकालक्लिश्यमानायै दास्यै कथनादेशः, क्षम्यताञ्च प्रकृष्टं क्लिष्टस्य प्रमदाय प्राक्षोद्वेगकरी प्रथमा पृष्टा" इति।

सर्वतः प्रसरति प्राचुर्येण्ये सौरभे, ईषत्कम्पने मलयविकम्पने, उज्ज्वलायां चन्द्रिकायां स्मयमानायां तारावल्याम्, विजने प्रदेशे, नैश्यां स्तब्धतायाम्, निर्झरगिरा विवधनरच प्रकृति प्रसादयता प्रसङ्गेन सुखेन, मनः प्रसादयन्त्यामनुपमेयसुन्दर्यां सोपक्रमं विजयाश्रित इव स्खलन् चरन्नैयायिक इव समदमवादीत्—

विकसितयौवनारामे! रामे! भवादृशीमिदं शोत्पादितमानसोन्मादिमन्मथं रणप्रियाभिः प्रतिश्रुतानि वैफल्यमाप्नुवन्ति कार्याणि नाम! परमहं विशे परिस्थितिवशात्मम तिस्रः स्त्रियः। अहं राष्ट्रे बहुपत्नीकत्वं व्यपाकर्तुं सज्जः, कथमेतदर्थं स्वयमेव कर्तुं शक्नोमि। परतश्च मम स्त्रियो लोककल्याणे रताः। सांसारिकभोगं विहाय महाशया कर्माणि कुर्वतीनां तासां कामिनीसुलभा भोगाः सर्वथाऽपगताः। म प्रासादः साधनास्थलम्, न भोगभूमिः। त्वञ्च त्रैलोक्यसुन्दरी कथमपि न तत्र मनोऽभि स्थितान् भोगप्रवणत्वसम्पन्नैव विचार्यैव स्त्रियः, अहं विचार्य कथयिष्यामि।

रमणी०। सत्यम्, विचार्य चलं पाययितुर्मल्लस्य दर्शनस्थाने वा नास्त्यम परं शिरसाऽऽगतस्य जीवनमरणयोः प्रश्नः। अथ च दोषा देव। भवनावनतः बहुपत्नीकत्वं दोषोऽपि सद्भावनावशाद् गुणः। साधनास्थले बहवः स्त्रियः एवं गुणी युगपदेव साधनां कर्तुं शक्ताः। मन्मते भोगभूमावेव भवति, न साधनास्थले।

चन्द्र०। धनुर्गणाभिलाषिणी विरक्तेन सहवासेन हर्षो न सुधाकरः। भोग लिप्सविश्च सहयोगिनो भोगिन एव सुखाः।

रमणी०। नैवम्, स्त्रियो हि स्वभावसुलभम्, परिस्थित्यनुसारं भवितुं शक्ताः। अ किमन्येन भणितेन सन्तावास्त्री अभिनयमत्र यदर्शने, यो येनैवाचरणं कि ...यिष्यामि, पश्य बहुत् प्रदीपं देव॥

[illegible] रमणैयुर्य्य साहाने सौन्दर्य्य तस्मिन् भावमार्य्यनारीसंस्पृष्टेव विचार्य्य [illegible]तदैव यानचालकोऽस्पृशयद् महानगरस्य समीपे सेतुमध्याद् बाष्पशकटी [illegible] विचारकृत्तोद्भोपैष्यास्मृचि—इति ।

"हन्त ! दौर्भाग्यं राष्ट्रस्य, अस्तु, यानं रक्षय । (अभिरमणि) अस्तु, यानं [illegible] । [illegible] प्रेयसीनां दुःखम् । पुलिनं न सुखावहम् । भवती प्रसादे विधत्ताम्, [illegible] अनुचरान् दुर्गमागन्तुम् । आरोह यानम्, अस्त्येति वेला । किं नाम देव्याः ?"

"[illegible] नाम सूर्यप्रभा" ।

[illegible] विचारकृत्तोद्भोपकेण सैनिकालीयपरिवृत्तस्य[1] घटनास्थलं मनुष्यादिरस्य स्वयमपि [illegible] सह जगाम । सेतुर्नवीन आसीत्, वर्षे च मग्न इत्येव तस्य [illegible] आसीत् ।

[illegible] प्रतिहारे [illegible]कोशवेगेन धावन्ती [illegible][2] अकस्मात् [illegible] । [illegible][3] सह [illegible][4] [illegible] । [illegible] मया मनो [illegible] सह विपुलेन घनेन मया निमग्नः [illegible] किमपि न अवलोक्यते स्म । [illegible][5] अन्योऽन्यं प्रविष्टाः । मानवाः [illegible], अर्धं मृताः, तृतीयांशाः [illegible] [illegible] । [illegible] इव [illegible][6] विपुलाः, [illegible] [illegible] कृत्वा [illegible]नेन [illegible] [illegible] । [illegible] परिवहनः [illegible] प्रकाशिताः । घटनास्थले सैनिका आरोपिताः । [illegible] [illegible] विलोक्यमानम् ।

* * *

"[illegible], परं [illegible] [illegible]" इति [illegible] [illegible] ।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible][7] [illegible] [illegible] विस्तरतः ।

* * *

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible]-

१ [illegible] । २ [illegible] । ३ [illegible] । ४ [illegible] । ५ [illegible] । ६ [illegible] । ७ Investigation Commission.

विकर्षिणी नीरवता प्रसृताऽऽसीत्, यस्यां तन्त्रीरणरणका उल्लासं स्फूर्तिं चेतनां चनघ्न आसन्। क्वचन क्वचन प्राह्णे मुहूर्ते विदुर्या विरला वाचो भगवद्भजनं सारत्वेन वर्ण्यन्त्य श्रूयन्ते स्म। अकस्माद् वितारवृत्तमघोषयद् यद् राजनगरस्य पश्चिमोत्तरस्यां दिशि गव्यूतिदशकान्तराले वातहंसः[1] क्षतिग्रस्तः। चन्द्र उदितमात्र एवैतच्छ्रुतवान् प्रबलोऽमुना वायुयानेन जलाप्लुतं क्षेत्रं प्रेक्षितुं प्रेषित आसीत्। चन्द्रश्चिन्तयामास कथमहं कुमुदिन्या अग्रे स्थास्यामि। हन्त! हता कुमुदिनी! दुर्भिक्षग्रस्ते प्रदेशे सोत्साहं जनान् सेवमाना सा यदेदं श्रोष्यति - हन्त! घातः! किं विकीर्णेऽसि! प्रबल! सत्यं सफलं ते जीवनम्।

घटनास्थलं प्रेक्षितुकामो मरुत्तरेण सत्वरं गतवान् सः। औपचारिका आसन्नेव। योजनविशाले क्षेत्रे वायुयानस्य तस्मिन् स्थितानाञ्च अवयवा अपरिचीयमानाः प्रक्षिप्ता आसन्। एकतश्च खण्डितं ज्वालाभर्जितं वायुयानम्। अग्रिमभागो वायुयाने नासीत्।

अप्राप्तसन्तोषो वायुयानावतरणभूमिं[2] गतोऽजिज्ञासत उत्तरितश्च "वातहंसे चालक-द्वयम्, द्वौ च सैनिकावास्ताम्, प्रबलो व्यवस्थायै तत्र स्थितः"।

सन्तोषस्य निश्वासो निरगात्। मनुष्यः प्रकृतिं जेतुं कृतप्रयत्नः। जले स्थले नभसि निर्बाधगमनः स कृतकृत्यमात्मानं मनुते। परं प्रकृतिस्तस्याल्पज्ञतां विचिन्त्याट्ट-हासं कुरुते। किमेष एव प्रकृतिजयः? मानवः कथं भ्रान्तः! अल्पेऽपि ज्ञाने कीदृशी तस्य मदान्धता? इति स विचारयामास।

*　　　*　　　*

माननीया महाराज्ञी सरोजिनी पत्रं लिखितुमादिशति

—कुमुदिनी

विजयतां भारतीया संस्कृतिः।

अहं जविना[3] जीपेन व्यवस्थां सम्पादयन्ती प्रान्तममुं पर्यटामि। प्रान्ते प्रविष्टे नवनवतिर्ग्रामाः। सर्वत्र दुर्भिक्षम्। ग्रामेषु बहवो मृताः, केचन शमीपत्राणि शमीत्वचं जग्ध्वा जीवनं यापयन्ति। अन्नरहिता अपि नान्नं याचितुं पारयन्ति मनस्विनो ग्राम्याः।

---

[1] वायुयान का नाम। [2] एरोड्रम। [3] जीवयति=युद्धादिषु शीघ्रं मुहुः प्राणेन . य स जीपः "पृषोदरादित्वात्साधुः" (जीप गाडी)।

स्वल्पनदीस्रोतोविरहितेऽस्मिन् प्रदेशे कूपेषु जलमेव नास्ति। द्वित्रयोजनतो जलमानीय बिन्दुमात्रया पीयते। ग्रामान्तेषु पशूनां कङ्कालाः प्रसृताः। सर्वतः सिकतापर्वतेषु हरितपत्रस्य दर्शनमेव नास्ति। कङ्कालकलेवराः, श्यामाः, नग्नाः, नराः, परेता इव परितः प्रेक्ष्यन्ते। सर्वत्र दीर्घाकारा साकारेव दीनता दरिद्रिता बुभुक्षा रिक्तोदरा दन्तान्निष्कास्य निम्नतनेत्राभ्यामश्रूणि सारयन्ती मानवोचितं सम्मानं सम्मार्ज्य हस्तं प्रसारयन्ती हट्टं हट्टमट्टमट्टम्, नगरं नगरम्, ग्रामं ग्रामम्, गृहं गृहम्, कुटीं कुटीं भ्रमन्ती अतृप्तोदरा मानवमांसामोदमग्ना नग्नेव मृत्युदूती सतोषं घोषं तालं रचयन्तीवासंख्येयानवतारान् दधतीवेत्र भ्रमति।

असहाया निराशाया वर्षैः सार्धं सतोषं सश्रमं पोषिताः कमलकोमलाः मृत्योर्मुखे ग्रासीभूता दंष्ट्रापातमिवान्तिमं क्षणं प्रतीक्षमाणाः क्षुधया शुष्यमाणा माणवका दुःखं सोढुमपारयन्तः कृष्णीभूय पीतीभूय पादपात् पत्राणीव निपतन्ति गतजीवनाः। विश्वख्यातिमेदिनी अद्य क्षुत्त्रस्तानां विपद्ग्रस्तानामसुसत्त्वानां कङ्कालैः पूर्णा।

दुर्भिक्षक्षतानां बुभुक्षितानां मानवानां समूहो भाजनानि वासांसि आभूषणानि भूमिं बालान् युवतीश्च विक्रीय पैतामहं गृहं परित्यज्य, प्रवर्षणाशां हिमालयकन्दरायां धारयित्वा दुर्भिक्षविश्वासञ्च महासागरस्यागाधे तले निमज्ज्य कूपेषु पशुजातमायोज्य व्रजति। घनघनच्छायासु चकासतां विधूयमानानां क्षेत्राणां नयनमनःप्रसादनी विभूतिरस्य एषा। उपत्यकासु वनेषु प्रान्तरेषु विविधद्रुमैः सज्जिता पुष्पफलस्यातैस्तरुवरैः समृद्धाः सरित स्रोतसो निर्झरस्य च पार्श्वे नितरामुर्वरा सुहासिनी जगद्वन्द्यवैभवा! विश्वभरणो धरणी क्व! हन्त! सेयम्, काण्डदग्धद्रुमा शस्यहीना दीना मलिना क्षीणा अनन्त अगरहरमिव पीत्वा जगद् ग्रसितुं सज्जा। भ्राता भगिनीम्, माता स्तनन्धयम्, वृद्धो युवानं चात्तुमिव सज्जः।

यत्र यूनो यौवनं सौन्दर्यं विलासं हावान् भावान् प्रेम च विस्मृत्य पशुः शिरश्च स्फुरन्दितान् शुष्कसङ्कुचितचर्मावरोधान् वा स्तनान् निपीड्य अर्धचर्वणां धान् धोन्मित-हस्तान् विधीय मातुः, हिमकेशाः कङ्कालकलेवराः मर्कटवत् धावन्तो वृद्धाः पुत्रेभ्योऽन्नकणान् वस्तेदं चकर्तर्मभिलषन्ति, सदैव स्वस्य स्वल्पलाभलोभेन देशस्य जनानस्य दर्शिमनयान्तो विदेशेषु विरोधिषु अन्ने प्रेषयन्तोऽधिकलाभलोभेन निहन्यन्ते वा मानवतेतःऽपि वस्त्रं सम्भ्रातान् म्रियमाणान् दृष्ट्वापि दयमानवदन्तो राक्षसा इव स्वस्य मनसो

रजनाय हारपनिर्भरैः सुराघरैर्न्दनलैभन्नीरागरणैर्न्नुपुरशिञ्जितैः सह पतिमतानां पार्थिनपं कुमारीणां कौमारं नियं निपुंणं निर्लज्जं रजतताम्रमुद्राभिः सानुदम् कुर्वन्तो विरमन्ति। येषां विशालाट्टालिकासु भोगा विलासैः सह रत्नखचितस्वर्णचषके सुरां निपीय नृत्यन्ति। यत्र कुलाङ्गनानां पतनं वीक्ष्य गर्वितमुख्यघटितहरितनिःक्षेपेण विमोहितनयनाः मुखोचना मन्देदर्शों वसनाः स्पन्दमाना मोदनमा नग्ना इवान्वर्थविविधरागैरम्बरैर्भूषिताः पत्रिका इव मनो रञ्जयन्ति। यत्र भृत्याः श्वानवाप्यभोग्यान्याम्यतिसारान् भजन्तश्चिकित्सालयेषु प्रलम्बां पङ्क्तिं [1]विरचयन्ति।

प्रजाः स्वभार्य धिरक्षन्त्यः स्वाधिकारं स्वभागं स्वार्जितं द्रव्यं परैरुपभुज्यमानं विलोक्यमानाः वीक्ष्यापि न किमपि कुर्वन्त्यो वराक्योऽकर्मण्याः कायराः[2] कष्टानि धैर्येण सहन्ते।

धनिनो भृत्यानुपदिशन्ति—भगवता परब्रह्मावतारेण कृष्णेनोदघोषि यत् 'कर्तुं कर्मण्येवाधिकारो न फले' अतोऽहर्निशं श्राम्यद्भिः फलभूतस्य वेतनस्याकाङ्क्षैव महत् पातकम्। अस्माभिरास्तिकैर्नैवंविधं किमपि कर्तव्यं येन भगवद्वाक्यैर्विरोधः समापतेद् इति। हन्त ! कीदृशः स्वार्थान्धः संसारः !

शासनेन [3]'आशनस्य प्रबन्धो विहितः। अन्नरोद्धा सापराधो घोषितः। कोऽपि पञ्चव्यवहार्यादधिकमन्नं गृहे विपणौ वा रक्षितुं नाधिकृतः। अनद्वेषिणो व्यापारिणोऽपारमन्नं निरुन्धानाः सन्ति व्यसनोपजीविनः क्रव्यादाः। ते परिवारसदस्यः सर्वेषां सदस्यानां नाम्ना पार्थक्येन परिवारान् प्रकल्प्यान्नं न्यरुन्धन् कूटनिपुणाः। [4]'पृष्ठविपणिः सर्वविधान्नेन परिपूर्णाऽस्ति, अग्रविपणौ चोद्धृततूलासनः[5] मक्षिका मारयन्नेकलः पणो। ग्राहकान् स कथयति, "भवतां दुःखं पश्यन्नहं नितरां दुःखी, परं विवशोऽस्मि, विक्रेतुं मम समीपे किमपि नास्ति, शिशुभ्यो द्विमणमितमन्नं मुद्राशतेनानीतवानस्मि तदर्धमगृहीतलाभो दातुं शक्नोमि।"

आचारे व्यवहारे च सर्वत्र विशेषतो नगरेषु च्छलं दोषः समीक्ष्यते। पीडितमानवानां कृते पौरैः समितयो योजिताः। शतशो युवान आर्तत्राणाय सज्जा अभूवन्। ते रथ्यासु दुर्भिक्षपीडितानां सेवायै रक्षायै अन्नं वासांसि धनश्चायाचन्। जनता मुक्तहस्तेन ददौ।

---

१ क्यू। २ काये रमन्ते ते, औणादिको डः। ३ आ—ईषद् अशनम्—आशनम्। स्वल्पं परिमितञ्चाशनम्—राशन। ४ चोरबाजार। ५ गद्दी उलटाकर।

ावादिभिर्मस्तरः संग्रहः कार्यालये प्रेषयितुमारब्धः। मरीधांसं रात्रिमेकान्तिं दृष्ट्वा
ुतानां जिह्वा चयोतितुमारब्धा। तैः सर्वं धनमपजिहीर्षुभिर्विपुलं धनं दानपत्रे लिखित्वा
्यमूर्तिकं¹ चतुरं भागिनेयमस्मै कार्याय योग्यतम विचार्य परामृष्टं यदस्माकं विश्वस्तो
ः कार्यमदः प्रेक्षिष्यते। कण्डूयाकुलितो विचर्चिकाविक्षतो दद्रुदरिदितो मसूरिकाक्लिष्टो
ाणमर्दितो मशकाशितो विषमकालज्वरपीडितः कृष्णकलेवरोऽवरोऽलब्धमूर्तिमूर्तिमिव
ःश्रमाणोऽप्राणः काणो विश्वस्तो मानवो मुद्राणां पञ्चशतीं मासिकं वेतनं यातायातव्ययं
ान्यवस्थाञ्च प्रकल्प्य पीडितमानवानां सेवायै नियुक्तः। विश्वस्तमानवाज्ञया
ान्युत्तमानि वासांसि पुरातनेभ्यो जीर्णेभ्यः पृथक्कृत्य "क उपयोग एतेषां वराकेषु"
कृत्वा विक्रीतानि, तेषां वितरणञ्च मामनमान्युल्लिख्य प्रदर्शितम्। वास्तविक-
चतुर्गुणो व्ययः पुस्तकेष्वङ्कितः। एवं संगृहीतधनाच्छतांशं परिचितभृत्यबान्धव-
भ्यो वितीर्य तेभ्यो गृहाणि स्वयं यशो धनञ्च निर्माय निर्मायो विश्वस्तो मानवः।
त्राणपरिषदो विवरणं प्रकाश्य अभिनन्दनपत्राणां प्रवर्षणमनुभवति। अधुना स नगराद्
ातटे सामन्तोपवने क्रीत्वा दुर्भिक्षपीडितानां साहाय्याय! विशालं भवनं कारयति।
ो ज्ञानीते किमर्थमेषां पापात्मनां दृष्टिर्भूतानुमोदिता वा समाजेन। परं नाधुनैदा-
पश्यतां प्रेक्षे। यां नीतिं प्रणालीं वाऽऽश्रित्यैव कल्हः शिरोऽस्तित्वमुपदर्शयति स त्वमनेय
एषा विषमता पुरुषव्याघ्र! अरस्यमेवापनेया। एष कलहो भारतस्य प्रशस्तो-
न्नतादपकर्ष्य एव। प्रजाया आदर्शोऽर्थविभीषिकायां तिरोहितः। पण्यवीथि-
ासत्यमेवोच्यते। रूप्यकं मूल्यं कथयित्वा चतुराणकया विक्रीणात्यापणिकः। सरला
न्त्यन्ते। सदाचारी समाजबहिष्कृतः प्रतीयते। अध्यापकस्वनामस्थाने अपि
ाः। संन्यासिनोऽपि संग्रहिणः। अयं सर्वाभिशापी। लोको विविधव्याजेन
ुपहर्तुमुत्सुकः। न्यायो मुद्राभिर्विक्रीयते। रक्षकोऽपि भ्रष्टाचारो लोकवार्ता यतः
। देवमन्दिराणि लोकहिताय निर्मितानि संस्थाश्च धूर्तानां व्यापारभूमयश्च।
ाः पत्रक्रीडेव² क्रीडा, चौर्यं धौर्त्यं वञ्चनञ्च कला। —सरोजिनी।

* * *

दुग्धधवलमण्डलं विलोक्यैव धरैव सन्नद्धं सम्बन्धिजनस्थानेषु गत्वा सर्वं स्थितिं

टस। २ नौकरी। ३ ताश का खेल।

व्यवारीत्—राज्यस्य दशकोटिमुद्राणां वर्षचतुष्टयस्य च व्ययेन निर्मित 'आनन्दव
भग्नः। तद्बन्धविघातेनैव सर्वो जनपदो जलप्लावे निमग्नः। बन्धनिर्माणे नियु
²मृत्स्नास्थाने सिकतामुपयोज्य मृत्स्नाञ्च विक्रीय पुत्राय ³पत्रनिर्माणशालां स्था
⁴वस्त्रनिर्माणशालाञ्चाकारयत्। स एव जनपदस्य योगक्षेमाय रचित आनन्दव
जलवरेन भग्नो जनपदं जलेनाप्लावयत्। वाष्पशकट्याः सेतौ च राज्यतो दत्त
लोहवलभीनां स्थाने जीर्णा लोहवलभ्यो रागेण रक्ताः प्रयुक्ताः नवीनाश्चान्यत्र विक्रीता
जीर्णाश्च निरन्तरप्रवर्षणेन: काटयुक्तो भग्नाः, इति।

"आश्चर्यम्॥" चन्द्रश्चिन्तयामास "जनः स्वस्य लाभलोभेन विषं विदन्नुप
लोहवलभीविक्रयेण सहस्रं द्विसहस्रं तस्य लाभो भूतो भवेत्, विनाशश्च कोटिमुद्रा
सहस्राणां मानवानाम्। अयमर्थविकारः, संग्रहविकारः, स्वार्थविकारो जीर्णां लोहवलभी
मुपयुनक्ति मृत्स्नास्थाने सिकताञ्च। हन्त॥ विलक्षणोऽयं विकारः। विलक्षणयैव चास्
चिकित्सया भवितव्यम्।" चन्द्रोऽधिक्षेपमाज्ञापयामास यदमुष्यां धनमनुसन्धातव्यम्
अनुसन्धानं यावत् बन्धसेतुनियुक्ताः सम्बन्धिनो ⁷राज्याभिरक्षायां गृहीताः स्युः" इति।

* * *

आग्नेयकिरणैरुरु तापितनिरपराधसंसारं परितापपापेनेव पाथोधौ पतितं दिनमणिं
वीक्ष्य नैशो धर्मधिः समस्तदिनानुकम्पिनः सान्त्वयन्निव, नक्षत्रमुक्तानां विशदविमल
विशालमुज्ज्वलं हारं परिधाय कुमुदव्याजेन विहसन् चर्वितताम्बूलमिवाताम्रं गण्डूनेव
रश्मिजालेन विशोध्य शुभ्र प्रकटितोज्ज्वलदन्तपङ्क्तिरंगनाङ्गने शशिनो धावति।

उन्मुक्तवसना निरसना तपोधवला मुकुला तपस्विनीवोद्देशे कल्याणलक्ष्यमेवान
निष्पन्दनीरवतटा प्रगाढां शान्तिं दधाना प्रवहणस्य प्रशान्तमादकलकलेन चरन्ति
मनुमतमोदिमधुरेणेव मन्दं निनादिता नदी मन्दं मन्दं प्रवहति।

सदानन्दमपि प्रगल्भ समयत् शान्तं वातावरणम्, गुणगन्धितः सौरभम्, पदेपदे
पौरुषी सम्फुल्लानां दमनकसुमनसां सौरभम्, मधुमरीचिमालिनश्चन्द्रमसो अमन्दं
चन्द्रिका, तारकाणां शान्तनन्दनम्, प्रकृतिं सौन्दर्यानन्दसरसीं निर्मातुं सचेष्टा अभवत्।

---

¹बन्ध Dam। ²सीमेन्ट। ³पेपरमिल। ⁴स्टील मिल। ⁵रंग चढ़ाई हुई।
सर्वसम्पदोः। ⁶बैंक। ⁷सरकारी Custody By Government.

प्रस्रवणपूर्णायामुपत्यकायां विजनमनोरमे सरित्तटे विविधवल्लीवलयितं कोरकमुकुलितं चलदल[1]दधिफल[2]मन्दारकोविदारो[3]दुम्बरनिम्बजम्बीरपरिवृतं माधवीमल्लिकाशेफालिकाकरवीरकर्णिकारचाम्पेयचम्पककदम्बकुरुवककदम्बकुरुबकमदनकुन्दकुलाकुलं निकुञ्जरम्। तमेव लक्षीकृत्य शनैश्शनैः सरितः प्रशान्तवक्षःस्थलं विभाजयन्ती मित्रेरिता तरिः कुटीरान्तिकमुपेयाय। तरिं शङ्कुनाऽऽबध्य भूमिमवतीर्णौ युवा कुटिं प्रजन् अखण्डशान्तिस्वरूपनिःसमध्यात्मचिन्तननिरतं विरतवासनमात्मकल्पनातीतं कल्पनातीतं कैलाशविलासकेशं तेजस्विनं मनोज्ञहास्यं निरालस्यमुदास्यं निरतमानलोक्यैव उपाविशत्। आनन्दाश्रुप्लुताक्षो वर्षीयान् गदन्नासीत्—

अपरिमेयानि पापानि मम विध्वस्तानि। अन्तर्विदलिता दोषाः। संसारे भ्रमतो भवने पर्यटतो जगज्जालजलधौ प्रवहत उन्मत्तीभूय कर्तव्यं विस्मृत्य जगतो मृगतृष्णायमानस्य स्वेन स्वं निघ्नतो मे आयुर्व्यतीतम्। अद्यावधि विकारपोषणं तिरिक्तं कृतवानस्मि। अभ्यस्तविषयास्वादो गुरुवरप्रेरितोऽपि विजने विजनो वसन्नपि क्षणमहमधुनाऽऽत्मानं विचारयितुं पारयामि।

> "अप्यब्धिपानान्महतः सुमेरून्मूलनादपि।
> अपि वह्न्यशनाद् राम ! विषमश्चित्तनिग्रहः॥"

इति वसिष्ठोक्तं सुष्ठु। क्षणभङ्गुरं विनश्वरशीलं जीवनं विदतापि नास्मिन् जन्मनि न चान्यस्मिन् मया विचारायाभ्यस्तम्। तथापि नाहं निराशः इत्येव तव कृपा। त्वं मामुद्धरिष्यसि आत्मसात् करिष्यसीति मे सुदृढो विश्वासः। ममाभावमनन्तम्, परं तव दयाप्यनन्ता। सा मां क्षणेनैवोद्धर्तुं शक्ता। तव चारुचरणौ कर्णकिलष्टस्य स्वेन मतो बहुलदिनमतिदूरं भवेत्, परं वसति ध्रुवं सत्यम्। निश्चितं त्वमेकदा मां समाऽऽश्लिष्यसि। अधीरता प्रतीक्षास्मिन्नावन्दत। कम्पमन्नेवाहं परमां चरमां दशनुभूतिं धयामि यदा तदा प्रसी छिन्नमुर्वीरुहमिति त्वन्निर्वचनीयमेव। कदाहं सम्भोगवतो कौसेयकुसुमकिसलयकोमलं परिजातपरिमलमुक्तां देवताम्बरपीतवसनम् कुर्वाणस्तपोभव्यो दर्शनानन्दमनुभविष्यामि।

---

१ पीपल। २ कैथ। ३ कचनार।

शीर्णाण्यधान्यपिशुचीय भवन्त्यङ्गानि
हानिर्बलस्य शरदीव नदीजलस्य।
दुःखान्यसत्परिभवा इव दुःसहानि
हा! निःसहोऽस्मि कुरु निरशरणेऽनुकम्पाम्॥ (जगद्धरभट्टस्य

तं निरवाच शनैरुपसृत्यानम्य दुत्तो वे—

अर्थवादस्य दुर्दम्यपिशाचेन कारागारं वसितुं बाधितां दुराचारकर्कशलौहश्रृङ्खला-
निबद्धां भारतीयां भुवं प्रमथ्य प्राचीनार्यभारतीयसंस्कृत्या भूषयितुमुन्मुक्तवातावरणे निःशङ्कं
नरेन्द्रमण्डलं समाह्वयति युवराजश्चन्द्रः। तस्मिन्नवसरे तातस्य वामभागीरथ्यां स्वगुं
सर्वः परमोत्सुकः। इति।

"शक्रे! चिरायुषश्चन्द्रस्य साधनायां व्यवस्थायां मम महान् विश्वासः। मूकसाक्षित्वं
राममनुलक्ष्मण इवाशेषं निर्वहसि। मया यदत्र उत्सवा इष्टा उपदिष्टाः कृताः सबालिशाश्च।
अधुनाद्ममुपरतः कालात्ययितो न कापि जिगमिषामि गुरुणाऽऽज्ञप्तः। चन्द्रः प्रजाभिः
सह्युयुत्सुभिरन्यै राजभिस्त्वया च परामृश्य यच्चिकीर्षति, तदेव वरम्। "गुणार्जनोन्मुख-
विरुद्धबुद्धयः प्रकृत्यमित्राणि सतामसाधवः" अतः सर्वैः परामर्शो वरीयान्, देवो दिशतु
युष्मभ्यं साफल्यम्। अथ च किमुत्सवैः? अलं प्रजाधनदुरुपयोगेन। त्रिभुवनाभ्यर्थि-
प्सवः सहस्रशः सुन्दरीणां प्रियतमाः, लक्षशः कलावतां कोटिशः कर्मकराणामाश्रयाः
भगवदनुजन्मान इव मनुजन्मानो दुर्गान् प्रासादानारामान् निर्माप्य संसारसाधकारम्भे-
ऽदभ्रारम्भा रमणीयतमानुत्सवानकार्षुः, परं क्वाद्य ते? एते भग्नावशेषा मूकमाक्रन्दयन्तो
जगन्मानमर्द्दिभिर्वीरैरप्सरःस्पर्द्धिसौन्दर्याभिः सुन्दरीभिरध्युषितचरा अपि निर्भर-
मुद्घोषयन्ति यद् वयमदयमर्दिता मर्दिता निष्ठुरनियत्याः क्रूरकरैः। विश्वस्मिन्
स्वविचारान् स्वरुचि प्रसारयितुं सयत्ना हन्त! अद्य क्व? तेषां नामकालानुसन्धानमपि
पुरातत्त्वविभागस्थानां शिरोऽर्त्तिकरम्। एष वायुः, एषा भूमिः, एतदाकाशम्, एतानि
वनानि तान् तदनुजिगमिषूंश्च निःशब्दं विहसन्तीव। धनत्र्येषु निपतति सान्ध्यसूर्या-
लोके क्षणं विविधरागाणां प्रतीतिरिवास्मिन् संसारे सुखानां प्रतीतिः। प्रज्ञावतां प्रज्ञा-
स्तदेव सुकर्म येनानाडम्बरमप्रदर्शनं जगतो विराजो भगवतोऽफलाभिलाषमर्चनं भवेदिति"।

"तदेव देव। वयं कर्तुं कृतसङ्कल्पाः।"

* * *

पौलोमीपतिप्रसन्नोपवनपरिमलेनेव परिपूर्णस्य प्रासादस्य विबुधावलिविलसिते सारस्वत-स्रोतोधरैः सुधीवरैर्देशरत्नैराकुले रत्नाकर इव प्रेक्ष्यमाणे विशाले हाले[1] सुखमासीनानां 'समयिक्षोभावस्थामनुभूय विचाराय समवेतानां विभिन्नमण्डलनरपालानामेका विचार-परिषत् प्रारब्धा। राष्ट्रस्य ज्यायान् विद्वान् शासनस्य प्रतिनिधिर्निधिस्तपसः परिषत्स्थिर-मलञ्चकार। स्वस्तिवाचनानन्तरं समुत्सुकेषु तूष्णीम्भूय प्रतीक्षमाणेषु सर्वेषु चन्द्र-मन्त्रणस्य प्रयोजनं विशदयन्नुदतिष्ठत्। चन्द्रस्य विशालं भालोन्नतं सुघटितं विमल-वपुः परिणतप्रावृषेण्यजलधरश्यामानः स्निग्धोज्ज्वला आकृतिं रम्यां काम्यां शोभां दधन्तः स्कन्धविसर्पिणः प्रलम्बिनः कृष्णाः केशाः, मानस्य मर्यादेव तपस्विनः साक्षेव मांसलोन्नता प्रलम्बा ग्रीवा, निर्मेघनीलाम्बरे सद्यःसमुदितस्य सूर्यस्य मण्डलमिव तेजस्वि मोहकमाकर्षकमिन्दिरानन्दितं मुखमण्डलं सर्वेषु सम्भ्रमं सञ्चारयामास। स्मयमानः स प्रावोचत—

भिन्नयोरेकमृणालकमनीयकोरकयो दुर्विभाव्यवैभवा भवभूतयो विद्याभिरामगुणगण-गुम्फिता भूमण्डलमण्डनैकतिलका मान्याः! अद्य वयमैतिहासिकेऽस्मिन्नवसाने वैश्वजनीनकर्मणे परिषदि समवेताः स्म इति महत आनन्दस्य विषयः। चिरविचिन्तितमगधिमा भवन्तो जानन्ति यत् सृष्टेरारम्भकाले नात्मा एकाकी अरमत, अतः स रिरंसया बहुरूपो व्यजायत। एतद् अभ्युदयप्रतीकम्, सर्वस्याभेदभावोऽद्वैततत्त्वम्, परस्य सान्निध्यानुभूतिश्च। मानवस्यैव भावो अत्र आदिकालादद्यावधि ब्रह्मरूपेण विद्यते, तद्भावादेव मानवे सामञ्जस्यम्। अत एव महर्षयो जीवनमिदं "ईशावास्यम्" ईश्वरमयमेवं समगुः। अत एव जीवने सर्वत्रानन्दभावस्य स्थितिः। एतामेव भावनां संवर्द्धने सर्वथैते च। 'सोऽहम्', 'तत्त्वमसि' इत्यादिमहावाक्यैः सोऽभेदभावोऽद्वैतभावश्चोद्दिष्टः। परमधुना भ्रान्त्या विरुद्धः स भवेऽस्माभिः प्रहतावस्थायां सम्प्राप्तः। "स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप!"

पुरेयं सर्वभूमिरासीत्, न केवलं धनेन नैष्कर्म्येणापि। सत्यार्थेऽपि सर्वत्र

---

[1] हाल्यते—हिलिस्यते—भिद्यते उपसमुदायेन पुनरन्न स हालः—विशालं भाषणा-यतनम्। इति विवेचने मतम्। २ सनत्सुजातस्य प्रकरणम् ५।१।१०४ इति टम्।

आर्यता व्याप्तिरासीत्। अस्माकं यचस्ताम्रस्त्रलेखायते स्म, यश्च सूर्योदयवर्यति आसीत्। राष्ट्रान्तराणि यदा तमसावृतान्यनावृतानि विलेन शयानानि चासन्, अस्म राष्ट्रं जगद्गुरुत्वंनवलकलाविवेकविज्ञानेष्वशास्त्रतुलमासीत्। अत्रैव विश्वस्य प्राचीनत ग्रन्थ ऋग्वेदः, अस्मादेव विश्वस्मिन् शान्तिलताप्रसारकं दर्शनात्मकं ज्ञानज्योतिरदर्शा अस्मादेव आग्नेयवारुणवायव्यब्रह्मास्त्रप्रभृतीनां विश्वमयङ्कराणामस्त्राणामु प्रशमश्च। ज्ञानज्योतिरीप्सया लोकान्तरीया अत्रैवाजिगमिषन्ति स्म। अत्रैव लोक कल्याणैकमनसो मनस्विनस्तपस्विनो विविधा रीतिनीतीः प्रसारयामासुः। सर्वत्र प्रे वात्सल्यम्, सौहार्दम्, सहयोगिता, अभेदभावः, सहभावः सद्भावश्चासीत्। परमय भूमिः सूर्यश्चन्द्रो वायुराकाशं तु त एव सन्ति परं मानवभावनाः परिवर्तिताः। अत एव धरित्री व्यस्तेव दृश्यते। हा! विलक्षणो दैवदुर्विपाकः। केन भावेनास्माकं पूर्वजा व्यवहरन् वयञ्च केन निवसामः।

पुरा सरसि मानसे विकचसारसालिस्खलत्-
परागसुरभीकृते पयसि यस्य यातं वयः।
स पल्वलजलेऽधुना मिलदनेकभेकाकुले
मरालकुलनायकः कथय रे! कथं वर्त्तताम्॥ [illegible]।

प्रतिवेशिनि बुभुक्षिते दीने दग्धे च भोजनं गर्हितमासीत्। [illegible] सर्वं सामीप्यात्मने [illegible] प्रदाय स्वतुष्यमकुर्वन्। तस्मिन् दुर्दिनेऽप्यन्ने न्यूनेऽपि [illegible] प्रमोदमानमवरत्वं प्रतिष्ठितमासीत्। [illegible] सम्पदो हेय आसीत्।

यद्धोऽधःक्षितौ वित्तं निचखान मितम्पचः।
तद्वो निलयं गन्तुं चक्रे पन्थानमग्रतः॥

[illegible] विरलेषु यथावसरं [illegible] विधीयते स्म। [illegible] [illegible] [illegible] कर्तव्यम्, [illegible] गण्यते स्म। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] स्म। [illegible] [illegible]। [illegible]
[illegible]

ुक्कावासानाञ्च। परमद्य सा व्यवस्था स्वगुणवैगुण्येन हीनतां गतेवाभाति। त्कृष्टतमोऽपि स भावोऽस्माभिरभावतां नीतः। सत्यम्,

प्रवलत्तमसामेवंप्रायाः शुभेषु हि वृत्तयः
स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया। कालिदासः।

परमद्याप्यशिक्षितेभ्यः शिक्षालयाः, अन्धबधिरेभ्यः स्त्रीभ्यश्च पृथक् शिक्षाप्रबन्धः, गिभ्यः पशुभ्य उन्मत्तेभ्यश्चिकित्सालयाश्च—स्वल्पसङ्ख्यायामेव स्युः—क्रियन्ते। त्रिनैव रणं दुःखमपनेतुम्, रोदनकारणं ज्ञातुं नरः सज्जते, वैक्लव्यमनुभवन्तं श्वानम्, अतिभार-ढिनं स्वामिना ताड्यमानं बलीवर्दं महिषं वा वीक्ष्याश्रुद्गमः। गौः श्वा च स्वामिन-ाक्रम्यमाणं दृष्ट्वा सङ्घर्षाय सजते दुःखायते च। एषा अभेदस्य—अद्वैतस्याद्या ावना, सन्निहितस्य दुःखानवलोकनेच्छा च। सर्वः सर्वं शिक्षितुं स्वस्थमदुःखमसमर्थं मर्थयितुञ्चाभिलषति यदक्षीणमानवस्वभावः। एष परस्परोदयस्य पर्यायतः सर्वाभ्युदयस्य तिरोहित आद्यो हार्दो भावः, स एवास्माभिः प्रकाश्यो मलापनयनादादर्श इव। परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ'। वस्तुतोऽहिंसा प्रेम च मानवस्वभावः।

हिंसा—स्वेतरस्य दुःखापादनं द्रोहश्च द्वैते भवति, यत्राभेदोऽद्वैतभावस्तत्र न तेतराभावात्। दन्तैर्जिह्वायामुपहतायां न कश्चन कुप्यति कपोलमाहते वा। अभेदस्या-स्मोऽन्तभावे भवति पर्यवसानञ्च तादात्म्ये।

बाधायामपगतायां स्वभाव उपतिष्ठते, उष्णजलस्याग्नेरवतार इव। वैरूप्यापादने नैमित्तस्यावश्यकता न स्वरूपापादने। स्वस्थस्य रोगोत्पादने निमित्तं भवेन्न तु स्वस्थस्य ास्थ्ये। सा बाधैवास्माभिर्निरास्या, तस्यामपगतायामेव प्राकृतावस्था।

सर्वः प्रेम्ण्यानन्दमनुभवति न द्वेषे, संवादे सुखमनुभवति न विवादे, मतैक्ये ्थैर्यमनुभवति न वैमत्ये। जीवने जनः परैः सह योक्तुमभिलषति। स्वानन्दे परिचितैः ाम्मिल्य स्वानन्दमेधयति, दुःखञ्च ह्रसयति। युद्धम्, विवादः, सङ्घर्षः, वैमनस्यं च न ानवस्वभावः, अपि तु मानवविकारः। एतेष्वितिहासो मानवप्रतिकूलानां विनाशकानां ुर्भावानां प्रदर्शनं लोकोद्बोधनाय। मानव ईश्वरस्य प्रतिकृतिः प्रतिनिधिश्च लोकगत्याति, तः स्वभावतः सत्प्रवृत्तः। दुष्प्रवृत्तिर्विकारः पुञ्जवादादिकृतः।

अगुणकणो गुणराशिर्द्वयमिह दैवात् खलानने पतितम् ।
प्रसरति तैलमिवैकः सलिले घृतमिव जडत्वमेत्यन्यः ॥

अवधार्यताम्, अस्माकं विशाले वाङ्मये कपाटावरोधिका केवलं शृङ्खलैवार्गलतालकम् । तालकमविश्वासभीत्योः पुत्रवादपुत्रयोरपत्यम् । सकलसौख्यसाधनस्याभावस्याद्याल्पता भूता, तस्य स्वसिंहासने प्रतिष्ठापनमस्माकमुद्देश्यम् ।

समाजे सर्वे समाना आसन्नर्थदृष्ट्या, परं केचन धूर्त्ताः स्वरक्षापोषणाय स्वार्थसंरक्षासकैरुत्साहिता आढ्यद्धरणभावमाश्रित्य प्रतियोगितास्याघ्रीं निर्माय स्वस्थितिं दर्शयन्तो गच्छन्तोऽनुगामिन आहन्तुमारेभिरे कृतघ्नाः ।

अज्ञातदेशकालाश्चपलमुखाः पल्लवोऽपि सप्लुतयः ।
नवविहगा इव मुग्धा भक्ष्यन्ते धूर्त्तमार्जारैः ॥ क्षेमेन्द्रः ।

अनुगामिनश्च सकृदाहताः पतिताः परिस्थितिपीडिता जानन्तोऽपि तेषां दानवीभूतधौर्त्यं धार्ष्ट्यं च नोत्थातुमवशाः प्राभवन् ।

उपेक्षते यः खलमाक्षिपन्तं साधुर्मनोऽक्षुभ्यत कारणं तत् ।
द्विजिह्वमेनं स यदेकजिह्वः प्रयुक्तिभिर्न क्रमते नियन्तुम् ॥ क्षेमेन्द्रः

अपि तु परिस्थितिपतितास्तानेवाग्रगामिनो धूर्त्तान् पोषयामासुः । एते मत्कुणा मशका यूका इव मानवरक्तमाचूषयन्तः परजीविनो मानवशरीरं दुःखयन्तोऽपि मानवशरीरे स्थिताः

एते हि कालपुरुषाः पृथुदण्डनिपातहतलोकाः ।
गणनागणनपिशाचाश्चरन्ति भूर्जध्वजा लोके ॥
कस्तेषां विश्वासं यममहिषविषाणकोटिकुटिलानाम् ।
व्रजति, न यस्य विपक्तः कण्ठे पाशः कृतान्तस्य ॥ क्षेमेन्द्रः ।

एतेषां शीर्षघातिनां प्रत्यावसारणं जीवनाय किं न परमावश्यकम् ? सहयोगो नियमनञ्च समाजस्य जीवनभूतौ, तावद्य हन्त । गतौ । वस्तुतो धनं लोकस्य न्यासः । परम्परया परिरिपत्सा वा प्राप्तं धनं लोकस्य न्यासः । यथासम्भवं शीघ्रं यथारीति तस्य [illegible] प्रत्यावर्तनं प्रतिदानं न्यासधरस्य योग्यतायाः सूचकम् । अतोऽत्र या सम्पत्ति

स्थावरजङ्गमात्मिकाऽऽनुवंशिकक्रमेणाधिकारेणार्जनेन वाधिगता, भावानामुद्गमनाधोगमनेन वोपेता सा समाजस्य, न्यासधरेण शीघ्रं प्रत्यर्पणीया। तां प्रत्यर्प्य स शान्तिमनुभवेत् न्यासधरो न्यासं प्रत्यर्प्य यथा, न परितापम्। अन्यथा स्तेन एव सः।

मानवः किमर्थं सङ्गृह्णाति ? किं शतशाटीको युगपच्छाटीनां शतं परिधत्ते ? शताश्वः शतमस्तरो वा किं युगपत् सर्वेष्वारोहति ? व्यञ्जनानां भोज्यानाञ्च शते किं स शतगुणमत्स्यति ? भवनानां सहस्रेऽपि स एकस्मिन्नेव स्वप्स्यति। परमयं भ्रान्तो जातो दयापात्रम्।

> स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं प्राप्य लोकमिमं पुमान्।
>
> द्रविणे कोऽनुषज्जेत मर्त्योऽनर्थस्य धामनि॥ भागवतम् ११।२३।२३

पुञ्जवादः सर्वेषु भयमविश्वासञ्चोत्पादयति, विभयश्च मानवगुणैस्त्यज्यते, मानवीयमूल्यानां स्थापनाय भयनिवारणे कारणं राज्यम्। सम्पत्तेर्विभजनम्, अपरिग्रहस्यास्था परं प्रेम विश्वासञ्चोत्पादयति, "सकलगुणसीमा चितरणम्।" अस्माकं व्रतमासीत्, शतहस्तसमाहर, सहस्रहस्तसङ्किर। अथर्ववेद ३।२४।५। परं विभजनेऽनीहः परिग्रही सततशङ्की सर्वान्निर्धनानक्षमान् मूर्खान् दुर्बलानेव वाञ्छति प्रक्षीणभगवद्भावो मन्दभाग्यस्तस्करश्चन्द्राभावमिव। एतादृशे भावे कथं सम्पन्नता ? वस्तुतो यो मनुष्ये मनुष्यवद् व्यवहरति स एव मनुष्यः।

> दुरासदानरीनुग्रान् धृतेर्विश्वासजन्मनः।
>
> भोगान् भोगानिवाहेयानध्यास्यापन्न दुर्लभा[1]। भारविः।

केचन कथयन्ति यद् धनिनां धनविभाजने भोगविलासेष्वाक्रमणे च दरिद्राणां कोऽधिकारः ? सत्यम्, दरिद्राणां सम्पद्ग्रहणे धनिनां कोऽधिकारः ? सम्पद एताः कस्य ? इत्येव विचार्यो विषयः। व्यक्तौ धनार्जनाभिलाष उन्नतेः स्थाम्नि तत्त्वमस्तीति सत्यम्, परमिदमपि सत्यं यदाधुनिकयर्जनेच्छा इतरान्निर्धनयितुमेका योजना क्रियते। धनी यावत्सङ्ख्यं दरिद्रान् कर्तुं समर्थस्तावत्प्रमाणं सफलः।

---

1 विश्वासजन्मनो धृतेः - सन्तोषस्योमानरीन् भोगान् - धनानि, आहेयान् भोगान् = फणाभोगानध्यास्यापन्न दुर्लभा, अपि तु नितरां सुलभा।

खलश्च खड्गश्च नहि स्वभावं जहाति कोशार्पणलालितोऽपि।
यस्यातिमात्रं मलिनात्मकस्य परं द्विधा कुर्वत एव रागः॥ क्षेमेन्द्रः।

अस्यामेक एव सर्वग्राही बुभूषत्यन्तापरिव, परस्परं धनमपजिहीर्षति च। अस्याम- वस्थायामाशङ्कापूर्णे वातावरणे क आनन्दः? क सुखम्? मन्यतां भवान् मूल्यमभिलषति, तस्मै किमपि भोजनवस्त्रादिकं प्रदाय तस्य श्रमेण स्वकार्यं चिकीर्षति, तदाऽवश्यमेव भवत्प्रतिवेशिना निर्धनेन भवितव्यम्। भवदैश्वर्यं भवतः प्रतिवेशिनो दारिद्र्येऽवलम्बितम्। परम्, राष्ट्रे कश्चन भोजनवस्त्रादेरिच्छुको न भवेत्, सर्वेषां जीवनव्यापारः स्वेन चलेत्तदा मृत्यप्राप्तिरशक्या। वपनम्, पशुचारणम्, भोजनम्, जलानयनम्, लेखन- व्यवहारादिकं तैनैव कार्यम्। राष्ट्रं तद् यदि सम्पन्नं भवेत्, सर्वेऽप्यावका अनभिलाषुकाश्च स्युस्तदा स्वर्णपतेः स्वर्णस्योपयोगिता पीतपाषाणखण्डतो नाधिका। तेन सञ्चितमन्नवस्त्रादि घुणादिजर्जरितमेव भविष्यति, यतो न कश्चना- काङ्क्षकः। स स्वयञ्च नान्नम्, न वासांसि, न गृहाणि वा शतसहस्रगुणमुपयोक्तुमुपभोक्तुं वा समर्थः। अतस्तत् सर्वं विनङ्क्ष्यति। बुध्यतां तस्य सङ्ग्रहस्य कोऽर्थः। स्वला- यानन्दायापि तेन श्रमिवत् कठिनं श्रमितव्यमेव। विशालं क्षेत्रं स स्वयमेकाकी न वप्तुं न लवितुम्, न चोपयोक्तुं समर्थः, न च विशालस्य हर्म्यस्य जीर्णोद्धारे स्वलेपे किमु वासेऽपि समर्थः। स जीर्णशीर्णानि गृहाणि स्वकीयानि कथयन्नेव हृष्यति। भविष्यति चान्यगृहनिर्माणेऽनुत्सुकः। अतः स लघीयसि गृहे उद्याने वा वसन् स्वहस्त- कृतसर्वकार्य एवातिसन्तुष्टो भविष्यति।

धनार्जने चतुरो धनमर्जयेत्, परं तस्योपयोगः सार्वदेशिको भवेत् यथा वायुराकाशं जलं विश्वजनीयानीश्वरप्रदत्तानि च तथैव धनम्। धनं लोकस्य न्यासः। विचार्यताम्, यदि माता शक्तिशालिनी चतुरा च, तदा किं सा दुर्बलस्य शिशोर्भोज्यं खादेत्? यदि खादेत्तदा क्रूरतां मातरं कथयितुमीहेत। सर्वे तां डाकिनीं वदिष्यन्ति। परमत्र विज्ञः सर्वसाधनसम्पन्नः पितृस्थानीयो धनी दृश्यम्, मातापितरौ, दारापत्यञ्च विहायागतानां पुत्रायमाणानां भृत्यानां भृत्यकरोपार्जितसम्पत्तिं तेषो निर्दयं सर्वस्वं हर्तुं सगुणः।

अमृतं किरति हिमांशुः विषमेव फणी समुद्गिरति ।
गुणमेव वक्ति साधुर्दोषमसाधुः प्रकाशयति ॥

विचार्यतां श्रीमतां सम्मतौ स कथं सम्बोध्यः ?

आधुनिकं ज्ञानं विज्ञानं केवलं परिग्रहिणां धनार्जनस्य साधनमात्रम्, परेषामाकर्षणे शोषणे सहायकश्च । अद्य विज्ञानाविष्कृतानि यन्त्राणि मानवमूल्यहराणि । प्रतीयते युगवादोऽद्य यन्त्रारूढो मानवजयी । यन्त्रं समाजेऽङ्गानां शक्तिवर्द्धनाय परिश्रमपरिहाराय कौशलेन समानवस्तूत्पादनाय अवकाशसंरक्षणाय च प्रतिष्ठितम् । चक्षुषोः शक्तिवर्द्धनायो-पनेत्रं दूरवीक्षणं सूक्ष्मेक्षणञ्च, वाचः शक्त्यै ध्वनिविस्तारकम्, पादयोः शक्तिवर्द्धनाय द्विचक्रिका, मरुत्तरम्, वाष्पयानम्, वायुयानञ्च । हस्तयोः शक्तिवर्द्धनायासङ्ख्येयादि यन्त्राणि, लिपिश्रमपरिहाराय मुद्रणालयः । सोऽयं मानवविकासाय मानवज्ञानां शक्त्युत्कर्षाय गुणोदयाय चोपयोगः सम्मतः । परं योऽवकाशः सर्वविधशक्तीनामुदयाय यन्त्रेण दत्तस्तस्मिन्नेकाधिकारः पुञ्जवादेन कृतः प्रतिद्वन्द्वितामुत्पाद्य । एवमल्पा अवकाशभोगिनोऽनल्पाश्चानवकाशयोगिनः संवृत्ताः ।

सन्तापमोहकम्पान् सम्पादयितुं निहन्तुमपि जन्तून् ।
सखि ! दुर्जनस्य हि मतिः प्रसरति दूरं ज्वरस्येव ॥ गोवर्द्धनाचार्यः ।

अद्यतनं यन्त्रवैपुल्यं मानवीयकलानां समाप्तिम्, प्रभुमेकदा सुलभं सौकर्येण चोत्पाद्य धनं केन्द्रितं करोति, धनाभिवृद्धिं बाधते, उत्पादने मानवस्पर्शं रुणद्धि च । मनुष्यस्य विकासस्तनेन पुञ्जवाददोषेणैव बाहत एव सम्प्रति तद् विकासाधारं मनुष्यमेव विपन्नयति । विपत्त्यां निराकृत्य तस्योपयोगिता केवलमस्माभिर्ध्वंसयाप्ता ।

न परं फलति हि किञ्चिन् खल एवानर्थमावहति यावत् ।
मारयति सपदि विषतरुराश्रयमाणं भ्रमापनुदे ॥

यन्त्रोदयात् पूर्वमस्माभिर्बहवः पदार्थाः समाजे सम्मेलिता उपयोगितां नीताश्च, परमधुना एतत्सर्वं गतप्रायमपि इवाति । अत्रगुम्फ्यमानस्य रसाऽऽस्वादनमवाऽवस्येव । एवमभ्युदये संसारसुखः, पदार्थसम्मुखत्व=संस्कारोऽभिप्रेतः, किन्तु द्वितीयपक्षे । परं एवमभ्युदयीना-मिश्रसंयोजनेऽस्माकं चिरसंचितानां पक्तिमानां पदार्थानां संयोजनं तु नितरामावश्यकम् ।

स्मर्यताम्, राष्ट्रे सर्वे समानाः शरीरेऽङ्गानीव। समये उप्त्वा पर्यवेक्षमाणो लविता कृषकः, सन्धियोगनिपुणो नौनिर्माता, लोहकारः कुम्भकारचर्मकारौ व्यवस्थापकश्चिकित्सकोऽध्यापकः, गृहकारः, गृहकार्यदक्षा गृहिणी, स्वरान् संयोज्य गायन्ती गायिका, सैनिकः, शोधको देशस्य सम्पादका महत्त्वकर्त्तारश्च। नैते कस्मात्चिदपि प्रजाव्यवस्थापकाद् राज्ञः, सदसद्विवेचयतो न्यायाधीशाद् वा न्यूनाः।

मम सम्मती राज्ञां धनिनाञ्चायं विकासक्रमः।

पुरा ग्राम्या ग्राम्यं बलवन्तमूचुः—"वयं तव जीविकां साधयिष्यामस्त्वं ग्रामं रक्ष"। स स्वीकृत्य दण्डधरो नैपुण्येन ग्रामं ररक्ष। तस्य कार्यप्रणालीप्रसन्नाः पार्श्ववर्त्तिनोऽपि तं ग्रामाणां रक्षार्थमनोदयन्। स स्वीकृत्य स्वाप्तपुरुषान्नियोज्य रक्षितुमारेभे। एवं शनैश्शनैः स बहूनां नगराणां रक्षको बभूव। "प्रजाहितव्रतिनो वयम्" इत्येव तस्यादर्श आसीत्। ग्रामरक्षकाणामावासाय परेषां प्रहाररोधाय प्रजानां सुरक्षायै तेनाधुना विशालं दुर्गं निरमायि। व्याघातकानां कृते तेनायुधनिर्मितिरारब्धा। रक्षकाणां शिक्षणाय स्वपुत्राणामध्यापनाय च वनादाहूय विद्वांसो नियोजिताः।

अध्यापयन्ति शास्त्राणि तृणीकुर्वन्ति पण्डितान्।
विस्मारयन्ति जातिं स्वां वराटाः पञ्चषाः करे॥

यातायातसुखाय ग्रामान्तरेषु लोकपथा निर्मिताः। वाहनानि सङ्गृहीतानि, अर्जितधनेन सेना च सङ्गृहीता। अधुना सोऽधिगतबलः पटुर्जनताया दौर्बल्यमनुभवन् कांश्चित् सचिवान् कृत्वा स्वैरं करं ग्रहीतुमारब्धवान्। रक्षकोऽपि सोऽधुना भक्षको भवितुमारेभे। लोकाः च इतररक्षकाणां रक्षाव्यवस्थां विश्रृङ्खलामकल्याणीमुद्घोष्य इतरप्रदेशान् स्वायत्तीकुर्वन् प्रजाहितव्रतितां प्रासारयत्। स एव लगुडधरो राजपदेन स्वीकृतः, सर्वेषु विशेषतो राजनात्। सम्भाव्यते स एवाधुनिकलगुडिनां पूर्वजः।

लोकेन च मौढ्यात् सर्वा सत्ता ग्रामपालयितात्र राज्ञेऽर्पिता। त्वमस्माकं कल्याणमाचर, यदि वयं नेच्छामस्तर्हि दण्डयास्माकं कल्याणमावह, एवाऽनियन्त्रिता सत्ता राज्ञोऽपराधिपरिणे प्रमत्ताय प्रदत्ता। राजा स्वयं साधारणो मानवः, न तस्मिन् काचिद् वैशिष्ट्या सत्ता काचिच्च, या सत्ता शक्तिर्वा सा प्रजानामेव। एवं स लोकस्य सत्तया शक्त्या

च स्वार्थसंरक्षणाय लोकान् यथेच्छं दण्डयितुमारभत। प्रथमतो राजा निर्वाच्य आसीत्, यतो हि रक्षकस्य निर्वचनं रक्षणयोग्यतानुसारि। परं शनैश्शनैः सम्प्राप्तसाधनोऽनुरक्तविशिष्टजनः सोऽस्मत्पूर्वजो राज्यं कुलक्रमागतञ्चकार। वस्तुतोऽस्य स्थितिर्द्वारपालतो नाधिका। ब्राह्मणैः क्षत्रबन्धुर्हि द्वारपालो निरूपितः। भागवते।

यथा चादिराजः पृथुः—

अहं दण्डधरो राजा प्रजानामिह योजितः।

रक्षिता वृत्तिदः स्वेषु सेतुषु स्थापिता पृथक्[1] ॥ भागवते ४।२१।२२

राज्ञां सृष्टिर्विपत्परिहाराय जाता।

रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत् प्रभुः ॥ मनुः ३।६

प्रभवतीति प्रभुः—प्रकृष्टसत्ता (सार्वभौमसत्ता) सम्पन्नाः प्रजाः। 'विप्रसम्भ्यो डुसंज्ञायाम्' ३।२।१८०

नित्यमुद्यतदण्डः स्यान्नित्यं विवृतपौरुषः। मनुः ७।१०२

दण्डो दमनादित्याहुस्तेनादान्तान् दमयेत्। गौतमस्मृतिः ११।

सर्वत्र शासनान्न्यायव्यवस्थायाः पार्थक्येऽप्येतदेव कारणम्, यच्छासनं द्वारपालायिताधीनम्, न्यायश्च विद्वदधीनः। स्यक्ताखादा वने वसन्तो विषयैषिणो विद्वांसोऽप्यधुनाऽहङ्कारमकृत्तौ गगनस्पर्शिसौधे च मोहिता दुःखाकरं वनवासमुत्सृज्य, अमात्यपुरोहितादिपदलोलुपास्तस्याभिषेकनाटकं चक्रिरे अनुमुमुदिरे च कुलक्रमागतकर्मणि दास्यम्, ऊचुश्च 'अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः' इति। सत्यम्,

अपथे पदमर्पयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिताः।

याज्ञवल्क्यस्मृतौ (अ. १।३०९,१०) राज्ञां लक्षणं प्रत्यपादि—

महोत्साहः स्थूललक्ष्यः कृतज्ञो वृद्धसेवकः।

विनीतः सत्त्वसम्पन्नः कुलीनः सत्यवाक् शुचिः ॥

---

[1] अहं पृथुः प्रजानां वृत्तिदः—वृत्तिं ददाति राष्ट्रव्यवस्थापनेन सः, तथाभूते राष्ट्रे सद्वृत्ततरो भवितुं शक्नुवन्ति। स्वेषु सेतुषु—मर्यादासु स्थापयिता दण्डधरो रक्षिता च प्रजाभियोजितः।

अदीर्घसूत्रः स्मृतिमानक्षुद्रोऽपरुषस्तथा।

तस्य कर्म च—

स्वराष्ट्रे न्यायवृत्तः स्याद् भृशदण्डश्च शत्रुषु।
सुहृत्स्वजिह्मः स्निग्धेषु ब्राह्मणेषु क्षमान्वितः॥ मनुः ७।३२

एवं वृत्तस्य नृपतेः शिलोञ्छेनापि जीवतः।
विस्तीर्यते यशो लोके तैलबिन्दुरिवाम्भसि॥ मनुः ७।३३

परमद्यास्मासु कति तथाभूताः सन्तीत्यात्मा निरीक्ष्यः।

कुलानि जातीः श्रेणीश्च गणाञ्जानपदांस्तथा।
स्वधर्मच्चलितान् राजा विनीय स्थापयेत् पथि॥ [illegible] ११।२

[illegible] शीलसदाचारसम्पन्नासु प्रजासु ज्ञानप्रसाराभावादतद्रूपैव [illegible]
सुखं शासयामासुः—

सर्वो दण्डजितो लोको दुर्लभो हि शुचिर्नरः॥ मनुः ७।२२

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वाः दण्ड एवाभिरक्षति।

समीक्ष्य स धृतः सम्यक् सर्वा रञ्जयते प्रजाः।
असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः॥ मनुः ७।१८-१९

इत्यादिगुणैर्गुणैः कर्मभिः परिहार्यैर्व्यसनैश्च स सेवको नृपत एव च [illegible]
तेष्वमनुरक्तः। राजानेतानि व्यसनानि सर्वथा परिहार्याण्यभवन्—

दश कामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च।
व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥ मनुः ७।४५

मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः।
तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः॥ ७।४७

पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्याऽसूयार्थदूषणम्।
वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः॥ ७।४८

परमस्य त्वेष्वेव दोषेषु सर्वं आकण्ठं मग्नः। अस्तु, कुलक्रमागते स्वार्थरहिते पुत्रवादाप्रभाविते कर्मण्यनुभवस्तु गरीयान्, परं पुत्रवादप्रभाविते तु दौर्गुण्यमेव। अतः शासकेनावश्यं परिवर्तनवता भवितव्यमेव। अन्यथाऽऽधुनिको राजेवाधिगत-शस्त्रास्त्रः सङ्गृहीतसेनो वाहनबलः कृतदुर्गः आतङ्कितजगत् सेवकोऽपि स सेव्यो भविष्यति, नरपालश्चापि नरपतिः। परिस्थितिपोषितः साधारणोऽप्यसाधारणः। परिवर्तने दुर्बलमना उपभुक्तभोगः परिवर्तनेऽनीहः शासनादिलिप्त एव भविष्यति।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।

व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ[1] न विधीयते ॥ गीता।

एवमेवौद्योगपतिरपि परिस्थितिपोषितः।

यथा च—अमुकग्रामादन्नमाहर वयं तुभ्यं भोजनं दास्यामः, इति ग्रामीणैर्नोदितः पशुसेवकः सार्थवाहः स बहुलाभस्याहरणेन बहुभोज्यमाप। उपयोगावशिष्टं तदेव विक्रीणानो विनिमयमानः शनैर्जातसङ्ग्रहो वैवधिकचरो यानं स्थानव निर्माय जनतावश्यकतानुसारि वस्तुजातं पार्श्ववर्तिभ्य एव क्रीत्वा यथेच्छमूल्येन पार्श्ववर्तिभ्य एव विक्रीतवान् यथेच्छमूल्येन।

सह वसतामप्यसतां जलरुहजलवद् भवत्यसंश्लेषः।

दूरेऽपि सतां वसतां प्रीतिः कुमुदेन्दुवद् भवति ॥

शनैः सङ्गृहीतधनो बलीवर्दं मुक्त्वा शकटयोज्य ग्रामान्तरेऽपि व्याप्तिमाप्तो गृहधन-मैश्वत्। "लाभाल्लोभः प्रवर्द्धते"। एवं वणिग्व्यापारः[2] स धनित्वमप्यगमत्। [illegible] शकटं वाहयित्वा [illegible] [illegible] प्रधानमहापथस्य परिस्थितिवशात् [illegible] [illegible] भोग्यं [illegible]। सत्यम्।

[illegible] हि खलः प्रथमं स्वजनं नु नयति परितापम्।

[illegible] दवदहनो जन्मभुवं दाह निर्दहति।

१ समाधिः—अन्तःकरणम्। २ वाणिज्यस्य व्यापारः—[illegible] [illegible]। "[illegible] [illegible]।" "[illegible]" इति [illegible]।

एषा पुञ्जवादस्याद्या भावना। अधुना सोऽनल्पायासेनालब्धवेतन च नित्यमुपभुज्यमानानां वस्तूनां निर्माणेच्छयाऽऽवश्यकतामवगम्य निर्धनान्दिनप्रवासीरदशकाल्लोहकारान् कुशलान् काष्ठ मयामन्दोदया दयां कुर्वन्निव नियोज्य वस्तूनि निर्माप्य जीवनधारणयोग्यं प्रयच्छन् प्रचुरं धनमैधयत। वराकास्ते च परिस्थितिपीडिताः किं कुर्युः यतो हि "सर्वारम्भास्तण्डुलप्रस्थमूलाः।" सत्यमेव केनापि कविनोक्तम्।

इयमुदरदरी दुरन्तपूरा यदि न भवेदभिमानभङ्गभूमिः।
कथमपि न सहे भवादृशानां कुटिलकटाक्षनिरीक्षणं जनानाम्॥

कृषति वपति लुनीते दीव्यति सीव्यति पुनाति वयते च।
विदधाति किं न कृत्यं जठरानलशान्तये तनुमान्॥

अथ च गोः स्तनन्धयो वत्सः प्रतिदिनमेकप्रस्थमितं पयः पिबन् प्रतिप्रस्थमाण्णकद्वयमूल्येन संवत्सरे पञ्चचत्वारिंशन्मुद्राणां केवलं पयः पास्यति, शस्यादिकं पृथक् सेवकस्थानादिव्ययश्च पृथक्। एकहायनस्य वत्सस्य मूल्यञ्च मुद्रापञ्चकम्। चत्वारिंशन्मुद्राणां हानिरिति विचार्य गौर्वत्सं विना कथं दुग्धं दद्यादित्युपायमन्विष्य जातमात्रमेव वत्समेकया मुद्रया गोघातिभ्यो विनिमयते केवलं स्वार्थपण्डितः।

अतिमलिने कर्त्तव्ये भवति खलानामतीव निपुणा धीः।
तिमिरे हि कौशिकानां रूपं प्रतिपद्यते दृष्टिः॥ सुबन्धुः।

पुञ्जवादे एतादृश्यः कल्पनाः कला गण्यते विज्ञानं वा। हन्त! "ऋद्धिश्चित्तविकारिणी।" स्तनाद्दुग्धपाने वत्सस्यैवैकाधिकारो रक्षितस्तु पीतशेषे, नैवं तस्य विचारः। भगवतो वसुधां पश्य च, वत्सस्य पित्रा बलीवर्देन कृष्ट्वाऽधिगतमन्नम्, तस्य जातं दाम्पं मनसा स्वायत्तीकृत्य यथेच्छाचरणाय स्वतन्त्र ईश्वरमुपेक्ष्य, तद्गृहितम्, अर्पितकुर्वतां परिस्थित्या मूकानां च हितमपश्यन् पराजितस्याहरणाय स्वार्थपोषणाय रेटते परिग्रही। एवं परिस्थितयर्जितधनः स भौतिकीमुन्नतिमकरोत्। परिस्थितिरेवास्य ऊर्ध्वं नयने परमा साधिका। यथा च कश्चन विप्रः शिष्यगृहं गतः शिष्येण प्रोक्तः "भवान्नाग्रमत्तस्त्वत्त्विचारमदानीतं पयः पिबति, अतो भवानेव पचतु जलमाहरतु च" इति स स्वस्मै कृतवान्। कदाचन शिष्यस्य स्त्रियां रुग्णायां रजस्वलायां वा भूतायामितरभक्तिः शिष्योऽवद-

"गुरो ! भवान् पश्यत्येव, आवाभ्यामपि पक्तुं दयताम्, तदर्थं मुद्रामेकां दास्यामि, यतो न विना मूल्यमावां गुरुपाचितं खादिष्यावः" इति शनैश्शनैश्चलित एव व्यवहारोऽस्य हन्त ! ब्राह्मणान् पाचकान् प्रतारयायिनश्च चकार । हन्त ! दारुणा परिस्थितिः । परिस्थित्या चान्यशास्त्रशनैश्शनैः कृतवाणिज्यादयश्च धर्ममुपेताः । अस्तु,

अथाप्युद्योगपतिरनवरतमधिकाधिकं श्राम्यते परिस्थित्या प्रतिकर्तुमसमर्थाय श्रमिणे यथाकथंचिज्जीवनं धर्तुं किंचित् प्रक्षिप्य, कार्यापितासु कुटीषु पतयालु वाऽऽश्रयस्य सदस-मप्रकृत्यमातभावेन । एतत्स्तोपणं प्रकटितभवबाधस्याऽऽनन्दोपवनदावाग्नेर्दशकन्धरस्य पुत्रस्य ज्येष्ठः पुत्रः । एतेषां लक्षाणां सहस्राणां शान्ततमः कश्चन कदाचन कश्चन यशोर्थी स्वार्थी किमपि ददाति चेत्तदानं नीवीं[1] प्रमोष्य 'हस्तमुद्रां दित्वास्य ताम्बूलवीटिकामत्यर्पयत्, 'धनं प्रचोर्य सूचिकादानमदाऽकिंचित्करम् ।

अथ राजानः सामन्ता भूमिदारा धनिन उद्योगपतयो व्यापारिण इतरे च कृषकेषु जीवन्ति । सोऽयं सर्वोपजीव्य ईश्वरस्य लघुभ्रातेव लोकजीवनाय सर्वथा सगुणोऽपि निर्धन एवास्ति । तस्य पशुवत्सबालपरिवृद्धिभूषणाः विविधशिशुकृताक्रन्दनवत्सलाः कालकुन्दकसमाः शिशवः साधनविहीनाः खाद्याभावदुःखदारिद्र्यविकृता उपप्लुतन्तो मृत्युमुखं विशन्ति, विवेकविरहिता अशिक्षिता वा जीवनं यापयन्ति पशव इव । ते पशवः प्रधानस्रोत-सोऽपि पयः पातुं न शक्नुवन्ति, नवनीतस्य निर्मातारोऽपि तन्नाश्नन्ति, वस्त्रस्य कर्तारोऽपि नग्ना, अन्नस्यैकमात्रं कर्तारोऽपि निरन्नाः । अन्य एव कश्चन हस्तादेवमज्ञानदरिद्राणां कृषकाणां हस्तात्समादाय तदुपभुङ्क्ते । हन्त ! कृपणानामस्माकं कथं निष्कृतिर्भविष्यति । "कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ।" तेषां परिस्थितौ ज्ञानविज्ञानयोरुपयोग उपभोगो वा विषादयते इति बहु मतावयम् । अद्यज्वालाकालीवल्लिदानां तेषां दर्शनो यदि जीवनं पारधनुष्मन् केवलं जनानां प्रबलान् पादभवान् सेदुर्मितस्तो धर्विदुम्, तेषु स्वल्प शिरस्कारय च केवलम्, हन्त ! "दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी" ।

> कुलं शीलञ्च सत्यञ्च प्रज्ञा तेजो धृतिर्बलम् ।
> गौरवं प्रत्ययः स्नेहो दारिद्र्येण विनश्यति ॥ चन्द्रः ।

---

१ नीवी–ग्रन्थी । २ धन–धन सेदृष्टनेष ।

मानो वा दर्पो वा विज्ञानं विभ्रमः सुबुद्धिर्वा ।
सर्वं प्रणश्यति समं वित्तहीनो यदा पुरुषः ॥ पञ्चतन्त्रम् ।

परं ते तु धन्या एव येषां मृतानां लोकोपकारमावीतप्रीतान्यस्थीन्यपि मुहुर्मुहुर्मुदीरयन्ति ।

पाटीर ! तव पटीयान् कः परिपाटीमिमामुरीकर्तुम् ।
यत् पिषतामपि नृणां तनोषि परिमलैः पुष्टिम् ॥ (पण्डितराजजगन्नाथः)

ग्रामोन्नत्यै सर्वो व्याप्रिये, परमुन्नतिर्नगराणां भवति, वराका वचनैरुन्नयन्ते । आजीविकासाधनान्यपि नगरेष्वेव सन्ति । स्वार्थः, परशोषणम्, लोलुपत्वम्, मूढत्वम्, परिमर्दिणां नागरिकाणां प्रधानं धर्मः । वराका ग्राम्या दुर्भिक्षविक्लिष्टाः गतधना धनः सुवर्णसुभगं मञ्जुलकुसुमसरसमुगन्धगन्धवहैर्द्राधिनामयतुलं सुरविटपिवाटीपरिसरवत् पुनरपुरुपजनपरिवृतं शरज्ज्योत्स्नासुन्दरं सौभाग्ययौवनजननं स्वास्थ्यहितं शीतलं तपोवनमिव ग्राममुत्सृज्य स्वर्गान्तरकमिव महाकमलकुसुमदीपकाराशिवासु दुर्गन्धनिपातासु रथ्यासु निवासाय बाध्यन्ते परकर्माश्रयमाणा परमर्भश्रिता जीवनं परमधनेन सर्थिन्यन्तरनीयोमि पांसुमपि न लभन्ते, न च राज्येषु प्रावुर्वन्ति । राज्याधिकारियोऽपि निरवनदप्रियाः स्वार्थपरैकमनसः सामान्याः ग्रामेषु न वर्तन्ते । यतो हि न तत्र विविधशलभनोपवृंहितानि द्विमर्तानिकेतनपूरिताहि सुन्दरवदनसुन्दरवर्गालिरैतानि शार्दूलतलजिनासमनवल्लभतार्विमोचनमनुगमनानि भिरतानि दरमुरुयनवलवसुमनिवनपर्लिमुनितानि सघनीसवीतानि पौरीमोमानि, न सौवर्णताजमनभनेन्द्रसुवन्याहृतावस्थानिबद्धनादानि, न प्रशस्तपरिलक्ष्यानि पुष्पकलताकलितानि दैवारुणिदर्शनि, न सुवर्णसुमनगो वाणिज्यसाधो दृष्टः, न निवेशस्य सर्वसुन्दरं आरामाः, न धनवानां चतुर्थ धनानुर्वंशो महामहः, न च सर्वोपेतो स्वरूपो मनुष्याणां विस्तारतः सम्पत्तयः । को नाम एवं विनाशदं सुन्दरम् [illegible] शलभैः समलङ्कृताः ग्रामवनेषु ग्रामेषु सञ्चरितः ।

पुराणे मनुष्याः वनस्पतयश्च सन्तान् । केन कारणेन धनाः [illegible] जनैः सर्वैः [illegible] । अत्र मनुष्याणां मूलम् । [illegible] । [illegible] ।

कार्यापणस्य निशास्वप्नान्ते। एतद्धनं मदीयं तदपि ममैव स्यादित्येवनास्तं तस्य विचारः। आकल्पं जिजीविषुरिव स द्वीपसम्पदपहरणे क्षमः। तस्य दृष्टौ धनस्य, केवलं धनस्य मूल्यम्। धनार्जनाय स स्त्रियम्, पुत्रीम्, प्रतिष्ठाम्, पुण्यम्, सिद्धान्तम्, धर्मम्, न्यायं वाणिज्यारे[1] विक्रेतुमाकुलः। "मा गृधः कस्यस्विद्धनम्" इति सिद्धान्तरतेन सार्द्धचन्द्र नितम्बे पादं प्रहृत्य निष्कासित उत्तरध्रुवं सेवते। आश्चर्यम्! कश्चन निरन्नोऽन्न-क्षपाय प्रयतश्चेन्न तस्य दोषः, जीवनसंरक्षणं तस्याद्यो भावः। परमन्नपूर्णसमुद्रा अमितस्वर्णा न्यायमन्यायं पुण्यं पापमविचार्य यदि तस्मै सयत्नास्तदा किमु वक्तव्यम्? इदानीन्तनः समयो विकृतो भयानकश्च। एव भारतस्याशायिताः भविष्यन्तः कुम्पराम-मुद्रा मन्दमधुरस्मितस्तनितमुखारविन्दा बालाः पापपानकेषु परिवेषितुम्, रम्भासु कर्णद-वर्णेद्रालयान् प्रवेष्टुम्, समूहे नीवीमपहर्तुम्, अत्र स्फुरितयौवनाः परिणतशारदचन्द्रवदना रदनजितमौक्तिकरदना निसर्गक्षीणोदर्यः सुन्दर्यः कालिदासस्य कला इव मूर्तिमन्त्यः सद्यः स्मलकोमलकामनाः कन्याश्च विमलकठिननिश्चलव्रताच्चलिताः स्वमर्मवेदागारेषु वेश्यालयेष्वनुचितां भृतिं वा कर्तुं बाध्यन्ते।

हन्त! धनेन कीदृशी स्थितिः परिवर्तिता। सर्वेषां स्थानं केवलमनेन गृहीतम्। न केनापि कदापि विचारितमासीद् यद् द्रव्यस्य विनिमयसाधनस्य मानवजातेः एतादृशी प्रतिष्ठा भविष्यति। विश्वस्मिन्नास्ति कोऽप्यर्थो यो धनेन न साधयितुं शक्येत। अन्यायस्य, शोषणस्य, व्यभिचारस्य, भ्रष्टाचारस्य, चौर्यस्य, प्रसह्यहरणस्य, हिंसा-याधारशिला धनमेव केवलम्। सत्यम्, वित्तच्छायायां नरो विवेकविच्युतो भवति। यत्र धनी नीतिश्च न स्यात्, स्वार्थः सर्वातिशायी तत्र यदि स्यात्तस्तदा किमाश्चर्यम्? "नीचैरनीचैरतिनीचनीचैः सर्वैरुपायैर्धनमेव साध्यम्"। 'धनं परमेश्वरः सर्वेषां परमेश्वरस्तु [illegible]। सत्यम्,

मा राज्यश्रीरभूत् पुंसः श्रेयस्कामस्य मानद।

स्वजनानुत बन्धून् वा न पश्यति ययान्धदृक्॥ भागवते १०।८४।१४

हन्त! दुरवस्थोऽद्यत्वेऽर्थविवेकः। त्रिभुवनराज्य[illegible]मर्थैः सर्वमवलम्बितम्।

---

१ बाजार इतिलोके।

मानो वा दर्पो वा विज्ञानं विभ्रमः सुबुद्धिर्वा ।
सर्वं प्रणश्यति समं वित्तहीनो यदा पुरुषः ॥ पञ्चतन्त्रम् ।

परं ते तु धन्या एव येषां मृतानां लोकोपकारभावोत्प्रोतान्यस्थीन्यपि गुर्वीं गुर्वीं सुरयन्ति ।

पाटीर ! तव पटीयान् कः परिपाटीमिमामुरीकर्त्तुम् ।
यत् पिषतामपि नृणां तनोपि परिमलैः पुष्टिम् ॥ (पण्डितराजजगन्नाथः)

ग्रामोन्नत्यै सर्वो व्याचष्टे, परमुन्नतिर्नगराणां भवति, वराका ग्रामीणैरेव न्यक्कृताः। आजीविकासाधनान्यपि नगरेष्वेव सन्ति। स्वार्थः, पक्षपोषणम्, लोलुपत्वम्, क्रूरत्वम्, परिग्रहिणां नागरिकाणां प्रधानं धर्मः। वराका ग्राम्या दुर्भिक्षविक्षिप्ताः गतधना जनाः सुवर्णसुभगं मञ्जुलकुसुमसरसमुगन्धगन्धवहोद्भासितामयकुलं सुरविटपिवाटीपरिवृतचत्वरं पुञ्जवादपुरञ्जनपरिप्लुतं शरज्ज्योत्स्नाशुद्धं सौभाग्यजीवनजननं स्वास्थ्यहितं महितं वीतरागं तपोवनमिव ग्राममुत्सृज्य स्वर्गाधरकमिव मशकमत्कुणमक्षिकासंरक्षितासु दुर्गन्धनिधानासु रथ्यासु निवासाय बाध्यन्ते चरकमाह्वयमाना यक्ष्मभक्षिता जीवन्तः परमश्रमेण सञ्चिन्वन्तस्तनीयांसं पांशुमपि न सञ्चिन्वन्ति, न च सञ्चेतुं शक्नुवन्ति। राज्याधिकारिणोऽपि नित्यनवप्रियाः चाकचक्यैकप्रवणचेतसः सासूयाः ग्रामेषु न यान्ति। यतो हि न तत्र विविधव्यञ्जनोपबृंहितानि द्विजटत्रिजटस्फुरदिन्दीवरनिन्दिसुन्दरवदनामृतहास्यगीतोपेतानि शङ्कितलज्जितरसभरचञ्चलत्तापविमोचनमधुरहगन्धशोभितानि उदमसूच्यमकञ्चुकाञ्चितवक्षोविभूषितानि सधनोपनीतानि गोष्ठीभोज्यानि, न सौवर्णराजतभाजनेषूपहृतान्याहृताक्षाण्यभिनन्दनपत्राणि, न प्रच्छन्नचञ्चलैरुपहृतानि पुष्पफलाच्छादितानि दीनारपिटराणि, न सुवासितसुमनसां वासितवाससो हाराः, न निवासाय स्वर्गसुखदा आवासाः, न भ्रमणाय चक्षूंषि चमत्कुर्वन्तो महत्तराः, न च सभोपेतानां सहस्रशो मनुष्याणां चित्ताह्लादकः करतलध्वनिः। को नाम एवं विधमाकर्षणमुत्सृज्य रूक्षशुष्केष्वसभ्याज्ञानदारिद्र्यपूर्णेषु साधनाधमेषु ग्रामेषु गन्तुमुत्सहेत ?

पुञ्जवादे मनुष्यो धनसङ्ग्रहस्य यन्त्रम्। केन व्यापारेण कया प्रणाल्याऽधिकाधिकं धनं मे प्रभवेदित्येव तस्योद्देश्यम्। नात्र मनुष्यस्य मूल्यम्। प्रतिदिनं यन्त्रेषु जीवनरतजनानां क्वापि मूल्यं निरीक्षितम् ? सौचिकः सूच्यां भग्नायां शोचति किन्तु !

कार्षापणस्य त्रिंशल्लभ्यन्ते। एतद्धनं मदीयं तदपि ममैव स्वाद्वितेदनागतं तस्य विवरः। आकल्पं जिजीविषुरिव स द्वीपसम्पद्ग्रहणे लग्नः। तस्य दृष्टौ धनस्य, केवल धनस्य मूल्यम्। धनार्जनाय स विनयम्, पुत्रोम्, प्रतिष्ठाम्, पुण्यम्, सिद्धान्तम्, धर्मम्, न्यायं वाणिज्यारे¹ विक्रेतुमाकुलः। "मा गृधः कस्यस्विद्धनम्" इति सिद्धान्तरत्नेन सार्द्धचन्द्र मितम्बे एवं प्रदत्त निष्काषित उत्तमुव सेवते। आश्चर्यम्! कथन भिन्नोऽन्न-रुपाय सयमधन्न तस्य दोषः, जीवनसंरक्षणे तत्सयो भावः। परमन्नपूर्णसमुद्रा अनितसमां न्यायमन्याय पुण्यं पापमविचार्य यदि तस्मै सयमस्तदा किमु वक्तव्यम्! इदानीन्तनः समयो विकृतो मयानकश्च। एव अपतत्सदास्वादिताः भविष्यन्तः कृपणजन-मन्दस्मितस्तनविद्युरारविन्दा बालाश्चापणेषु परिवेशितव्यम्, हस्ताम् कर्गद-खण्डाम् प्रचेतुम्, समूहे मोदीमगहसुम्, अङ्कुरितयौवनाः परिष्वतलास्ताश्रवदना स्तनविक्रमौक्तिकवदना निसर्गशोणोदर्यः सुन्दर्यः कालिदासस्य कला इव मूर्तिमत्यः सत्य-श्मलकोमलकायमनाः धनाय विमलकठिननिश्चलमद्वारवलिताः स्वनगरेषु वेश्यालयेष्वनुचितां मूर्ति वा कर्तुं वाप्यन्ते।

हन्त! धनेन कीदृशी स्थितिः परिवर्तिता। सर्वैतं स्वर्णं केवलमन्नेव दर्शनम्। न केनापि कदापि विचारितमासीद् यद् द्रव्यस्य विनिमयसाधनस्य मानवनामे एतादृशी प्रतिष्ठा भविष्यति। विश्वस्मिन्नस्ति कोऽप्यन्यो यो धनेन न क्रेतुं शक्येत। अन्नस्य, पौषमस्य, अभिवारस्य, प्रशासनस्य, कौटस्य, प्रयष्टरणस्य, विद्या-धारस्येति धनमेव केवलम्। सत्यम्, वित्तव्यावासं मतो विवर्धयन्तो भवति। यत्र धनो कीर्तिश्च न स्यात्, तत्रैः सर्वेन्द्रियाणां तत्र यदि स्वस्य स्वस्थतया किमर्थम्! "नीचैरनोपैरतिनीचनोचैः सर्वैरुपायेधनमेव साध्यम्"। धनं धनेश्वरः। धनर्दिकः सर्वेश्वरः सुखं भुक्तं भक्षयिषि सर्वैरकरेण्डमाहृतैरेव। सत्यम्,

मा राज्यधर्मोऽभूत् पुंसः श्रेयसामस्य मानद।

स्वजनानुत बन्धून् वा न पश्यति यथान्धदृक्॥ भागवते १०।८४।१४

हन्त! दुरन्तोऽयमर्थानर्थोऽयम्। त्रिभुवनजनमनोवर्णेदृशं सर्वंसुन्दरं सर्वदुरतोऽर्थार्थभिरेवानर्थम्।

¹ बाजार इत्यर्थे।

येनामन्दमरन्दे दलदरविन्दे दिनान्यनायिषत।
कुटजे खलु तेने हा! तेनेहा मधुकरेण कथम्॥ जगन्नाथः।

अथ प्रतिशतमेकस्यानर्जितसम्पत्तावधिकारः। व्यापारिपरिषद्विणौ सगुणौ सधर्मौ परस्परं पोषकौ। एवां मुष्टिमेयमानवानां रक्षायै व्यवस्थायै ये स्वायत्तीकृतपरसम्पदो रक्षणमभिलषन्ति सर्वैः क्रियते। एतादृशे वातावरणे कार्यमकुर्वन् धनार्जकधौरेयितः प्रसह्याहरको लुण्ठाको वा चतुरो गण्यते, हन्त! दृश्यतां पुण्यवादे मापदण्डचातुर्यस्य! इतरश्च रात्रिन्दिवं कार्यं कुर्वन् 'कर्त्ता'[1] इत्युच्यमानोऽपि न फलभाक्। अत्र प्रतिशतं नवनवतेरर्जितसम्पत्तावेव नाधिकारः, कश्चनाज्ञातहस्त एव तामपहरति। परस्य चानर्जितसम्पत्तौ परमार्जितसम्पत्तौ पूर्णाधिकारः।

एकतः समाजेऽपरिश्राम्यतामिन्द्रियाणि व्यर्थतामुपयन्त्यनुपयुज्यमानानि, इत्थं देहे रोगमन्तुर्योगेन। एतादृशे समाजे प्रतिशतं नवनवतिर्मनुष्याणां कठोरश्रमाय बाध्यते, एकश्चानुत्पादकोऽश्रमस्यानारतं विश्रमाय विषयोपभोगाय संरक्ष्यते। सोऽनीश्वरोऽपि मोऽश्रमः सर्वेषां श्रममधमं बुद्धिमतां बुद्धिश्च क्रीत्वा वर्धितो[2] धनेनात्मानमपि [illegible] परं तस्य वास्तविकी स्थितिः "श्रेयसोऽधिका नासीत्। परमय स परस्पन्दी"।

विषधरतोऽप्यतिविषमः खल इति न मृषा वदन्ति विद्वांसः।
यदयं नकुलद्वेषी सकुलद्वेषी सदा कृपणः॥ सुबन्धुः।

स्वामिनोऽज्ञातमात्रेण इदं द्रव्यं चौर्यम्। यथा च [illegible] श्रमेण [illegible] प्रतिमुद्रं [illegible] विक्रीतम्। [illegible] तेन [illegible] [illegible]। [illegible], यत्र कर्मकराणाम्, यत्र [illegible] [illegible] च, परं [illegible] येन न [illegible] न [illegible], [illegible] कृतम्। एवमेवेदम्। [illegible] [illegible], [illegible], समाजानुमोदितम्। [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] तु [illegible], [illegible] [illegible]।

---

१ कर्मकर worker. २ [illegible] Parasite. ३ [illegible] Bearer. ४ [illegible] - [illegible] "[illegible]" [illegible]।

येषां प्राणिवधः क्रीडा नर्म मर्मच्छिदो गिरः।
कार्यं परोपतापित्वं ते मृत्योरपि मृत्यवः॥

परमवधार्यताम्, नैतत् प्रबुद्धे भारते चलिष्यति। वयमेतदन्याय्यमपहर्तुं समवेताः।
यापि दुरवस्थया कोऽपि लाभान्वितो न भवेत्। व्यतिक्रमविनाशोऽस्माकमुद्देश्यम्।
परितो भोगाढ्यां सौवर्णीं लङ्कां यत्र तत्र मुनीनां कङ्कालकूटं रामेण प्रेक्षितम्। तोयधनाः
न्तात्मानः पठनपाठने यजनयाजने ज्ञानविज्ञानाविष्करणे प्रयतमाना लोकोन्नत्यै
स्य भूत्यै भ्राम्यन्तः प्रतीकारापरायणा मुनयो राक्षसैर्जघ्नाः, जनस्थानमपि तदरण्यतां
, मुनिभूमिरपि सा मृत्युशिलेवाभूदिति वाल्मीकिस्तु ते। परम्, किं सम्भाव्यते
ादनं इत्तैदं ग्रामिर्नाभूत्? नहि नहि, अपि तु तेषां नैशाचर्यां नीत्या। धनेश्वरस्य
भ्रात्रा धनीवुभुक्षुणा रावणेन शोषिताः शान्ताः शान्तिप्रियाः सविनया मुनयः सम्पीडिताः
दयो मृताः, शिष्टाश्चोद्विग्ना अवसन्ना दीना मृतेभ्यः काष्ठमग्निं पिण्डमपि दातुं न
न्। नैते साधनसम्पन्ना दिव्यसिद्धय ऋषयस्तेषां परशापसामर्थ्यादिश्रुव्यत्वात्। अपि
स्तसमस्तदोषाः प्रजा एव मुनित्वेन वर्णिताः सुशीलत्वात् साधुवृत्तत्वात्। रक्षोराजो
ी दशग्रीवो द्विदशकरश्च वर्णितः। परं किं सम्भाव्यते यत् कश्चन द्विपाद् दशग्रीवो
करश्च भवितुं शक्नोति? वस्तुतस्तस्य कर्मणः प्रतीकौ पादौ द्वावेवास्ताम्,
रमादातुं शासकस्य दुर्मददुर्वृत्तगुणैरुपेतः स विंशतिकरः, दशेन्द्रियविषयानुपभोक्तुश्च
न इवासीत्। अनया सङ्ग्रहणनीत्या शोषणप्रणाल्या दुःखयन्, मानवान् पीडयन्,
राहरन् त्रैलोक्यं रावयामास, अतो रावणनाम्ना प्रसिद्धः। तस्य भ्राता मद्यमांसम-
ैथुनव्यासक्तो लोकव्यवहारविरक्तो न कस्मादपि किमपि शुश्रूषुर्महानिद्रः कुम्भकर्णः
रश्च लोकभीषणो विभीषण इति विश्रुतः। जनस्थाने चास्य दुर्वृत्तौ मुख्यौ शासका-
खरो दूषणश्च, इमौ गुणावपि सविग्रहाविव पुरुषवद् वर्णितौ प्राचुर्यात् प्राबल्याच्च।
: खरः शासनकाठोर्यम्, दूषणश्च सकलदोषसमवायः, जनस्थाने एतयोरेव साम्राज्य-
त एव जनस्थानमरण्यतां बभार।

समुद्दिमज्जने राष्ट्रे दशास्याद्—दशेन्द्रियाणि रथा इव (नियतानि वशीकृतानि येन) तस्मात्

निशायाम्—अन्धकारे अज्ञानान्धकारे च चरन्ति—भक्षयन्ति ते निशाचराः
र्देशिष्टाः। २. कुम्भे कथनाय किमपि फलं लब्धुं यत्नम्, तथैव तत्र।

कौशल्यायाम्=कुशलकर्मोपेतायां रामः प्रसूतः। सत्कर्मश्रमसर्वेन्द्रिय एव पुरुषतमं पुमांसमुत्पादयितुं प्रभुः। येन सर्वलोकहितैषिणा त्रैलोक्यरमणाद् राम इत्युपाधिं दधता सर्वा मर्यादाः प्रतिष्ठापिताः। रमयति विश्वं स रामः, तस्य स्त्री सीता कृषिप्रतीका राष्ट्रस्याजीविका जनकस्य=उत्पादकस्य पुत्री। एवं स त्रैलोक्यरमणः सीतां परिणीय सल्लक्षणं लक्ष्मणम्, विश्वभरणस्वरूपं विषयानासक्तं विरक्तं यथेष्टानुशासनेऽनुरक्तं भरतम्, मर्यादाशत्रूणां हनने शत्रुघ्नं भ्रातृत्वे प्रकल्प्य "साधुतपस्विकण्टकं विरावणं रावणमुमरीदम्" निहत्य सर्वत्रानन्दं प्रसारयामास। अत एव तस्य पुरी अयोध्या—न केनापि योद्धुं योग्या शक्या वाऽऽसीत्। तस्य राज्यमधुनापि स्मर्यते। यत्र प्रहृष्टमुदितो लोको हृष्टः पुष्टः सुधार्मिकः। निरामयो ह्यरोगश्च दुर्भिक्षभयवर्जितः॥ विविधरूपेण भावुकास्तं गायन्त्युपश्लोकयन्ति च। यतस्तस्य जीवनं न स्वस्मै, अपि तु लोकरञ्जनाय। एषैव स्थितिर्हिरण्यकशिपोः। हिरण्यस्य कशिपुः=पर्यङ्को यस्य, यत्र जना जलाय त्रस्तास्तत्र स पर्यङ्कमपि हिरण्मयमकारयत्, एतादृशो दुर्वृत्तो भोगाभिलाषी च, यः स्वपुत्रायितान् प्रह्लादमानान्[1] जनान् निष्पीड्य स्वैरं निर्विचारोपेक्षितेश्वरान्तर ईश्वरमानी निरङ्कुशः प्रभुरैश्वर्यः। तदा कश्चन नरसिंह एवाज्ञातागमनस्तं क्षपयामास। प्रह्लाद इत्यव्यक्तं शब्दायमानस्य दुःखितसमाजस्योपलक्षणम्।

एत एव राक्षसाः पुरा रक्षका आसन्, आसीच्च तदा सम्मानबोधिका राक्षसपदवी, इदं तेषां दुरसंसव्यवहारेण नैशाचर्यां नीत्या च साम्प्रतगतिं गता महत्तरहरिजनशब्दवत्। एते निशाचराः सामान्यसाधुजनानां शोषणादेव लङ्कां सौवर्णीं कशिपूंश्च हिरण्मयान् कर्तुं प्राभवन्। अस्माकं सद्भावनारते विरतश्चिद्ध ये संस्कृतिसम्पन्ने शान्तसन्तुष्टजने राष्ट्रेऽमितो दिशं दृश्यमानान् प्रासादान् परितः कङ्कालकूटं ततोऽप्यधिकमैश्वर्यं रावण्नामन्यत्रोपयोगो नाभविष्यत्। एकस्यां सौवर्ण्यां लङ्कायां शोषकं भोगाभिलाषिणं राक्षसं समुच्छेत्तुं मर्यादाः प्रतितिष्ठापयिषू रामोऽवातरत्, परमधुना परितः प्रेक्ष्यमाणासु सौवर्णीषु लङ्कायितासु सर्वतः सतां रावणायमानानां हिरण्यकशिपूयमानानां स्वानाय हवे मर्यादाः प्रतितिष्ठापयिषद्भिर्भवद्भिरेव रामरूपेण नरसिंहरूपेण च भवितव्यम्। यतो हि

१ रक्षतीति राक्षसः, रक्ष पालने असुगन्तात्प्रज्ञाद्यण्। अधुना तु रक्षत्यस्मात्।
२ अव्यक्तं शब्दायमानान्। ह्लाद अव्यक्ते शब्दे। गुरावि हुर।

यस्मिन् यथा वर्त्तते यो मनुष्यस्तस्मिंस्तथा वर्त्तितव्यं स धर्मः ।
मायाचारो मायया वारणीयः साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः ॥

मूनं नानामदोन्नद्धाः शान्ति नेच्छन्त्यसाधवः ।
तेषां हि प्रशमो दण्डः पशूनां लगुडो यथा ॥ भागवते १०।६८।३१

नैतत् सम्भाव्यते यदेते बोधनेन सत्पथे समागमिष्यन्ति ।

भूयोऽपि सिक्तः पयसा घृतेन न निम्बवृक्षो मधुरत्वमेति ।

परमेते भ्रान्ताः समाजेनोच्यमानाः सम्भ्रान्ताः । भ्रान्तानामभ्युदयो दयापात्राणां सत्पुरुषैरेष्टव्य एव । यतः—

रुद्रोऽद्रिं जलधिं हरिर्दिविपदो दूरे विहायःश्रिताः
भोगीन्द्राः प्रबला अपि प्रथमतः पातालमूले स्थिताः ।
लीना पद्मवने सरोजनिलया मन्येऽर्थिसार्थाद्भिया,
दीनोद्धारपरायणाः कलियुगे सत्पूरुषाः केवलम् ॥

जिह्वायां दन्तैर्दष्टायां न कोपि कुप्यत्यभेदात् । एतेऽपहृतसुवर्णमदाविष्टाः । एष मद एषामपनेयो येनाप्राकृतिकीमवस्थां विहाय प्राकृतिकीं दशां भजेयुः । "असतः श्रीमदान्धस्य दारिद्र्यं परमाञ्जनम्" । भागवते १०।१०।१३ । एष उपयुक्तोऽवसरः । समुदाहृद्रूय देवेषु गतायां श्रियां या स्थितिर्दैत्यानामासीत् सैवाद्यास्माकं धनिनाम् । "अन्तरापाति हि श्रेयः कार्यसम्पत्तिसूचकम् ।"

भेदभावनायां परकीयभावनायां तीव्रायां विषमता, तस्यामल्पायामल्पतराया-मल्पतमायाञ्च क्रमशः समपन्नता । सर्वेभ्यः समाना प्रीतिरभेदभावस्य सद्भि-भावस्याद्वैतभावस्याभिवृद्धावेव भवति, स एवास्माकं साध्यः, विरोधपरिहारः, सर्वत्र समत्वापादनम्, कर्त्तव्यबुद्धया प्रदर्शनरहितं सद्धर्मं कर्म च । शिशुं सेवमाना माता किं पुत्रस्नेहं विवरणं प्रकाशयति ? माता सेवाया आदर्शः । नम्रीभूय पूरा समुदीयमानः किमुद्घोषयते ? यदहं तमोऽपहनिष्यामि, पक्षिणः प्रेरयिष्यामि, लोकान् कर्मणि योजयिष्यामि परमेतत्तस्य सत्तया स्वतो भवत्येव । परिमलं प्रसारयन् विविधपाद्य

सुरूपतामुल्लासञ्च विकासयन् छायां फलानि च ददत्तरुर्नोद्विजते, न जानाति न च गर्वमनुभवति। यतो हि स तेषां सहजभावः। वयं सर्वे जीवाम, उपलब्धसर्वसाधनान्युपयुञ्जानाः सुखिनः प्रतिक्षणं समवेत्योदीयमाना जीवाम। यतः—

पुंसस्त्रिवर्गो विहितः सुहृदो ह्यनुभावितः।
न तेषु क्लिश्यमानेषु त्रिवर्गोऽर्थाय कल्पते ॥ भागवते १०।५।२८।

राष्ट्रस्यार्थिकीं स्थितिमुन्नेतुं यतमानानां मानवविहितां विषमतामप्राकृतिकीं प्राकृतिकीञ्च न्यूनयिष्यतामस्माकं पणोऽस्तु यज्जलस्यैको बिन्दुरन्नस्यैकः कणः समयस्यैकः क्षणः श्रमस्य स्वल्पतमोंऽशश्च न व्यर्थमुपेयात्। सर्वे च सुखिनः प्रियदर्शिनश्च भवन्तु, न कश्चिद् दुःखभाग् भवेदिति। एवं कृते दुःखम्, दारिद्र्यम्, शोकः, भयम्, अज्ञानञ्च कथावशेषतां व्यपेयायादवश्यम्। "एकचित्ते द्वयोरेव किमसाध्यं भवेदिति" वयं तु बहवः।

सुमन्त्रिते सुविक्रान्ते सुकृते सुविचारिते।
प्रारम्भे कृतबुद्धीनां सिद्धिरव्यभिचारिणी ॥
असिद्धार्था निवर्त्तन्ते न हि धीराः कृतोद्यमाः।

कश्चिद् ब्रूते, असम्भवः सर्वाभ्युदयः। महतां लघुषु जीवनं प्रकृतिसिद्धम्, 'जीवो जीवस्य जीवनम्'। सर्वत्र ज्येष्ठः कनिष्ठम्, सबलोऽबलम्, पण्डितो मूर्खम्, धनी निर्धनम्, भूमिपालः कृषकम्, विश्रमजीवी श्रमजीविनं जिघत्सति। मत्स्यन्यायः प्रकृतिसिद्धः। "वरिष्ठो मत्स्यो लघुनत्ति" इति न कथमपि प्रकृतिविरुद्धं कर्तुं शक्यम्। नाद्यतने न चानद्यतने जगति दुर्बलानां स्थितिः। अतः कल्पनामधुरोऽयं सर्वाभ्युदयो न व्यावहारिकः, केवलं प्रज्ञावादो विचारकाणां वाचां व्यायामश्चेति।

परं भ्रान्तैव धारणा। सर्वातिशायिबलशाल्येव चेज्जीवने साधिकारस्तदा पुरुष एव सर्वेभ्योऽक्षमः क्षमाचारी नैसर्गिकसाधनविहीनः प्राणी। यतस्तस्य न तीक्ष्णानि नखानि, न घोमा दंष्ट्रा, नोड्डयनाय पक्षौ, न शृङ्गाः, न विशिष्टा धावनशक्तिर्नोत्स्पृदेवाभ्यासः, न जले न स्थले न चाकाशे तस्याऽबाधा गतिः। परं न केवलं स जीवति, अपि तु सर्वान् बलिनो वशयति। हस्तिनमुष्ट्रमश्वमारोहति, सिंहं वृकं मत्यनिता

यथेच्छं नर्त्तयति, श्वन्निणो नियोजयति, गां महिषीं दोग्धि व्यवहरति च। अतोऽन्य-बहार्योऽयं मत्स्यन्यायो बुद्धिमत्सु मानवेषु। 'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य'। सा चेयं शारीरबल-तो भिन्नाऽनवधिका शक्तिर्दुर्दिर्नाम। या शरीरेण न क्षिणोति, अपि तु प्रखरा प्रखर-तरा वर्द्धते। अत एव मानवसमाजे शारीरशक्त्याऽशक्तोऽपि वृद्धो नेता भवति, भवितु शक्नोति च। नैव पशुसमजे। अतः समाजे बुद्धिमतामेव वरीयस्त्वम्। बहवश्चक्रवर्त्तिनो विश्वजयिनो मृताः। न कश्चन तेषां नामापि वेत्ति, परं बुद्धिमन्तः प्रातः स्मर्यन्ते। अत एव देवराजो बृहस्पतिम्, वृषपर्वा शुक्रं प्रसादयामास। केचिद् वदन्ति भ्रान्ताः —

पुण्योपार्जितसम्पदोऽपदानि विपदां धनिनः कथं पुण्येऽक्षीणे एव निर्धनाः कर्तुं शक्यन्ते। एते हि परमधार्मिकाः। लोकस्य भूत्यै विद्यालयान्, पुस्तकालयान्, औषधालयान्, आरामान्, धर्मशालाः, गोशालाः, गोचरभूमीः, कूपान्, देवमन्दिराणि निर्माय व्यवस्थापयन्ते। एते विश्वस्य स्तम्भाः, मर्यादासेतवो मधुरफलानां विनता वृक्षाश्च। एतेषामभावे विश्वस्य व्यवस्थैवासम्भवा लोकश्च विजनतां व्रजेत्। इतथा-पुण्या अक्षीणराशा दरिद्राः कथं सधनाः कर्त्तुं शक्यन्ते? इति शास्त्रेष्व प्रत्यपादि। सत्यम्, एते धर्मं व्यवन्तो धार्मिकत्र्वाः प्रायशः करतृणां विक्रेतृणाव सकाशात् प्रतिमुद्रं कार्षापणमेकमादाय प्रतिवर्षं सहस्रशो लक्षश उत्थाय शतांशं यशोधिनो धर्मे धन्यवादाय व्ययन्ति। विचार्यताम्, किमसौ धर्मः परोपकारो वा? किमेतस्य फलं धनिना साधिकारं भोक्तुं शक्यते? तस्य फलेन च स धनवान् भवितुं शक्नोति? यथा वयं राजानः प्रजाधनेन सर्वं निर्मापयामो भुञ्महे च तथैवैते। वस्तुतः पुण्यं स्वमनस्यार्जित-सम्पदां दानेनैव। अथ च शास्त्रेष्वेत्यपि प्रत्यपादि यत् पुण्येन मनः शुद्ध्यति, तपसा सरस्वती बुद्धिमाचष्युर्मदस्य। शुद्धमनाश्चोदा सत्याः, क्षमायाः, दयायाः, सन्तोषस्य, चरित्रस्य च निधानम्। परमय विदुषे वदाय भूदेवाय पुण्यप्रवर्त्तकाय लोकोदरपवर्तिनेऽदर्शनकाय विविधसत्पात्रश्चीकमाकाङ्क्षते भाषणाय लक्ष्मीलवोल्लसदमन्दमदावघूर्णितैर्धनन्द्राकारो द्वारस्तया प्रदीयते येन स स्वं तत्रैव बद्धात् कन्यायां किमप्युपलभ्येत च। सत्यम्।

विद्यातपोवित्तवपुर्वयःकुलैः सतां गुणैः षड्भिरसत्तमेतरैः।
स्मृतौ हतायां भृतमानदुर्दृशः स्तब्धा न पश्यन्ति हि धाम भूयसाम्॥

श्रीमद्भागवते ४।३।१७।

किमेतदेव पुण्यम्? एष एव धर्मः? पुण्यानुष्ठायिनामेतदेव लक्ष्म? अर्जिततपसामधिगततपःफलानां तापसानामेष एव भावः?

मुष्यन्ते स्वगृहस्थितैरिव सुखं यस्यार्थिभिः सम्पदः
पटी यस्य मतिः तमःप्रहतये द्वावेव तौ प्राणितः।
यस्त्वात्मम्भरिरुन्नतेऽपि विभवे हीनश्च विद्वत्तया
तस्यालेख्यमणेरिवाकृतिधृतः सत्ताप्यसत्ता ननु॥

स्वामिने सम्पत्कूटं चिन्वतामनपराधिनां भृत्यानामपि धनजिघृक्षयाऽपराधमुद्घोष्य धनमादाय भविष्यद्बाधानिरोधाय तान् कारायां निरोधयत्सु क्व दया, क्व क्षमा, क्व धर्मः, क्वौदार्यम्, क्व दाक्षिण्यम्, क्व च लज्जा?

परवादे दशवदनः पररन्ध्रनिरीक्षणे सहस्राक्षः।
सद्वृत्तवृत्तिहरणे बाहुसहस्रार्जुनो नीचः॥

धार्मिकम्मन्यानां मन्येषु, यांस्ते पामारमक्तान् कथयन्ति, द्रव्यं सर्वसङ्कटानां पदम्, अपदं पुण्यस्य, निषिद्धमग्राह्यमुक्तम्। द्रव्यवतामहमप्राप्य इति भगवानाह। "यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः"। सम्पद ईश्वरोपासनायाः सर्वथा प्रतिकूलः।

ऐश्वर्यं विपदां बीजं प्रच्छन्नं ज्ञानवारणम्।
मुक्तिमार्गार्गलं दार्ढ्यं हरिभक्तिव्यपायकम्॥

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण प्र० ख० २६।४८

परं तदपि धार्मिकम्मन्याः समाजेनोच्यमाना ईश्वरप्रियाः देवानां प्रियाः परोन्नतिशूलेन शल्याकुला अन्यायेन धनमर्जयन्ति। विशाला दुर्गायिताः प्रासादाः अधिलक्षजनरोधीनि च यन्त्राणि सन्तोषस्य चर्चामिवानवरतं विदधति सर्वतः सोद्घोषमवलोक्यन्ते, यन्त्रामिषखण्डाय श्वानां कुक्कुराणामिव सङ्घर्षस्तामखण्डाय सङ्घर्षस्फोटं श्रयते। पारस्परिकव्यवहारे स्वल्पमात्रयापि यदि स्नेहसहानुभूत्यौ व्यवाहरिष्येताम्, तदा विकसितान्तरदाक्षिण्यपेक्षितं सहसं कार्यक्षमताय प्रदर्शयितुं धनिकोऽशक्यत्, सङ्घर्षरहितं नामविष्यत्, परम्, कः प्रबलया भोगलिप्सया कठोरात्याचारैर्पातुकवचनाभिव सङ्घर्षितधनः सधनोऽधनैरेवं व्यवहर्तुं सज्जः? विघ्नप्रिया विकटधरा भ्रान्ताः सङ्कीर्णविचाराः

स्वार्थान्धाः स्वामिनो दारुणाभाषणा भीषणाः कृतान्तस्य दूता इव प्रतनुवभवोद्भवदम्भवेगग्रस्ता विनाशोन्मुखाः श्रमिकैः सहामर्यादं दुर्व्यवहरन्ति ।

परक्षतक्षोदविनोदलीलाः खलाश्च काकाश्च यदृच्छयैव ।
पात्रेऽप्यपात्रेऽपि विगर्हणीयां वाचं च विष्ठाञ्च समुत्सृजन्ति ॥

क्षाः । कष्टम् । क्षुधे ॥ सोमेश्वरदेवः ।

एकः स एव जीवति हृदयविहीनोऽपि सहृदयो राहुः ।
यो निखिललघिमकारणमुदरं न बिभर्त्ति दुष्पूरम् ॥

पादाहतं रजोऽपि मूर्धानमधिरोहति, तदा कथं न स्याच्चेतने दुर्निवारव्यथे समुत्पीडिते मानवे प्रद्वर्षः ? अस्तु, चरित्रञ्चैतेषां सायमभिरामचित्राणां पोट्टल्या सह समवेतानां घटकानां[1] वर्णनेनानुमातुं शक्यते, यत्रार्यता यतित्वमुररीकृत्य वनम्, वर्णाश्रमाचारोऽनाचरितभिक्षुः क्षारधिम्, भारतीयता यतवाक् सत्येन सह रसातलं प्रविविक्षति । त्रपा त्रपते, दया दूयते, मानो म्रियते, मौनं चीत्कुरुते, आर्जवं भर्जते, ब्रह्मचर्यं जिहेति, प्रभवा रोदिति, धीः प्रपित्सति, पृथ्वी प्रेजति, पापं प्राच्छेति, पातित्यमुपेधते, सूयं उपोदति, कष्टं कष्टायते, मनीषा शेते, यशः स्वं जुघुक्षति । सत्कार्ये याचते म्रियमाणाय वा मुष्टिमात्रं दित्सन्, संस्कृतिप्रचाराय ज्ञानविज्ञानधर्मोन्नत्यै च प्रार्थितः सर्वदा सम्प्राप्तार्थहानिः, परं स्वर्णकरोलाय सर्वस्वं त्यक्तुं सर्वदा सज्जः । प्राग्भवसमर्जिततपसो यस्य विविधं धाम्नागुरायां मुग्धवधूराबध्नन्तश्चराः प्राचुर्येण चरन्ति । यत्र तत्र वैज्ञानिकमर्दनस्नानागारस्य कलानिकेतनस्य संस्कृतिपरिषदो मनोरञ्जनशालाया नैशभोजनशालायाश्च मिषेणाभिनवप्रकाराणि व्यभिचारस्थानानि समेधन्ते, यत्र रमेरचारुवदनविदलितेन्दीवरमदाः कृष्णपक्ष्मलाक्ष्यो मृद्वावलिस्निग्धोज्ज्वलचिकुरनिकुरम्बा मृदुलमनोरमप्रलम्बाङ्गुलीकास्तमीरमणमुख्यो नखोद्द्योतविहसितरक्तोत्पलाः स्मितामृतज्योत्स्ना गताधवतहंसाः कलाकुटिलकेशोत्करस्फुरन्मणिविद्युन्मितामाः खञ्जरीटनयनाः सालस्वेतोन्नतग्रीवा-मल्लिकामृणालमृद्व्यो विद्युद्वल्लीकन्दलीभास्वराः कलधौतकलेवरा अर्धोन्मिषितयौवना भुवनाभाः पादप्रभापरिभूतलाक्षाः क्षामोदर्यः सुरुमर्त्यः

1 दलाल ।

कुमार्यो जोषमध्यस्तु तिलपिलकपोलवक्षसो जीवनं कदर्थयन्ति । यत्र कालायौताञ्जुर्णकेशाः कर्पूरस्फटिकेन्दुसुन्दरावदातभ्रुवः प्रवचनघना धनोद्दामधामनोऽहीनसौगा मंदीनभोगास्वर्गचेतसो वर्षीयांसो धनिनो मकरन्दस्यन्दिनी मधुरस्वरलहरीमाकर्णयितुकामाः कुमारीकीर्तिकौमुदीकलङ्कनकल्मषकलुषितकलेवराः काककामुकाः प्रकामं प्रेक्ष्यन्ते ।

अवधार्यताम्, एतदपकृत्यमेकदा राष्ट्रस्य विनाशाय समर्थम् ।

प्रातः समधिगतधनः सायं निर्धनः स्वपिति मन्दभाग्यः । स किं प्रातः पुण्यकर्मा सायञ्च प्रनष्टपुण्यः ? पुनरपरस्मिन्नहे चाधिगतपुण्यफलः ? वस्तुतो यावन्ति च्छलानि तावत्यो मुद्राः । शतच्छलश्शतपतिः, सहस्रच्छलः सहस्रपतिः, लक्षच्छलो लक्षपतिः कोटिच्छलः कोटिपतिः, तदूर्ध्वं तु च्छलात्मकः । पतित्वं हि स्वाधीनवस्तुन एव सम्भवति, धनं हि स्वाधीनं न द्रव्यम्, तस्य गमनशीलत्वात् । अतः कोटिपतिशब्देन कोटिच्छलपतिर्बोद्धव्यः । 'शाकपार्थिवादित्वात्समासः' ।

> छूटकलाशतशिबिरैर्जनधनविवरैः क्षयक्षपातिमिरैः ।
> दिविरैरेव समस्ता ग्रस्ता जनता न कालेन ॥ क्षेमेन्द्रः ।

नायैषां सम्मानवाचकत्वं राक्षसशब्दवत् । राक्षसा एव स्तुतिप्रियाः[1] ।

> यन्नोपकारकं यन्न भूषणं यत् प्रकोपमातनुते ।
> गुरुणापि तेन कार्यं पदेन किं श्लीपदेनेव ॥ गोवर्धनाचार्यः ।

वस्तुत एतान् संस्कृतिविनाशकानां साधुसद्वृत्तपरिस्थितिपीडितगुनिजनायितानां सत्त्वे सुतां स्वार्थान्धानां देवद्विजदद्विरापात्रविधनावराकलुम्पाकानां पर्यायान् उद्बुद्धा मन्वते, रिस्थितिपीडिता नापि वक्तुं शक्नुवुः । परिस्थितिपीडितेन केनापि सत्यमेवोक्तम्—

---

1 दोष्यतिर्देशार्थः, दशैव चामरे देवभेदाः । क्रमशश्चार्थोपलब्धिः । देवः—क्रीडा: । विद्याधरः—विजिगीषुभावापन्नः । अप्सराः—व्यवहारवित्तः । यक्षः—द्युति: । रक्षः—स्तुतिप्रियम् । गन्धर्वः—मोदी । किन्नरः—मदालसः । पिशाचः—अभिलाषी, स्वप्न इत्यज्ञानोपलक्षणम् । गुह्यकः—कामी । सिद्धः—अव्याहतगतिः । ... वैकल्पिकः प्रायशः सर्वगुणोपेतः ।

मानः कस्य न वल्लभः ? परमुखप्रेक्षित्वदुःस्था स्थितिः
कस्य प्रीतिकरी ? त्रपाभरनतं कस्मै शिरो रोचते ?
किन्तु स्वामिनि सावलेपहृदये दासीकृताः शत्रुभिः
क्षुद्रानद्यतनेश्वरान् धनमदक्षीबान् निषेवामहे ॥

वस्तुतो ये सु=सुखं रान्ति=ददति ते सुरास्तद्भिन्ना असुराः।
अद्यतनं धनं संयोगात् केवलम्, काकतालवत्, घुणाक्षरवच्च। नैतत्पुण्यस्य फलम्।
अत्र च पुण्येनैतदेव लभ्यते, कृच्छ्रतपसश्चैतदेव फलं चेत्, नियमयमदमादिभिरेतदेव प्राप्यते
चेद् दावाग्नौ दहत्वेतत्तपः पुण्यञ्च, भस्म चास्य रसातले तथा निखातं भवेद् यथा प्रलयान्तेऽपि
नोन्मुखं पेयात्। विद्याधनम्, पशुधनम्, कृषिधनम्, कलाधनं पुरा धनपदवाच्यमासीत्,
साम्प्रतं अद्य विनिमयसाधनानि मुद्रितानि कर्गदखण्डानि धनपदव्यवहार्याणि ? आश्चर्यम्।
अद्य निर्मायं गुणप्रणयिनः पादपांसुपरिमर्शपावितपतितपत्तनपरमपीवरपापिनः सार-
स्वतकल्पपादपैकफला मुनीयमाना विद्वांसो धनमृद्वेन्निवन्नहुङ्कारकातरधियो रौरवायितेषु
ग्रामेषु निवसन्ति वार्त्तां वृत्तिमाश्रिता दरिद्राः। एता राष्ट्रस्य विभूतयो वार्द्धके विविध-
व्याधिरलैष्मिकव्याधिविपन्ना औषधोपयोगायाप्यपारयन्तः श्लेष्मसिङ्घाणघूर्णितमस्तिष्का
दिनानि क्षपयन्ति, परं न कञ्चन याचन्ते—

विषमङ्गता अपि बुधाः परिभवमिश्रां श्रियं न वाञ्छन्ति।
न पिबन्ति भौममम्भः सरजस्कं चातका ह्येते ॥

यत्र तपस्विनो विद्वांस एवं सीदन्ति, तद् राष्ट्रमुन्नेष्यतीत्याशैव खपुष्पायिता शश-
विषाणायिता सैकततैलायिता च। इतश्च चलचित्रनद्योऽप्रकाशितागमना अपि मर्को-
टकरागमा यथा सन्क्रियन्ते सज्जनसेवाविभागः प्रवन्धव्यासफोऽशक्तो भवति।
सदाचारविहीने कश्चन धार्मिकोऽस्थास्यत्तदा किमेतादृशी स्थितिरभविष्यत् ?

धिगस्त्वेषां विद्यां धिगपि कवितां धिक् सुजनतां
वयो रूपं धिग् धिग् धिगपि च कुलं दुर्गतिमताम्।
असौ जीयादेकः सकलगुणहीनोऽपि धनवान्
यदीयस्य द्वारि तृणलवसमाः सन्ति गुणिनः ॥

निद्राति स्नाति भुङ्क्ते भ्रमति कचभरं शोषयत्यन्तराले
दीव्यत्यक्षैर्न चायं गदितुमवसरो भूय आयाहि याहि ।
इत्युद्दण्डैः प्रभूणामसकृदधिगतान् वारितान् द्वारि पालैः
पश्यास्मानन्धिकन्ये ! सरसिरुहरुचामन्तरङ्गैरपाङ्गैः ॥

परमद्य धूर्ता धर्मस्य दम्भं केवलं नाटयन्ति बकभक्ताः न च धर्मं चरन्ति । सनातने समत्वाय गुणकर्मविभागशश्चातुर्वर्ण्यं चतुरेण सृष्टम् । परम्, शिरो बदरीफलायते, भुजाविषीकायेते, पादौ शलाकायेते, केवलमुदरं दावप्रापणकर्म रिक्तावधर्मं सुरसाचरोरनिव भूगोलार्द्धभागमिव वर्धते ।

विवेकहीनाः समभावोऽराष्ट्रकं सर्वाभ्युदयमहितकरं मन्यन्ते । नैतत्साम्यम्, यत्सर्वे परिमार्जनं गृहनिर्माणं वा कुर्युः शस्यं वा भक्षयेयुरिति । किन्तु सर्वे स्वस्वयोग्यतानुसारि कर्म कुर्वाणा राष्ट्रतो जीवनोपयोगि योग्यतावद्धं च साधनं समानं लभेरन् ।

धनबलेन स्थापिता सत्ताऽपूर्णा सन्दिग्धा च, पारस्परिकनिष्ठया समत्वे स्थापिता च स्थायिनो प्रभावोत्पादिका च । सा यदि प्रतितिष्ठेत्तदा प्रतिदिनं प्रेक्ष्यमाणो घोरः पारस्परिकसङ्घर्षो विनश्येत् । अयाययमर्थविकारः शारीरिको रक्तविकार इव समस्तं राष्ट्रं देहमिव दूषयति । अनेनार्थविकारेण प्रवृद्धेन रक्तस्य चापेनेव समाजस्य पक्षाघातः समर्थनं, हसितेन च रक्तालता । एष समये समये श्रमिकान् प्रलोभ्य वञ्चयति, कल्पाशोचावनि प्रदर्श्य तान् विनाशयति, वंशीं नादयित्वा कस्तूरीमृगमिव मोहयित्वा हन्ति । परमिदं ध्येयं यद् यो दरिद्रान् दुर्गमयति तस्य दुर्गतिर्ध्रुवा ।

विश्वास्य मधुरवचनैः साधून् ये वञ्चयन्ति नम्रतमाः ।
तानपि दधासि मातः काश्यपि ! यातस्तवापि हि विवेकः ॥ जगन्नाथः

स्वकार्यं सिषाधयिषुः पुण्यवादी नम्रः, सिद्धौ च राक्षसः । दम्भोऽभिमानश्च पुण्यवादस्वभावः स्तः,

मत्स्यस्येवाप्सु सदा दम्भस्य ज्ञायते गतिः येन ।
नास्य करौ न च पादौ न शिरो दर्लक्ष्य एवासौ ॥ क्षेमेन्द्रः

एकस्मिन् भवगहने तृणपल्लवपलयजालसंछन्नः ।
कूपः पतन्ति यस्मिन् मुग्धकुरङ्गा निरालम्बे ॥ क्षेमेन्द्रः ।

एव दीनभमिक्षुकयोर्दुरवस्थां विज्ञाय स्वल्पेन मूल्याभेन क्रीत्वा तेभ्य एव महार्घं विक्रीणीते । एष एव मृतस्नानस्थाने स्थित्वा नववल्मीकाने चीर्णं दीर्घकमी-[illegible] जीवनरक्षकेष्वौषधेषु यत्किञ्चित् संमिश्र्य, शर्करायां विचूर्णितं कणम्, गोधूम-वर्णं तिन्तिडीकबीजचूर्णम्, पयसि पानीयमनेकविधं चूर्णान्तरम्, मरिचेषु [illegible], हरिद्रां पीतां मृदम्, घृते वसां तैलान्तराणि च सम्मिश्र्य राष्ट्रस्य जनान् कोटिशो वञ्चयितुं [illegible]ति । एवममन्दं स्निग्धः शिकय तरमध्य इव नीचो म[illegible] विमहाति । सत्यम्, तस्करस्य कुतो धर्मः ।

मातरं पितरं पुत्रं भ्रातरं वा सुहृत्तमम् ।
लोभाविष्टो नरो हन्ति स्वामिनश्च सहोदरम् ॥

[illegible] किमनेन राष्ट्रमुन्नेतुं शक्यते ? यदि [illegible] [illegible] मूल्यं [illegible] शक्यते किम् ? परिवारं परिसमाप्यान्नं शुभ्रं विपाद्यते किम् ? [illegible] मृत्युरेव मूर्तेत्पत्तिर्भवति । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] प्रसन्नचेतसां चिरस्थिरस्वराष्ट्रं सिद्धां [illegible] भवति । [illegible]—

उच्चं निःश्वसिति क्षिति विलिखति प्रस्तौति न प्रेयसः
मौलि सूच्छिभिरीशितुः करतले धत्ते कपोलस्थलीम् ।
वाग्देवी हृदयज्वरेण गुरुणाऽऽक्रान्ता हतारी पृथा
नीताऽऽविष्कृतकोपनिष्कृपखलस्तोत्रप्रपापातनाम् ॥

[illegible] पूर्वे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] च [illegible]
[illegible] हरिशब्दम् । [illegible] [illegible] च [illegible], [illegible] [illegible]
[illegible] । पामव [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] ।
[illegible] [illegible] ।

शरणे समुजङ्गमे स्वपन् प्रतिबुद्धेन परेण बोधितः ।
तरुणः खलु जातविभ्रमः स्वयमुग्रं भुजगं जिघृक्षति ॥ अश्वघोषः

विशालस्याकाशस्याधो द्योतमानानां चन्द्रतारकाणां प्रकाशम्, शीतं मन्दं प्रवहतो वायोः शान्तपृष्ठे चानन्दं विमुच्य क कारायिते गृहकोणे विद्युद्व्यजनवाते वासोऽस्माभिरङ्गीकृतः । हन्त ! सत्य आनन्द एवाद्य पुञ्जवाद्दूरे प्रौढः । मद्यघटीषु वेश्यासु वानरभल्लूकदर्शनेषु निपतन्ति मानवा आनन्दलिप्सवो दुष्काले बुभुक्षिता अन्नकणेष्विव । अहो ! आनन्दाभावे प्रतिच्छायायामेवानन्दमनुबुभूषति मुग्धः । अस्माकं जीवने कार्योत्साहः ! वयं श्वसिमो यतो हि प्राणा न निर्यान्ति । परं जीवने जीवनं नास्ति, उत्साहस्य मानसशक्तेश्चाभावः । कलाहीनं नवीनताविहीनं भावनारहितं रोरूयमाणं जीवनम् । किमेतदपि जीवनम् !

वयमार्याः । आर्यसंस्कृतेः प्रसाराय वयमेवाधिकृताः । अस्माभिर्बहवो भोगा भुक्ताः परं तृष्णाद्युनापि युवतिरेव ।

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्जीर्यतो या न जीर्यति ।
तां तृष्णां दुःखनिवहां शर्मकामो द्रुतं त्यजेत् ॥ भागवते ९।१९।१६

अवधार्यताम्, अस्माकं माहात्म्यं त्यागेनैव ननु भोगेन । जठरं को न बिभर्ति केवलम् । भोगैर्विषयाः न शमितुं पार्यन्ते । अथ च यदि वयं भोगान्न त्यक्ष्यामस्तदा भोगा अस्मान् विहाय प्रजिष्यन्ति । यदि वयं प्रजानां क्षेमं न साधयिष्यामस्तदा प्रजाः स्वतस्तत् साधयिष्यन्ति । तदा क्वास्माकं वैशिष्ट्यम्, क्व च सम्मानः, क्व गरीयसोऽध्ययनस्य फलम् ?

याते मय्यचिरान्निदाघमिहिरज्वालाशतैः शुष्कतां
गन्ता कं प्रति पान्थसन्ततिरियं सन्तापमालाकुला ।
एवं यस्य निरन्तराधिपटलैर्नित्यं वपुः क्षीयते
धन्यं जीवनमस्य मार्गसरसो धिग् वारिधीनां जनुः ॥

एषा समयस्याऽऽवश्यकता । भूमण्डले बहूनि राष्ट्राणि जागरितानि । दरीदर्यौ वाक्योऽ-

पुष्कलसङ्ख्यका जाताः। अस्माभिरपि जागरितव्यम्, योक्तव्यश्च विश्वस्य भूत्यै। सततो-द्योगनिरतमनसो भवादृशा एवादौ महत् कर्म कर्तुं क्षमाः।

उद्धृतौ भवति कस्य वा भुवः श्रीवराहमपहाय योग्यता। माघः।

एषा च सत्संस्कारस्य दिव्यधारा समस्तजीवने सततं प्रवहेत्। प्रवहणञ्चैकस्यां दिशि। पर्वते पतितं पानीयं शतमार्गेभ्यः प्रवहन्न सरितं निर्मातुं प्रभवेत्। तदेव चैकस्यां दिशि प्रवहत् स्रोतो भूत्वा धारारूपेण नदीरूपेण परिणम्य समुद्रमिव स्वोद्देश्यं प्राप्तुं समर्थम्। एषैव स्थितिः संस्काराणाम्। जलं हि निम्ने सर्वतः सृत्वा द्विदुःखयति। प्रथमतो भूमेः पोषणं निरुन्धदुर्वराशक्तिं ह्रासयति, द्वितीयतस्त्वैकत्रीभूतं विषाक्तवायुं प्रसारयन् मशकान् प्रकाममुत्पाद्य विषमज्वरमापादयति। अतो लोकहिताय जलहिताय च तस्य सर्वस्मिन् भूभागे विभाजनमेव वरम्। एवमेव द्रव्यस्य। द्रव्यं हि 'द्रु गतौ' धातोर्व्युत्पन्नम्, गतिशीलता तस्य प्रधानं धर्मः। निरोधे व्यापत्।

निविषव्याप्तहृतलोकधनोऽनुत्पादकः सतो ह्रियमनुभूय, चोरयमाणः परैर्दण्ड-हावमिषेण ह्रियं दोषं परिहरन्निव स्वामित्वं निराकुर्वन् स्वत्वं त्यजेत्। वस्तुतोऽ-परिश्राम्यत उपभोगेऽधिकार एव कथम्? बुभुक्षिताः पक्षिणः स्वयमाहाराय यतन्ते। बुभुक्षितस्य क्षुच्छान्तिः स्वयं भोजनेनैव। कर्त्तैव सर्वत्र फलभाक्।

समाजो हि सहयोगिनां सहकर्मिणां पारस्परिकभावपूर्णः सामञ्जस्ये सामरस्ये च समाश्रितः समुदायः। परमत्र तस्मिन् केचनासहकर्माणोऽनुत्पादका अपि सर्वाधिकं विश्वस्त-जीविनश्च भूत्वा व्यपेतलज्जाः। एतानन्तरेण न कापि समाजे क्षतिः। यथा च—

(१) व्याजोपजीवी—कस्यापि शतमुद्रं भूषणं क्षेत्रं गृहं पशुर्वादि वा न्यस्य अवसरकातरपीडिताय पञ्चाशन्मुद्रा ददाति न्यासधरः। एतस्य कुसीदं दश मुद्राः प्रतिमासम्। न्यासावर्त्तनावधिर्मासत्रयम्। परिस्थितिपीडितो न्यासकरोऽवधिमध्ये धनमपि न्यासं प्रत्यावर्त्तयितुं न समर्थः। न्यासधरस्य कुसीदस्य काठ्या यथा प्रतिअर्थमेधते, इतरस्य तथैव ह्रासः। अत एव स महाजनः। 'धनी स्वजनोऽप्यजनः'[1]—धनेतरः—सर्वोचितगुणरहितः, सोऽपि न सामान्योऽपि तु महान्। अथवा 'अत्र गतिर्धैरचरो'—जनः। धनेन सह न्यासधरस्याप्यात्मसात्करणे सस्पृहः सफलश्च, सोऽपि महान्।

१ पर्युदासो नञ्।

दस्युरिवस्तु सम्पन्नेभ्योऽपहरति, पामरं तु वराकानकिञ्चनान्, अमदमायान्, मध्यन विश्रम्भान्, विश्वान् सन्नानवसादयति। अत एव प्राकृतैः स 'बाबू'[1], 'लाला'[2] आदि सम्बोध्यते।

(२) व्यसनोपजीवी—परेषां व्यसनेन कष्टेन विपदा यो लाभान्वितो भवति स यथा वार्धुषिको वैद्यश्च। ज्ञानं हि परेषां धर्मः। यो ज्ञानं विक्रीणानो लोकस्य विप लाभान्वितो बुभूषति स किं ज्ञानोपासकः? "ते हित्वा काञ्चनं राशिं पांशुराशिमुपासते" स तु व्यापारी भगवत आशिष आशासानो भक्त इव "न स भक्तः स वै वणिक्"। यः सू माप्यमायात् पञ्चसहस्रं मुमूर्षोश्च शतं जिघृक्षति विचार्यतां स कीदृशः? 'यो मर्तु कामादपि हर्तुकामः'।

> नार्थार्थं नापि कामार्थमथ भूतदयां प्रति।
>
> वर्तते यश्चिकित्सायां स सर्वमतिवर्तते॥ चरकः।

एतादृशास्तु राष्ट्रस्य गौरवम्। परमत्र कियन्तस्तादृशाः। अद्यत्वे चिकित्सकाः प्रथमं रुग्णं न हि, तस्य धनं दिदृक्षन्ते, स जीवतु म्रियतां वा।

(३) शुल्कोपजीवी—गृहशुल्केन शकटशुल्केन जनवाहनशुल्केन जीवति। शतं सहस्रं वा मानवानां नियतवेतनेन नियोज्य यन्त्रादीनां परिचालनेन स्वार्थमुपार्जयति सः।

(४) घटकः—केवलं वार्त्तावित्त उभयोपभोक्ता उभयार्थहरश्च।

(५) समानशीलस्य धनिनः पोष्यपुत्रोऽपहृतहिरण्यस्य परिरक्षको लगुडी च।

अत्र वयं सर्वाभ्युदयाय कृतसङ्कल्पाः समवेताः। सर्वेण[3] सर्वस्मै[4] सर्वस्मात्[5] सर्वा सर्वस्मिन्[6] अभि उदयः—सर्वाभ्युदयः। सर्वेषामेकाभ्युदये न सन्तुलनं सम्भाव्यते,[6] समन्तादुदयोऽस्माकमभीष्टः। स चाधिदैविकीनामाधिभौतिकीनामाध्यात्मिकीनाञ्च बाधा-मभितो दिशमुत्कर्षः स्वभावबाधिकाया बाधाया अपनयनञ्च। सोऽयं दरिद्राभिदोषः

---

१ उर्दूका उपसर्ग। यथा बा कायदा बा इज्जत। बू—गन्ध यथा। दुर्गन्धार्थं सभ्यव्यवहारमें केवल बू कहनेकी प्रणाली है। नकरणम् सर्वदा 'ला' 'ला' इति करोति सः। ला आदाने। अथवा मुखाल्लालास्च्योतन्ति सः। ३ जनेन। ४ प्राणिने। ५ उपादानम्। ले परिस्थाने च।

वद्विपुञ्जवादोत्तुङ्गभुजङ्गभङ्गी, अभिमानभीष्मोष्मग्रीष्मक्रान्तामृतस्यन्दो जगच्छिद्रेंदखेद-च्छेदी पाभूलभूतवर्गानुकम्पी पुञ्जवादहुङ्कारकातरातुरहर्षवर्षी भवभयाग्निविविग्नामृतवर्षी जनरसर्पज्वरकर्षी भ्रान्तगुहागहनगेहगूहितध्वान्तविध्वंसी कलङ्कसङ्कशङ्करो मायामत्त-द्विजगद्गदङ्कारः शरणमहर्षो प्रियोऽभयङ्करो मन्दीकृतभीतिभृद्विपद् जगच्छर्मैककर्मा आनन्दधामा दिग्देशकालकलननिरपेक्षः क्षपितातङ्क उद्गूढहेमरुचाम्, सकलकर्मफलोपलम्भः नदत्तावतोऽपश्चातम् दीनतर्जितनिदर्शिलसितौध्यशमनशीतसुभगसुरभिसमीरः पुञ्ज-रस्तुष्टीयूपसारशिशिरो घुसिन्धुलहरीनिर्मलः कीलितभाग्योत्कीलकः विपन्नबन्धुः सन्तापोपेतापन्नपालनप्रथितप्रवीणः प्रायशो विश्वजनवाङ्मनसाऽनुमोदितो महीमहितो वस्य निःशेषक्रमदामक्षमोऽशेषजनचिन्तामणिर्निःसामान्यो वदान्यमान्यो वाद-न्योऽस्माकं प्राक्तन आदर्शः परस्परं फलानपेक्षः स्वभावः। सर्वोऽत्र सर्वस्मै पक्षाय न सम्प्रदायाय अपि तु लोकाय। 'वसुधैव कुटुम्बकम्', 'यो वै भूमा सुखम्'। स चायं परस्परमभेदभावेऽद्वैते सहयोगे च प्रतिष्ठितः। सम्पत्तेरप्ययमेवार्थः। क् पदनम्=प्राप्तिः (पद गतौ, या प्राप्तिः समेभ्यः सम्यग् रूपेण जायते सैव) त्तिः, या च विशिष्टरूपेण (केवलं विशिष्टेभ्यः प्राप्तिः) सा विपत्तिः। यत्रैको दति नवनवतिश्च नराणां शते विषीदति सा विपत्तिः पुञ्जवादस्य फलम्।

अस्यानुष्ठानञ्च शुद्धेन युक्तेन मनसा कार्यम्। अत्राभिलाषः शान्तेः परं संयोजनं यमस्य, भूमिका धर्मस्य वर्णनं व्यभिचारस्य दृश्यते, एवं कृते न सफलता। सद्भावेन माने सफलता स्वयमुपतिष्ठते पद्मणी इवाश्रणि। अनुष्ठानञ्च समन्वयेन। समन्वयो ञभावो न सङ्घर्षः। ह्रस्वानां दीर्घता दीर्घाणाञ्च ह्रस्वता समन्वयकरी, वल्मीकैः र्तिश्च। एष नासाध्यो न चानायासेन साध्यः, परं प्रयत्नसाध्योऽस्माभिरनुष्ठेय समस्मिन् राष्ट्रे भूमण्डले जीवनस्तरे च समता अनुशासनेन सह व्यवतिष्ठेत। दस्य भावना, आवश्यकतानुसारि वितरणवारमात्मनुदेश्यम्। उत्पादनस्य फलमावश्यकतापूर्तिः। द्वितीयञ्च वासनातृप्तिरर्थार्जनञ्च। इदानीं बहूनि वस्तूनि वासनातृप्त्यै धनार्जनाय च निर्मीयन्ते यत्र राष्ट्रस्य श्रमो व्यर्थः।

स्ततो विनिमयलभ्यं धनं परस्याश्रिते दौर्बल्ये च प्रतिष्ठितम्। दुर्बलाः समाजस्य सारल्यं ग्रामोद्योगिकग्रामलोभे नानावश्यकवस्तूनि निर्माय समाजस्य शक्तिमपव्ययन्ति

दस्युास्तु सम्पन्नेभ्योऽपहरति, पामरं तु वराकानकिञ्चनान्,अमन्दभागान्, मन्दमन्द विपण्णान्, खिन्नान् सन्तानवसादयति। अत एव प्राकृतैः स 'बाबू'[1], 'लाला'[2] आदि सम्बोध्यते।

(२) व्यसनोपजीवी—परेषां व्यसनेन कष्टेन विरत्या यो लाभान्वितो भवति स यथा वाक्कीलो वैद्यश्च। ज्ञानं हि परेषां शर्मणे। यो ज्ञानं विक्रीणानो लोकस्य विरल लाभान्वितो बुभूषति स किं ज्ञानोपासकः? "ते हित्वा काञ्चनं राशिं पांशुराशिमुपासते" स तु व्यापारी भगवत आशिष आशासानो भक्त इव "न स भक्तः स वै वणिक्"। यः शूल मारोप्यमाणात् पञ्चसहस्रं मुमूर्षोश्च शतं जिघृक्षति विचार्यतां स कीदृशः? 'यो मर्त्य कामादपि हर्तुकामः'।

> नार्थार्थं नापि कामार्थमथ भूतदयां प्रति।
>
> वर्त्तते यश्चिकित्सायां स सर्वमतिवर्त्तते॥ चरकः।

एतादृशास्तु राष्ट्रस्य गौरवम्। परमद्य कियन्तस्तादृशाः। अद्यत्वे चिकित्सकः प्रथमं कार्णं न हि, तस्य धनं दिदृक्षन्ते, स जीवतु म्रियतां वा।

(३) शुल्कोपजीवी—गृहशुल्केन शकटशुल्केन जलयानशुल्केन जीवति शतं सहस्रं वा मानवानां नियतवेतनेन नियोज्य यन्त्रादीनां परिचालनेन सार्थमुपार्जयति यः।

(४) घटकः—केवलं वार्त्तावित्त उभयोपभोक्ता उभयार्थहरश्च।

(५) समानशीलस्य धनिनः पोष्यपुत्रोऽपहृतहिरण्यस्य परिरक्षको लगुडी च।

अद्य वयं सर्वाभ्युदयाय कृतसङ्कल्पाः समवेताः। सर्वेषां[1] सर्वस्मै[2] सर्वस्मात्[3] सर्व सर्वस्मिन्नभि उदयः—सर्वाभ्युदयः। सर्वेषामेकाशिन्युदये न सन्तुलनं सम्भाव्यते समन्तादुदयोऽस्माकमभीष्टः। स चाधिदैविकीनामाधिभौतिकीनामाध्यात्मिकीनाम्

पुञ्जवादस्य नवीना रचनास्तत्स्थाने समागताः, शुल्कशाला, सज्जग्रामा भक्ष्यशाला, पशु-पालनम्, महाविद्यालयच्छात्रावासश्च केवलं धनेन विनिमेयानि जातानि, यदाऽतिथीनां सेवा, समाजस्य व्यवस्था, गवां संरक्षणम्, लोकहितसाधकानां साधूनां सपर्या च विदुषां सदा तत्पूर्त्यै आश्रमाः सत्राणि गोशालाश्च स्थापितानि। परं तान्यपि लुण्ठितुकामः परिग्रही किञ्चित्तुच्छं दातुं प्रतिज्ञाय प्रविश्य भ्रंशयति। दुष्टदाम्भिकः शिष्टवेशमाश्रयोऽप्येव दुर्दशां कर्तुं शक्तः। अनायासं जिहीर्षुणा चन्दनबिन्दुमालामासिना नित्यं गङ्गा-स्नायिना प्रदर्शनवता च भवितव्यमेव।

आमध्याह्नं नदीवासः समाजे देवतार्चनम्।
सततं शुचिवेशश्चेत्येतद्दम्भस्य जीवितम्॥ नीलकण्ठः।

अथ च प्राप्ताधिकारो हि स्वार्थपरो ज्ञानविज्ञानयोर्धर्मस्य संस्कृतेश्चोपयोगं स्वस्य, केवलं स्वस्य लाभाय करोति। पापो हि स्पर्शेनापि पातयति। पुञ्जवादस्यातिशय-सम्पर्कोपार्जमासागतानां दोषाणां फलमस्माभिर्भुज्यते, पूर्वजन्मनः कर्मणां फलमिव, भोक्ष्यते च वितते, परं भविष्यज्जीवनायावधानताऽऽधेया, यतस्तस्य सम्पर्कः क्वापि न तिष्ठेत्।

इदं मधुमुखं विषं हरति जीवितं तत्क्षणाद्
अपथ्यमिदमाशितं व्यथयते विपाके वपुः।
इदं तृणगणावृतं बिलमधो विधत्ते क्षणाद्
यदत्र मलिनोल्वणैर्द्रविणमर्जितं कर्मभिः॥ जगद्धरः।

अधुना वयं सर्वस्य न केवलं बहुजनस्यार्थसिद्धयेऽस्माकमार्यां पद्धतिं प्रतिष्ठापयितुं यतेमः। बलात्कारस्य स्थलस्थापनम्, अपरिग्रहतः स्वत्वनिराकरणमस्माकमिष्टम्। धनमुत्पादयितुः, क्षेत्रे वप्तुः स्वामिता, तदनन्तरं समाजस्य। पुञ्जवादस्य प्रिया पुत्री प्रतिद्वन्द्विता, प्रतिस्पर्धा, प्रतियोगिता क्वापि न भवेत्, परं परिस्पर्धा भवेत्। येन मानवस्य प्रेम नैतिकबलस्य समेधेत तदेवोपयोगि मन्येत। मानवमूल्यं सर्वातिशायि स्यात्। धनं विनिमयस्य सामान्यं साधनम्। वस्तूनाञ्च सुलभता। सर्वत्र जीवनोपयोगिवस्तूनां महार्घे दुर्भिक्षदशायां वस्तूनाञ्च निरोधः स्यात्। मानवस्य शारीरबौद्धिकानां अनुरूपो वेतनम्, तस्य च विकासः स्यात्। यत्र न धनी न दरिद्रो न शोष्यो न शोषको न

सिद्धान्ततः सर्वाभ्युदयस्यान्तिमा स्थितिः शासनान्मोक्षः। नैषमराजकतावन्य विशृङ्खलता, अपि तु सर्वेच्छया सानुसन्धानं परस्परोदये समाश्रिता व्यवस्थना स्वास्थ्यापादनं चिकित्साविषयः, एवमनुशासनव्यवस्थापनं शासनस्य विषयः। तस्मिन् व्यवस्थिते न शासनस्यावश्यकता स्वस्थाय चिकित्सकस्येव। वसन्ते पुरातनत्वागते शासनं स्वयमपेयात्। चिकित्सकश्च स एवाभिमतो वरीयान् यस्मद्विर्निर्दिष्टे पुना रोगाविर्भाव एव न स्यात्। 'प्रयोगः शमयेद् व्याधिम्', 'शमयेद् यो न कोपयेत्'। एवमेव शासनमपि तदेव वरं यदनन्तरं शासनपद्धतेरावश्यकतैव न स्यात्। नागरिक-जीवने स विशेषः समागच्छेद् यदन्तरेण शासनं शासनानुसारि कार्यं प्रचलेत्। पुत्रवादस्तावे-नावद्धितो लोकः परस्परस्माद् बिभेति न च परस्परस्मिन् विश्वसिति, तदा भयापवोदनाय शासनस्यावश्यकता, तद्भयं चेन्मानवमानसेभ्यः पलायेत, परस्परं विश्वासश्च जायेत तदा शासनस्य कावश्यकता ?

सहयोगिनः! दण्डहीनशासनस्य स्वेच्छं व्यवस्थापनस्य प्राथमिकी प्रयोगशाला-ऽऽसीद् गृहस्थाश्रमः। व्यक्तेः सुखसौकर्यादीनामुत्सर्गः समूहजीवनस्याभ्यासो गृहस्था-श्रमस्य विशेषः। अयं व्यक्तेः स्वार्थाहुतये यज्ञशाला समत्वोत्पत्त्यै वारम्भः। अस्मिन्नेव यथाशक्ति श्रमो यथाव्ययमादानञ्चासीत्। क्वचन क्वचनाधुनापि विलोक्यते-ऽस्य ध्वंसावशेषः। परं वयमधुना राष्ट्रमेव कुटुम्बं निर्माय गृहस्थस्य गृहं विश्वस्यातिथिशालां कर्तुं व्यवसिताः। इतिहासावलोकनेन जानीमो यदियमतिथिशाला परमरमणीया-ऽऽसीत्। सर्वो गृहस्थो भोजनात्पूर्वमतिथिं प्रत्यैक्षत। "भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्"। तस्य भोजनं परस्मै, जीवनं च परस्मै अभूत्। "शश्व-त्परार्थसर्वेहः परार्थैकान्तसम्भवः"। भागवते ११।७।३८। परमधुनैषातिथिशाला पुञ्जवाददावानलेन दग्धा, यत्र तत्र तस्या भस्मावशेषोऽधुना सूक्ष्मेक्षणेनेक्ष्यन्ते। ·

. गृहस्थाश्रमे कश्चन पुञ्जवादप्रभावितो धूर्तः प्रतिद्वन्द्वितायां लब्धधनोऽस्पर्धिं स्वकीयां श्रियमेव ब्रह्माण्डे मन्यमानस्तस्य पालनायाधिकृतो विष्णुमानी समाजम् विचूर्ण्य समाजव्यूहाद्विच्छिन्नस्य एकाकी विपथरतो जठरागमग्नोऽपि विश्वम्भर इव विश्वमपि समानशीलो धनिराजानाचनुकुर्वन्नन्यानप्येवं कर्तुमलब्धमत्। एवं कुटुम्बस्य कस्या अतिथिशाला गोशाला पाठशाला गुरुकुलं यदा पुञ्जवादप्रभावेण भग्नम्, अथ

स्य नवीना रचनास्तत्स्थाने समागताः, शुल्कशाला, छात्रशाला भक्ष्यशाला, पशु-
महाविद्यालयरुग्णावासश्च केवलं धनेन विनिमेयानि जातानि, यद्यऽतिथीनां
भाजनस्य व्यवस्था, गवां संरक्षणम्, लोकहितसाधकानां साधूनां चर्या च विलुप्ता
तुर्ये आश्रमाः छत्राणि गोशालाश्च स्थापितानि। परं तान्यपि दुष्टिगुणाम:
द्विधित्तुच्छं दातुं प्रतिज्ञाय प्रविश्य भ्रंशयति। दुश्चारिभक्तः शिश्वेदामयोऽप्यैव
त्तं धाकः। अनायासं जिह्वोर्ध्वणा चन्दनबिन्दुमालाभासिना नित्यं गङ्गा-
प्रदर्शनवता च भवितव्यमेव।

आमध्याह्नं नदीवासः समाजे देवतार्चनम्।
सततं शुचिवेशश्चेत्येतद्दम्भस्य जीवितम्॥ नीलकण्ठः।

च प्राणाधिकारो हि स्वार्थपरो ज्ञानविज्ञानयोर्धर्मस्य संस्कृतेश्चोपयोगं स्वस्य,
स्य लाभाय करोति। पापो हि स्पर्शेनापि पातयति। पुत्रवादस्यातिशय-
स्मात्सागतानां दोषाणां फलमस्माभिर्भुज्यते, पूर्वजन्मनः कर्मणां फलमिव, भोक्ष्यन्ते
, परं भविष्यज्जीवनायावधानताऽऽधेया, यतस्तस्य सम्पर्कः क्वापि न तिष्ठेत्।

इदं मधुमुखं विषं हरति जीवितं तत्क्षणाद्
अपथ्यमिदमाशिनं व्यथयते विपाके वपुः।
इदं तृणगणावृतं विलमधो विपत्ते क्षणाद्
यदत्र मलिनोल्वणैर्द्रविणमर्जितं कर्मभिः॥ जगद्धरः।

। धयं सर्वस्य न केवलं बहुजनस्वार्थसिद्धयेऽस्त्याम्नायः भवति प्रतिष्ठापयितुं
वलादकस्य स्वत्वाधारवम्, अपरिमितः स्वत्वनिराकरणपारम्पर्यनिदम्।
रयितुः क्षेत्रे वपुः स्वामिता, तदनन्तरं समाजस्य। पुत्रवादस्य प्रिया पुत्रो
, प्रतिस्पर्धा, प्रतियोगिता क्वापि न भवेत्, परं परिस्पर्धा भवेत्। येन मानवस्य
तेजस्वत्य सर्वेषां सदेवेत्यपि मन्येत। मानवत्वं सर्वोऽप्यस्य स्यात्।
मनस्य सामान्यं साधनम्। वस्तुतात्र मुख्यता। सर्वत्र जीवनोपयोगिनामूनां
दर्शिकायां वस्तुतात्र निषेधः स्यात्। मानवस्य शारीरबौद्धिकयोः
तेजम्, तस्य च विकासः स्यात्। यत्र न धनी न दरिद्रो न शोष्यो न शोषको न

स्वैरी न च स्वैरिणी। अत्र यथाशक्ति श्रमो यथाव्ययमादानं न्यायोपेतश्च वित्तस्य पुत्रवादेन शक्तेर्दुरुपयोगो लगुडिनां भयं भ्रष्टाचार इति, सद्मद्यो भिक्षा चौर्यमिति त्रिदोषाः समाजशरीरे व्याप्ताः, एतत्सन्निपातहरणाय सर्वाभ्युदयचन्द्रोदयः।

सर्वभूतहिते रताः सर्वाभ्युदयिनश्चानुस्तिकाः कर्म कुर्वीरन्। अनुत्सेकः स विक्रमालङ्कारः। अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।

निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी ॥ श्रीमद्भगवद्गीतायाम्

कर्तॄणां मनःसरस्सु कापराद्धिचारपङ्कं न तिष्ठेत्, यद् बाह्यमाभ्यन्तरं शोधयेत्। वयं परस्परं साहाय्यमाचरिष्यामः, परं न कमप्याश्रयिष्यामः। प्रतिदिनं मैत्रीसूत्रेण विश्वमेव मित्रं करिष्यामः। निष्कामे शुद्धतमे कर्मणि कर्तुः केवलं कर्म, फलं न कदाचिद् व्यक्तेरपि तु व्यापकस्याव्यक्तभगवतः। "कृपणाः फलहेतवः।" अत एव जनताजनार्दनाय स्वेच्छया कर्मफलार्पणमस्माकं सर्वाभ्युदयार्थनीतेः प्रमुखः सिद्धान्तः। यद्यपि पुत्रवादेनैव दोष उदगादि यत्लाभं विना न कोऽपि कर्मणि प्रवर्तते "स्वार्थं विना मन्दोऽपि न प्रवर्तते"। यतः कर्मणि आध्यात्मिकी भावना स्वपगता, केवलमर्थं स्वार्थं कारिणी भावना च समागता। परं स्वार्थमात्रः पशूनां भावो न बुद्धिजीविनां मानवानाम्। अस्माकं सिद्धान्तः परजीवनाय जीवनम्, परान् जीवयितुं जीवनम्, 'यत्स्थिताधिनः धन्यौ मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।' यतश्च 'यम देवर्षिब्राह्मणातिथिकरणदानेषु।' 'केवलाघो भवति केवलादी।'

केवलेन ह्यधर्मेण कुटुम्बभरणोत्सुकः।

याति जीवोऽन्धतामिस्रं चरमं समगः पदम् ॥ भागवते ३।३०।३३।

न कस्मात् फलान् परिपोषिता यद् प्रतिवेशिनि बुभुक्षिते मरणम्। प्रतिवेशिनो मनुष्यानेव नहि पशुपक्षिणो नित्यमुद्दोधितं दत्त्वा भुञ्जीत। इतीदं कर्मपादेरपि भवति कृच्छ्रम्। "वत्तु न स्वानं प्रवत्स्यति अत्र गुणान्वरीषु वा"। सैषा विधि नर्मं स्वरता।

मृगोष्ट्रखरमर्कानुसरीसृप्खगमक्षिकाः।

आत्मनः पुत्रवत् पश्येत्तैरेषामन्तरं कियत् ॥ भागवते ७।१४।९।

[illegible]

[illegible]

शाखा वृक्षकोटरे जीवनं यापयित्वापि लोकाय रत्नानि ददुः। विश्वविश्रुतो वैयाकरणो महामुनिः पाणिनिः, ककुप्कामिनीकर्णभूषणायमानकीर्त्तिर्विश्वस्यैकमात्रं दार्शनिको व्यासः, अतर्कितजगन्मृदितमल्लमायोऽद्वैतविचारकः शङ्करश्च कमर्थं साधयितुं पर्यभ्राम्यन्? गणः प्रतापः कस्मै सुखाय घासमघसत्? महामनाः कस्मै लाभाय विश्वविद्यालयं निर्मांति? महात्मा कस्य प्रान्तस्य राजा भवितुं दण्डाघातान् सहते? किं मोहन-भोगं भोक्तुं यवाहारं कुरुते यवाहरः? सहस्रशो बलिवीरा हुतात्मानः कस्मै लाभाय हसन्तः शूलमारोहन्ति? एतत् श्रेष्ठतमानवस्य पुरुषोत्तमस्य वैशिष्ट्यम्। न स्वार्थं परित्यज्य व्यापकार्याय यतते, अनुक्त एवाखिलं लोकमानन्दयति च।

किं चन्द्रमाः प्रत्युपकारलिप्सया करोति गोभिः कुमुदावबोधनम्।
स्वभाव एवोत्तमचेतसां सतां परोपकारव्यसनं हि जीवितम्॥

एषाऽस्माकं परम्परा। खेलायामानन्दमनुभवन् बालो व्यायामगुणैर्युक्त एव निरभिलाषोऽपि। परमद्य स स्वभावो मानवेभ्योऽपगतः। अत एवैष्वपनताऽऽर्थिक्य। धनं नदीप्रवाहवत्तिष्ठतु। नदी प्रतिक्षणं निम्नाभिमुखा। एवं धनमपि निम्नतामाप्य-स्याभ्तामनुभवतामभिमुखं भवेत्। "दरिद्रान् भर कौन्तेय! मा प्रयच्छेश्वरे धनम्।" परमधुना मनुष्यस्वभावे विकृतिरापादिता पुञ्जवादेन।

मानवस्त्रिगुणः। (१) विवेकी, (२) भावावान् (३) अङ्गुष्ठवांश्च। एतदर्शी चेल्पता मनुष्यः सृष्टौ नान्यस्मिन्नुत्पादनेऽस्ति। विवेकेन स सदसच्च विचारयति, भावे-दयान् धमयति हसति रोदिति च। भावना स्वाभिप्रायं जनान् श्रावयित्वा स्वमनं प्रसारयति, मार्गं लिपिविद्याय कृत्वा स्वविचारं विश्वस्मिन् कालद्वये च प्रचारयति। अङ्गुष्ठश्च तस्य कलनां प्रत्यायकः। मानवाङ्गुष्ठः सर्वा अङ्गुलीः स्पृशति। येन स विकलोऽपि कर्तुं समर्थः। शरीरेऽङ्गुष्ठो मनुष्यो ज्योतिर्दिशासलाकः प्रतिनिधिः। विश्वस्य सर्वदृष्मन्ताने मनुजः प्रतिनिधिर्मानवस्यैव सामर्थ्यम्। "शरनलस्तोरविरस्मिन्कोऽरम्भस्य कर्तुं कलराव प्रभुः कः" परमयं मानवः पुञ्जवादेन मर्शोत्कसम्पर्कः। परिस्थितैर्निन्दतारि पुरतो दैवल्यात् परिस्थितिप्रतिकृतोऽभूत्। परमेषा विकृतिरस्थिरा, आगमनं नश्यतु नेच्यति।

यथा कश्चन चौरः प्रतिदिनं प्रतिवेशिनो गृहं गत्वा धनं बलादाहरन् शनैःशनैः स्तूपं व्याहरता प्रक्रियया स्वस्य धनं स्थिरीकरोति, सन्देहास्पदमेव सदाहरणोऽनुसृतं

प्रचलति च। एकदा प्रबुद्धेन प्रतिवेशिना ज्ञातम्, हन्त! अयमस्माकं श्रमार्जितां सम्प चोरयन् स्वयमकृतश्रमोऽपि सानन्द सामन्तजीवनं यापयति। वयञ्चानेन दण्डिता नरकजीवनं जीवितुम्। अनेन लक्षशो मुद्रा अस्माकमपहृताः शतशो जनाश्च विना मूल्यं मृत्युतामुपनीताः। दुष्टोऽयं कथमपि हृतं धनं प्रत्यावर्तयितुमशक्तो हन्तव्य एव। एष आततायी। आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्निति मनुः। एतदेव रक्तक्रान्तेर्मूलम्। अतः समशीलानां धनिनामस्माकमेव परिणाम एकदाऽवश्यम्भावी। अतो जीवनं सुरक्षितु-मिच्छद्भिः समयात्पूर्वमेव जागरितव्यं परेषां जीवनाय यतितव्यञ्च।

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥ भागवते ।७।१४।८।

वस्तुतः परस्परविरोधस्य हेतुरेवायम्। यत्केचन भौतिकीमुन्नतिं स्वसुखसाधिकां मत्वा प्रतिवेशिनो हिताहितमविचारयन्तः सङ्घर्षे आक्रोशे सन्नद्धाः सम्पत्सङ्ग्रहे मग्नाः। वस्तुतो य ईश्वरो विश्वमिदं निर्मायैनदविशत् स समग्रसम्पदा सहैव। अतः सा सम्पदी-श्वरस्यैव। यथा वायोः सूर्यस्याकाशस्य जलस्य भूमेश्चोपयोगोपभोगे वयं साधिकारा-स्तथैव तज्जानामन्यासामपि सम्पदां समुपयोगे वयं सर्वे समानत्वेनाधिकृताः। परं पुञ्जवादे-नैतद्वैषम्यमुदपादि। तन्निराकरणमस्माकमुद्देश्यम्। नात्र कश्चन परोपजीवी स्यादपि तु परस्परोपजीवी। सर्वोऽत्र परस्य सौकर्याय प्रथमं चेष्टेत जीवेच्च। परिश्रमो यत्र प्रतं भवेत्।

सह यज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥

'सन् स्वास्थ्यम्, आवश्यकं धनम्, ऐकमत्यं भ्रातृषु, स्वच्छं सुपयः सम्पन्नं सुधु पुरं गृहम्, सुशीलः शिशुः, नीरोगिता, शीलरूपसम्पन्ना रमणी, अनपमानं जीवनम्, सद्विचार, तदनुसारिकर्मप्रभावश्च क्षेत्रे सदक्षं सदाजीविका च सुकर्मणि व्ययः—इत्येव केवलं न सर्वा- भौतिकी समुन्नतिः। अस्माकं सर्वाभ्युदयस्य नैतादृशी क्षुद्राऽऽधारशिला। [illegible]। विविधबाधा अङ्गीकृत्यापि मानवः शाश्वतसुखाभिलाषः।

[illegible] भावाः क्षमशास्त्रनुयनादयः।

...स्तुतिस्तदात्मसम्बन्धि सुखम्। नार्थसम्बन्धि। हन्त! वयमद्य केवलं परिवारस्य भरण-
...पोषणे एव स्वं कृतकृत्यं मन्यामहे।

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय !
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥

योगः कर्मसु कौशलम्। जीवने सिद्धान्तानामनुष्ठानं कला सैव योगः। धर्मोऽनुष्ठा-
...नकोयतेऽतोऽप्रतिष्ठितः। अकर्म च प्रतिष्ठितम्। अत एव श्रमजीवी साधु जीवन्नपि
...गर्हितो विश्रमजीवी च गर्हितं जीवन्नपि सत्कृतः। एषा पुरातनस्य परम्परा।
...अस्माभिः श्रमः प्रतिष्ठाप्यः। कर्मैव विश्रमेऽधिकृतो भवेन्नाकर्मी। श्रमस्य विश्वो
...यदा विलप्स्यति तदा धनी श्रमनिष्ठो भविष्यति। स्वेच्छया श्राम्यतो मनोविनोदः। परमेक
...आग्रहेण परतापेन च श्राम्यतोऽवसाता दण्ड इव। धनी पूर्वेरिमन्नानन्दं परिचय
...गाढोऽमनुभवति। वयं श्रमजामो यच्छ्रमः सम्पत्तिर्भवेत्। सर्वे च तस्या अभिलाषुकाः।

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥ गीता।

सर्वाभ्युदयसनाथं सर्वैश्वर्यत्वेन प्रवर्तितं। बहुमतस्य शासने निरतः सर्वोप-
[illegible]
[illegible]
[illegible]
...स्मिन् समाजे दाता न च भिक्षुः। सर्वः सर्वमान्यत्वलेन् श्रमं करोति परार्थं च।
...र्मे योगक्षेमविषये सर्वः तुष्यति। निरभिलाषं निरीहो निरंजन कर्मैव मुक्ते प्रमाणः।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

अतोऽस्माभिर्निष्क्रमभावेनास्मिन् योक्तव्यम्। एवं कुर्वतां नियमस्माकं सहयोगि "स्वयमेव हि वातोऽग्नेः सारथ्यं प्रतिपद्यते"।

मम मानसे भावनैकास्ति यत् प्रत्येको ग्रामो नागरिककृत्रिमताविरहित एककुटुम्बवद् व्यवस्थितः सरस्वतीविहारभूमिनिर्मलेन ज्ञानालोकेन स्वाभाविकेन सौन्दर्येण विकसितपुष्पोपवनसमृद्धो धान्यपूर्णकुसूलो गोदुग्धधाराभिरभिषिक्तो नवनीतनवीनामन्दविद्युत्प्रभविद्ददुज्ज्वलः स्वर्गतुल्यो दीप्येत। सुखसलिला नद्यः सर्वतः प्रसृता राजपथाश्च देशं पोषयेयुः। उदम्भांसि सरांसि हंसकलरवैर्मनो मोदयेयुः। प्रत्येकं गृहमुल्लासेन वीणाविरावेण बालानां काकल्या च मुखरितं भवेत्। नाकालमृत्युः स्यात् पितरि स्थिते नात्मजनिधनं न च विधवावैकल्यं क्वापि भवेत्। सर्वः स्वस्वधर्मे कर्मणि च स्थितः परस्परेण सह युञ्जीत। वस्तुतो यतोऽभ्युदयो निःश्रेयससिद्धिश्च स धर्मः। दुर्भिक्षस्य कथैव न श्रूयेत। न विग्रहो न चौर्यं न व्यभिचारो न च लोकव्यवस्थापकानां सैनिकानामावश्यकता भवेत्। जनानां सुपुष्टं मस्तिष्कं नवाविष्काराय सज्जं तिष्ठेत्। समाजस्य सेवा, धारणा, वृद्धिः, समृद्धिः सर्वाभ्युदये व्यवस्थिता स्यात्। बुद्धिबलाः शरीरबलाश्चात्र समानाः, सर्वश्रेयोयोगशीलताया वृद्धिः, समृद्धता च देशे न तु व्यक्तौ। सामाजिकविषमतानां शोषणस्य च विनाशः। उत्पादनस्योपयोगस्य।

ग्रामाणामवस्थानं पञ्चसहस्रजनसङ्ख्यातो नाधिकं भवेत्, यत्र सर्वे परस्परं जानीयुः। ग्रामीणाः स्वावश्यकतानुसारि सर्वं स्वयमुत्पादयेयुः। क्रयस्यावश्यकतैव न भवेत् स्वल्पा वा। एषु ग्रामेषु एकाऽन्नविपणिरेका वासोविपणिरेका चोपयुज्यमानवस्तुविपणिः, बालानां प्रौढानां महिलानाञ्च कृते निःशुल्का नवीनसाधनसम्पन्ना पाठशाला आरोग्यशाला, उपयोगिपुस्तकान्वित आकाशवाणियुक्तो वाचनालयः, विविधविषयप्रदर्शकपट्टं मनोरञ्जनव्यायामादिव्यवस्थं वनोद्यानञ्च सर्वाभ्युदयेन सञ्चालितं तिष्ठेद्। न कश्चनानक्षरस्तिष्ठेत्। रुग्ण आरोग्यशालायामेव चिकित्सितो भवेत्। आरोग्याध्यक्षः कस्मिंश्चिन्मृतेऽनाशस्थमीके तस्य विवरणाय प्रष्टव्योऽक्षमोत्तरो दण्डभाक्, चौर्यं कारकः। परं पतनविरसेष्वसारेषु धीविकारेष्ववबुद्धेषु सर्वाभ्युदये च व्यवस्थिते न चौर्यं सम्भाव्यते। व्यवस्थायै न परेषामावश्यकता, ग्राम्याः स्वयं व्यवस्थापयेरन्। ग्रामाद् बहिर्यन्त्राणामवस्थितिर्भवेत्। यत्राहोरात्रस्य तृतीयांशे कार्यं भवेद्दशवर्षाणि यावत्, ततश्चतुर्थांशे।

शिक्षालयेष्वध्यापनं सायं प्रातर्द्विर्भवेच्छिल्पशिक्षणञ्च। अध्ययनायाध्यापनाय शिल्पशिक्षणाय मनोरञ्जनशारीरक्रियायै चाहोरात्रपञ्चमांशः। शयनकालश्चाहोरात्रस्य तृतीयांश आद्यायां शेषासु च चतुर्थांशः। प्रवेशसमये मूलप्रवृत्तिविभागे मासं छात्र आवास्यः। तदनुमोदनानुसारं विभागे प्रवेशो भवेत्। कक्षास्तिस्रः। आद्यायां वर्षषट्कम्। मध्यमायाञ्च वर्षत्रयम्। उत्तमायां वर्षद्वयम्। विभागीयाचार्यपरीक्षां प्रविविक्षुर्वर्षमेकमधीत्य योग्यतापरीक्षां प्रविष्टः प्रतिशतं प्राप्तपञ्चाधिकाङ्कः प्रवेष्टुमधिकृतः। तस्यां वर्षचतुष्टयम्। प्रतिग्राममाद्यकक्षायाः पाठशाला। जनपदे च मध्यमाया जनपदच्छात्रावासश्च। अस्यार्द्धो व्ययो जनपदसर्वाभ्युदयसमाजेन देयोऽर्द्धश्चाभिभावकेन। भागीयनगरेषूत्तमायामध्यापनं भवेत्। छात्रावासश्च पूर्ववत्। एतेऽधीयानाः शासनसेवां कुर्युः। केन्द्रनगरे च विभागीयाचार्यपरीक्षायै महाविद्यालयश्छात्रावासश्च। छात्रावासव्ययश्च केन्द्रेण सोढव्यः। अध्यापकेभ्यः सपरिच्छद आवासः सर्वाभ्युदयसमाजेन देयो वेतनञ्च।

भारतस्य चत्वारो भागाः स्युः। पूर्वनगरम्, दक्षिणनगरम्, पश्चिमनगरम्, उत्तरनगरमिति भागीयनगराणि। केन्द्रञ्च केवलं शासनपरः प्रदेशरहितस्तिष्ठेत्।

केन्द्रनगरे प्रजाया वसतिर्न स्यात्। अधिकारिणां गृहाणि, सर्वोच्चविद्यालयः, सर्वोच्चचिकित्सालयः, विभागानां कार्यालयाः, पुरातत्त्वविभागोऽनुसन्धानविभागः, राजदूतावासाः, सेनासन्निवेशः, अतिथिनिवासः समाजेन व्यवस्थापिता विपणयो भोजनालयश्च स्युः। पञ्चविंशतिवर्षः पुमान् स्त्री च मन्तव्यं प्रकाशयितुं निर्वाचकतां प्राप्तुं च शक्नुयात्। समस्मिन् राष्ट्रे एका लिपिः संस्कृता च भाषा स्यात्। एषु भागेष्वेकलक्षनिर्वाचकजनः प्रदेशो जनपदशब्देन बोद्धव्यः। प्रतिजनपदं सर्वाभ्युदयसमाजस्य सञ्चयनं ग्रामसर्वाभ्युदयसञ्चयनसापेक्षं भवेत्। उत्सहस्रनिर्वाचका ग्रामगणेशं निर्वृणुः। स च स्वक्षेत्रे पञ्चगणान् स्वेच्छया निर्वृयात्। गणेशशतैर्जनपदसमाजं प्रकल्प्य तन्मध्यत एवैकं जनपदगणेशं मन्त्रिणश्च निर्वृत्य कार्यं प्रचाल्येत। सर्वत्र तृतीयभागस्य निर्वचनं वार्षिकं भवेत्। अधिकारिणाञ्च योग्यतासापेक्षम्। गणेशे चैषा योग्यता शास्त्रकारैः प्रतिपादितेऽपि शास्त्रविशेषयोपेत एव प्रजाभिर्निर्वाच्यः।

सुमुखः – सर्वदा प्रसन्नमुखः।

एकदन्तः – स्मिते निश्चलैकदन्तो मन्दस्मितः। केनापि वृत्तेन विस्मितो गम्भीरः।

कपिलः = कपीनपि लाति — आदत्ते = गृह्णाति = कार्येषु योजयति सः = अयोग्यपुरुषानपि कार्यप्रवृत्तं नार्हान् कर्तुं निपुणः इति भावः। अथवा सांख्याचार्यः कपिल इवानासक्तः, कर्म कुर्वाणोऽपि निर्लिप्तः।

गजकर्णः = सूक्ष्मतमश्रावी। येन प्रदेशभवकर्मणां सौक्ष्म्येण श्रोता।

लम्बोदरः = अत्रोदरशब्दो न पाकस्थल्या नवोदरगुहाया वाचकः, अपि तु मध्यमान्त्रस्य प्रदेशवृत्तं श्रुत्वाप्यक्षुब्धः। अविकारिवृत्तं केनाप्यविज्ञातं तिष्ठेदवसरोपयोगाय।

विकटः = कर्त्तव्ये निष्पक्षो दृढव्रती। न यत्र प्रेम्णो वैरस्य वा प्रभावस्तिष्ठेत्।

विघ्ननाशः = प्रान्तहितव्याघातकानां तत्त्वानां नाशकः।

विनायकः = सर्वाभ्युदये न कोऽपि नायकः सर्वेषां समानाधिकारत्वात्, व्यवहारप्रचलनाय नियमनाय च तस्यावश्यकतास्त्येव। अतोऽयं न नायको नचानायकः, अपि तु विलक्षणो नायकः। अहम्भावे विगतनायकत्वाभिमानः कार्ये च विशिष्टः इति वा।

धूमकेतुः = आकाशे उत्पातविशेषद्योतकं नक्षत्रम्। तन्न कस्यापि दुःखदातृ परं तस्य दर्शनाज्जना बिभ्यति, भवन्ति चातङ्किताः। तद्वदेनं दृष्ट्वा सर्वे साशङ्काः सम्भ्रान्ता वा भवेयुर्यद्यप्यसौ न कस्यापि दुःखदः।

गणाध्यक्षः = स्वगणानां कर्मणामधीक्षकः। येन कर्मकरेषु शैथिल्यमुत्कोचं पक्षपातो वा नोपेयात्।

भालचन्द्रः = भालश्चन्द्र इव (आह्लादकः) यस्य सः = तेजस्विशान्तमुखमण्डलः।

गजाननः = गम्भीरमुखमुद्रः। वस्तुजातं निवेद्य न कोऽपि निवेदको निवेदनस्य भावं ज्ञातुं प्रभवेत्।

अस्माकं राष्ट्रे सर्वत्रैतादृशा गणेशा आसन्। कार्यारम्भे निर्विघ्नं परिसमापनायै सत्कार एवैषामावश्यक आसीत्। अत एवैष शिवस्य — कल्याणस्य पुत्रः — फलम्। परमधुना साम्राज्यवादपूजवारमधुना वीतविवेके जगति तादृशपुरुषरत्नानामुत्पत्तिरेव विलुप्ता। परं गतानुगतिका मुग्धा गणेशं नाम्नैव पूजयन्ति सर्पेऽपसृते तस्य रेखामिव।

निर्वचने प्रचारिण आजीवनं निर्वचने निर्वाचने च नाधिकृताः स्युः। प्रजाः कानपि

१ स्वेच्छया सानुरोधं निर्वृणुयुरयमस्माकं प्रतिनिधिः। तेषां बहुत्वे कादाचित्के

कश्चित्के पत्रगणना भवेन्नान्यथा। एवं परस्परं परिचिन्वन्तोऽभयं दास्यन्ति मतम्, नैवं मतं केतुं शक्यम्, न च लगुडिनां भयाद्श्रेष्ठोऽयोग्यो निर्वक्तुं शक्यते।

जनपदसर्वाभ्युदयसमाजस्यैकवर्षानुभवः षष्ठांशस्तेनैव निरुक्तो भागीयसर्वाभ्युदयसमाजं प्रतिनिधित्वेन गच्छेत्। तन्मध्यतो भागपालस्य मन्त्रिणश्च निर्वचनं भवेत्। मन्त्री च भागपालेनामन्त्र्य राष्ट्रियवरिष्ठसमाजेन च विमृश्य विभिन्नपदेषु मन्त्रिणो नियुञ्जीत। भागस्यैकसूत्रतापादनाय सर्वोच्चसर्वाभ्युदयसमाजकार्ये साहाय्याय च यतेत। जलावसेचनादिव्यवस्थां सुगमां साधारणव्ययाश्च कुर्वीत।

भागीयसर्वाभ्युदयसमाजस्य द्विवर्षानुभवो दशमोंऽशः सर्वोच्चसर्वाभ्युदयसमाजं प्रकल्प्य तन्मध्यतो वरिष्ठसमाजमेकत्रिंशज्जनानां प्रकल्पयेत्। तन्मध्यत एव भागीयसमाजसदस्यानां सर्वथा बहुमतेन वरिष्ठसमाजस्यैकमत्येन च राज्ञो मन्त्रिणश्च निर्वचनं भवेत्। मन्त्री च राज्ञाऽऽमन्त्र्य त्रिभागीयमन्त्रिणो नियुञ्जीत। सर्वोच्चसर्वाभ्युदयसमाजो वरिष्ठसमाजेन राष्ट्रस्य सर्वकार्यसम्पादने साधिकारस्तिष्ठेत्।

निम्नतमकर्मचारिणो वेतनात्सार्द्धं वेतनं गणेशस्य, तस्मात्सार्द्धं जनपदमन्त्रिणः, तस्मात्सार्द्धं जनपदगणेशस्य, तस्मात् सार्द्धं भागीयमन्त्रिणः, तस्मात्सार्द्धं भागपालस्य सर्वोच्चसर्वाभ्युदयसमाजमन्त्रिणाश्च, तस्मात्सार्द्धं प्रधानमन्त्रिणः, तस्मात्सार्द्धं च राज्ञः। एभ्यः सपरिच्छद आवासो राष्ट्रेण देयो यानञ्च। कर्मकरा आषष्टेर्वयसः समाजसेवां कुर्वन्तोऽवकाशकाले यावद्वर्षं तावन्मासं वेतनं लभेरन्। निरन्तरं पञ्चवर्षं कृषकाः क्षेत्रस्य, नियतं शरदां दशकं शुल्केन गृहवासिनो गृहस्य च स्वतः स्वामिनः स्युः, एककालं दशवर्षाणां शुल्कदातारश्चापि। यन्त्रेषु विपणिषु निरन्तरं दशवर्षाणि कर्म कुर्वाणाः स्वतो भागभाजः स्युः। सर्वत्र कर्मकराणां भोजनाच्छादनं जीवनस्तरश्चाधिपतिसमः स्यात्।

सर्वोच्चसर्वाभ्युदयसमाजानुसारिप्रणाल्या आचरन् भागीयसर्वाभ्युदयसमाजो मुद्राम्, शिक्षाम्, सामरिकीम्, शासनव्यवस्थाम्, यातायातव्यवस्थामन्याश्च सर्वभागसम्बन्धिनीं व्यवस्थां विहाय सर्वकार्ये स्वतन्त्रः। स एव स्वक्षेत्रे योग्यान् कर्मकरान्नियुञ्जीत करञ्चाददीत। करस्य षष्ठांशञ्च राष्ट्रियसमाजाय दद्यात्। जगद्वतां भवतां सहयोगेन दशभिर्वर्षैरेतल्लब्धुं शक्यते। "किं दुरापादनं तेषां पुंसामुद्दामचेतसाम्।" भागवते। एवञ्च कृतेऽस्माकं राष्ट्रमधुनापि सर्वस्यानुकरणीयमेव।

नात्युच्चशिखरो मेरुर्नातिनीचं रसातलम् ।
व्यवसायद्वितीयानां नात्यपारो महोदधिः ॥

स चायमार्यो विचारः । यथा श्रीमद्भागवते नृणां त्रिंशल्लक्षणवति [illegible] भगवान् व्यासः—

अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः ।
तेष्वात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव ! ॥७।११।१०

नायं नवः सम्प्रदायो वादो वा किन्त्वस्माकं पूर्वेषां प्रणाली, मानवस्यायं सह[illegible]स्वभावः । शास्त्रैर्विना विचारेऽप्यनामहत्ता भवितव्यम् । साम्यवादो विक[illegible]वादरूपतामवगाहते । यो हिंसाप्रधानत्वादधर्मः । विचारश्चापौरुषेयो मुक्तेरैक्यम् विचारस्य ज्ञानस्य न कश्चन निर्माता, केवलमभिव्यञ्जक एव । अत एव ज्ञानमात्रस्य पौरुषेयत्वम् । कर्णपरम्परया श्रूयमाणत्वाच्च तदेव श्रुतिः ।

अस्मिन् कार्ये सर्वेषां प्रारम्भिकः सहयोग आधारशिलेव भविष्यति । आधारशिलां न कोऽपि पश्यति, पश्यति केवलं गगनस्पर्शिनं सौधम् । परं दुर्व्यवस्थापकाः अनेकशो [illegible] । अनावश्यकतया कर्म कर्तुं चेष्टा बुद्धिं शिथिलयति । [illegible] संतानेव फलेच्छया भूमिमवगाहमाना बालाः श्रमेण सह बीजमपि विनाशयन्ति । "[illegible] धर्मवतां धनम्" इत्येव वाम् । लोकानां कटुकमालोचनया नास्माकं भीतिः ।

अस्मानवेहि कलमानलमाहृतानां येषां प्रचण्डमुसलैरवदाततैव ।
स्नेहं विमुच्य सहसा खलतां प्रयान्ति ये स्वल्पपीडनवशान्न वयं तिलास्ते ॥

अतो वयं कौटिल्यरहिततया मुदा धैर्येण च युक्ता अविकम्पाः कार्ये प्रवर्त्तामहे । "[illegible]कथने हि घोरहृदयं नाप्नोति सोऽप्यन्तरम्" । [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।

इतिहासो विशदोज्ज्वल उत्साहवर्द्धकः। कर्त्तव्यारूढा अनेके मानवा अविचलिता मृत्युं सहर्षमालिङ्ग्य विधुशेखरस्याग्रगतामुपगताः। सर्वां भूमिं ददतोऽप्यविचलिताः। सत्यम्,—

कियती पञ्चसहस्री कियती लक्षापि कोटिरपि कियती।
औदार्योन्नतमनसां रत्नवती वसुमती कियती॥

येषां नाम स्मरन्तो वयं धन्याः। येषां कीर्तिगीतिं गायन्तश्चारणा राष्ट्रं राष्ट्रम्, नगरं नगरम्, ग्रामं ग्रामम्, वनं वनं मुखरयन्तः शाब्दिकं कीर्त्तिस्तम्भमुच्छ्राययन्ति। येषां महिम्ना वयं मूर्धानं साभिमानमुच्चैः कर्त्तुं शक्ताः। "अपि स्वदेहात्किमुतेन्द्रियार्थाद् यशोधनानां हि यशो गरीयः"॥ अस्माकमयं प्राचीनो निधिर्महार्घः पवित्रश्च। तदिदमतीतं गौरवं पश्यद्भिरस्माभिस्तस्याक्षुण्णमर्यादायै यतितव्यम्।

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन!
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्॥
बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद् योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्॥
नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥

एतद्धामान्यं रेखाचित्रं मम हास्यमाशास्यं धीमतां समक्षमुपास्थापि, परतश्च समये समये समाजाः सम्मिलय्य वैशद्येनाधिकाधिकमुपयोगिनो नियमान् विचारयन्ति। अस्मत्पूर्वजैः पुरुषार्थप्रणाल्या विश्वसुखं विचारितं भवेत्, परमनया दुःखम्, दारिद्र्यम्, कलहः, भय मेति। आगच्छन्तु वयं प्रगतिविरोधिनामानन्दशत्रूणां व्यूहं विधूय विश्वं प्रकाशयामः। एष मामकीनः प्रस्तावः परतश्च श्रीचरणाः प्रमाणम्।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत।

पुनश्च, अस्माकं राज्यमद्यपर्यन्तं कुलक्रमागतमासीद्, विश्वदेवेदं जिह नि। अतोऽद्य लोकस्य न्यासं लोकाय प्रत्यर्प्य प्रसीदामितराम्। सम्भाव्यते केचन मां भ्रान्तं मन्येरन्, परमयं भ्रमः सौख्यस्य राशिरानन्दस्य निधिश्च।

एतस्मिन् प्राचीनार्चितेऽपि नवीनवद् भासमाने भुवनमान्ये पथि विचरतां कदाचित् स्खलनमपि चेद् विश्वसिमि यद् भगवानस्मान् स्वयं रक्षिष्यति। चलनमारभमाणः शिशुर्मात्रे पेक्षितोऽप्यन्वीक्षित एव सा सदा तं पतनाद् वारयत्येव। भाग्यदशायां रक्षायै सावधाना यद्यप्यकिञ्चित्करं तत्, परं स्वप्ने यस्य शक्तौ विश्वसन्तो जीवामः सोऽस्मान् रक्षिष्यति।

विश्वस्य यः स्थितिलयोद्भवहेतुराद्यो योगेश्वरैरपि दुरत्यययोगमायः।
क्षेमं विधास्यति स नो भगवांस्त्र्यधीशस्तत्रास्मदीयविमृशेन कियानिहार्थः।
जीर्णा तरिः सरिदियं च गभीरनीरा नक्राकुला वहति वायुरतिप्रचण्डः।
तार्याः स्त्रियश्च शिशवश्च तथैव वृद्धास्तत्कर्णधारभुजयोर्बलमाश्रयामः॥

"सह नाववतु, सह नौ भुनक्तु, सह वीर्यं करवावहै, तेजस्वि नावधीतमस्तु, मा विद्विषावहै।" 'सङ्गच्छध्वम, संवदध्वम, सं वो मनांसि जानताम्।' 'मा मा प्रापत् प्रतीचिका'

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥१॥
ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरीक्षे।
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभीं रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव॥२॥

यत्=मनो मनुष्यान्नेनीयते=अत्यर्थमितस्ततो नयति। मनःप्रेरिता एव प्राणिनः प्रवर्तन्ते। मनुष्यशब्दः प्राणिमात्रोपलक्षकः। सुषारथिः=शोभनो यन्ता यथा अभीशुभिः=प्रग्रहैरश्वान्नेनीयते, रश्मिभिर्नयति नियच्छति च। एवं मनोऽपि मानवान् प्रवर्तयति नियच्छति च। यच्च मनः हृत्प्रतिष्ठम्=हृदि प्रतिष्ठा यस्य तत्। यच्च मनः अजिरम्=जरारहितम्, बाल्ययुवस्थविरेषु मनसः समानावस्थता। यच्च जविष्ठम्=अतिशयवद् वेगवत्, तन्मे मनः शिवसङ्कल्पम्, शिवः=कल्याणपूर्णः सङ्कल्पो यस्य तादृशमस्तु॥१॥

हे सवितः! देव!=जगतः प्रसवाधिष्ठातः तेजोऽधिष्ठातश्च! ये ते पन्थाः=पन्थानो=मार्गाः अन्तरिक्षे सुकृताः साधुकृताः वर्तन्ते। कीदृशास्ते? पूर्व्यासः=पूर्वेषु कालेषु भवाः [illegible]र्याः। अरेणवः=नास्ति रेणुर्येषु=धूलिरहिताः, तेभिः=तैः पथिभिः=मार्गैरस्मान्नय।

भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह ॥३॥
यज्ञपते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।
विश्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥४॥
स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया ।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी ॥
शिवमस्तु सर्वजगतः परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः ।
दोषाः प्रयान्तु शान्तिं सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ॥
पश्येम शरदः शतम्, जीवेम शरदः शतम् ।
नन्दाम शरदः शतम्, मोदाम शरदः शतम् ।

पुरश्च गच्छतोऽस्मान् रक्ष – पालय । अपि च हि च अपि अश्वीरन्य मृळि एते मदीया इति । यथा अतीव ऋद्धि – उत्तरोत्तर प्रवृत्स्मार्द हितं पश्याम तत् । किम्भूतैः पथिभिः । सुगेभिः – सुगैः । सुखेन गम्यन्ते येषु ते तैः प्रभूतावकाशैः । व्याधिविघ्नरहितैः ॥२॥

हे देवाः – इन्द्रप्रधानाः, भग एव भगवानस्तु । भगः – ऐश्वर्यम् । "भगं श्रीकाम-माहात्म्यवीर्ययत्नार्ककीर्तिषु" इत्यमरः । "ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः । ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥" तेन भगेन वयं भगवन्तः – समस्तैश्वर्यसम्पन्नाः स्याम । हे भग ! सर्व इत् – सर्व एव जनः, तं प्रसिद्धं त्वा – त्वां जोहवीति=पुनः पुनरतिशयेन च आह्वयति इत्यभिप्राये । हे भग ! विश्वविदितवीर्य ! स त्वमिह नः – अस्माकं कर्मणि पुर एता – अग्रयायी भव । अग्रेसरो भूत्वा सर्वकार्याणि साधय ॥३॥

हे यज्ञपते ! त्वमस्य जगतो यन्ता – नियन्ता । सूक्तस्य – अस्मदुक्तस्य साधुवचनस्य (कर्मणि षष्ठी) सूक्तं बोधि – बुध्यस्व । अस्मदुक्ता स्तुतिर्भवता ज्ञायतामिति भावः । तनयञ्च जिन्व – अस्मदपत्यानि प्रीणीहि, त्वत्प्रसादाद्देवा यद्भद्रम् – कल्याण-मवन्ति – पालयन्ति तद् विश्वम्=सर्वम्, भद्रमस्माकमस्तु । किञ्च सुवीराः – कल्याणपुत्राः सन्तो वयं विदथे – यज्ञे बृहत्=महत्स्तुतिम्, वदेम – दीयतां भुज्यतामित्याद्युच्चारयेम ॥४॥

भवाम शरदः शतम्, शृणवाम शरदः शतम् ।

प्रब्रवाम शरदःशतम्, अजिताः स्याम शरदः शतम् ॥ तैत्तिरीयआरण्य

तस्य मुखहिमवतो निर्गच्छन्ती हितमितं च्योतन्ती मकरन्दभरो शब्दनिर्म
घटीसप्तकमविरलभावेन श्रावकान् वचनामृतेनाप्लाव्य व्यरमत् । लब्धौ गुर्वभिगम
स्थितडिल्लेखाभास्वरां सरसां सुवर्णां लोकद्वयश्रेयस्करीमार्यहृद्यां नानापुराणनिगमा
सम्मतां क्वचिदन्यतश्चाप्युपलब्धां विधूतान्तध्वान्तां वाचमाकर्ण्य साधुवादस्य गगनव्या
हर्षघोषेण सह प्रस्तावानुमोदनपुरस्सरं स्वस्वराज्यमहमहमिकया सर्वाभ्युदयाय स्वीच
वचश्चमत्कारप्रभावितं प्रसन्नमानसं नरेन्द्रमण्डलम् ।

* * *

उद्घोषितो निर्वचनसमयः सम्प्राप्तः । गृहेषु सद्बुद्धयः सङ्घीभूय शान्तचेत
शासनसामर्थ्यं समाजप्रचालनयोग्यताञ्च विचार्य स्वप्रतिनिधीन् निश्चिक्युः । प्रा
गणेशानां निर्वचनं समस्ते भारते शान्त्या प्रेम्णा सौहार्देन जातम् । निश्च
श्चापरदिने दर्भपाणयः प्राङ्मुखाः प्रातर्देशस्य भूत्यै प्रतिजज्ञिरे । तस्माज्जनपदसम
गत्वा समाजं व्यवस्थापयामासुः, तस्माच्च गता भागीयसमाजं ततश्च राष्ट्रियसमाजम
एवं विना व्ययं सर्वत्र निर्वचनमभूत् । राष्ट्रियसमाजश्च देशस्य सर्वां व्यवस्थां सम्पादयि
स्वमध्यत एकत्रिंशन्मानवानां वरिष्ठसभां निरुवाच । सबहुमानं सर्वैराहृतौ गुणगर
यान्नियोजितशक्तिधरो मन्त्रित्वे, जातश्चायं चन्द्रो महीपतिः पट्टराज्ञी कमला च
बहिर्थैका गजला गीतिर्वृन्दवादेन सहाश्रूयत—

अम्बिका भवतु प्रसन्ना राज्ञि चन्द्रे भूपतौ (स्थायी)
मारमिव यं वीक्ष्य वध्वो जालमार्गेकृतेक्षणाः
विस्मृतालङ्कारवस्त्रा मूर्च्छिताः पतिताः क्षितौ ॥१॥
यस्य बलवत्कर्म मर्मत्रोटिनो भृशदुःसहम् ।
श्रुत्वा मृतं विज्ञाय दग्धाः शत्रुकामिन्यश्चितौ ॥२॥
यस्य धिषणां नीतिनिपुणां वीक्ष्य नीतिविचक्षणैः ।
तत्प्रजे गर्वो मनीषिभिराहितः स्वस्यां मतौ ॥३॥

रामचन्द्राज्यं प्रशासद् द्वेषगान् दमयन् दृढम् ।
श्रीनिवासं शं नमन् सम्पुष्पितं भवतान् क्षितौ ।।४।।

निश्वास एष नवमो गतश्चन्द्रमहीपतौ ।
तौहिने नलिनोपत्रे जगत्पत्रे विलासिनि ।।१।।

निरर्थकपदान्यासे मञ्ज्वलङ्कारशोभिनि ।
निचिते श्रीनिवासेन पण्डितेन्द्राज्जनिञ्जुषा ।।२।। सङ्गबन्धः।

कमला तरुणबुधानां कान्त्या हरतां कदापि नो चेतः ।
किन्तु समाहितशास्त्रं मानसमधिवसतु हंसीव ।।३।।

न्यासि क्वचन क्वचन प्रीत्यै विदुषां मया नु काठिन्यम् ।
नीरजमृदुला तन्वी, कुचयोः कठिनैव सम्भाति ।।४।।

किमिह कृतं प्रत्यग्रं सकटाक्षं भाषिणो बुधा बहवः ।
किन्तु समाजे विदुषां विरलाः प्रतिभान्ति कर्त्तारः ।।५।।

स्वङ्काङ्केन्दु (१९६१) मितेऽब्दे ज्येष्ठे शुक्ले रवौ दिवसे ।
एकादश्यामेष प्रारम्भि श्रीनिवासेन ।।६।।

ताताङ्घ्रिपद्मयुगले सम्पीताशेषशास्त्रमकरन्दः ।
परमश्छात्रविनोदी प्रत्यवसितगुरुकुलक्लेशः ।।७।।

विद्वन्मण्डलकीर्त्तितकीर्त्तिः प्रेम्णा मुदे कवीशानाम् ।
श्रावणकृष्णतृतीयारविदिवसेऽपूरयत्स इमम् ।।८।।

रविदिनविहितारम्भो, रविदिनपूर्णो मनोहरन्यासः ।
सुखयेत्कवीन्श्चिरायासौ चन्द्रः पञ्चसप्ताहः ।।९।।

यस्याभिजनो लाम्बी ह्यधिवसता राजदुर्गमक्लेशम् ।
चक्रे विंशे वयसि स्थित्यै भूत्यै च कीर्त्यै वा ॥१०॥

विद्वद्वीक्ष्य उपास्य आस्यरचनै रस्यः प्रशस्यः समैः
सल्लोकव्यवहारशास्त्रविधिभिः सम्पूरिताभ्यन्तरः ।
रम्यश्चन्द्रमहीपतिः सुकृतिभिः सेव्यः सुखाकाङ्क्षिभि-
र्विन्यस्तः कमलानिवासकविना हृद्योऽनवद्यश्चिरम् ॥११॥

वित्तो व्याकरणेषु काव्यनिपुणः पौराणिकेष्वग्रणी-
र्गण्यो दर्शनवेदिनां व्यवहृतौ सम्प्राप्तसम्पाटवः ।
आयुर्ज्योतिरधीतिनां सुकुशलो विज्ञानविज्ञो व्रती
राष्ट्राचारविदां वरो वरमतिः स्पृश्यादिदं पुस्तकम् ॥१२॥

वेदेन्द्वभ्रविलोचनेऽ (२०१४) नुसमयं संस्कृत्य पौषेऽल्पशः
काङ्क्ष्यश्चन्द्रमहीपतिर्मतिमतां मोदाय मुद्रापितः ।
यस्या निर्भरसेवया बहुविधे व्यस्तेन कार्यक्रमे
स्तौम्यम्बां व पतञ्जलेस्तनुमतीं सेवां क्षमां पार्वतीम् ॥१३॥

—:o:—

पार्वतीविवृताबुद्धृतेतराणामप्रसिद्धानां शब्दानां कोपः

पुष्पाङ्किताः शब्दा नवनिर्मिताः

नकरः = कूड़ा
प्रथिमः=पूर्वः
नुपेया = अनुपानम्
गुण्ठन = घूंघट
टकेलि = अठखेली
वचूणन = पाउडर
र्हसन्ती=दिवाल की सिगड़ी
स्तारकिङ्किणी = झालरी की घण्टी
ीमञ्जूषा = तिजोरी
डक = सेर से अधिक
वहार = भोजन
भियोगः = मुकद्दमे की सुनवाई के विना
ः = परिणाम
काः = धनके छापें
य = प्रसवकष्ट
स = कम्पार्टमेन्ट
ग्रुक्षणितरणिः = अगनवोट
= बाग
= अश्वसे एक दिन में जाने योग्य मार्ग
न = अचकन
प्रसवव्यथा
स्वी
=साफा
= उतावली

उपबर्ह = मसंड
उदन्यन् = पिपासुः
उत्कोच = रिश्वत
उष्णीषिका = टोपी, पगड़ी
एषमः = इस वर्ष (ऐसके)
और्ण = ऊनी

क

कर्णेहत्य = आवृत्ति
*कञ्चुककोश = जेबका धन
*करकर्पट } रुमाल
*करवासः }
कविका = घोड़ेके मुंह का कड़ा
करटी = गजः
कशेरुका = पृष्ठास्थि
करोटिः = शिरोस्थि
कारण्डवः = पक्षिभेदः
कान्दविकः = कन्दोई, मिठाईवाले
कासरः = महिषः
कासारः = ह्रदः
कीकसम् = अस्थि
कुणिन्दः = वन्यजातिः
*कुचमादी = कुचानां स्तन्यं पीत्वा माद्यति सः = बालः।
कुणिः = मक्करः

कृष्णाप – रिसाव
केकरः – विकृतनेत्रः (ऐंचा)
*केशनिर्मोकमोची—बालकी खाल खींचने वाला
कौलेयकः – श्वा
क्षीररस्यन् – दूध पीने की इच्छा से

ग

गुल्फालङ्कारणम् – पाजेब
गोफणा – गोफिया
गंगाधररसः – अतिसाररोगकौषध।

च

*चलचित्र – सिनेमा
*चषकः – प्याला

ज

*जन्मीरचूर्णिका – हेमनचूर्ण
जीवातुः – जीवनौषधम्।
जैवातृकः – चन्द्रः
*ज्योतिश्चालाका – रंगसलाई

म

*[illegible] – [illegible]

न

निशान्तम् – गृहम्
*निवेशकः – तम्बू गाड़ने वाले
निष्यः – चाण्डाल
निर्बन्धः – आग्रह
नीविः – अण्टी
नीशार – रजाई – सोड
नेमाक्रान्त – आधे दबाये हुए
नैष्टिकः – भिक्षुः

प

परारि – गतवर्ष
पल्ली – छिपकली, छोटा गांव, हाणी।
*पत्रकोटर – पोकेट
*परिवरण – चौखटा, फ्रेम
*परिष्करण – पालिश
पन्नपादशा – [illegible] – मोमदीपा
*पटत्कारः – पटाखे
पत्ररथ – पक्षी
*पथिकावास – वेटिंगरूम का डिब्बा
*परजीवी –) दूसरों पर जीने वाले

प्रवात – बवंडर (साईक्लोन)
प्रावरण – ओढ़नेका वस्त्र
*प्राभातिक: – परभाती राग
पाथ: – जालम्
पात्रेसमिता: – भोजनकाले एव सङ्गता:
पारितथ्या – सीमन्तस्थस्वर्णपट्टिका (सांका)
परिहार्य: – (कङ्कन)
पिहित – छिपाये
पिचुमन्द – निम्ब
पेरु – सूर्य:
प्रोन्छन् – पोंछता हुआ
*पौरप्रतिष्ठान – सिटी कार्पोरेशन

फ

*फुल्मरी – फुलझड़ी

ब

बालदिनेश: – उदयन् सूर्य:

भ

*भूमिहर: – जमीन्दार

म

मस्तर – मेटर
मधनदी – टेम्स एस्ट्रेस
मर्मस्पर्श – शोर्टकट
मघवी – इन्द्र की
मा – मुरा (बन्दन)

र

रसगुच्छ – रसगुल्ला
राजिका – राई
मन्थ – भुनकसे

व

बौद्ध – धर्मबेल (बग्गी)

वृषस्यन्ती – गर्भाधानार्थं वृषेच्छु गौ।
वचक्नु – वाग्मी
वटक – बड़े
व्यथा: – वेग
वितान – तम्बू, शामियाना
वायुध्वनि – हौसल
वाशित – पक्षिरवः
विरूढ़पुं: – वज्रनिर्घोष:
*वृन्दवाद्य – बैण्ड
*विरद्वितरण – डायरी देना
व्योमम् – विमलम्

ल

लम्बनिका – हार:
*लिङ्गमल: – लङ्गोट (लिङ्गपटबन्धि)
लुलाय: – मर्दन:
*लोकपथ: – राजमार्ग:

श

*शङ्खध्योपवजीवी – मछुवा
शामेयम् – शामी का मास
शिरोरत्नम् – शिरोभूषण, मौर
शुल्कु – सर्प: (१०७ उदाहरण।)
*शुल्कशाला – टैटल।

स

सम्प्रसारणीय – सम्प्रसाद से हुआ
सदर्शनम् – दोनों के साथ
सिक्ताशकट: – बालू के टट्टे
*सैक – (एकक)
संताप – उपतापं
सजर: – प्रयुक्त, छोटी बालों का

शुद्धिपत्रम्

ऊपर नीचे की मात्रायें, रेफ टूट गये, भ म, व ब, अनुस्वार म्, आश्चर्यबोधक, सम्बोधन, प्रश्नबोधक, चिह्नों का विपर्यय, ओ, ई की मात्रायें ठीक न लगीं, ये अशुद्धियां पाठक स्वयं शुद्ध करें। विशेष अशुद्धियों की शुद्धि दी जाती है।—प्रकाशकः

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७	४	आधारो	आधारी
१८	२१	हासप्रियः	उपहासप्रियः
२१	५	वार्द्धक्यभावा	वार्द्धका
२३	२	तदनु	तमनु
२५	२४	प्रार्थयामि	प्रार्थये
२९	११	स्त्व	स्नात्वा
३१	१५	श्यमान	श्यमानम
३२	१३	व्यत्या	व्यतिया
३४	५	चक्षते	चक्षन्ते
३४	६	,,	,,
३७	१४	स्वीय	स्वकीय
४२	२२	भातभात	भायध्वम् भायध्वम्
५०	६	माने	जाने
५०	६	दस्याः मुग्ध	विदग्धमुग्ध
५२	२०	दूरयन्तौ	दवयन्तो
५४	११	विधास्मामः	विधास्यामः
६३	१	एलायितु	पलायितु
६५	१२	वेत्त	वेत्तु
६७			पर्र क्षो
			सदमान्ताः
			स्मिन् कार्ये
७२	१३	प्रत्यैत	प्रत्यैयत
७३	२४	वार्द्धक्यं	वार्द्धकं
७४	२३	प्रत्यैद्	प्रत्यैयत
७५	२०	मुदविजीत्	मुदवेजयत्
७५	२६	नाक्षिणी	नाक्षणि
७५	१४	लिहन्	लिहानः
७९	२३	मपानैवान्	मपानैषुः
८३	२	प्रत्यैत	प्रत्यैयत
९६	२२	गृहीदर्वी	गृहीतदर्वी
११२	२२	द्वावेव च महोत्की	महोर्त्कं प्रत्यैयत
१०७	२१	स्द्धरिध्यतिस्द्धस्तुं	शास्यते
१२४	१७	सरोजिनी नितरा	मनोरमा नितरा
१२६	१९	समाकृष्टकामिनां	समाकृष्ट-कामिनीनां
१२८	१	हातः	हीनः
१३३	१७	प्रकृतिको	प्रकृतिकः
१३९	१९	मपेतः	मुपेतः
१४०	१९	कृताभोग	कृताभोगम
१४०	१८	इयन्तं महान्तम	इयन्महत्

पृष्ठ पंक्ति अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ पंक्ति अशुद्ध	शुद्ध
१६१ २ इसितात्	हसिते	२०३ २ इरीय	रुद्रीय
१६४ २ मुक्तशर	मुक्तशरशङ्कितैः	२०८ २२ जगदक्षणि	जगतोऽक्षणि
१६५ १५ चत्रमदन्तः	चाम्रमदन्तः	२२४ १९ निवन्धो	निर्बन्धो।
१६६ ८ प्रौढ	प्रौढो	२२६ ९ विस्फार्य	विस्फार्य त्वं
१७२ ४ दाराः स	दाराःसर्वे	,, २१ कौशल्येन	कौशलेन
१७२ १९ हितायाश्च	हितायायस	२२८ ३ अलिमापक्ष	अलिमापक्षे
१७८ ९ सद्दतोद्रीय	सद्दसोद्रीय		

गीतिपरिचयः

पृष्ठे

३६ कुड्मला दधतिच्छविं मातरिश्वविचालिताः।

२८६ अम्बिका भवतु प्रसन्ना राज्ञि चन्द्रे भूपतौ।

१०३ हा! गतः क्वासौ प्रियो मे कृष्णकेशैः शोभितः
एतास्तिस्रो गजलउर्दवाच्याः।

१०२ निशे हे आलि नाथः क्वास्ते मे (स्थायी)
शुद्ध थाट, ताल कहरवा।
ध़ स स रे गग०० गमम० गग रेगस०

सुत्राहम्०—(अन्तरा)
ध स स ध स स सा सरि सरि ग० सरिग गमम ग० रे ग स०

— • —

१०१ प्रियवर! पातं नेत्रयोः। राजस्थानी माड

———

शीघ्रमेव प्रकाश्यते

चन्द्रमहीपतेरुत्तरखण्डरूपोऽपि स्वतन्त्रः, सूर्यप्रभायात्राद्वृत्तान्तात्मको द्वितीयो भागः। यस्मिन् भारतस्य विशिष्टनगराणामाधुनिकः समुदाचारो जीवितभाषया पठिष्यते। विषयोऽयं संस्कृतज्ञानां कृते सर्वथा नवीनः परमं व्यवहारवर्द्धकः सातिशयमानन्ददश्च।

अभिलाषुकाः अग्रिमधनं विनैव केवलं नवकार्षापणपञ्चकस्य (५ N. P.) पत्रमेकं लिखित्वा नामाङ्कनं कारयेयुः। मुद्रिते च तस्मिन् श्रीमन्तः सत्वरं सूचयिष्यन्ते यथाभिलषितं कर्त्तुम्।

स्वरचिह्न तारसप्तक मन्द्रसप्तक कोमलसप्तक

चाल— मन मोरा बावत। तीन ताल। स्वरलिपिः भातखण्डेपद्धतिः।

१८९ पृष्ठस्थगीतिस्वरलिपिः पाठकसौकर्याय।

स्थायी

+	२	०	३
		सा सा रंसा ध	गरे मग रे
		म म म- नो	— व्या ... कु
सा — — —	— — — —	प प ध नि	ध म ग रे
लम् ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	रा — त्रि —	दि व म लि
—निरे ग म	ग सानि ध प		
मिल नम् —	चि -- -- त- त्		

अन्तरा

		ग रे सा नि	सारे ग ग ऽ
		शो — तः	सा — न्द्रो—
रेम प म	रे म ग ऽ	प नि नि नि	पनि सांनि ध ऽ
या — यु —	र्वा — ति —	वि — द्यु त	प — — त्या—
ऽमम ग म	गम पप प —	प गं रें गं	सां रें सां —
रह घा —	भा ति	प्रो — पि त	प ति का —
नि — सां —	सांरें सांनि ध प	ध ध ध —	ध ध नि धनि
सु — ध्या —	न — रु — णी	प न घो —	र प टी —
— पध सां नि	ध ऽ प ऽ	सां सांनि ध ऽ	प पम ग ग
— — प —	श्यं सो	भृ श मे	म द उ दू
रेम मप पप मग	रेम मरे सनि धप		
वि त ते —	— — — —		

— —

श्रीमतां कर्त्तव्यम्—

(१) संस्कृते नवीनाः सरला रचना विधेयाः।

(२) तासां विक्रयणे प्रचारे चेष्टितव्यञ्च।

(३) पुस्तकस्यास्य सर्वत्र प्रचारः कार्यः, येन संस्कृतप्रच
सह विषयस्यापि प्रचारो भवेत्।

(४) नवीनपुस्तकानां परीक्षासु निवेशनेन संस्कृतभाष
वास्तविक उद्धारो भवितुं शक्नोति, तदर्थमधिकारि
चेष्टितव्यम्।

(५) सर्वविधः परामर्शः पत्रव्यवहारश्चापो लिखितेन सङ्के
करणीयः। संस्कृतज्ञानां विश्वस्मिन् प्रसृतानां विद्
मैत्र्यै परमाकुलोऽहम्।

श्रीनिवासशास्त्री
११८, अमहर्स्ट स्ट्रीट,
कलकत्ता-९

श्रीमतां कर्त्तव्यम्—

(१) संस्कृते नवीनाः सरला रचना विधेयाः।

(२) तासां विक्रयणे प्रचारे चेष्टितव्यञ्च।

(३) पुस्तकस्यास्य सर्वत्र प्रचारः कार्यः, येन संस्कृ
सह विषयस्यापि प्रचारो भवेत्।

(४) नवीनपुस्तकानां परीक्षासु निवेशनेन संस्कृ
वास्तविक उद्धारो भवितुं शक्नोति, तदर्थमपि
चेष्टितव्यम्।

(५) सर्वविधः परामर्शः पत्रव्यवहारश्चाधो लिखितेन
करणीयः। संस्कृतज्ञानां विश्वस्मिन् प्रसृतानां
मैत्र्यं परमाकुलोऽहम्।

श्रीनिवासशास्त्री
११८, अमहर्स्ट स्ट्रीट,
कलकत्ता-९